ग्रन्थ

श्री

समता विलास

संगत समतावाद

श्री समता विलास

ग्रन्थ
श्री समता विलास

अनुभवी अगम–सद्वचन

सत्पुरुष पूज्य सद्गुरुदेव मंगतराम जी महाराज

संगत समतावाद (रजि०)
समता योगाश्रम
जगाधरी – 135003
हरियाणा

सर्वाधिकार सुरक्षित
© संगत समतावाद (पंजी0)

प्रथम संस्करण	**1949**	**1000**
द्वितीय संस्करण	**1956**	
से		
नवम् संस्करण	**2007**	**8600**
दशम् संस्करण	**2011**	**1200**

प्राप्ति स्थान :

(1) समता योग आश्रम
छछरौली रोड
जगाधारी-135003

(2) समता योग आश्रम
अंसल पालम विहार फार्म नं0 45
गाँव-सलाहपुर
हूडा गुड़गाँव सेक्टर-21 के सामने
नई दिल्ली-110061

मुद्रक :
राजेश प्रिंटिंग प्रैस
7321-22, आराम नगर,
पहाड़ गंज, कुतुब रोड,
नई दिल्ली-110055

श्री सद्गुरुदेव मंगतराम जी महाराज

जन्म	:	नवम्बर 24, सन् 1903 ईस्वी
महासमाधि	:	फरवरी 4, सन् 1954 ईस्वी (अमृतसर)
जन्म स्थान	:	गंगोठियां ब्राह्मणां, तहसील कहुटा जिला-रावलपिण्डी, (पाकिस्तान)

समता
अपार शक्ति
महामन्त्र

ॐ

ब्रह्म सत्यं
निरंकार अजन्मा अद्वैत
पुरखा सर्वव्यापक कल्याणमूरत
परमेश्वराय नमस्तं

ॐ

ब्रह्म सत्यं सर्वाधार

प्रस्तावना

विचारशील मनुष्य के अन्दर ऐसे प्रश्न पैदा होते हैं कि यह जीवन क्या है? यह संसार क्या है? यह दिन-रात की हलचल, दौड़-धूप, सुख-दुःख की झाँकियाँ, परिवर्तन और जन्म-मरण का चक्कर क्या मायने रखते हैं? मनुष्य की मानसिक इच्छा क्या है और इसकी तप्ति किस प्रकार हो सकती है? ईश्वर किसको कहते हैं? उसका स्वरूप क्या है और उसके जानने के क्या साधन हैं, इत्यादि? जीवन के इन प्रारम्भिक प्रश्नों पर समय-समय पर आने वाले सत्पुरुषों ने अपने-अपने ढंग से प्रकाश डाला है। इन सत्पुरुषों के पवित्र जीवन और अनमोल वचन कई सदियों तक करोड़ों मनुष्यों को ठण्डक पहुँचाते रहे हैं। सत्य एक है, भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों के प्रवर्त्तकों, अवतारों और सत्पुरुषों ने उसी सत्य को ब्रह्म, निर्वाण, आसमानी बाप, अल्लाह, एक ओंकार और समता तत्त्व आदि शब्दों से पुकारा है, और उस सत् को अनुभव करने के लिए जीवन की पवित्रता पर ज़ोर दिया है, लेकिन हर सुधरक सत्पुरुष ने सत् की ठीक व्याख्या के अतिरिक्त अपने समय की सामाजिक कुरीतियों और उस समय की बिगड़ी हुई अवस्था को सुधारने के लिए नाना प्रकार की युक्तियाँ बतलाई हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता है अमली जीवन से हीन और स्वार्थी लोगों के हाथों सत् सिद्धांत भी विकत हो जाता है। जीवन के बाहरी या दिखावटी ढंग के आधर पर पक्षपात आ जाता है और सामाजिक ढाँचा कमज़ोर हो जाता है। स्वार्थ-सिद्धि और अमली जीवन न होने के कारण सत् शिक्षा को गलत रूप दे दिया जाता है। धर्म तथा सत्पुरुषों के नाम की आड़ में राक्षस प्रवत्ति लोग भोली-भाली जनता को धोखा देते हैं, और अपनी नीच वासनाओं को पूर्ण करने के

लिए जनता का शोषण करते हैं। इससे बहुत अनर्थ, गिरावट और उपद्रव पैदा होते हैं और संसार को अति क्लेश मिलता है। जब-जब इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और जनता को कोई रास्ता इससे बचने का दिखलाई नहीं पड़ता है तब-तब सत्पुरुष इस संसार में आकर जनता को सन्मार्ग दिखलाते हैं। आप्त पुरुषों के वचन इसके प्रमाण हैं :—

''जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ।'' (योगेश्वर श्रीकष्ण)

''जब-जब धर्म की हानि होने लगती है और भूमण्डल पर आसुरी प्रकति एवं अभिमानी पुरुषों की बढ़ोत्तरी हो जाती है, तब-तब मैं मानुष चोले में आता हूँ और सज्जनों के कष्ट और संकटों को निवारण करता हूँ।'' (भगवान श्रीराम)

''या ही काज धारा हम जनमं। समझ लेओ साधू सब मनमं।।
धरम चलावन संत उबारन। दुष्ट सबन को मूल उपारन।।
(विचित्र नाटक : श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज)

''जब समता धर्म का प्रकाश लोप हो जाता है उस वक्त फिर सत्पुरुष आकर अमली ज़िन्दगी द्वारा प्रकाश दिखलाते हैं।'' (सद्गुरुदेव महात्मा मंगत राम जी)

वर्तमान काल के परम सत्पुरुष श्री **सद्गुरुदेव मंगतराम जी महाराज** ने भी इन्हीं परिस्थितियों में रावलपिण्डी ज़िला के गंगोठियाँ नामक गाँव में कसाल ब्राह्मण परिवार में 9 मघर संवत 1960 शुभ दिन मंगलवार, तदानुसार 24 नवम्बर, 1903 को मानव शरीर धारण किया।

इन सत्पुरुष ने जन्म-सिद्ध स्वरूप में ही जन्म लिया। बचपन से ही इन होनहार सत्पुरुष में पुरातन परम उज्ज्वल संस्कारों की झलक दीखती है। आम सन्तों में और सुधारक सन्तों में यह भिन्नता सदा से देखी गई है कि आम सन्त तो अपने कल्याण हेतु ही उद्यम करके वह अवस्था प्राप्त कर लेते

हैं, और उसी में सदैव लीन रहकर प्रारब्धवश शरीर छूटने के उपरान्त उस ब्रह्म तत्त्व में विलीन हो जाते हैं। परन्तु सुधारक सन्त एक दूसरा मिशन, ध्येय एवं सिद्धान्त लेकर इस संसार में आते हैं। अपने आपको उस परम अवस्था के साथ तद्‌रूप किये हुए, संसार की दयनीय अवस्था के लिए दर्द और कल्याण हेतु, पाखण्ड खण्डन की भावना को लेकर इस मानव जगत में प्रवेश करते हैं। पूज्य **श्री सद्‌गुरुदेव मंगतराम जी महाराज** भी इन्हीं सुधारक सन्तों की परम्परा में से एक हैं। आपने भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर जैसी-जैसी जीवों की स्थिति देखी उसके अनुकूल ही मानव जीवन की हर बात ध्यान में रखते हुए अपने मुखारबिन्द से अनमोल वचन उच्चारण किये और सत् उपदेश दिये। इन सत् उपदेशों में जिज्ञासुओं के कल्याण के लिए बड़े सहज सरल साधन बतलाए गये हैं जिनको अपनाने से सर्व प्रकार के संशय दूर हो जाते हैं और सच्ची भक्ति एवं धर्म के शुद्ध रूप का ज्ञान प्राप्त होता है। श्री महाराज जी ने उस महान् सत्य को ''समता तत्त्व'' के नाम से पुकारा है और उस जीवन शैली को, जिसको धरण करके मनुष्य अपना तथा समाज, देश और मानव मात्र का कल्याण कर सकता है, ''समतावाद'' का नाम दिया है। समतावाद के पाँच मुख्य साधन हैं—सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत्-सिमरण। इन सुनहरी नियमों का तथा जीवन के दूसरे प्रारम्भिक प्रश्नों का इस पवित्र ग्रन्थ ''श्री समता विलास'' में बड़ी सरल भाषा में वर्णन किया गया है।

इस अनमोल ग्रन्थ में छः अनुभव हैं। पहले अनुभव में ''समता निधान'' तथा ''परम निधान'' के प्रसंगों में समता के सार सिद्धान्त का वर्णन है। दूसरे अनुभव ''समता धाम'' में जीवन के बन्धन और क्लेश के मूल कारण और उनसे मुक्त होने का रास्ता बताया गया है। तीसरे अनुभव में तीव्र

और साधारण बुद्धि वाले दोनों तरह के लोगों के लिए पथ-प्रदर्शन है। इसमें समता मार्ग के लिए 'जीवन प्रणाली', 'आस्तिकपन का असली स्वरूप', समता के पाँच सुनहरी नियमों अर्थात् सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत् सिमरण के असली स्वरूप की व्याख्या और उनको अपनाने के लाभ अत्यन्त सरल भाषा में वर्णन किये गये हैं। इस अनुभव के नौवें से तेरहवें उपदेशों में तीर्थ-यात्रा, दान, मूर्ति-पूजा, देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा और भूत-प्रेत और पितर इत्यादि के सम्बन्ध में वर्तमान गहरे अज्ञान अन्धकार और संशय को दूर करने वाले और एक ईश्वर विश्वास को दढ़ करने वाले अनमोल विचार दिये गये हैं। इसी के साथ चौदहवें उपदेश में धर्म उपदेशकों के लिए हिदायत दी गई है। चौथे अनुभव में धर्म के सही अर्थ, स्वरूप एवं लक्ष्य के सम्बन्ध में और ''समता धर्म'' तथा ''समता मार्ग'' पर प्रकाश डाला गया है। पाँचवें अनुभव में बुद्धि के अन्धकार और प्रकाश की अवस्थाओं का वर्णन है, तथा समता योग सिद्धि की चार सीढ़ियाँ सिमरण, भजन, ध्यान और समाधि से सम्बन्धित श्री सद्गुरुदेव जी ने राज योग के अन्तर्गत अपने आपका अनुभव साधकों के लिए प्रकट किया है। इसी के उप-भाग में ''गुरुपद का सिद्धान्त'', ''समतावाद'' तथा ''उत्तरायण व दक्षिणायण मार्ग'' सम्बन्धी बुद्धि को उज्ज्वल करने वाले विचार वर्णित हैं। छठे अनुभव में, 'वासना-विवेक', 'वासना-छेदन-विवेक' और 'वासना-अभाव-विवेक' के प्रसंगों में आवागवन के चक्र और वासना के फैलाव, वासना से मुक्ति होने के उपाय तथा निर्वाण पद का अनुपम वर्णन किया गया है। निर्मल जीवन और मलीन जीवन पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उच्च विचार अति सरल भाषा में वर्णन किये हैं। इसके अतिरिक्त ''निहकर्म सिद्धि'', ''सत्संग'', ''जीवन नियम'' एवं

''जिज्ञासु का निर्मल प्रण'' के विषयों पर ''अनमोल सत् सन्देश अनुभवी वाक्'' में वचन फरमाये हैं। अन्त में जो परिशिष्ट खण्ड जोड़ा गया है उसके दो उप-खण्ड हैं—प्रथम उप-खण्ड ''समता जीवन विज्ञान'' से सम्बन्धित है जिसमें जीव के शरीर धारण करने, जीवन यात्रा को सावधानी से व्यतीत करने और शरीर रूपी संसार पर विजय प्राप्त करने के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा ऐसे भी सत् उपदेशों को इस उप-खण्ड में समावेश किया गया है जो विश्व को सत् शान्ति की राह दिखलाते हैं जिससे आज के भोगवादी जीवन की समस्याओं का हल हो सकता है और जिज्ञासुओं के लिए उससे छुटकारा पाने के सरल साधन ज्ञात हो सकते हैं। द्वितीय उप-खण्ड ''समता ज्ञान मार्ग'' में योग की उच्च स्थिति तथा उसकी प्राप्ति के सुगम साधनों का उल्लेख है एवं कई मिश्रित सत् उपदेशों का संग्रह है।

प्रस्तुत ग्रन्थ ''श्री समता विलास'' जिन अनमोल वचनों का संग्रह है वे सब महान तपीश्वर सत्पुरुष श्री मंगतराम जी महाराज के मुखारबिन्द से निकले हुए हैं और श्री महाराज जी की आज्ञा प्राप्त होने पर ही आपके परम शिष्य भक्त श्री बनारसीदास जी ने, जो कि हर समय आपकी सेवा में उपस्थित रहते थे, लिख करके सत् के जिज्ञासुओं के लिये यह अनमोल रत्नों का भण्डार एकत्र किया है। सब पाठक सज्जनों को विचार-पूर्वक इन अनमोल रत्नों का स्वाध्याय कर जीवन को परम उच्च और निर्मल बनाना चाहिये।

संगत समतावाद (रजि०)

समता

अपार-शक्ति

ब्रह्म सत्यं   सर्वाधार

ग्रन्थ

श्री

समता विलास

श्री मुख-वाक् अमृत

पूज्यनीय श्री सद्‌गुरुदेव

मंगतराम जी महाराज

(पवित्र जन्म-भूमि शुभ स्थान गंगोठियाँ, ज़िला रावलपिण्डी, पाकिस्तान)

सूची-पत्र समता विलास

क्रम संख्या	*विषय*	*पृष्ठ*	
1.	सूची-पत्र	.....	(xv)
2.	दीबाचा	.....	(xix)

प्रथम अनुभव

3.	समता निधान	.....	1
4.	परम निधान	.....	23

दूसरा अनुभव–समता धाम

5.	समता आनन्द की लोप अवस्था	.....	27
6.	ईश्वर भक्ति की प्राप्ति	.....	43

तीसरा अनुभव–समता नीति

7.	पहला उपदेश–समता ज्ञान का पूर्ण साधान	.....	86
8.	दूसरा उपदेश–समता साधान सार	.....	88
9.	तीसरा उपदेश–आस्तिक व नास्तिकपन का विचार	.....	90
10.	आत्मिक उन्नति धर्म का यथार्थ स्वरूप आत्मिक उन्नति के मुख्य साधन चौथा उपदेश–पहला साधन–''सादगी''	.....	93
11.	पाँचवाँ उपदेश–दूसरा साधन–''सत्य''	.....	103
12.	छठा उपदेश–तीसरा साधन–''सेवा''	.....	110
13.	सातवाँ उपदेश–चौथा साधन–''सत्संग''	.....	120
14.	आठवाँ उपदेश–पाँचवाँ साधन–''सत् सिमरण''	.....	125
15.	नवाँ उपदेश–तीर्थ यात्रा का सिद्धान्त	.....	132
16.	दसवाँ उपदेश–दान का सिद्धान्त	.....	135
17.	ग्यारहवाँ उपदेश–मूर्ति पूजा का सिद्धान्त	.....	138

18. बारहवाँ उपदेश–देवी-देवताओं और
ग्रहों की पूजा का सिद्धान्त 143
19. तेरहवाँ उपदेश–भूत-प्रेत व पितर का सिद्धान्त 153
20. चौदहवाँ उपदेश–धर्म उपदेशकों के वास्ते
हिदायत 160

चौथा अनुभव–समता धार

पहला भाग :

21. समता धर्म 169
22. समता मार्ग सन्देश 193
23. बुद्धि की पूर्ण व अपूर्ण अवस्था का निर्णय 198
24. समदर्शी और समवृत्ति मार्ग का उपदेश 205

दूसरा भाग :

25. समता योग सिद्धि–पहला अंग–''सिमरण'' 210
26. दूसरा अंग–''भजन'' 218
27. तीसरा अंग–''ध्यान'' 220
28. चौथा अंग–''समाधि'' 223

तीसरा भाग :

29. गुरु पद का सिद्धान्त 237
30. समतावाद 251
31. उत्तरायण व दक्षिणायण मार्ग के मुतल्लिक विचार..... 252

चौथा भाग :

32. पवित्र जीवन 256

पाँचवाँ अनुभव–समता बोध

33. पहला निधान–वासना विवेक 287
34. दूसरा निधान–वासना छेदन विवेक 299
35. तीसरा निधान–वासना अभाव विवेक 321
36. चौथा निधान–शुद्ध आचरण विवेक 331
37. समता सत् नियम 352

छठा अनुभव

38.	समता विवेक	.....	359
39.	सत्गुरु गुह्य उपदेश	.....	384
40.	निर्मल जीवन कर्त्तव्य	.....	386
41.	आत्मिक व सामाजिक उन्नति के निर्मल नियम	.....	389
42.	शक्ति तत्त्व का निर्णय	.....	398
43.	समता परम स्वराज	.....	403
44.	अनमोल सत् सन्देश अनुभवी वाक्: नित का जीवन, नित की शान्ति, नित का स्वराज केवल समता ही है।	.....	408
45.	निर्मल जीवन रक्षा	.....	413
46.	निहकर्म सिद्धि यानी अहिंसावाद	.....	420
47.	सत्संग निर्णय और सत् जीवन नियम	.....	428
48.	जिज्ञासु का निर्मल प्रण	.....	433
	समता विलास समाप्ति	.....	443

ग्रन्थ श्री समता विलास–परिशिष्ट खण्ड

समता जीवन विज्ञान

1.	जीवन सफलता बोध	.....	445
2.	सार निर्णय जीवन	.....	451
3.	जीवन यात्रा	.....	454
4.	जीवन सुधार	.....	457
5.	कल्याणकारी निर्मल जीवन	.....	461
6.	सत् जीवन स्थिति	.....	463
7.	जीवन सार सिद्धान्त	.....	465
8.	सत् शिक्षा	.....	471
9.	मार्ग धर्म में गुरु शिष्य सम्बन्ध	.....	473

10. स्त्री-पुरुष जीवन सम्बन्ध .....
पतिब्रत धार्म 475
पुरुष धार्म 476
11. भूत-प्रेत पर विचार 478
12. नवधा भक्ति का निर्णय 480
13. समर्पण कर्म 487
14. विश्व शान्ति सन्देश 489
15. रामराज्य का स्वरूप 503

समता ज्ञान मार्ग

16. योग मार्ग बोध .....
(क) भोगवाद स्थिति 506
(ख) शुद्ध विवेक 516
(ग) शुद्ध वैराग 526
(घ) शुद्ध निदिध्यास 548
17. सत् मार्ग स्थिति का निर्णय 587
18. परम कल्याण बोध 590
19. सदाचार और नाम सिमरण का निर्णय 603
20. ईश्वर प्रेम 610
21. समवाद विज्ञान 612
22. आत्म चिन्तन 625
23. सत् सरूप चिन्तवन की भावनाएँ
सम्बन्ध कर्म योग या भक्ति योग 632
सम्बन्ध ज्ञान योग 633
खास चेतावनी 635
24. आत्म सिद्धि विचार 635
25. श्री समता विलास अध्ययन सहायिका
(क) समता विलास से प्रश्नों का समाधान 639
(ख) समता विलास से नवीन विषय क्रम 656

दीबाचा

यह समता विलास शास्त्र जीवन का सार सिद्धान्त श्री सत्गुरु महाराज जी ने सरल भाषा में भिन्न-भिन्न भावों सहित उच्चारण फरमाकर तमाम जिज्ञासु सज्जनों के वास्ते अति कृपालता की है और दास ने श्री सत्गुरु महाराज जी की आज्ञा और कृपा दृष्टि से तमाम वचनों को एकत्रित करके समता विलास पुस्तक में पूर्ण किया है। तमाम प्रेमी सज्जन जीवन उन्नति के हर एक भाव को विचार करके निध्यासन में अपने आपको दृढ़ करें, जिससे मानुष जीवन सफल होवे।

समाप्तम्

लेखक,

श्री सत्गुरु चरण निवासी दास
बनारसी दास
समां माह सावन सम्मत् 2005 बिक्रमी
सिद्धखड मसूरी, ज़िला देहरादून (उत्तरांचल)

॥ ग्रन्थ ॥

ॐ श्री समता विलास ॐ

समता अपार शक्ति

महामन्त्र

ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा
अद्वैत पुरखा सर्व-व्यापक
कल्याण-मूरत परमेश्वराय
नमस्तं

समता विलास

प्रथम अनुभव—समता निधान

वचन—1. समता शक्ति से कुल दुनिया का निज़ाम[1] खड़ा है।

वचन—2. समता के आधार पर कुल दुनिया की राजनीति और धर्मनीति बनी है। जो समता के बग़ैर नीति होती है, वह दुःखदाई है और जल्द ही नाश हो जाती है।

1. व्यवस्था, शासन

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—3. समता शक्ति अनुभव करके कुल महापुरुषों ने निज़ात[1] हासिल की और लोगों को राहत-ए-अबदी[2] सिखलाई।

वचन—4. समता ही को धर्म कहते हैं। जब इसका प्रकाश अलोप हो जाता है, उस वक्त फिर सत्पुरुष आकर अमली ज़िन्दगी[3] द्वारा प्रकाश दिखलाते हैं।

वचन—5. समता ही असली खुशी है जो हर एक जीव अन्तर से चाहता है।

वचन—6. समता ही जीवन है। जो चीज़ समता छोड़ती है वह नाश हो जाती है।

वचन—7. समता ही असली स्वराज है जो हर एक दुनियावी क़ैद[4] से निज़ात देता है और परमानन्द को प्राप्त करता है।

वचन—8. समता ही का ज़हूर[5] कुल दुनिया है सब पदार्थ एक दूसरे के प्रेम से खड़े हैं।

वचन—9. समता ही का विचार कुल दुनिया की किताबें बतलाती हैं। जिसमें समता का विचार नहीं है वह इलहामी[6] किताब नहीं बल्कि मन घड़ंत कहानी है।

ॐ समता अपार शक्ति ॐ

1. मुक्ति 2. शाश्वत् शान्ति, अखण्ड शान्ति 3. क्रियात्मिक जीवन
4. सांसारिक बंधन 5. प्रक्य, प्रकट रूप 6. अनुभवी, ईश्वरीय

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—10. समता ही कुल फ़कीरों का मैराज़[1] यानी परमपद है। वहाँ प्राप्त होकर ख़्वाहिश के अज़ाब[2] से छूट पाई है।

वचन—11. समता तत्त्व चेतन प्रकाश अनादि है। इस वास्ते सबको लाज़मी है कि उस आनन्द को प्राप्त करें।

वचन—12. समता से ही मानुष जूनी सब जीवों से उत्तम मानी गई है, क्योंकि इस जूनी में समता का असली स्वरूप हासिल कर सकता है और वासना से मुक्त होता है।

वचन—13. समता ही आनन्द है, नित है, निर्वाण है; सबकी बुद्धि में उसकी चमक है। इस वास्ते उस प्रकाश की तहक़ीक़ात[3] करना ही दिव्य कर्म और सत्-पुरुषार्थ है।

वचन—14. समता की हिदायत सबको निजात देने वाली है सब मज़हबी झगड़ों और दुनिया के झगड़ों से।

1. मंज़िल 2. इच्छा के दुःख 3. खोज

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—15. समता की हिदायत करने वाला ही असली रहनुमा है। इसके बग़ैर जो उपदेश हैं वह बादमुबाद[1] हैं।

वचन—16. समता की आनन्द हालत को प्राप्त होना ही असली भक्ति है। इसके बग़ैर नफ़्स परस्ती[2] है और पाखण्ड है।

वचन—17. समता के असली भाव को समझने से ही सब राजा प्रजा सुख पाते हैं। इसके बग़ैर सब चालाकी और अन्याय है।

वचन—18. समता का ही विचार असली सत्संग है, जो कि मन इन्द्रियों की ममता को नाश करता है और आनन्द अवस्था को प्राप्त करने का यत्न पैदा करता है। इसके बग़ैर सब नुमायश है और ज़हालत है।

वचन—19. समता ही जीवन सब सत्पुरुषों का है; गहरी ग़ौर करके विचार करने से मालूम होता है।

वचन—20. समता ही असली औषधि है जो कि जीव के सब रोग दूर करती है और प्रेम-स्वरूप में लीन कर देती है।

वचन—21. समता को निश्चल बुद्धि करके विचार करना और विरत रहित मन करके विचार करना असली योग है।

1. तर्क-वितर्क 2. इन्द्री भोग की पूजा

ग्रन्थ

ॐ *श्री समता विलास* ॐ

वचन—22. समता ही अनादि विद्या है, जो हर वक्त एक ही भाव में स्थित है, और जो हासिल करता है उसको वह ही रंग कर देती है।

वचन—23. समता की खोज ही असली आनन्द है, जिसको हासिल[1] करके फिर कर्म चक्र में नहीं आता।

वचन—24. समता का असली रस इन्द्रियों के भोगों से विरक्त होने से मिलता है।

वचन—25. समता ज्ञान से ममता विकार त्रैगुण माया का अभाव हो जाता है।

वचन—26. समता ज्ञान से कर्मों के फल से निज़ात[2] मिलती है, यानी निहकर्मता और निष्कामता हासिल होती है।

वचन—27. समता ज्ञान काल, कर्म, इच्छया, उत्पत, प्रलय आदि सब अवगुणों से परे है यानी नित आनन्द अपने आप में पूर्ण है।

वचन—28. समता ज्ञान की उपासना के बग़ैर सब यतन अकार्थ हैं यानी बन्धन दर बन्धन हैं।

1. प्राप्त 2. मुक्ति

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—29. समता ज्ञान ही आदि काल से सब ज्ञानियों को अनुभव हुआ। उसको पाकर इस नाशवान जगत में आनन्द स्वरूप होकर विचरे।

वचन—30. समता ज्ञान—सत् कर्म, सत् विचार, शुद्ध आहार, सत् विश्वास, झूठ से वैराग्य और सत् में अनुराग पैदा करने से हासिल होता है।

वचन—31. समता ज्ञान को हासिल करने की ख़ातिर सत्पुरुषों की संगत लाज़मी है।

वचन—32. समता ज्ञान ममता रूपी मिथ्या देह विकार को त्याग करने से हासिल होता है।

वचन—33. समता ज्ञान को जो प्राप्त होवे उसके अन्दर ये परम गुण प्रकाश करते हैं—निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निहचलता, परोपकार और समभाव में यत्न। ये ही परमानन्द की रोशनी की किरणें हैं।

ग्रन्थ

वचन—34. समता ज्ञानी को बार-बार नमस्कार करके असली तत्त समता धर्म की सिखया धारण करनी लाज़मी है। सब मज़हबों की जान समता है। इसकी असलियत[1] न जानने से मज़हबी बाद-मुबाद पैदा होता है।

वचन—35. समता के धर्म को पूर्ण विश्वास करके धारण करना चाहिए। यह ही असली भक्ति और योग है।

वचन—36. समता ज्ञान के बग़ैर कभी बुद्धि शुद्ध नहीं होती, और न ही कर्म के झगड़े से छूट सकती है। इस वास्ते मानुष ज़िन्दगी का परम धर्म समता विचार, समता साधन, समता स्थिति है।

वचन—37. समता का असली अर्थ यह है कि हर हालत में एक रस होना, ग्रहण और त्याग की कामना से मुक्ति हासिल करनी; यह ही ईश्वर की भक्ति और मुक्ति है।

वचन—38. समता ज्ञान के सही असूलों पर चलने से ही हर एक जीव स्वार्थ बुद्धि को त्याग कर परमार्थ में लीन हो जाता है। फिर संसार के भ्रम चक्र में नहीं आता।

1. वास्तविकता

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—39. समता रूपी सच्ची खुशी को हर वक्त हासिल करो। जन्म-जन्म की सब कमी को पूरा करके ज़िन्दगी में ही पूर्ण हो जाओ।

वचन—40. समता प्रकाश सबके अन्तर चमक रहा है, मगर मनमुखता से जीव उसको अनुभव नहीं कर सकता।

वचन—41. समता रूपी अखण्ड शब्द में तब स्थिति होती है जब मन, इन्द्रियाँ ममता को छोड़कर एक रूप होवें।

वचन—42. समता तत्त्व को हासिल करने के वास्ते बड़ी-से-बड़ी कोशिश करनी चाहिए, क्योंकि यह ही ज्ञान कल्याण के देने वाला है।

वचन—43. समता ज्ञान शरीर अभिमान और कर्म अभिमान के छोड़ने से प्राप्त होता है।

वचन—44. समता ज्ञान शुद्ध उपासना से, यानी ईश्वर को कर्त्ता-हर्ता समझकर सिमरण करने से हासिल होता है।

वचन—45. समता ज्ञान का विशेष साधन यह है कि सब जगत को एक ईश्वर का प्रकाश समझ कर तन, मन, धन से निष्काम भाव और निराभिमान होकर सेवा करनी।

वचन—46. समता ज्ञान के मार्ग पर जो चलता है वह नई से नई खुशी को हासिल करता है, यानी सब पाप उपाधि से छूटकर अखण्ड स्वरूप में लीन हो जाता है।

वचन—47. समता तत्त्व का अनुभव करने वाला ही शिरोमणि और अजीत पुरुष है।

वचन—48. समता तत्त्व के जानने वाला सरब ज्ञाता और सरब आधारी पुरुष माना जाता है।

वचन—49. समता तत्त्व अन्तर्गत विखे जो पहचान करता है, वह चौंसठ घड़ी आनन्द में मग्न रहता है।

वचन—50. समता तत्त्व से दुर्लभ कोई विचार और ज्ञान-ध्यान नहीं है। इस वास्ते अपने अन्तर में हर घड़ी समता रूपी ब्रह्म शब्द को चिन्तन करना ही परम साधन है।

वचन—51. समता तत्त्व को जो नित विचार करता है वह माया के भ्रम को हरण करके सत् स्वरूप शब्द में लीन हो जाता है। वह ही अवस्था परम धाम, निर्वाच और अनाम पद है। धन्य वह पुरुष और धन्य उसकी कीर्ति है।

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—52. समता ज्ञान फ़िर्का परस्ती[1], मुल्क परस्ती[2], कुल ज़ात परस्ती[3] से बालातर[4] है। फ़िर्का परस्ती में भी ख़ुदग़र्ज़ी[5] है; मुल्क परस्ती में भी ममता है; कुल ज़ात का अभिमान भी कैद है।

वचन—53. समता ज्ञान की असली परस्तिश[6] यह है- एक ईश्वर को सर्वव्यापक देखना, किसी से वैर न करना, आचार को शुद्ध करना, ख़ुदग़र्ज़ी की बू को निकालना, सिर्फ़ एक ईश्वर का भरोसा रखना, उसकी इबादत[7] करनी, उसके नाम पर दान करना, उसकी आज्ञा मान कर उसी के सरब जगत की सेवा करनी। समता ज्ञान कोई फ़िर्का या मज़हब नहीं है, बल्कि हर एक मज़हब की बुनयादी रोशनी है। यह ही असली ज्ञान अनानियत[8] यानी ख़ुदी[9] को नाश करने वाला है और अखण्ड शान्ति यानी ईश्वर प्राप्ति देता है।

वचन—54. जो समता ज्ञान यानी सच्चिदानन्द केवल ईश्वर की परस्तिश नहीं करता और न ही उसकी महिमा जानता है, ऐसे पाखण्डी उपदेशक का उपदेश दुनिया में वैर और

1. धार्मिक कट्टरता 2. देशीय कट्टरता 3. जातिवाद 4. ऊपर है 5. स्वार्थ 6. पूजा 7. भक्ति 8. अहंभाव 9. स्वार्थ

अशान्ति फैलाने वाला है। हर एक मानुष को असलियत की जुस्तजू[1] करनी चाहिए।

वचन—55. गुरु, पीर, अवतार, सिद्ध, नबी, पैग़म्बर वह ही है जो एक अविनाशी परमेश्वर की परस्तिश करता है और लोगों को नेक इख़्लाकी[2] और सत् परमेश्वर की पूजा सिखलाता है। उसकी हिदायत[3] प्रेम और आनन्द देने वाली है।

वचन—56. समता की खोज नित ही करो, यह ही हुक्म ईश्वर का है।

वचन—57. समता तत्त्व के पूर्ण मानी[4] एकता मुसावात यानी एक भाव की तहकीक़ात[5] करना। ममता रूपी माया विकार, जो कि पल-पल में ख़्यालात को या बुद्धि को भरमाता है, बग़ैर समता तत्त के समझने के कभी नाश नहीं होता।

वचन—58. समता ईश्वरी शक्ति का यथार्थ स्वरूप और गुण है। समता स्वरूप ईश्वरी सत्ता सदैव काल एक रस होकर विचरती है। किसी वस्तु का विखेप उसको स्पर्श नहीं कर

1. खोज, तलाश 2. आचरण, सद्व्यवहार 3. शिक्षा, नसीहत 4. अर्थ 5. खोज

ग्रन्थ

सकता। यानी तीन काल आनन्द स्वरूप है। इसी समता भाव को जब जीव अपने अन्तर विखे अनुभव करता है तब उसके सब कर्म बन्धन नाश हो जाते हैं और अचल शान्ति को प्राप्त होता है।

वचन—59. स्वार्थ बुद्धि यानी ख़ुदग़र्ज़ी हर वक्त जीव को बन्धन-दर-बन्धन में डालती है। वस्तु प्राप्त होने पर भी तथा वंजोग होने पर भी कभी शान्ति को नहीं हासिल कर सकता। जब समता ज्ञान यानी एक भाव को विचार करता है तब उसके अन्दर निष्काम कर्म आदि श्रेष्ठ गुण प्राप्त होते हैं।

वचन—60. ज्यों-ज्यों अलगर्ज़ी कर्म[1] की धारणा करता है त्यों-त्यों उसके अन्दर निष्कामता, उदारता आदि परम गुण शान्ति देने वाले प्रगट होते हैं। जिस वक्त यथार्थ समता तत्त्व को अनुभव कर लेता है उसी वक्त कर्मों की वासना, जो आवागवन का स्वरूप है, नाश हो जाती है और ज़िन्दगी में ही नित आनन्द को प्राप्त हो जाता है।

1. निःस्वार्थ कर्म

ग्रन्थ

वचन—61. ईश्वर विश्वास, ईश्वर अनुभव, ईश्वर में स्थिति समता ज्ञान से ही होती है। जब तक एक भाव चित्त में न आए तब तक चक्रवर्ती राज्य में भी तखा बनी रहती है। इस माया के क्लेश यानी अज्ञान को नाश करने वाला यह समता ज्ञान ही है। ज्यों-ज्यों मन, बुद्धि, इन्द्रियों की आपस में सत् विश्वास और सत् यतन करके एकता होती है त्यों-त्यों अनादि शब्द समरस रूप अन्दर प्रकाश करता है। अनेक वासना और त्रिगुणों की विखेपता[1] से जीव छूट कर सत् शब्द में स्थित होता है।

वचन—62. जब तक ममता यानी ख़ुदगर्ज़ी चित्त में रहती है तब तक अनेक भाव, चित्त के अनेक संशय और अनेक कामनाएँ बनी रहती हैं। इस वास्ते इस ममता रूपी प्रचण्ड माया के विकार को नाश करने वाला यह समता विचार है।

वचन—63. सर्वव्यापक एक ईश्वर की सत्ता एक रस, एक भाव करके सब चौरासी लाख जीवों में विचर रही है। जिस वक्त उस ईश्वर का यथार्थ सिमरण और यथार्थ प्रेम प्रकट होता है, तब समता ज्ञान यानी सर्व भाव में एक भाव का विचार करना प्रकट होता है।

1. बेचैनी, दुःख

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—64. कर्मफल की इच्छया जो कि जीव को पलक-पलक में ग्रास्ती है यानी सुख-दुःख, लाभ-हान, सर्दी-गर्मी, मित्र-शत्रु, मान-अपमान, ग्रहण-त्याग आदि विकार जो बन्धन स्वरूप हैं—इस आवागवन के चक्र से सम स्वरूप ईश्वर का विश्वास, सिमरण, ध्यान ही कल्याण के देने वाला है।

वचन—65. ज्यों-ज्यों ईश्वर का विश्वास दढ़ होता है त्यों-त्यों कर्मों के फल की वासना नाश होती जाती है, निहकर्मता यानी मुक्त स्वरूप ईश्वर में स्थिति पाता है।

वचन—66. बाद-मुबाद के प्रमाद से जब तक बुद्धि नहीं छूटती तब तक समता ज्ञान यानी नित आनन्द स्वरूप को नहीं प्राप्त हो सकती। इस वास्ते हर घड़ी, हर लमह, निर्वैर, निर्विखाद, निराभिमान होकर प्रेम रूप समता शान्ति को हासिल करें। यह ही अविनाशी आनन्द है जो कि हर एक के अन्दर चमक रहा है। मूर्खताई से जीव उसको विचार नहीं कर सकता।

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—67. हर एक से प्रेम करना क्रोध को नाश करता है। हर एक की सेवा करनी अभिमान और लोभ को नाश करती है। ईश्वर को सत् जान कर उसका सिमरण करना मोह और काम को नाश करता है। जब ऐसी धारणा यानी ईश्वर भक्ति और लोकसेवा चित्त में स्थित होती है उस वक्त यह जीव सब माया के विकारों से छूट कर समता ज्ञान में प्रवेश कर जाता है। वो ही परम पद यानी अखंड शान्ति है।

वचन—68. हर एक को सच्ची खुशी की तलाश करनी चाहिए, सच्चे धर्म की जुस्तजू[1] करनी चाहिए। ख़ुदग़र्ज़ी यानी फ़िर्क़ाप्रस्ती[2] की बू को त्यागना चाहिए। ये ही जीव को गहरा अज़ाब देने वाले हैं। हर वक्त प्रेम स्वरूप समता ज्ञान की तलाश करनी चाहिए।

वचन—69. जीव आज़ादी यानी निज़ात को हर वक्त चाहता है, मगर अभिमान-वस होकर अनेक प्रकार की कैद में आ जाता है। जब तक शुद्ध ईश्वर-परस्ती को धारण नहीं करता तब तक बन्धन से कभी छूट नहीं सकता।

1. खोज, तलाश 2. जातीय भेदभाव

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—70. मूल बन्धन कर्म अभिमान है (यानी ''मैं कर्त्ता'') इससे देह अभिमान प्रगट होता है। देह अभिमान से कुल ज़ात अभिमान पैदा होता है। कुल अभिमान से मज़हब अभिमान पैदा होता है। मज़हब अभिमान से राज इच्छया यानी मुल्क अभिमान पैदा होता है। यह ही तष्णा नरक को देने वाली है।

वचन—71. बजाय समता और प्रेम के चित्त में तास्सुब[1] यानी बाद-मुबाद प्रकट हो जाता है, सब धर्म कर्म से हीन होकर और जीवों को दुःख देता है। अति अभिमान में आकर ईश्वर की हस्ती और ईश्वर हुक्म से मुनकिर[2] हो जाता है तब कुदरत-ए-कामिला[3] उसकी हस्ती जल्द ही नाश कर देती है।

वचन—72. जो एक ईश्वर को सब में नहीं देखता वह ईश्वर हस्ती से मुनकिर है। जो प्रेम करके दुःखी जीवों की सेवा नहीं करता वह ईश्वर हुक्म से मुनकिर है। जब माया का अभिमान प्रचण्ड होता है तब ख़ुदग़र्ज़ी और ख़ुदपसन्दी[4] में गिरफ़तार होकर अपनी इख़लाक़ी ज़िन्दगी[5] को नाश कर देता है।

1. ईर्ष्या-द्वेष 2. न मानना 3. प्राकतिक नियम 4. आपाभाव 5. सद्‌व्यवहारिक जीवन

ख़्वाहिश और ग़ज़ब[1] के अज़ाब[2] में फँस कर दीन, दुनिया दोनों से हाथ धो बैठता है। यह ही हालत जीव को घोर नरक दिखलाती है।

वचन—73. इन सब बन्धनों से आज़ाद करने वाला सम सरूप ईश्वर का ज्ञान है। ज्यों-ज्यों ईश्वर उपासना को धारण करता है त्यों-त्यों इन सब बन्धनों से छूट कर सर्वज्ञ शक्त अनादि शब्द में लीन हो जाता है।

वचन—74. यह ही अवस्था संसार का मूल है, यह ही शान्ति है। यह ही परमपद, यह ही योग सिद्धि है। इस अवस्था को जीव प्राप्त होकर कर्म वासना से मुक्त हो जाता है, यानी सर्वज्ञ सरूप एक ईश्वर ही ईश्वर सत् आनन्द अन्तर बाहिर दिखाई देता है।

वचन—75. यह ही धाम समता ज्ञान की स्थिति है। यहाँ आकर जीव शान्त हो जाता है। मानुष ज़िन्दगी में आकर इस यथार्थ समता धर्म को धारण करना ही दुर्लभ पुरुषार्थ है। नित खोज करो, नित सिमरण करो, नित ही ईश्वर विश्वासी बनो! मरने से पहले ज़िन्दगी का उपाय करो! समता तत्त्व का विचार ही असली जीवन का लाभ है।

1. इच्छा और पापयुक्त जीवन के दुष्परिणाम 2. दुःख, मुसीबत

ग्रन्थ

वचन—76. तमाम कर्मों के फल को ईश्वर आज्ञा में अर्पण करता जावे, और अनन प्रीति कर के सत् सरूप का सिमरण करे; तब ममता रूपी अन्धकार अन्तर से नाश हो जाता है और समता तत्त अखण्ड शब्द अन्तर में प्रकाश करता है। ये ही अवस्था ईश्वर प्राप्ति की और परमानन्द सरूप है।

वचन—77. निमख-निमख करके ईश्वर का सिमरण करना, होना और न होना सब ईश्वर आज्ञा में देखना इस निश्चय को धारण करने से दुर्मत भ्रम नाश हो जाता है और सम सरूप परमानन्द अखय शब्द में स्थिति हासिल होती है। यह ही अखण्ड और अनन भक्ति है। हर वक्त समता तत्त्व के विवेक को हासिल करने की कोशिश करनी चाहिए। यह ही साधन मुक्ति का मार्ग है।

वचन—78. ब्रह्म शब्द जिसका न आद है, न अन्त है; सबके अन्तर व्यापक और सबसे न्यारा है; तीन काल सम स्वरूप है; आलख, अपार, अनामी ईश्वर का सिमरण करना, ध्यान करना ही समता ज्ञान को प्रकाश करता है।

हर घड़ी, हर लमह ईश्वर का पूर्ण विश्वास रखना चाहिए। कर्त्ता, हरता सब का मालिक जानकर सिमरण करना चाहिए। इस धारणा को हासिल करते-करते समता ज्ञान की स्थिति प्राप्त हो जाती है। तब सरब सरूप एक नारायण ही दिखाई देता है।

वचन—79. द्वैत भाव को नाश करके जीव सत् स्वरूप अविनाशी परमेश्वर में लीन हो जाता है। फिर आवागवन के नाशवान दुःख-सुख कर्म चक्र में नहीं प्राप्त होता। केवल ब्रह्म सरूप हो जाता है।

वचन—80. नित ही सत् मार्ग में यत्न करो। काल सरूप इच्छया के भ्रम को त्याग कर समता ज्ञान, निष्काम, निर्वाण पद को प्राप्त हो जाओ! इस मिथ्या संसार में आने का परम लाभ समता प्राप्ति है।

वचन—81. समता सरूप असली ब्रह्म शब्द है जो कि हर हालत में पूर्ण है और सब के अन्तर व्याप रहा है। शुद्ध बुद्धि और एकाग्र मन से विचार में आ सकता है। नित ही कोशिश करनी चाहिए उस अविनाशी तत्त्व के जानने की।

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—82. समता का धाम अत ही ऊँचा है। बड़े पुरुषार्थ से हासिल होता है।

वचन—83. समता की रोशनी जिसके अन्दर प्रगट हुई है, वह काल कर्म से आज़ाद हो गया है, यानी समाधि में स्थित रहता है।

वचन—84. सब भक्ति, रियाज़त और इबादत[1] उसी अखण्ड शब्द की प्राप्ति की खातिर हैं, जो समता का प्रकाश है।

वचन—85. जब तक इख़लाकी ज़िन्दगी[2] शुद्ध नहीं होती, कभी भी रूहानी रोशनी[3] यानी समता को प्राप्त नहीं हो सकता।

वचन—86. अपने ख़्याल को हर वक्त पाकीज़ा[4] रखने से समता धर्म का विश्वास प्रगट होता है।

वचन—87. समता की प्राप्ति का नाम मुक्ति, सत् पद और निर्वाण है।

वचन—88. सब मन की वत्तियाँ लीन हो जाती हैं जब समता रूपी शब्द को अन्तर-विखे प्राप्त होता है। वह परमानन्द अवस्था है।

ॐ समता अपार शक्ति ॐ

1. आराधना और सिमरण 2. सदाचारी जीवन 3. आत्मिक आनन्द 4. स्वच्छ, पवित्र

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—89. सब शरीर नाश रूप है, केवल तत्त्व समता ही अविनाशी है, जो कि हर एक को आनन्द देने वाली है। उसको आत्मा, ब्रह्म, प्रकाश आदि नाम से विचार किया गया है।

वचन—90. जब तक गुरु सिखया और सेवा न धारण की जाए कभी भी समता में स्थित नहीं हो सकता।

वचन—91. नाम, रूप, गुण, कर्म आदि माया विकार से छूटने के वास्ते समता रूपी सत् नाम को धारण करना चाहिए और बार-बार एक चित्त होकर सिमरण करना चाहिए।

वचन—92. समता रूपी जीवन को प्राप्त होना ही मानुष देह का सत्पुरुषार्थ है। हर वक्त स्थिर धाम की खोज करनी चाहिए।

वचन—93. अपने मन को नित ही ईश्वर परायण बनाना चाहिए जिससे समता आनन्द प्राप्त होवे।

वचन—94. जब तक संसार को नाश नहीं माना, तब तक कभी भी अविनाशी तत्त्व समता को प्राप्त नहीं हो सकता।

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—95. मन, इन्द्रियाँ बड़ी विकराल हैं इस वास्ते सत् विश्वास को धारण करके समता रूपी धर्म का पालन करना सत्पुरुषों का परम धर्म है।

वचन—96. असली खुशी यह ही समता विचार है, क्योंकि सब पाबंदियाँ[1] और कमज़ोरियों[2] को नाश करती है।

वचन—97. असली धर्म या ईमान, बंदगी या ज्ञान, सत् पुरुषार्थ और प्रेम समता ही का विचार है। जो सही तरीका से खोज करता है वह हर घड़ी में आनन्द को प्राप्त होता है।

वचन—98. ख़ुदी यानी अहंकार से निज़ात को हासिल करें! समता के विचार से यह बड़ा आसान मार्ग महापुरुषों ने बतलाया है।

वचन—99. परिपूर्ण परमेश्वर को परम प्रेम से विचार करना चाहिए। इस संसार में यह ही जीवन लाभकारी है। अपनी तष्णा को काबू करने की कोशिश करनी चाहिए। यह ही जवांमर्दी[3] है।

वचन—100. अहंकार से रहित अवस्था समता का सरूप है। इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके

1. बन्धनों 2. विवशताओं 3. पौरष, बहादुरी

उस आनन्द को प्राप्त होवें और दुनिया के बाद-मुबाद से मुखलसी[1] हासिल करें।

वचन—101. सत्विचार, सत्आचार, सत्विश्वास, सत्सिमरण, सत्सेवा, सत्संग, सत्पुरुषार्थ को धारण करके समता रूपी परम धाम को प्राप्त होना ही सत्पुरुषों का जीवन है। हर एक को लाज़मी[2] है इस सच्ची खुशी को हासिल करना। नहीं तो बार-बार माया जाल दुःख सन्ताप को देने वाला है।

परम निधान

वचन—1. ईश्वर सत है। उसका आसरा परम सुख देने वाला है।

वचन—2. दुनिया में ज़बरदस्त कोशिश क्या है? धर्म के मार्ग पर चलना।

वचन—3. दुनिया में सच्चा मित्र कौन है? अपनी नेक अमाली[3]।

वचन—4. दुनिया में शक्तिमान कौन है? पर-उपकारी पुरुष।

वचन—5. दुनिया में हमेशा खुश कौन रहता है? जो दूसरे का भला चाहता है।

1. छुटकारा, मुक्ति 2. ज़रूरी, आवश्यक 3. कर्म

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन–6. दुनिया में परम तप्त कौन है?
जिसको ईश्वर पर भरोसा है।

वचन–7. दुनिया में सबसे बड़ी ताकत क्या है?
निष्काम भावना और खिमा करना।

वचन–8. पवित्र ज़िन्दगी क्या है?
जो अपनी मौत का विचार करता है।

वचन–9. दुनिया में कामिल गुरु कौन है?
जिसने अपने आप पर विजय पाई हो।

वचन–10. सच्ची परस्तिश[1] किसे कहते हैं ?
जिसमें अपनी गर्ज़ न हो।

वचन–11. दुनिया में सच्चा सुख क्या है?
ईश्वर की प्राप्ति।

वचन–12. बुद्धिमान किसको कहते हैं?
जिसके अन्दर अभिमान न हो।

वचन–13. दुनिया में नीतिवान कौन है ?
जिसके अन्दर एकता का भाव हो।

वचन–14. वह कौन है जिसका कोई दुश्मन नहीं है?
जो हर वक्त दूसरे की भलाई चाहता है।

वचन–15. नेकी किसको कहते हैं?
दूसरे का दुःख निवारण करना।

वचन–16. दान किसको कहते हैं?
यथा शक्त अधिकारी की सेवा करना।

वचन–17. दुनिया में दुर्लभ पदार्थ क्या है?
कामिल[2] गुरु की प्राप्ति।

वचन–18. सच्ची भक्ति किसको कहते हैं?
विचार का शुद्ध होना और प्रभु विश्वास की दढ़ता।

ॐ समता अपार शक्ति ॐ

1. पूजा 2. पूर्ण

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—19. सत्संग किसको कहते हैं?
जहाँ सत् सरूप का विचार हो।

वचन—20. अवतार किसको कहते हैं?
जिसके अन्दर ख़्वाहिश न हो।

वचन—21. देवता किसको कहते हैं?
जो दूसरे को सुख देने की ख़ातिर यत्न करता है।

वचन—22. मानुष ज़िन्दगी की सार क्या है?
सत् सरूप की तलाश।

वचन—23. तीर्थ किसको कहते हैं? जहाँ ईश्वर की महिमा गाई जाये या जहाँ ईश्वर के प्यारे स्थित हों।

वचन—24. मौत से बड़ा अज़ाब[1] क्या है?
अपनी ग़फ़लत[2] का न विचार करना।

वचन—25. ज़िन्दगी में मुर्दा कौन है?
जो खुदग़र्ज़ है।

वचन—26. ईश्वर की प्राप्ति किस तरह से होती है ?
गुरु की हिदायत को मानना, पर-उपकार यानी निष्काम सेवा करनी।

वचन—27. विश्वास किस तरीके से दढ़ होता है ?
सच्चे गुरु के मिलाप से।

वचन—28. ईश्वर की शक्ति क्या है?
जो कुल कायनात[3] को आनन्द दे रही है।

वचन—29. धर्म क्या चीज़ है?
जिससे सच्ची ख़ुशी मिले।

वचन—30. ज्ञान क्या चीज़ है?
जो हमेशा की ज़िन्दगी देवे यानी रोशनी देवे।

ॐ समता अपार शक्ति ॐ

1. दुख 2. लापरवाही 3. सष्टि

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

ब्रह्म सत्यम् सर्वाधार

समता अपार शक्ति

महामन्त्र

ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा
अद्वैत पुरखा सर्व-व्यापक
कल्याण-मूरत परमेश्वराय
नमस्तं

दूसरा अनुभव—समता धाम

समता आनन्द की अलोप अवस्था

वचन—1. जिस वक्त जीव अनानियत[1] की गिरफ़्तारी में आ जाता है यानी अपने आप को फ़ाईल (कर्त्ता) मान लेता है, उस वक्त कर्म फल की इच्छया में मुस्तग़रक[2] होकर ख़ुशी व ग़मी में मुबतला[3] हो जाता है। उसी ख़ुशी व ग़मी की हालत को विचार करके अनेक प्रकार की ख़्वाहिशों के अधीन होकर कई तरीका के नये-नये कर्म विचार करता है, और अन्दर से हर वक्त बेकरार[4] रहता है। इस बेकरारी की हालत में समता आनन्द अलोप हो जाता है। यानी ख्वाहिश और

1. अहंभाव 2. लीन, डूबना 3. ग्रस्त होना, बंध जाना 4. अशान्त

ग़ज़ब[1], मोह और भय को धारण करके नित ही अशांत रहता है।

वचन—2. यह ही अज्ञान त्रैगुणी माया का सरूप है। जिस वक्त कर्त्तापन अख्तियार करता है उसी वक्त कर्म और कर्म फल की ख़्वाहिश से सातक, राजस् और तामस् भाव में गिरफ़्तार हो जाता है। इसी कर्त्तापन की हालत को लेकर कई जन्म तक नये-नये सरूप धारण करता है। यह ही आवागवन का चक्र है।

वचन—3. कर्त्तापन ही मूल अन्धकार है, जो समता की रोशनी पर छा जाता है और ममता के कल्पित रूप में बंधायमान होकर अनेक प्रकार की ख़्वाहिशों का गुलाम हो जाता है; और उन ख़्वाहिशों के भोगने की ख़ातिर इन्द्रियों द्वारा तरह-तरह के रस ग्रहण करता है। मगर कर्त्तापन के अन्धकार में समता शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता।

वचन—4. तमाम चराचर भूत इसी कर्त्तापन के अन्धकार में विचर रहे हैं, और नित अशान्त रहते हैं। जो भी जीव जिस प्रकति की क़ैद में है उसी के मुताबिक अपनी तष्णा को पूर्ण करने की खातिर यतन करता है। मगर

1. क्रोध

मिथ्या भ्रम में एक लमह भी निर्भय नहीं हो सकता।

वचन—5. कर्त्तापन के अभिमान में अपना कल्पित रूप धारण करता है और उसी स्वरूप का अभिमानी होकर अनेक कर्म और कामना को प्राप्त होता है। यह अन्धकार माया का खेल है। न तो इससे छूट सकता है और न ही उसका त्याग कर सकता है। इस द्वन्द्व भाव को दढ़ प्रतीत करके नित ही भोगों में चलायमान होता रहता है और समता आनन्द को अनुभव नहीं कर सकता, जो इसका असली स्वरूप है।

वचन—6. कर्त्तापन यानी फ़ाईलियत के आग़ाज़[1] होने का कोई कारण नहीं कि यह किस तरह और क्यों हुआ? सहज स्वभाव ही जैसे जल में तुरंग उत्पन्न होता है ऐसे ही परम सत्ता से कर्त्तापन मूल माया का सरूप प्रगट होता है।

वचन—7. कर्त्तापन में ही पैदाइश और फ़ना[2] का इल्म[3] है। कर्त्तापन में ही सब द्वन्द्व विकार अन्धकार घेरा हुआ है। वास्तव में कर्त्तापन बेबुनियाद और बिना कारण के है। इस वास्ते इस ममता के कल्पित रूप को भ्रम

1. प्रारम्भ 2. नाश 3. ज्ञान

कहते हैं। यानी न जो पहले है और न ही आखिर रहेगा। मध्य में बहुत विस्तारयुक्त दिखाई देता है और हमेशा तबदीली में है।

वचन—8. जो भी जीव देहधारी है, वह कर्त्तापन यानी फ़ाईलियत की गिरफ़्तारी में ही है, ख़्वाहे श्रेष्ठ गुण वाला है, ख़्वाहे मलीन गुण वाला है। जिस-जिस भाव का अभिमानी होता है, उसी के मुताबिक कर्म और पुरुषार्थ करता है, और कर्म के फल को भोगकर नित ही तखत रहता है।

वचन—9. जन्म से लेकर मरण तक किसी चीज़ के प्राप्त होने पर तथा वंजोग होने पर भी असली खुशी समता शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता। हर वक्त एक चीज़ की चाहना करता है और दूसरी का त्याग करता है। यह ही रग़बत[1] और नफ़रत[2] का सिलसिला हर घड़ी जारी रहता है। इस चलायमान हालत में फँसकर हमेशा दुःखी रहता है। राजा से लेकर दलिद्री तक, आलम[3] से लेकर मूर्ख तक, सब ही अपनी कामना की गिरफ़्तारी में भयभीत रहते हैं।

वचन—10. जब तक एकाग्र चित्त होकर इस ममता के जाल का विचार न किया जावे तब तक

1. राग, लगाव 2. द्वेष, घणा 3. विद्वान

कभी भी असलियत का पता नहीं लगता। जिस कर्म का अभिमानी बनता है उसके भोग में आसक्त हो जाता है, यानी बन्धन में आ जाता है। बन्धन में आकर मजबूरी से नेक व बद कर्म करता है और उसमें हमेशा ख़ुशी और ग़मी को हासिल करता है।

वचन—11. कर्त्तापन यानी फ़ाईलियत से निश्चय शक्ति प्रगट होती है। निश्चय शक्ति से मनन यानी चिंतन का भाव प्रगट होता है। मनन भाव से पाँच भूत की कामना प्रगट होती है। पाँच भूत की कामना से कर्म का यतन प्रगट होता है। यह सिलसिला ही शरीर की बनावट है, यानी जीव कर्त्तापन को धारण करके आठ प्रकार की प्रकति की क़ैद में आ जाता है और अपने सरूप को भूल कर उस प्रकति को अपना सरूप मान लेता है।

वचन—12. प्रकति यानी आकार सरूप की गिरफ़्तारी में आकर प्रकति के गुणों को हर वक्त ग्रहण करता है। चूँकि प्रकति का सरूप तबदील होने वाला है इस वास्ते प्रकति के मोह में आकर जीव वह प्रकति की तबदीली अपने आप में देखता है। यानी ग्रहण और त्याग द्वन्द्व विकार में फँस कर समता शांति को

भूल जाता है। यह ही हालत अज्ञान सरूप है।

वचन—13. हर एक जीव ख़्वाहे किसी मुल्क का है, और ख़्वाहे किसी मज़हब से ताल्लुक रखता है, ख़्वाहे जितनी ऐश्वर्य वाला है, ख़्वाहे कितना ही दलिद्री है सबके अन्दर यह द्वन्द्व विकार का अमल जारी रहता है, और इस मजबूरी से हर चन्द कोशिश करता है असली ख़ुशी की। मगर अज्ञान वश होकर प्रकति के भोगों में असली खुशी चाहता है। न प्रकति के भोग हमेशा रहते हैं और न भुग्ता शक्ति कायम रहती है। इस वास्ते वस्तु के प्राप्त होने पर तथा नाश होने पर हर हालत में भय में गिरफ़्तार रहता है, समता शांति को प्राप्त नहीं हो सकता।

वचन—14. यथार्थ भाव यह है कि जीव देह का अभिमानी होकर देह के भोगों में हर वक्त आसक्त रहता है। देह के भोग भी नाशवान हैं और देह भी नाशवान है। इस वास्ते सब यत्न-प्रयत्न जीव का जो अज्ञान सम्बन्धी है, अकार्थ है। यानी असली निर्भय अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता।

वचन—15. जितने भी इन्द्रियों के भोग हैं वे ख़ुशी और ग़मी के देने वाले हैं। यानी जिस चीज़ की प्राप्ति में ख़ुशी करता है उसके नाश से ज़रूर ग़मी को पाता है। जिस चीज़ की प्राप्ति में ग़मी हासिल करता है उसको त्यागने का यत्न करता है और ख़ुशी की तलाश में रहता है। न तो प्रिय वस्तु से संतोष प्राप्त होता है और न ही अप्रिय वस्तु से। यानी किसी हालत में भी समता शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता।

वचन—16. जो भी जीव जिस देह में मौजूद है वह इसी तखा में बँधा हुआ है। यह संसार जो भासता है वह अपनी देह का ही प्रतिबिम्ब है यानी इन्द्रियों की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त हालत का यह सब अचम्भा[1] है। जैसा जिसके अन्दर कर्त्तापन प्रगट हुआ उसके मुताबिक ही कामना प्रगट हुई। इस कामना के मुताबिक ही स्थूल विकार कर्म का जन्तर यह देह प्रगट हुई। यानी जीव अपनी अनानियत[2] का सब खेल देखता है और भोगता है।

वचन—17. पांच तत्त्वों से जो पांच ज्ञान इन्द्रियाँ प्रगट हुई हैं उनके भोग द्वारा यह जीव प्रगट

1. हैरानी, विस्मय 2. अहंभाव

संसार की वासना में गिरफ़्तार होकर अनेक प्रकार के भोग एकत्र करता है और संसार में विचरता है। जिस जगह या जिस वस्तु को प्राप्त करता है उसमें अपनी मनोकामना पूर्ण करने की कोशिश करता है और मोह वश होकर उसमें लगाव पैदा करता है। आखिर न तो जीव की कामना पूरी होती है; उलटा द्वन्द्व में गिरफ़्तार होकर दूसरे की ज़िम्मेदारी में आकर उसका भी क्लेश अपने अन्तर धारण करता है। यह ही दुनिया का रिश्ता-नाता है।

वचन—18. देह के भोगों में तृप्ति की खातिर बड़े-बड़े सामान दुनिया में एकत्र करता है और बड़े-बड़े ताल्लुकात[1] पैदा करता है। मगर देह के भोग एक लमह[2] की भी शांति नहीं दे सकते। आखिर देह भी नाश, देह के भोग भी नाश। जीव का सब यत्न अकार्थ रंज और ग़म के देने वाला हुआ।

वचन—19. जितने भी देह के विकार हैं, यानी पच्चीस प्रकृति, उनमें कभी भी जीव को शांति नसीब नहीं हो सकती। इस वास्ते सब देह के भोग ही जीव के असली दुःख का कारण हैं। मगर

[(धरती के विकार) : बाल, आंतड़ी, हड्डी, मज्जा और चाम, (जल के विकार) : वीर्य, पसीना, पेशाब, लहू और थूक, (अग्नि के विकार) : कान्ति, आलस्य, निद्रा, प्यास, और भूख, (पवन के विकार) : सुकड़ना, बढ़ना, अकड़ना, दौड़ना और धारणा, (आकाश के विकार) : कीर्ति, लज्जा, भय, मोह और शोक][3]

1. सम्बन्ध 2. क्षण 3. यह पच्चीस विकार मूल ग्रंथ में नहीं हैं, पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ लिखे गए हैं।

ममता अंधकार में फँस कर इन दुःख रूप भोगों में सुख तलाश करता है। आखिर मगतष्णा की तरह संसार से प्यासा ही जाता है।

वचन—20. विचार यह है कि अनेक पदार्थ खाने से न तो भूख की निवत्ति होती है और न ही रसों से उपरस होता है, बल्कि खेद बढ़ता ही जाता है। सब इन्द्रियों के भोगों का यह ही हाल है। बजाय शान्ति देने के उलटा अशांति के जाल में गिरफ़्तार कर देते हैं। आखिर यह जीव बड़े-बड़े सामान भोग कर और बहुत मुद्दत संसार में विचर कर एक पलक की भी खुशी हासिल नहीं कर सकता और अंत काल बड़े कष्ट को पाकर शरीर को छोड़ता है।

वचन—21. उसी कामना को पूर्ण करने की ख़ातिर फिर नई प्रकति की गिरफ़्तारी में आता है। उसी तरह ममता अंधकार में कई जन्म को धारण करके अनेक भोगों को भोगता है, मगर समता शाँति, जो परम आनन्द सरूप है, उसको हासिल नहीं कर सकता।

वचन—22. इस ममता रूपी अंधकार यानी कर्त्तापन की गिरफ़्तारी में जीव हर वक्त दुःखी रहता है, किसी हालत में भी शांति को हासिल नहीं

कर सकता। यह अज्ञान का चक्र यानी अहंभाव जब तक नाश नहीं होता तब तक जीव समता शांति को प्राप्त नहीं हो सकता। इस वास्ते इस दीर्घ रोग से छूटने के वास्ते अनेक प्रकार के यत्न, जो महापुरुषों ने विचार किये हैं, उनको निदिध्यासन करने से समता आनन्द को प्राप्त हो सकता है, जो असली सरूप और संसार का मूल है।

वचन—23. इस ममता के जाल को विचार करने से असली खुशी का पता लगता है। रोग के पहिचान करने से दवाई और हकीम की ज़रूरत पड़ती है। जब तक इस माया के जाल का विचार न किया जाए तब तक कभी भी असली खुशी को प्राप्त नहीं हो सकता। वह ही बुद्धिमान, सदाचारी, ज्ञानी, परहेज़गार[1] और आबिद[2] है, जिसने इस माया के मिथ्या भ्रम अन्धकार से मन को एकाग्र करके असली खुशी की तरफ लगाया है।

वचन—24. मानुष की ज़िन्दगी ही असली ख़ुशी को हासिल कर सकती है, क्योंकि इसमें जीव को जागति बहुत है। अगर मानुष की देह में आकर भी असलियत की तहकीक़ात नहीं की और ममता जाल में लीन रहा है, वह नौका को प्राप्त होकर फिर ग़ोते खाने की तरफ चला गया।

1. नियन्त्रक 2. उपासक

वचन—25. मूल अज्ञान जो जीव की असली अशान्ति का कारण है, उसको भली प्रकार करके विचार करना चाहिए, और सत् यत्न करके भ्रम अंधकार को निवारण करना ही मानुष ज़िन्दगी का परम धर्म है।

वचन—26. देह अभिमान के बंधन में जीव पलक-पलक कर्म का जाल कल्पता है और अनेक प्रकार की शुभ-अशुभ वासना को धारण करता है। इस विखेपत को विचार करना और इससे मुक्ति हासिल करनी मानुष ज़िन्दगी का असली फल है।

वचन—27. जितने भी सत् कर्म हैं, यानी विद्या विचार, सत्संग, परोपकार, यज्ञ, दान, तपस्या वग़ैरा सब को धारण करने का मूल फल यह ही है कि जीव अहंभाव से छूट कर सत् आनन्द सरूप समता में लीन हो जावे। वह ही असली खुशी है।

वचन—28. हर वक्त माया भ्रम का विचार करना और उसको निवारण करने का यत्न करना ही गुणी पुरुष का जीवन है। जिसने अपने बंधन और मुक्त मार्ग का भेद नहीं जाना वह ही असली मूर्ख है। इस संसार में हर एक जीव शान्ति की तलाश में है। जन्म से

लेकर मरण तक जितनी भी कोशिश करता है उसका परम निश्चय शान्ति ही है। मगर अविद्या और कुसंग से बजाय शान्ति के भ्रम चक्र में फँस कर दुःखी होता है और अन्त को संसार से तखावन्त ही जाता है। हर वक्त, हर घड़ी असली शान्ति की तलाश करनी चाहिए जिससे जीव का सब मनोरथ पूर्ण हो जाए।

वचन—29. कर्म जाल का हर वक्त विचार करना चाहिए। कर्म ही बन्धन देने वाले हैं और कर्म ही मुक्त के देने वाले हैं। कर्म के ही आधार में सब जीव विचरते हैं। जिस मानुष ने कर्म के मार्ग को नहीं जाना है वह कभी भी सत् शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता।

वचन—30. बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ सब कर्म का जाल हैं। जीव अहंभाव अज्ञान के वश होकर हर घड़ी, हर लमह इनके भोगों में आसक्त रहता है। परम तत्त्व जो समता शान्ति है, उसको न अनुभव कर सकता है और न ही उसके प्राप्त करने का यत्न करता है। यह ही मूर्खताई और मनमुखता है। अपनी कुबुद्धि द्वारा जन्म-मरण के जाल से रिहाई नहीं पा सकता है। मानुष जन्म में इस घोर अंधकार कर्म के जाल का विचार करना

और सत् कर्मों को धारण करके सत् सरूप ईश्वर की प्राप्ति करनी ही परम लाभ है। यह ही मार्ग सत्पुरुषों का है।

वचन—31. कर्त्तापन यानी अहंभाव का त्याग करना; कर्म फल इच्छया यानी द्वन्द्व कल्पना का त्याग करना; देह ममता यानी देह को सत् करके जानना और अपना असली सरूप समझना, इस भ्रम का त्याग करना; इन्द्रियों के भोगों में अशान्ति का विचार करना, जन्म और मरण का भेद समझना, सत् कर्म और मलीन कर्म का विचार करना, सत् विश्वासी होना यानी सत्याग्रह का धारण करना, ज़िन्दगी के होते-होते सत् धाम की प्राप्ति करनी, सत्पुरुषों के जीवन का विचार करना, हर वक्त अपनी आत्मिक उन्नति करनी, सत्संग द्वारा अपनी बुद्धि को निर्मल करना, सांसारिक कारोबार में हक शनासी[1] विचार करनी; अपनी देह करके, धन करके, विचार करके पर की सेवा करनी; हर घड़ी परम शक्ति चेतन प्रकाश जो सब का सिरजनहार है उसका विश्वासी होना; और उस परम तत्त्व की प्राप्ति की ख़ातिर सत् यत्न का धारण करना ही मानुष जन्म की शोभा और कीर्ति है।

1. अपने भाग पर संतुष्टि

वचन—32. जो जीव इन गुणों को ग्रहण नहीं करता और इसके उलट सब कर्म करता है वह ही चण्डाल सरूप जानना चाहिये। यानी स्वार्थ बुद्धि को धारण करके मान, मद, कपट, छल, चोरी, झूट, परनिन्दिया, परहान, अति कामी, अति क्रोधी, अन्ध-विश्वासी यानि आत्म सरूप को त्याग कर स्वार्थ की खातिर अनेक जन्तर-मन्तर, देवी-देवताओं की पूजा करनी, अपनी करनी का अभिमानी होना, लोक यश की खातिर सत्-कर्म का धारण करना, अंतर से कपट रखना, अधिक सम्पदा की कामना रखनी, अति देह का अभिमानी होना, ईश्वर की हस्ती पर अंतर विखे प्रेम न रखना, अपनी चतुराई को धारण करके अपने समान किसी को न देखना, यह सब मलीन कर्म ही परम दुःख के देने वाले हैं और नरक सरूप हैं। माया की छाया से यह जो अवगुण, पाप कर्म अंतर विखे प्रगट होते हैं इनको त्याग करना और सत्-कर्म को धारण करना ही गुणी पुरुषों का जीवन है।

वचन—33. कर्म चक्र से छूट पानी अति कठिन है। यह भव दुस्तर मार्ग है। सत्पुरुषों का परम यत्न यह ही है कि अपने आप की कल्याण

करनी। जब तक अपनी कल्याण की ख़ातिर पुरुषार्थ धारण न किया जावे तब तक समता शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। इस वास्ते अपनी ज़िन्दगी में ही अपनी आखरियत का विचार करके सत् नियमों को धारण करना चाहिये। इसी साधना से परमानन्द प्राप्त होता है।

वचन—34. जो भी देह-धारी संसार में आया है वह कर्म चक्र की क़ैद में ही है। जितने भी सत् यत्न जिस मज़हब और पंथ में मौजूद हैं, उनका पूर्ण भाव यह ही है कि जीव सत् मार्ग को धारण करके सत् शान्ति समता को प्राप्त हो जावे। जो इन नियमों को धारण नहीं करता और मज़हबी बादमुबाद[1] में मगन रहता है वह ही नरक का ग़ामी है और स्वान का सरूप है।

वचन—35. हर एक जीव को अपने कल्याण की ख़ातिर यत्न करना चाहिए जिससे परम सुख प्राप्त होवे। जो ख़ुद पाप कर्मों में बँधा हुआ है और दूसरों को अखण्ड शान्ति का रास्ता सिखलाता है वह सख़्त धोखे में आकर अपनी बर्बादी कर रहा है। दूसरों की कल्याण तब ही हो सकती है जब अपने

1. तर्क वितर्क

अन्तर विखे सत् शान्ति प्रकाश को अनुभव कर लेवे और दुनिया के विकारों से मन उपरस हो जावे। उस महापुरुष के वचन और कर्म द्वारा दूसरों की कल्याण होती है।

वचन–36. इस माया के अन्धकार से छूटने के वास्ते प्रथम सत् असत् का विचार है। सत् विचार द्वारा असत् कल्पना अहंभाव का त्याग करना ही निर्मल साधना है। कर्त्तापन जो क्लेश का मूल है उसको सहज त्याग करना बड़ा कठिन है। इस वास्ते सत् विचार और सत्संग द्वारा इस भ्रम विकार को छेदन करना चाहिए।

वचन–37. देह की प्रकाशक शक्ति जो सर्जीवित करती है उस परम तत्त्व परमेश्वर का निश्चय ही इस माया के अन्धकार से मुक्ति देने वाला है। जब तक मन को सत् आधार की तरफ न लगाया जावे तब तक असत् भ्रम का अभाव नहीं होता। इस वास्ते हर घड़ी, हर लमह[1] उस परम पुरुष परमेश्वर का विश्वासी होना और उसकी प्रभुता का विचार करना और संसार का मिथ्याकार विचारना ही कल्याण का देने वाला है।

1. प्रतिक्षण

वचन—38. जब तक द्वन्द्व विकार को दुःख रूप निश्चय करके न पहचाना जाए और सत्पुरुषों की सीख द्वारा आत्म-विश्वासी न होवे, तब तक कभी भी इस माया के अंधकार से मुक्ति नहीं मिलती और न ही समता शान्ति प्राप्त होती है।

ईश्वर भगति की प्राप्ति

वचन—39. जिस वक्त इस संसार को दुःख रूप करके जाना और अपनी देह को नाश करके जाना, और संसारी पदार्थ सब छिन कारक सुख में देखे, और अहं विकार अज्ञान से मन को निर्मान भाव की तरफ लगाया तब ईश्वर भगति, जो परम प्रकाश समता का सरूप है, उसको प्राप्त हुआ और कर्त्तापन अंधकार से मुक्त हुआ। यह ही अवस्था समता आनन्द अनुभव की है। इसको प्राप्त होकर जीव द्वन्द्व विकार से मुक्त हो जाता है और शब्द सरूप नारायण को अपने अंतर विखे प्रगट देखता है, और उसमें लीन हो जाता है।

वचन—40. कर्त्तापन अभिमान अत कठिन है। मूर्ख जीव बड़े यत्न करके भी कर्मों का अभिमानी होकर दुःख व सुख द्वन्द्व को ग्रहण कर

लेता है। इस वास्ते इस अद्‌भुत माया के चक्र से छूटने के वास्ते ईश्वर भगति परायण होना ही असली कल्याण के देने वाला है। जब तक ईश्वर की भगति को न धारण करे तब तक असली प्रेम को प्राप्त नहीं हो सकता, जो आनन्द का सरूप है।

वचन—41. बड़ी से बड़ी कोशिश करके परम पिता परमेश्वर के चरणों में प्रीत लगाने से ही असली शांति मिलती है। इस जीव को परम गति प्राप्त नहीं हो सकती जब तक सत् सरूप को अनुभव न कर लेवे।

वचन—42. इस संसार का जो मरकज़-ए-कुल[1] है या देह का जो साखी है, उस परम पुरुष का विश्वासी होना परम धर्म है। तमाम संसार की जो ज़िन्दगी है, जिसके प्रकाश से सब प्रकाश हो रहे हैं और जो हमेशा है; खुशी और ग़मी से जो न्यारा है—उस परम पुरुष में प्रीति रखनी परम कल्याण के देने वाली है।

वचन—43. जिस करके सब कुछ प्रगट हुआ और जिसमें सब कुछ स्थित है, और जो तीन काल अनादि है और हर एक जीव में सम सरूप होकर विचर रहा है, उस

1. सष्टि का साक्षी या केन्द्र

मालिक-ए-कुल[1] का विचार करना ही कल्याणकारक है।

वचन—44. जो अपनी ताक़त करके पूर्ण है और जिसको किसी का आसरा नहीं, जिसके समान दूसरा कोई प्रमाण नहीं, अपने आप नित प्रकाश जो आनन्द सरूप है, उस महा-शक्ति अकाल सरूप का विश्वासी होना ही असली ज्ञान है।

वचन—45. ख़्वाहिश और ग़ज़ब[2] के अज़ाब[3] से जो न्यारा है; जिसमें सब कुछ प्रवेश कर जाता है और वह किसी में लिपायमान नहीं होता, उस परम तत्त्व का सिमरण करना ही असली ख़ुशी है।

वचन—46. जिसके बग़ैर कुछ भी नहीं और जो किसी के मोह में गिरफ़्तार नहीं होता, उस विज्ञान सरूप आत्मा का चिन्तन करना ही परम आनन्द है।

वचन—47. जिसके समान कोई दूसरी चीज़ नहीं है, और जिसको प्राप्त करके उसी का रूप हो जाता है, उस दीनदयाल परमेश्वर का सिमरण करना ही दुर्लभ है।

वचन—48. जो सब संकट को नाश करने वाला है और घट-घट व्यापक है, परमानन्द सरूप है, और सबसे निकट तीन काल प्राप्त है, उस

1. कुल सष्टि का मालिक 2. क्रोध 3. दुःख

पारब्रह्म परमेश्वर का ध्यान करना ही परम सिद्धि है।

वचन—49. जो हर एक के अंतर की जानने वाला है और जिसका असली भेद कोई दूसरा नहीं जान सकता, सर्वज्ञ सरूप परिपूर्ण है, उस परमात्मा का विचार करना ही परम सत्संग है।

वचन—50. जिसको प्राप्त करके फिर संसार की कामना नाश हो जाती है और जीव संतोख को प्राप्त होता है, उस मंगलकारी नारायण का ध्यान करने में मानुष जन्म का परम लाभ है।

वचन—51. सब दुनिया के नाश होने से जिसका नाश नहीं होता, और अपने आप में सर्वशक्तिमान है और जीव का वास्तव सरूप जो है, उसका सिमरण करना ही कल्याण के देने वाला है।

वचन—52. सब संसार जिसका सरूप है, और अंतर बाहिर तण-तण को जो प्रकाश कर रहा है, जिसके बगैर न कोई हुआ और न ही होगा, उस परिपूर्ण परमेश्वर की प्राप्ति करनी ही असली मुक्ति और समता शाँति है। ऐसी भावना करके उस मालिक-ए-कुल की

याद करनी और अपने अंतर विखे ध्यान करना ही असली भगति है।

वचन—53. जिसके जानने से सब कुछ जाना जाता है, भय और भ्रम सब नाश हो जाते हैं; बुद्धि पूर्ण सरूप को प्राप्त करके उसमें लीन हो जाती है, उस परम ज्ञान सरूप को अनुभव करना ही असली साधन है।

वचन—54. जिस वक्त बुद्धि निर्मल हो जाती है उस वक्त कर्मों से मुक्त होने का यत्न करती है। हर तरीके से अपनी कमज़ोरी को दूर करने का यत्न करती है। पाप कर्म से हर वक्त मन को रोकती है। उस वक्त जीव को कुछ शान्ति मालूम होती है।

वचन—55. जब बुद्धि यथार्थ सरूप में देह को नाशवान देखती है और आत्मा को प्रकाशक जानती है, उस वक्त उस गुणी पुरुष के अन्दर ईश्वरीय विरह और संसार का वैराग प्रगट होता है। यह ही हालत असली विवेक की है। ऐसी धारणा से मोह का अन्धकार नाश हो जाता है और प्रेम सरूप प्रगट होता है, जिससे जीव को शान्ति प्राप्त होती है।

वचन—56. जब निर्मल बुद्धि करके देह को नाशवान् मालूम किया, तब परमानन्द को प्राप्त करने का यत्न प्रगट होता है। उस वक्त जीव

अपनी सब कामनाओं को बन्धन रूप जानकर छूटने की कोशिश करता है और सत्पुरुषों की संगत द्वारा अपने विचार को निर्मल करता है। ज्यों-ज्यों विचार शुद्ध होता है त्यों-त्यों सत् विश्वास दढ़ होता है, और निश्चय करके आत्मा को देह का आधार मानता है और शरीर का सुख व दुःख सब ईश्वर की आज्ञा में देखता है।

वचन—57. जिस वक्त दढ़ निश्चय करके आत्मपरायण होता है उस वक्त संसार में कोई भी उसको वैरी नहीं दिखाई देता है। सब में मालिक-ए-कुल का सरूप देखकर बड़े प्रेम से सेवा करता है। जब दूसरे की सेवा में निर्मान भाव से वरतता है तब सब मन की कुटिलाई नाश हो जाती है। मन अभिमान से रहित होकर सत् सरूप का सिमरण करता है। सिमरण करते-करते सब वहम् और भय नाश हो जाते हैं। एक मालिक-ए-कुल ही कुल दुनिया में प्रतीत होता है। वह ही हालत समता शान्ति की प्राप्ति की है।

वचन—58. मन बड़ा विकराल है। देह अभिमान में फिर गिरता है। मगर बुद्धि बड़े यत्न करके अज्ञान को दूर करती है, जिससे फिर

शान्ति को प्राप्त हो जाता है। ऐसी हालत होते-होते आखिर मन अधिक प्रेम को प्राप्त होकर अपना सरूप लीन कर देता है। यह ही असली शान्ति है।

वचन—59. जीव को कैद एक कर्त्तापन की है, दूसरी कर्मों के फल की आशा की। इस महा-जंजाल से छूटने के वास्ते यथार्थ साधन ये ही है कि हर घड़ी हर लमह सब देह के कर्म ईश्वर अर्पण करता जावे और मन करके ईश्वर के नाम का सिमरण करे।

वचन—60. तमाम कर्म ईश्वर अर्पण निश्चय से करने से कर्म अभिमान नाश हो जाता है। कर्म अभिमान के नाश होने से दु:ख व सुख द्वन्द्व में समता को प्राप्त होता है। यह ही असली त्याग है। ऐसी साधना करते-करते निहकर्म सरूप शब्द ब्रह्म में लीन हो जाता है।

वचन—61. जिस वक्त मन करके ईश्वर नाम का सिमरण किया जाता है और देह को नाश रूप देखा जाता है, और तमाम कर्मों को ईश्वर की आज्ञा में देखा जाता है, उस वक्त कर्त्तापन मूल अन्धकार का अभाव होता है। और जीव को अपने अन्तर विखे अविनाशी सरूप प्राप्त होता है, जो असली समता का धाम है।

वचन—62. शरीर के भोग जीव को भरमाते हैं। मगर शरीर का निश्चय करके नाश जो देखता है और ईश्वर को जो आधारी मानता है, इस प्रेम, भक्ति के बल से बुद्धि निर्मल होकर सत् सरूप में स्थित हो जाती है। यह परम आनन्द अवस्था है और मोक्ष भी यही है। शरीर के होते-होते बुद्धि आत्म-सरूप में लीन हो जाती है और शरीर के भोगों से उपरस हो जाती है।

वचन—63. बंधन असली जीव को अपने शरीर का ही है। शरीर की कामना ही बारम्बार आवागवन के चक्र में फिराती है। जब शरीर को छिन-भंगुर जान लिया निश्चय करके, और शरीर का साखी भूत जो परम तत्त्व है उसका सिमरण, ध्यान किया निर्मल प्रेम करके, उस वक्त अपने अन्तर विखे पारब्रह्म को प्राप्त होकर समता शाँति को पाता है, फिर कर्म चक्र में नहीं आता।

वचन—64. जब तक देह के मद में गिरफ़्तार है, तब तक बड़े यत्न करके सत् विचार और सत् अभ्यास को धारण करना चाहिए। सत् विचार यह ही है कि देह को नाश सरूप देखना और सत् अभ्यास यह ही है कि देह की जीवन शक्ति यानी आत्मा में दढ़

निश्चय रखकर सिमरण ध्यान करना। बगैर अपने अन्तर सिमरण, ध्यान के बुद्धि कभी भी निश्चल नहीं होती। इस वास्ते सरब शक्तिमान ईश्वर को अपने अन्तर विखे जानकर निर्मल प्रेम द्वारा सिमरण करना ही असली भगति और शाँति है।

वचन—65. देह कर्म संजुगत है और आत्मा निहकर्म है। जब तक देह को सत् मानकर जीव विचरता है तब तक कर्म के जाल से मुक्ति नहीं मिलती। जिस वक्त देह को असत् समझता है उस वक्त निहकर्म सरूप आत्मा का चिन्तन प्राप्त होता है। आत्मा के चिन्तन करने से उसी में लीन हो जाता है, फिर भ्रम चक्र में नहीं आता। यह ही हालत समता आनन्द है।

वचन—66. देह अभिमान गहरा जाल है। शुद्ध अंतःकरण के बग़ैर इसका पता नहीं लगता कि यह ममता का झंझट दुःख रूप है या सुख रूप है। जिस वक्त बुद्धि निर्मल होती है उस वक्त इस मिथ्या चक्र को अनुभव करके उदास हो जाती है। जब ऐसी हालत प्राप्त हुई उस वक्त परम तत्त को प्राप्त करने का यत्न करती है। यत्न करते-करते उस परमानन्द को प्राप्त हो जाती है जो तीन काल अनादि है।

वचन—67. अंतःकरण की शुद्धि अधिक ज़रूरी है। इस वास्ते सत् कर्मों का धारण करना परम साधन है। सादगी, सेवा, सत्संग, सत्य, सत्सिमरण आदि महागुणों को धारण करने से दुर्मत का अभाव होता है और आत्म-निश्चय को प्राप्त हो जाता है। आत्म-निश्चय ही भगति का सरूप है। आत्म-निश्चय ही असली ज्ञान है। आत्म-निश्चय ही असली कल्याण के देने वाला है। इस वास्ते हर घड़ी, हर लमह सत् सरूप आत्मा का विचार करना और साधन करना ही असली योग है।

वचन—68. आत्मा शरीर के अन्तर व्याप रहा है, मगर शरीर के विकारों से बिल्कुल न्यारा है। शुद्ध सरूप और परिपूर्ण है। इस अश्चर्ज को अनुभव करके महापुरुष लीन हो जाते हैं। दूध में जैसे घत मौजूद है, काठ में जैसे अग्नि मौजूद है, इसी तरह शरीर के अन्दर आत्मा प्रकाश कर रहा है। मगर यथार्थ यत्न के बग़ैर उसको कोई पा नहीं सकता।

वचन—69. उस परम तत्त्व को प्राप्त होने के वास्ते सार साधन यह ही है कि सत् विचार द्वारा अपनी बुद्धि को निर्मल करना और असत् माया के भोगों से उपरस होना, उस परम शक्ति का

आसरा रखकर चौंसठ घड़ी अपने मन की वत्ति ईश्वर प्रेम में लगाये रखना, परम प्रभता को जान कर अपने अन्तर विखे अनन भाव से सिमरण करना, और संसारी पदार्थों से वैराग्यवान रहना, लोक सेवा को धारण करना। जिस वक्त ऐसी वत्ति प्राप्त होती है उस वक्त अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। बुद्धि एकाग्र होकर अन्तर विखे अविनाशी शब्द को अनुभव करती है और परम शाँत अवस्था को प्राप्त होती है।

वचन—70. आहार, व्यवहार और संगत शुद्ध होनी चाहिए क्योंकि मन की उपाधि शुद्ध आचरण के धारण करने से जल्दी नाश हो जाती है और परमानन्द को प्राप्त करने में यत्न करने लगता है, यानी अपनी कल्याण की खातिर सत् भाव को धारण करता है। यह संसार अधिक दुस्तर है। इससे मुक्ति हासिल करने की खातिर बड़े-बड़े यत्न महापुरुष करते आये हैं, जिनसे आख़िर परम तत्त्व को प्राप्त हो गये और इस संसार में अपना जीवन आनन्द स्वरूप से व्यतीत करके आइन्दा[1] के जीवों के वास्ते आदर्श सरूप हो गये।

वचन—71. जिस वक्त देह के अन्तर आत्म-तत्त्व प्रगट हो जावे उस वक्त सब कल्पना और कामना

1. भविष्य

नाश हो जाती है। बुद्धि उस परम धाम को प्राप्त करके उसमें लीन हो जाती है। वह ही पुरुष धन्य है जिसको यह आनन्द प्राप्त हुआ।

वचन—72. आत्म-तत्त्व का ध्यान, सिमरण, प्रेम विशेष भाव से धारण करने से परम सिद्धि प्राप्त होती है। यानी अपने अन्तर विखे मन करके सिमरण करना और निश्चल चित्त करके ध्यान करना, केवल सत् सरूप जानकर अधिक प्रेम रखना, यह भाव इस भ्रम चक्र को नाश करके जीव को परम सिद्धि यानी समता शान्ति देता है।

वचन—73. कर्मों की आसक्ता में जीव अधिक मजबूर है यानी ''मैं कर्त्ता'' की गिरफ़्तारी से छूट नहीं सकता। दुःख व सुख, ग्रहण-त्याग, लाभ-हानि, खुशी-ग़मी, मित्र-शत्रु आदि द्वन्द्व विकार में अधिक आसक्त होकर अधिक दुःखी होता है। अनेक भावों को धारण करके भी शाँति को प्राप्त नहीं होता। यह एक घना क्लेश इस जीव को लगा हुआ है। इससे छूटने के वास्ते बड़े-बड़े यज्ञ, तप, कठिन-से-कठिन साधना को धारण करता है; मगर कर्म अभिमान नाश नहीं होता। कर्मों के अनुसार ऊँच-नीच जूनी को प्राप्त होता

रहता है। निहकर्म अवस्था जो परमानन्द धाम है उसको प्राप्त नहीं हो सकता।

वचन—74. इस घोर जाल से छूटने के वास्ते सिर्फ़ यह ही उपाय सहज है कि ईश्वर को कर्त्ता-हर्ता जानना, निश्चय करके सत् सिमरण धारण करना, हर घड़ी हर लमह में कर्मों का होना और न होना सब ईश्वर की आज्ञा में देखना, और मन की वत्तियों को एकाग्र करके अपने अन्तर विखे सत् स्वरूप का ध्यान करना। जिस वक्त ऐसा अभ्यास परिपक्व हो जाता है उस वक्त बुद्धि सत् सरूप को अन्तर विखे अनुभव कर लेती है, और अधिक प्रेम को धारण करके उसी में लीन हो जाती है। उस वक्त कर्म जाल अभाव हो जाता है और निहकर्म सरूप ब्रह्म शब्द प्राप्त होता है। वह ही समता शाँति है।

वचन—75. मिथ्या नाम-रूप की कल्पना में जीव अनर्थ क्लेशवान् रहता है। इस वास्ते इस अंधकार से छूटने के वास्ते सत् नाम का सिमरण करना परमानन्द के देने वाला है। ज्यों-ज्यों सत्नाम का निदिध्यास करता है त्यों-त्यों असत् माया का विकार नाश होता जाता है। आखिर केवल सत् सरूप में लीन हो जाता है, जो जीव का असली सरूप है।

वचन–76. अपनी ज़िन्दगी का सुधार करना ही असली यत्न है। जिसने मानुष देह को धारण करके उस परम पिता का आसरा नहीं लिया और न ही इस माया के अंधकार से छूटने का विचार किया, और नित ही देह के भोगों में जो प्रसन्न रहता है वह पशु समान अपनी ज़िन्दगी को गुज़ार कर फिर नीच गति को प्राप्त होता है। इस घोर अंधकार से कभी भी छूट नहीं सकता, बारम्बार माया के चक्र में आता-जाता रहता है।

वचन–77. सब कुछ ईश्वर का ही विचार करना, उसी को सच्चा मालिक जानना, सब कर्म उसी की आज्ञा में अर्पण करने, दढ़ निश्चय करके उपासना करनी, यह साधना कल्याण के देने वाली है। यानी जीव इस यत्न से हंकार से रहित होकर परमानन्द सरूप में लीन हो जाता है, और सरब सरूप एक ईश्वर ही ईश्वर देखता है। वह ही हालत असली आनन्द और परम धाम है।

वचन–78. मानुष ज़िन्दगी को धारण करके सत् भाव को ग्रहण करना चाहिए। अगर सत् भाव को धारण न किया जावे तो मन असत् भाव को धारण करके अति पाप कर्म करने लगता है। उन पाप कर्मों से अति दुःखी होता है।

किसी हालत में भी प्रसन्नता को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि तष्णा की आग हर वक्त अन्तर जलाती है।

वचन—79. देह को नाशवान समझकर सत् स्वरूप आत्मा का विश्वासी होना और अभ्यास करना ही कल्याण के देने वाला है। इस सत्मार्ग को छोड़कर जो अनेक मनोरथ धारण करके कई तरीका की उपासना करते हैं वे अधिक क्लेश को प्राप्त होते हैं, यानी परमानन्द अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते।

वचन—80. संसारी पदार्थ प्राप्त होने पर भी और न प्राप्त होने पर भी जीव को शाँति प्राप्त नहीं होती। इस वास्ते निष्काम कर्म का साधन ही कल्याण का देने वाला है। सब कुछ ईश्वर का जानकर उसी के निमित्त सब कर्म करने, और प्रेम भाव को धारण करके सिमरण करना ही कल्याणकारक है। इस भाव के ग्रहण करने से दुष्ट वासनाओं से जल्दी मुक्त हो जाता है और श्रेष्ठ वासनाओं द्वारा आत्म-सरूप को प्राप्त हो जाता है। मानुष ज़िन्दगी का परम साधन यह ही है।

वचन—81. जिसने एक ईश्वर पर भरोसा किया और उसी को कर्त्ता-हर्ता जाना, सब जगत में उसी को प्रकाशक देखा, निर्मान भाव को धारण करके सत् कर्मों को करता है और सब कर्म ईश्वर की आज्ञा में त्याग करता है, वह देह अभिमान से मुक्त होकर आत्म-सरूप को प्राप्त हो जाता है, फिर कर्म चक्र में नहीं आता। वह ही अवस्था समता शाँति है।

वचन—82. जिसने आत्मा को शरीर से भिन्न जाना है और हर घड़ी आत्म-सरूप में स्थित रहता है, सब शरीर के कर्मों में आसक्त नहीं होता, वह ही ब्रह्म ज्ञानी है और समता आनन्द को अनुभव करने वाला है। सरब सरूप में स्थित होकर परम शाँति को प्राप्त हो जाता है।

वचन—83. शरीर के अन्तर विखे जिसने ब्रह्म शब्द को अनुभव किया और जो हर वक्त सुरती को शब्द में दृढ़ करता है, और नौ द्वार के विकारों से उपरस होकर अन्तर सुन्न स्थान में विश्राम किया है, वह ही परम योगी परम आनन्द को प्राप्त होकर फिर प्रकृति के जाल में नहीं आता।

वचन—84. जिसने सब कर्मों के फल को ईश्वर के निमित्त अर्पण कर दिया है और अपने आप में ईश्वर परायण हो चुका है, जो सब जगत में एक ईश्वर का ही चमत्कार जो देखता है, वह सब कर्मों के जाल से मुक्त होकर निहकर्म सरूप शब्द में लीन हो जाता है। वह ही परम सिद्ध है। अपने सत् यत्न द्वारा सत् धाम को प्राप्त हुआ।

वचन—85. जिसने अपनी सुरति को शब्द की धार में लीन कर दिया और पिण्ड की क़ैद से निकलकर ब्रह्मण्ड में जो लीन हुआ, और हर वक्त जो शब्द आधार को प्राप्त हुआ, अन्तर-बाहिर सब अपना ही सरूप जिसने देखा, वह ही समता तत्त्व के जानने वाला है। वह ही परम पुरुष है। दुर्लभ उसका जीवन है, संसार के वास्ते कल्याण सरूप है।

वचन—86. हर वक्त देह को छाया समान जिसने जाना और साखी सरूप आत्मा में जो प्राप्त हुआ; काल कर्म के जाल से न्यारा होकर सत् शब्द में जो लीन हुआ, वह ज्ञानी माया चक्र से मुक्त होकर समता शान्ति को प्राप्त हुआ। वह ही नमस्कार योग है।

वचन—87. जिसने प्राण अपान की संयम गति को जाना है और तमाम शरीर के कर्मों को ईश्वर अर्पण किया है, हर वक्त सत् शब्द में दढ़ निश्चय जिसको प्राप्त हुआ है, वह ही अन्तरगति के जानने वाला परम योगी है, और समता शान्ति को अनुभव करने वाला है।

वचन—88. जिसने हर वक्त अपने मन को प्राण की गति में लीन किया है और चित्त करके सत् नाम का सिमरण करता है, और सरब सरूप उस परमेश्वर को देखता है, सुख व दुःख में वत्ति जिसकी समान है, वह ही तत्त्व-ज्ञानी सत् तत्त शब्द को जानने वाला है और देह के तमाम विकारों से मुक्त होकर सत् सरूप में स्थित हुआ है।

वचन—89. जब तक मन में सत् विचार नहीं, जब तक सच्चा प्रेम और विरह नहीं सत् सरूप में, जब तक सत् यत्न यानी अभ्यास नहीं, तब तक कभी भी मन विकराल को काबू नहीं कर सकता। जब तक मन काबू में नहीं तब तक सत् शांति को प्राप्त नहीं हो सकता, ख़्वाहे लाखों बरस क्यों न संसार में विचरता रहे।

वचन—90. कर्मों का अधिक बंधन है। जीव एक पलक भी कर्मों से रहित नहीं हो सकता। इस वास्ते परम यत्न से अपने मन को सत् सरूप में स्थित करे और तमाम कर्मों को ईश्वर अर्पण करे। तन, मन, धन सब ईश्वर की ही दात जाने। ऐसी दढ़ उपासना से मन सत् सरूप को अनुभव करके कर्म रहित हो जाता है यानी निहकर्म सरूप आत्मा में लीन हो जाता है। यह ही परम भक्ति है। धन्य है वह पुरुष जिसको ऐसी रहनी प्राप्त हुई है।

वचन—91. जिसने अपने मन को ईश्वर के सिमरण में लगाया है, सत् विश्वास करके नित ही पर-उपकार सेवन करने वाला है, जो गुणी पुरुष और सब कुछ आज्ञा नारायण में जो देखता है, वह परम भगत है और शीघ्र ही सत् पद में लीन हो जायेगा।

वचन—92. दुर्मत विकार अधिक अंधकार है। शरीर के टुकड़े-टुकड़े करने से भी नाश नहीं होता। यह गहरा भ्रांत जीव को नित ही आवागवन में फिराता है। ज्ञान और वैराग्य की तलवार से इसको छेदकर सत्पुरुष सत्धाम में स्थित हुए और इस माया के संग्राम से विजय पाई। वे ही शूरवीर धर्म की विजय

पाने वाले हैं और समता आनन्द को प्राप्त करके चिरंजीव पद में विश्राम कर गये हैं।

वचन—93. जीव की हंग कल्पना ही दुस्तर और गहन है। इसका त्याग करना ही परम ज्ञान है। यह सहज से त्याग नहीं हो सकती, बल्कि सत् श्रद्धा और सत् प्रेम से बार-बार सत् नाम का निदिध्यासन करने से यह दुर्मत विकार नाश होता है और समता धाम की प्राप्ति होती है। यह पुरुषार्थ ही कल्याण के देने वाला है।

वचन—94. जो अंध-बुद्धि रखने वाले ईश्वर विश्वासी नहीं और न ही सत् भाव को प्राप्त करने का यत्न करते हैं, वे इस दुर्मत भ्रम की फांस में आकर कई प्रकार की नीच जूनियों को प्राप्त होकर परम दुःखी होते हैं।

वचन—95. इस मिथ्या भ्रम चक्र से छूटने की ख़ातिर हर घड़ी सत् पद प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिए। इस मानुष ज़िन्दगी का यह ही परम लाभ है। ईश्वर कोई दूर नहीं, सिर्फ बुद्धि अज्ञानवश होकर चंचलता को प्राप्त हो गई। इस वास्ते उस सूक्ष्म तत्त्व को अनुभव नहीं कर सकती। जिस वक्त सत् पुरुषार्थ करके अपने मलीन कर्मों और मलीन वासना से

मुक्त हुई उस वक्त अपने अंतर विखे वह परमानन्द सरूप पा लिया। इस वास्ते बुद्धि की जागति करनी ही परम तप है। जितनी बुद्धि अन्धकार में है, उतनी ही मलीन कर्मों को धारण करके परम दुःखी होती है; जितनी शुद्ध भाव को ग्रहण करती है, उतनी ही शुभ कर्मों को धारण करके परम सुखी होती है।

वचन—96. सब कल्याण और बन्धन का भाव बुद्धि पर ही है, जब तक बुद्धि में हंग भाव स्थित है तब तक कर्म चक्र से छूट नहीं सकता। इस वास्ते हर घड़ी अपनी बुद्धि को पवित्र करना ही परम धर्म है। बुद्धि की शुद्धि सत् विचार करके और सत् निदिध्यास करके है। जिस गुणी पुरुष ने ऐसी साधना धारण की वह बुद्धि को निर्मल करके परम धाम को प्राप्त हो गये।

वचन—97. ज्यों-ज्यों बुद्धि निर्मल होती है, अन्तर से सब कामना का त्याग करती है। ओढ़क अति पवित्र हालत को प्राप्त होकर परमानन्द स्वरूप में लीन हो जाती है। यह ही परम सिद्धता है।

वचन—98. कर्मों की वासना हर वक्त बुद्धि को भरमाती है; एक पलक भी निश्चल होने नहीं देती। बड़े यत्न-प्रयत्न करके सत् अनुराग को धारण

करके गुणी पुरुष अपनी बुद्धि को निर्मल करते हैं और हर घड़ी सत् सरूप नारायण के परायण रहते हैं; सब कर्म जाल ईश्वर के चरणों में सौंप देते हैं। अपने अन्तर परम निर्मानता को धारण करके कर्म वासना से मुक्त हो जाते हैं। ऐसा पुरुषार्थ ही कल्याण के देने वाला है।

वचन—99. हर वक्त मार्ग धर्म में स्थित रहना चाहिए। सत् गुणों को ग्रहण करके अपनी कल्याण करनी चाहिए, क्योंकि अपने यत्न करके भ्रम में जीव गिरफ्तार होता है, और अपने यत्न करके मुक्त होता है। जो मन्द बुद्धि वाले यह कहते हैं कि हमारे भाग्य में नहीं है, वे मूर्ख हैं। यत्न हर एक जीव करता है, ख़्वाहे शुभ या अशुभ। जिन्होंने सत्संग द्वारा शुभ पुरुषार्थ को धारण किया वे शुभ गति को प्राप्त हुए यानी समता शाँति को हासिल किया, और जो अज्ञानी कुसंग द्वारा सत् मार्ग को छोड़कर स्वार्थ अन्धकार में मुस्तग़र्क[1] हुये, वे आखिर दुनिया से तखावन्त[2] होकर जाते हैं।

वचन—100. इस मार्ग संसार में आकर सत् बुद्धि द्वारा सत् पुरुषार्थ को धारण करना चाहिए, जिससे जीवित में ही परमानन्द प्राप्त हो

1. लीन 2. प्यासे

जावे और आईन्दा की परलोक कल्पना नाश हो जावे। अपने सत् सरूप को प्राप्त करके पूर्ण रूप हो जावे। जिस गुणी पुरुष ने ऐसा साधन धारण किया है उसका इस संसार में आना दुर्लभ है, यानी मिथ्या चक्र में आकर सत् पद को प्राप्त कर लिया।

वचन—101. तष्णा रूपी विकार अधिक रोग है। इससे सत् यत्न द्वारा ही शाँति हो सकती है। जो गुणी पुरुष सत् पुरुषार्थ को धारण नहीं करते और शरीर के भोगों में मग्न रहते हैं, वे आखिर इस दुनिया से प्यासे ही जाते हैं। इस वास्ते जब तक प्राण की धारा जारी है, तब तक अपनी कल्याण का यत्न करना चाहिए। असली कल्याण ये ही है कि जीव की सब कामना और कल्पना नाश हो जावे और शरीर के होते-होते सत् पद को प्राप्त करके आनन्दमयी हो जावे; मतक काल का भय बिलकुल चित्त से नाश हो जावे, अविनाशी तत्त्व को प्राप्त होकर आनन्द सरूप हो जावे। ऐसी रहनी जिसको प्राप्त हुई है वह परम पुरुष पूजने योग्य है, क्योंकि उसके पवित्र जीवन करके लाखों जीवों को शाँति प्राप्त होती है। वह महापुरुष जगत का आधार है।

वचन—102. जब तक अपनी इन्द्रियों पर काबू न पा लेवे और निष्काम भाव को ग्रहण न करे, तब तक कभी भी सत शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता। इस वास्ते इन्द्रियों के भोगों का त्याग करना ही सुखदाई है। जो इन्द्रियों के भोगों में आसक्त हैं और मुख से बड़ा ज्ञान-ध्यान विचार करते हैं, वे तोते की तरह वाणी को रट लगाते हैं। आखिर बक-बक करके नाश हो जाते हैं। इस मूर्खताई को त्याग करके जिन्होंने सत् बुद्धि द्वारा सत् पुरुषार्थ को धारण किया है और इन्द्रियों के भोगों से विरक्त होकर आत्मरस का पान किया है, वह ही परम भगत सत् पद को प्राप्त हो गये हैं।

वचन—103. जब तक सत् विचार को अपने अंतर न घटाया जावे, तब तक बुद्धि शुद्ध नहीं होती। इस वास्ते ऐसा विचार हर वक्त करना चाहिए कि यह शरीर क्या है और इसका बनाने वाला कौन है? हम किधर से आये हैं और किधर को जायेंगे? इस दुनिया में आकर क्या करना चाहिए ? असली खुशी क्या है और किस जुगति करके प्राप्त होती है ? ऐसे विचार से सत् पद की प्राप्ति सहज हो जाती है। जो इन विचारों को त्यागकर यह ही मान बैठे हैं कि हम ही आये

हैं और हमेशा इस जगह रहेंगे; शरीर के भोग ही परम सुख हैं; हम कभी भी संसार को त्याग नहीं करेंगे। मौत क्या चीज़ है - आगे सब मूर्ख थे हम ही बड़े दानिशमंद[1] हैं। यह ही मलीन वासनायें अति घोर दुःख के देने वाली हैं। यानी शरीर तो अवश्य नाश हो जावेगा मगर यह मलीन भाव असली शाँति को प्राप्त होने नहीं देते। वे मनमुख आखिर परम दुःखी होकर संसार से जाते हैं और आईन्दा[2] कई जन्म दुःख पाते हैं।

वचन—104. तमाम सत्पुरुषों की हिदायत[3] यह ही है कि अपनी ज़िन्दगी में मालिक-ए-कुल को जान लेवें। तमाम मज़हबों का प्रसंग यह ही है कि सत् नियमों को धारण कर के अपनी मुखलसी[4] हासिल कर लेवें। मगर मूर्ख बुद्धि करके बजाय अपनी कल्याण के बादमुबाद[5] में जन्म गंवा देते हैं, आखिर दुनिया से बेज़ारी[6] लेकर जाते हैं।

वचन—105. तष्णा रूपी रोग जीव को लगा हुआ है। किसी हालत में भी शाँति को नहीं पाता, यानी बड़े से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होकर भी तष्णायुक्त रहता है। इस रोग से जिसने निज़ात पाई है वह ही सत्पुरुष है और जगत का गुरु है। उसका सत् उपदेश

1. बुद्धिमान 2. भविष्य में 3. शिक्षा 4. आज़ादी, मुक्ति 5. तर्क-वितर्क 6. अधीरता

अपनाने से इस दीर्घ रोग से शाँति मिलती है।

वचन—106. इस कमी को विचार करके हर घड़ी, हर लमह सत धाम की प्राप्ति की खातिर यत्न करना चाहिए। जिस वक्त अपने मन को शाँति प्राप्त हुई उस वक्त ही संसार के असली मुकाम को प्राप्त हुआ। इसके बग़ैर हर वक्त भटकना लगी रहती है। किसी मुल्क में, किसी मज़हब में, किसी शरीर की हालत में तसल्ली नहीं होती है। उम्मीदों की ज़ंजीर बार-बार लपेट देती है।

वचन—107. अपनी सत् बुद्धि द्वारा अपनी कल्याण करनी गुणी पुरुष का परम यत्न है। जिसने अपनी बुद्धि को पाप कर्मों में लगा कर अंध-विश्वासी कर दिया, और छल कपट के जाल में फँसा दिया, वह आत्मघाती किसी पलक भी शाँति को प्राप्त नहीं हो सकते, क्योंकि सब कुछ जानकर फिर भी अंधकार की तरफ जा रहे हैं। उनको न कोई उपदेश देने वाला है और न ही किसी की मानते हैं। जिस वक्त कभी अपनी ग़लती का विचार करेंगे उस वक्त उनको अपनी करनी का रंज और ग़म होगा। मगर वक्त गंवाकर पछताने से क्या हो सकता है।

वचन—108. तमाम बुज़ुर्गों का उपदेश यह ही है कि अपना कल्याण करो। जिस तरीका से हमको शान्ति

प्राप्त हुई है, वह तरीका तुम भी इख़्तियार[1] करके सत् शान्ति को प्राप्त हो जाओ। इस दुनिया के जाल को देखकर सत् सरूप को मत भुलाओ। मगर सब कुछ सोच समझकर भी फिर अभिमान में आकर जो अत्याचार करता है वह धर्म का डाकू है। उसने धर्म नहीं जाना है, बल्कि चतुराई को हासिल किया है। ऐसे पुरुष की संगत दुःखदाई है। भूल करके भी उसके निकट नहीं जाना चाहिए।

वचन—109. हर वक्त ऐसी धारणा धारण करनी चाहिये जिससे मन को शान्ति प्राप्त होवे। सत् विश्वास यानी दढ़ निश्चय ईश्वर शक्ति पर; सत् विचार यानी ईश्वर को ही सत् जानना और सब भ्रम समझना; सत् पुरुषार्थ यानी हर घड़ी ईश्वर प्राप्ति की खातिर यत्न करना; सत् संगत यानी जिस जगह सत्-पुरुषों का विचार होवे और सत् सरूप का प्रसंग उच्चारण होवे, उस संगत में एकत्र होकर अपनी बुद्धि को निर्मल करना; सत् सेवा यानी निष्काम भाव करके दूसरे का कष्ट निवारण करना; सत्यवादी होना यानी बोल-तोल में सत् का धारण करना; सादगी यानी अपनी कामनाओं को शुद्ध करना; अपने आहार-व्यौहार में शुद्धि इख़्तियार करनी और अपनी ज़रूरतों को कम करके दूसरे की ज़रूरत पूर्ण करनी; अन्तिम दशा का विचार यानी शरीर के नाश का विचार

1. धारण करना, अपनाना

करना और जीवित में सत् कर्म को धारण करना, यह विचार बुद्धि को निर्मल करते हैं और जीव को ईश्वर परायण बनाते हैं। जिनके अन्दर ऐसी स्थिति है वह जल्दी ही सत् पद को प्राप्त हो जावेंगे।

वचन—110. इस संसार में आकर सत्पुरुषों की सीख द्वारा अपने जीवन को पवित्र करना ही परम धर्म है, यानी सत्गुरु की आज्ञा के मुताबिक[1] अपने जीवन को बनाना। जो अंध-बुद्धि वाले सत्पुरुषों की सीख को धारण नहीं करते वे पद-पद पर कष्ट उठाते हैं और इस दुनिया में हमेशा अशान्त रहते हैं। इस वास्ते सत् उपदेश को धारण करना ही कल्याण के देने वाला है। मन को जिस भाव में लगाया जावे उसी तरफ कोशिश करता है। इसलिए सत् भाव में अपनी वत्ति को लगाना चाहिये जो इस लोक और परलोक में सुखदाई होवे।

वचन—111. शरीर के होते-होते शरीर के मालिक की पहचान करनी; तमाम शरीर की कान्ति उसके आधार जाननी; मालिक-ए-कुल जान कर सत् श्रद्धा से उपासना करनी ही असली कल्याण है। जिस वक्त देह अभिमान नाश हो जाता है, यानी सब कुछ ईश्वर का ही देखता है, उस वक्त वह आत्मस्थिति को प्राप्त होता है, यानी अपने शुद्ध सरूप को

1. अनुसार

प्राप्त हो करके शान्त हो जाता है। ऐसा निश्चय धारण करना ही परम श्रद्धा है।

वचन—112. सत् कर्मों को धारण करने से बुद्धि निर्मल होती है और शान्ति को प्राप्त होती है। जीव को शरीर अभिमान, विचार अभिमान और द्रव्य अभिमान हर वक्त भ्रम चक्र में फिराता है। इस वास्ते सब शक्ति का दाता परम पिता जानकर निर्मान भाव को धारण करना ही कल्याण है। वह ही गुणी पुरुष है जिसको अपने गुण का अभिमान नहीं। वह ही सतवादी है।

वचन—113. निर्मान भाव को धारण करना ही परम शान्ति है। यानी देह अभिमान के नाश होने से आत्म-उन्नति प्राप्त होती है। इस वास्ते सब कुछ ईश्वर का समझ कर उसी के चरणों में भेंट करना चाहिए। इस निश्चय से मिथ्या पदार्थों की कामना नाश हो जाती है और केवल एक नारायण का सिमरण प्राप्त होता है, जो असली समता धाम है। हर वक्त ऐसी धारणा धारण करनी चाहिए।

वचन—114. जिसने शरीर के भोगों से मुक्ति हासिल की है वह ही परम सुखी है और सत् तत्त के जानने वाला है। उसने संसार की बाज़ी को जीत लिया है। सब पदार्थों के होते-होते

जिसका चित्त आत्म-परायण रहता है वह ही भोगों से मुक्त हुआ है—यानी आत्म-भोग को प्राप्त हुआ है और नित निर्वास, निर्विकल्प आनन्द में स्थित रहता है।

वचन—115. सार विचार यह है कि संसार के भोग अशान्ति के देने वाले हैं और आत्म-प्राप्ति परम शान्ति है। इस वास्ते मानुष देह को धार करके आत्म-परायण होना परम सिद्धि है, क्योंकि बग़ैर सत आधार के जीव कभी भी इस माया के चक्र से निकल नहीं सकता। तमाम प्राचीन बुज़ुर्गों का आदर्श विचार करके अपनी आत्मिक उन्नति करनी और दीगर[1] तमाम वहमों का त्याग करना मानुष जन्म का सार साधन है। जो आत्म-उन्नति को छोड़कर कई वहमों में फिरते रहते हैं वे स्वार्थ की आग से कभी भी शान्त नहीं हो सकते। इस वास्ते परमार्थ तत्त्व का विचार करना और निदिध्यास करना ही परम शान्ति को देने वाला है। इस सत् विचार को दढ़ निश्चय से धारण करना ही कल्याण के देने वाला है।

वचन—116. समता धाम की प्राप्ति की खातिर परम यत्न करना चाहिये जिसको प्राप्त करके जीव फिर ममता विकार के अन्धकार में न प्रवेश

1. अन्य

करे। यह ही अवस्था जीव का असली सरूप है जिसको भूलकर अपने भ्रम में कई जन्म दुःख उठाता रहा।

वचन—117. समता तत्त्व का अनुभव करना ही परम योग है। बग़ैर समता प्राप्ति के जीव द्वन्द्व विकार से शान्त नहीं होता। इस वास्ते परम तत्त समता का निदिध्यासन करना ही सुखदाई है।

वचन—118. अखण्ड शब्द ब्रह्म जो तीन काल सम सरूप है, उसका सिमरण करना ही कल्याण के देने वाला है। जो उस सत् तत्त्व को छोड़कर स्वार्थ देही में मग्न रहते हैं, वे मनमुख नित ही दुःखी और अशान्त हैं।

वचन—119. तमाम सत्पुरुषों का मेराज़ (ध्येय) समता धाम प्राप्ति ही है। इस वास्ते सत् विश्वास करके प्रकति के बन्धन से मुक्त होकर सत् शब्द में स्थिति हासिल करनी मुख्य साधन है। सत्पुरुषार्थ करके ही कर्म के जाल से शान्ति मिलती है। यह संसार का चक्र अत ही अश्चर्ज है। वास्तव में कुछ भी नहीं मगर परतख (प्रत्यक्ष) कितना विस्तारयुक्त दिखाई देता है। कोई गुणी पुरुष ही असली भेद को जान सकता है।

वचन—120. जीव अपने सत् सरूप को भूलकर अपनी कल्पना का विस्तार यह संसार देखता है। जितनी कल्पना अधिक है, उतना संसार का

विस्तार भी अधिक देखता है; जितनी कल्पना कम है, उतना ही संसार तुच्छ सरूप दिखाई देता है। जिस वक्त अपने सत् सरूप को जान लेता है, उस वक्त संसार का भ्रम नाश हो जाता है। सरब सरूप एक सत्ता मात्र ही देखता है। यह ही समता धाम है।

वचन—121. ऐसी अवस्था को प्राप्त होकर देह के द्वन्द्व विकार में चलायमान नहीं होता। अपने सरूप में अत ही निश्चल हो जाता है। वह ही महापुरुष सब सार को जानने वाला है और अपने आप में पूर्ण हो चुका है। उसका दर्शन और उपदेश दुर्लभ है।

वचन—122. सत् कर्म की धारणा समता का पहला साधन है। सत् कर्म के साधन से अति ममता का विकार नाश हो जाता है, और शुद्ध बुद्धि को प्राप्त करके अपने अन्तर विखे सत् अभ्यास धारण करता है जिससे आत्म-साक्षात को प्राप्त हो जाता है। गहस्थी हो या विरक्ति कर्मों के जाल से छूटने के वास्ते हर एक को यथार्थ साधन करनी सुखदाई है।

वचन—123. जो समता शाँति को प्राप्त करने का यत्न नहीं करता और स्वार्थ में आकर बाद-मुबाद में

जन्म गंवाता है, वह ही पशु है। किसी समय भी दुष्ट विकार की जलन से शांत नहीं हो सकता। उसका संसार में आना अकार्थ है।

वचन—124. हर एक प्राणी मात्र को अपनी कमी को पूरा करने का विचार करना लाज़मी है। दुर्लभ समय मानुष ज़िन्दगी का बार-बार नहीं है। इस वास्ते अपने जीवन में ही समता तत्त्व की प्राप्ति करनी चाहिये जो तीन काल में पूर्ण है, जिसको प्राप्त करके फिर संसार का कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं।

वचन—125. जिसका विश्वास दढ़ हो गया है ईश्वर के सरूप में, जिसने कुल कर्म ईश्वर के निमित्त निश्चय करके अर्पण किये हैं, ग्रहण और त्याग में जिसकी बुद्धि सम है, और जो अन्तर विखे शब्द समाध को प्राप्त हुआ है; तमाम मन की वत्तियों से मुक्त होकर अखण्ड शब्द में जो लीन हुआ है, वह ही सत्पुरुष समता धाम को जानने वाला है। ऐसी पवित्र अवस्था को प्राप्त करने का प्रेम हर एक गुणी पुरुष के अन्दर होना चाहिये, जिससे मालिक-ए-कुल को प्राप्त होकर परम सुख मिले। सब भ्रमों को छोड़कर जो आत्मिक निश्चय को धारण करते हैं, वे पुरुष सत् गति को प्राप्त होते हैं। जो कोई अपनी कल्याण चाहे वह आत्म विश्वासी होकर सत् मार्ग में निश्चल होवे, जिससे परम लाभ समता आनन्द प्राप्त होवे। धन्न

वह पुरुष है जिसने ऐसी रहनी पाई है। उसका विचार कल्याणकारक है।

वचन—126. समता आनन्द के वास्ते यथार्थ और सहज साधन यह है कि हर वक्त आत्म-निश्चय को धारण करना, सत्संग द्वारा अपने अन्तः-करण को शुद्ध करना और व्यौहार में सच्चाई इख़्त्यार करनी, साखी पुरुष परमेश्वर को सरब सुखदाता जानकर अनन भाव से सिमरण करना, यह ही निर्मल भगति है जो परम शान्ति को देने वाली है।

वचन—127. जब तक कर्म की शुद्धि नहीं तब तक कभी भी राग-द्वेष की जलन नाश नहीं होती। इस वास्ते इस घोर अन्धकार से छूटने के वास्ते सत्य यत्न करना चाहिए।

वचन—128. सबसे उत्तम विवेक यह ही है कि आत्म-निश्चय प्राप्त हो जावे। बिना आत्म-निश्चय के संसार के क्लेश से मुक्त होना मुश्किल है। सत्-पुरुषों की सिखया को धारण करने से परम पद की प्राप्ति होती है। अगर सिखया न धारण की जावे, महज़ दर्शन कल्याण नहीं दे सकता। इस वास्ते हर घड़ी अपने विचार को श्रेष्ठ करना चाहिए।

वचन—129. आत्म सम्बन्धी विचार, आत्म सम्बन्धी कर्म यानी निष्काम कर्म, आत्म निदिध्यास ही

परम कल्याण के देने वाला है। ऐसा निश्चय धारण करना चाहिए। देह के विकारों से कभी भी छूट नहीं मिल सकती, जब तक कि आत्म-परायण न होवे।

वचन—130. जो स्वार्थ की खातिर आत्म-विश्वास को छोड़कर और कई वहमों को धारण करते हैं, वे न तो स्वार्थ में कामयाब[1] होते हैं न परमार्थ में। यानी पुरुषार्थहीन होकर परम दुःखी होते हैं। स्वार्थ अपने प्रारब्ध के अनुकूल सुखदाई व दुःखदाई होता है। जब तक कर्म-फल भोग न लेवे कभी भी शान्ति नहीं होती। इस वास्ते आत्म-विश्वास की धारणा करके कर्म-चक्र से छूटने के वास्ते कोशिश करनी चाहिए।

वचन—131. आत्म-विश्वास से हीन होकर न दुनिया की तरक्की कर सकता है, न परमार्थ की यानी सत्-विचार और सत्-पुरुषार्थ के बग़ैर किसी मार्ग में प्रभुता नहीं मिलती। जो ख़ुदग़र्ज़ी के भाव में कोशिश करते हैं वे अपने असली अंजाम को प्राप्त नहीं हो सकते। इस वास्ते कुल दुनिया की प्रभुता सत्-आचरण से ही प्राप्त होती है। यह निश्चय करके हर वक्त सत् बुद्धि को धारण करना चाहिए।

वचन—132. सत्-विचार से ही हर एक चीज़ उन्नति को प्राप्त होती है, मलीन विचार से नाश हो जाती है। यह ही माया का चक्र है।

1. सफल

सत्-विचार की सार यह ही है, ईश्वर विश्वासी होना। जो पाखण्डी ईश्वर विश्वास से हीन होकर अनेक प्रकार की साधना करते हैं, वे किसी सूरत में भी अपने मनोरथ को प्राप्त नहीं हो सकते।

वचन—133. सत्-विश्वास ही असली जीवन है। जिसके अन्तर ईश्वर का विश्वास नहीं वह अति चंचलता को धारण करके हर वक्त अपने अन्तर विखे अशान्त रहता है। इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके अपने अन्तर विखे ईश्वर-विश्वास धारण करना चाहिए। ईश्वर विश्वास के बल से संसार में विचरते हुए परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।

वचन—134. तमाम दुनिया का फ़लसफ़ा[1] और ज्ञान एक आत्म-आधार पर ही है। इस वास्ते बादमुबाद को छोड़कर अपने अन्तर विखे जीवन शक्ति का विचार, ज्ञान, ध्यान धारण करना चाहिए। यह ही असल ईमान और धर्म है। तमाम दुनिया के सदाचारी लोग इसी तरीका को हासिल करके अपने अंजाम[2] को पा गये, यानी परम शान्ति को प्राप्त हुए।

वचन—135. देह के अभिमान में आकर बुद्धि विचार से हीन हो जाती है, और कई तरीका के पाप कर्म सोचती है और दुःखी रहती है।

1. तत्व ज्ञान, दर्शन 2. लक्ष्य

आत्म-विचार यानी ईश्वर-निश्चय बुद्धि को निर्मल करता है और शान्ति के देने वाला है। हर वक्त श्रेष्ठ यत्न को धारण करके अपनी आत्म-उन्नति करनी चाहिए।

वचन—136. ख़्वाहे कोई गहस्थी है या विरक्ति है, असली सुख आत्म-परायण होने से ही प्राप्त होता है जो खुशी ग़मी से ऊँचा है। मालिक-ए-कुल[1] का कानून सबके वास्ते बराबर है। जो सत्मार्ग की तरफ जायेगा वह शान्ति को प्राप्त होगा और जो अभिमान-वश होकर उपद्रव करेगा वह परम दुःखी होवेगा। यह सार सिद्धान्त है।

वचन—137. सचाई की तलाश करनी चाहिए। मज़हबी बादमुबाद से निज़ात हासिल करनी चाहिए। मज़हबी बादमुबाद बुद्धि को भ्रष्ट करने वाला है। अभिमान, मोह और क्रोध को प्रगट करने वाला है। नेक लोगों की हिदायत असली मज़हब है। अगर उस हिदायत[2] को न धारण किया जावे और महज़[3] ज़बानी बाद-मुबाद[4] धारण रखे, वह असली मूर्ख है। असली खुशी को कभी भी हासिल नहीं कर सकेगा।

वचन—138. जिसने अपना निश्चय परम धाम प्राप्ति की खातिर दढ़ किया है, वह ही सत्पुरुष सत्-यत्न करके निज़ात[5] को हासिल कर सकता है।

1. सष्टि के मालिक, परमात्मा 2. शिक्षा, नसीहत 3. केवल 4. तर्क-वितर्क 5. मुक्ति

सत्पुरुषों का जीवन अपनी कमज़ोरी को दूर करने का यत्न सिखलाता है, न कि खुद अन्धकार में और दूसरों को सत् उपदेश। निर्मल विचार हर वक्त धारण करना चाहिए।

वचन—139. जिस मानुष ने ईश्वर पर पूर्ण भरोसा पाया है और हर वक्त सत्कर्म विचार करता है, और हर एक की भलाई का चाहने वाला है, तकलीफ़ में जिसका चित्त घबराता नहीं और खुशी में अभिमान नहीं करता, हर वक्त ईश्वर आज्ञा में दढ़ निश्चय वाला है, वह ही गुणी पुरुष असली धर्म के जानने वाला है।

वचन—140. असलियत की तहक़ीक़ात[1] करनी चाहिए, जिससे शान्ति प्राप्त होवे। धर्म या ईमान का सार यह ही है कि ग़फ़लत[2] को छोड़कर सत् मार्ग को धारण करे। गुरुओं की हिदायत[3] यह ही सिखलाती है कि सत्-कर्म को धारण करके अपनी खुलासी[4] को पाये। इस वास्ते जो मानुष सत् उपदेश को धारण करके हर घड़ी अपने अन्तःकरण को शुद्ध करता है और ईश्वर परायण निश्चय वाला है, और वक्त का पाबन्द है, यानी वक्त पर दुनियावी कारोबार और वक्त पर अपने सत्य अभ्यास में जो महव[5] रहता है, वह ही निर्मल बुद्धि वाला पुरुष परम सिद्धि को सहज ही प्राप्त हो जायेगा। जो इन नियमों के उल्ट चलता है यानी अपने आचार-विचार

1. वास्तविकता की खोज 2. लापरवाही 3. शिक्षा, नसीहत 4. छुटकारा 5. जुटा रहना

और कारोबार में शुद्धि इख़्त्यार नहीं करता, और न ही ईश्वर विश्वास में दढ़ निश्चय वाला है, वह बड़े से बड़े कष्ट को प्राप्त होकर अन्त को निराशा इस संसार से जायगा और अपने पाप कर्मों के बन्धन से फिर कई जन्म दुःख को पायेगा। यह दढ़ निश्चय करके विचार करना चाहिए और सत् मार्ग को धारण करके समता शान्ति की प्राप्ति करनी चाहिए।

वचन—141. वास्तव में आत्मा देह से भिन्न है, यानी देह हमेशा नाश और उत्पत्त होने वाली है और आत्मा सदैव काल एक-रस है। मगर अज्ञान के परदे में आकर देह के मोह को प्राप्त होकर देह की तबदीली-युक्त हालत का अभिमानी हो जाता है, और काम-क्रोध की अग्नि में जलता रहता है। कर्म का कर्त्तापन और कर्मों के फल में आसक्त होकर भ्रम रूप अधिक अन्धकार में भरमता रहता है, शाँति को नहीं पा सकता।

वचन—142. इस मिथ्या भ्रम यानी देह की ममता को नाश करने की ख़ातिर सब नियम और धर्म हैं—कि जीव सत जुगति को धारण करके इस अज्ञान सरूप से निवत्ति हासिल करे और अपने परमानन्द सरूप में लीन हो जावे, जो असली संसार का आधार है।

वचन—143. जो इस विकार से छूटने की खातिर सत् धर्म का आचरण नहीं करता, बल्कि लोक यश,

गुमान[1] और स्वार्थ की खातिर जप-तप करता है, वह सब कुछ करके भी फिर अपने अंधकार को बढ़ा रहा है। यानी बजाये शान्ति के उलटा अशान्ति की तरफ़ जा रहा है।

वचन—144. देह की ममता अधिक अंधकार है, जो ज्ञान सरूप की प्राप्ति में बाधक होता है। यानी अविनाशी रूप अपना भूलकर मिथ्याकार कर्म का जो झंझट देह है, उसको अपना सरूप मान लेना और देह के सुख और दुःख में नित चलायमान रहना और एक पलक भी अपने साखी रूप का विचार न करना।

वचन—145. मानुष जन्म इस अंधकार को दूर करने की ख़ातिर है, जिससे जीव आईन्दा की तकलीफ़ें और पिछली तकलीफ़ों से छूट कर अपने असली धाम समता आनन्द को प्राप्त हो जावे। चूँकि यह भ्रम अधिक अपार है इस वास्ते सहज युक्ति के धारण करने से ही कल्याण को पा सकता है।

वचन—146. पहले शरीर के भोगों से उपरस होने की ख़ातिर सहज उपाय यह है कि अति मलीन कर्मों का त्याग और बुद्धि को सत् विचार करके निर्मल करना। जिस वक्त पाप कर्मों से मुक्त हुआ उस वक्त सत् कर्म के आधार से ईश्वर शक्ति के निश्चय को प्राप्त हुआ।

वचन—147. जिस वक्त देह से ज़्यादा प्रभता ईश्वर शक्ति

1. गर्व, अहं

की चित्त में प्रगट हुई, और देह का आधार उस मालिक-ए-कुल को जाना, उस वक्त देह के कर्मों को ईश्वर की आज्ञा में देखने लगा और सत्पुरुषों की सीख से ईश्वर भगति को धारण किया। ईश्वर भगति की प्राप्ति होने से देह अभिमान का अभाव होने लगा और अन्तर विखे आत्मिक-बल प्रज्ज्वलित होने लगा।

वचन—148. जिस वक्त अन्तर विखे आत्म-शक्ति का यथार्थ तरीका से ध्यान प्राप्त हुआ और मन की धारणा निश्चल आत्म-सरूप में हर वक्त होने लगी, उस वक्त देह के मोह से चित्त को वैराग्य हासिल हुआ और ईश्वर विरह अन्तर जारी हुई। यह ही हालत असली जिज्ञासुओं की है। उस वक्त संसार में कोई भी पदार्थ सतप्रतीत नहीं होता और सब भोग दुःखदाई मालूम होते हैं, और जीव अन्तर से सत्-शान्ति को पाने की खातिर अधिक यत्न धारण करता है, यानी विचार, अभ्यास में दढ़ होता है।

वचन—149. यत्न करते-करते जब अन्तर विखे परम तत्त अविनाशी प्रगट पाता है, उस वक्त देह को नाश रूप देखता है और आत्म-सरूप को अविनाशी जानकर परम प्रीत से ईश्वर की

उस्तत करता है, और निर्मान भाव में मग्न रहता है। यानी अपने आप को कुछ भी नहीं समझता। सब कुछ शक्ति एक नारायण ही देखता है। यह ही परम भगति है। उस वक्त उस महापुरुष ने तमाम शरीर के भोगों से मुक्ति हासिल की।

वचन—150. ज्यों-ज्यों अन्तर विखे नारायण का सिमरण, ध्यान करता है, त्यों-त्यों परमानन्द को प्राप्त होता है, जो कहने-कथने में नहीं आता। सब कुछ ईश्वर के आधार ही देखता है। जिस वक्त अति प्रेम और ध्यान में आरूढ़ हो जाता है, उस वक्त देह से भिन्न होकर अपने सरूप में लीन हो जाता है और अखण्ड समाधि को प्राप्त होता है। वह ही परम ज्ञानी है। सब संसार से उसी ने ही कल्याण पाई है और नित आनन्द को प्राप्त हुआ है। कर्म और काल-चक्र से निकलकर अपने निज सरूप में लीन हो गया है। वह हालत ही समता धाम है। धन्न वह पुरुष है, जिसको ऐसी दशा प्राप्त हुई है। धन्न वह है जो उस आनन्दमयी हालत को हासिल करने की ख़ातिर यत्न करता है। यह ही असली मार्ग है जिससे जीव को मुक्ति प्राप्त होती है। असली जिज्ञासु होकर इस परमार्थ

के सार तत्त्व को विचार करके अपनी उन्नति करें। यह ही हुक्म ईश्वर का और सत् उपदेश गुरुओं का है। यह समता धाम का विचार सब वहमों को नाश करने वाला है और सत् मार्ग में निश्चल करने वाला है। इस वास्ते शुद्ध बुद्धि करके विचार करें और अपने कल्याण की ख़ातिर यत्न करें। यह ही लाभ इस चाम शरीर का है।

सत् विचार धारण करे, मन की तजे उपाध ।
नित ही निर्मल नाम में, धारे प्रेम अगाध ।।

सब जीवों की सेव करे, दीन भाओ चित्त धार ।
दुःख सुख आज्ञा प्रभ माहीं, निस दिन करे विचार ।।

अन्तर सुरती राख के, साचा नाम ध्याए ।
सत् गुरु की परतीत से, निर्भय धाम समाए ।।

अविचल धाम परापती, सकल दोख[1] करे नाश ।
''मंगत'' दुर्लभ जगत में, जिनका यह विश्वास ।।

दूसरा अनुभव—*समता धाम समाप्त हुआ।*

1. दोष

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

ब्रह्म सत्यम् सर्वाधार

समता अपार शक्ति

महामन्त्र

ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा
अद्वैत पुरखा सर्व-व्यापक
कल्याण-मूरत परमेश्वराय
नमस्तं

तीसरा अनुभव—समता नीति

समता ज्ञान का पूर्ण साधन

वचन—1. सम सरूप जो ब्रह्म शब्द अनादि है और घट-घट व्याप रहा है उसका विश्वास, सिमरण, ज्ञान, ध्यान में निहचलता हासिल करनी, ममता रूपी अन्धकार को नाश करना और हर घड़ी, हर लमह अपने मन को समता शान्ति की तरफ़ राग़िब[1] करना समता का सार साधन है।

1. लगाना, आकर्षित होना

वचन—2. समता योग यानी सुरत शब्द की एकता।

पहला मुख्य नियम :

सदाचारी जीवन, सत्, सादगी, सेवा, सत्संग, सत्-सिमरण को धारणा।

दूसरा नियम :

सिमरण-योग का अभ्यास, सत्-विश्वास, प्रभ-अनुराग, शरीर के भोगों से त्याग।

तीसरा नियम :

शब्द प्राप्ति यानी ध्यान योग, कर्मफल का त्याग यानी निष्काम कर्म की साधना, बाहिरमुखी व त्ति का त्याग, शब्द में स्थित होना।

वचन—3. बग़ैर राज योग की साधना के और सब अन्ध-विश्वास का त्याग करना। यह समता बुद्धि का सत्-विचार है।

वचन—4. ईश्वर सिमरण, ज्ञान, ध्यान, सत्संग, परोपकार को मुख धर्म जानकर हर वक्त धारण करना। यह सहज योग समता का नित नियम है।

वचन—5. हर एक मज़हब के रहनुमा[1] की इज़्ज़त करनी और उनके शुभ जीवन का आदर्श धारण करना, और अपनी आत्मिक उन्नति करनी—*यह समता का सत्संग है।*

वचन—6. दुनियावी रिवाज़ यानी शादी व मौत की

1. रहबर, गुरु, रास्ता दिखाने वाला

रीति बिलकुल साधारण तरीके से अमल में लानी चाहिये, क्योंकि यह स्वार्थ कर्म का ज़्यादा प्रपंच परमार्थ यानी ईश्वरीय विश्वास को नाश कर देता है, जिससे समता बुद्धि मलीन हो जाती है और जीव परम दुःखी होता है।

वचन—7. जितने भी खुशी, ग़मी के कारज करने पड़ें उन सब में पहिले ईश्वर की महिमा का उच्चारण करना लाज़मी[1] है। और किसी देवता की पूजा कोई फायदा नहीं पहुँचाती। जीव का ताल्लुक[2] ईश्वर के साथ है। ईश्वर ही रखयक और आधार है। इस वास्ते उस परम शक्ति का भरोसा रखना चाहिए। उसी के निमित्त सब कर्म करने लाज़मी हैं।

समाप्त

दूसरा उपदेश—समता साधन सार

इख़लाकी ज़िन्दगी का सुधार, रूहानी ज़िन्दगी का सुधार, देश का सुधार।

वचन—1. इख़लाकी ज़िन्दगी[3] के सुधार के नियमः

सादगी

सत्

1. ज़रूरी, आवश्यक 2. सम्बन्ध 3. सदाचारी जीवन

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

सेवा

सत्संग

सत् सिमरण

वचन—2. रूहानी[1] ज़िन्दगी के सुधार के नियमः
सत्पुरुषों के जीवन का सही विचार, निष्काम ईश्वर-भगति, निष्काम गुरु-भगति, निष्काम देश-भगति।

वचन—3. देश सुधार के नियमः
ख़्यालात की एकता, विचार की एकता, कोशिश की एकता, सब मज़हबों में एकता।

वचन—4. सत्संग धर्म नीति और राजनीति को कायम[2] करने वाला है। इस वास्ते सत्संग को कायम[3] करना लाज़मी है।

वचन—5. नुमायशी[4] ज़िन्दगी को बिल्कुल त्याग कर देना चाहिए और अमली ज़िन्दगी को धारण करना चाहिए।

वचन—6. देश की जाग ति और धर्म की जाग ति में तन, मन, धन से सेवा करनी लाज़मी है।

वचन—7. नुमायशगाहों[5] से कतई परहेज़ करना चाहिये। हर घड़ी अपने आचार को शुद्ध करने की कोशिश करनी चाहिए।

वचन—8. हर वक्त ठोस काम धारण करना चाहिए। जमायत[6] में एकता, धर्म प्रचार में हर तरीका से कुर्बानी करनी चाहिए। हर एक मज़हब के रिफ़ार्मर की ज़िन्दगी का विचार करना चाहिये जिससे तास्सुब[7], बाद-मुबाद नाश हो जाता है।

ॐ समता अपार शक्ति ॐ

1. आत्मिक 2-3. स्थापित 4. बनावटी 5. सिनेमा, थ्येटर 6. सामाजिक एकता 7. कटट्रता

वचन—9. अपना जीवन सुधार, पर की सेवा, फ़ज़ूलख़र्ची का त्याग, मुन्नशी चीज़ों[1] का त्याग। समता की रोशनी, जो हिन्दू धर्म की बुनियाद है, हर वक्त हृदय में धारण करनी चाहिए। इससे जीव को लोक और परलोक में शाँति मिलती है।

समाप्त

तीसरा उपदेश

आस्तिक व नास्तिकपन का विचार

वचन—1. सत्-सरूप का विश्वासी, अभ्यासी होना आस्तिकपन है। इसके अलावा और कोई साधना करनी नास्तिकपन है।

वचन—2. ग्रहों की पूजा, प्रेत व भूत व पितरों की पूजा, आदर्श के बग़ैर मूर्ति की पूजा नास्तिकपन को प्रगट करती है, यानी ईश्वरीय विश्वास को नाश कर देती है। संशय, वहम और भय को प्रगट कर देती है।

वचन—3. जिस पुस्तक में आत्मसरूप यानी ब्रह्म शब्द के बग़ैर संशय-युक्त और हालात लिखे हों, वह पुस्तक भी वहम और भ्रम को देने वाली है।

वचन—4. जिस पुस्तक में प्रकृति यानी शरीर और आत्मा का निर्णय नहीं, आत्मा की उन्नति का विचार भी नहीं, इसके अलावा और कई

1. नशे वाले पदार्थ

जन्तर, मन्तर लिखे हों, वह पुस्तक भी धर्म को नाश करने वाली है और सत् सरूप से नास्तिक कर देती है।

वचन—5. जिस पुस्तक में ज्ञानी पुरुषों के चरित्र हों और उपदेश हों, वह पुस्तक धर्म को प्रकाश करने वाली है और आस्तिक बनाती है।

वचन—6. जिस धर्मयुक्त पुस्तक का मुतालय[3] किया जावे, विचार और अमल न किया जावे, उससे नास्तिक बुद्धि हो जाती है।

वचन—7. आस्तिक व नास्तिक होना बुद्धि पर मुनहसिर[1] है न कि ज़बानी विचारों से। अगर बुद्धि आत्म-शक्ति को छोड़कर और कई भावों को धारण कर ले, यानी ग्रहों, भूत, प्रेत और कई देवी-देवताओं की मोतकिद[2] हो जाये, वह नास्तिक बुद्धि है, यानी हर वक्त भ्रम में गिरफ़्तार रहती है।

वचन—8. शरीर और आत्मा का विचार करना और साधन करनी, आत्म विश्वासी होना, यह आस्तिकपन है। इस निश्चय से देह के विकारों से छूटकर आत्म-स्थिति को प्राप्त होता है।

वचन—9. आत्म-सम्बन्धी जो विचार होवे वह आस्तिक करने वाला है। मादे यानी जड़ की पूजा या साधना नास्तिकपन को देने वाली है।

1. निर्भर, 2. विश्वासी, मानने वाली 3. अध्ययन

वचन—10. आत्मा ही आनन्द है, सत है, सर्व ईश्वर है, घट-घट व्याप रहा है, तीन काल सम सरूप है। इस वास्ते इस जीवन शक्ति का विश्वासी होना आस्तिकपन है। इसके बग़ैर और ताकतों का मोतकिद[1] होना नास्तिकपन है।

वचन—11. असली गुरु वह ही है जो आत्म विश्वास दिखलावे और आत्म-सिद्धि का जतन सिखलावे। असली ज्ञान आत्मा और शरीर का ही है जो सब भ्रम और वहम को नाश करता है। इसके बग़ैर सब भ्रम जाल है।

वचन—12. आत्म-विचार सम्बन्धी जो पुस्तक और जो सत्संग होवे, और जो साधु, महात्मा आत्म विचार, अभ्यास संजुगत होवे वे ही धर्म को प्रकाश करने वाले हैं। इसके अलावा जो जादू, जन्तर, मढ़ी, मसान और अनेक देवी-देवताओं का विचार फैलाते हैं, वे सब पाखण्डी, खुदग़र्ज़ और धर्म को नाश करने वाले हैं।

वचन—13. जो आत्मा को साखी समझ कर सत्कर्म करता है, और सब ईश्वर आज्ञा में देखता है, वह ही आस्तिक है। जो मान मद को धार कर हर वक्त स्वार्थ में मुस्तग़रक[2] रहता है, और कई तरीका के मन्त्र साधन करता है, वह नास्तिक है और पाखण्डी है।

1. मानने वाला, विश्वासी 2. डूबना, लीन होना

वचन—14. आत्म-तत्त का जानना असली ज्ञान है, और आत्म-तत्त से मुनकिर[1] होना असली नास्तिकपन है। जो आत्म-उन्नति का जतन करता है, वह ही आस्तिक है। जो पुरुषार्थ को छोड़ कर देवी-देवताओं के आसरे रहता है, वह ही नास्तिक और अज्ञानी है।

वचन—15. हर एक महापुरुष की ज़िन्दगी का आदर्श धारण करना आस्तिकपन को देने वाला है। और आदर्श को छोड़कर जो महज़[2] वजूद[3] की पूजा करता है, वह ही नास्तिक है और कभी भी माया के चक्र से छूट नहीं सकता।

वचन—16. आत्मपूजा, आत्मज्ञान, आत्म-ध्यान को धारण करना असली आस्तिकपन है। इसके अलावा[4] और धारणा करनी अन्धविश्वास है और मन्द गति के देने वाला है।

समाप्त

चौथा उपदेश—आत्मिक उन्नति धर्म का यथार्थ स्वरूप

आत्मिक उन्नति के मुख्य साधन

1. सादगी 2. सत् 3. सेवा 4. सत्संग 5. सत् सिमरण।

पहला साधन—सादगी

वचन—1. इस दुनिया में यह जीव शान्ति की ख़ातिर आया है और हर वक्त शान्ति की तलाश

1. ना मानना 2. केवल 3. शरीर, अस्तित्व 4. अतिरिक्त

कर रहा है। मगर अज्ञान-वश होकर अपनी इन्द्रियों का ग़ुलाम होकर बजाय शान्ति के अत ही संकट को प्राप्त होता है। इस तरह हर एक मानुष-मात्र, पशु आदिक इस गिरफ़्तारी में बेज़ार[1] और बेकरार[2] हैं और अपनी झूठी कामना को पूर्ण करने की ख़ातिर रात-दिन लगे रहते हैं। आखिर फिर दुनिया से रंज[3] ही ले कर जाते हैं। यह खेल ईश्वर का अश्चर्ज है।

वचन—2. इस दुनिया के अश्चर्ज खेल को देखकर बड़े-बड़े दाने-बीने लाचार[4] हो रहे हैं। किसी वक्त शान्ति को न पा सकते हैं और न ही शान्ति का कोई मुकाम[5] दिखाई देता है। जिस चीज़ से अधिक प्यार किया जाता है, उसकी जुदाई में वह अधिक दुःख पाता है। मगर बावजूद सब कुछ जानने के भी फिर भी अपनी गफ़लत से छूट नहीं सकता और इस दुनिया से अशान्त होकर जाता है।

वचन—3. इस ही बड़े अज़ाब[6] को महसूस करके बुद्धिमान पुरुषों ने असली ख़ुशी की तलाश की। जिसको हासिल करके हमेशा के वास्ते शान्ति को प्राप्त हुए, और लोगों को भी अबदी[7] ख़ुशी का रास्ता दिखलाया। उसी का नाम धर्म या ईमान है।

वचन—4. उस धर्म यानी असली ख़ुशी का साधन बहुत से तरीकों में गुणी पुरुषों ने बयान किया है। मगर सबसे मुख्य साधन ऊपर के

1. निराशा 2. अधीर, अशान्त 3. निराशा 4. विवश 5. ठिकाना, ठौर 6. दुःख 7. शाश्वत, सदा रहने वाली

इन पाँच नियमों को धारण करना आसान और जल्दी कामयाबी[1] देने वाला है। जब तक इन पाँच नियमों को धारण न किया जावे, कभी भी असली शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता, ख़्वाहे बड़ी से बड़ी कोशिश क्यों न करे।

वचन—5. बड़ी से बड़ी भगति या बन्दगी यह है कि अपनी ख़्वाहिशों पर काबू पाना। बड़ी से बड़ी नादानी और मूर्खताई है कि ख़्वाहिशों का ग़ुलाम बनना। यह एक बड़ा अज़ाब[2] इस जीव को लगा हुआ है जिससे हर वक्त किसी चीज़ के प्राप्त होने पर तथा वंजोग होने पर भी मुसीबत में गिरफ़्तार रहता है। इसी को आवागवन यानी भरमना कहते हैं।

वचन—6. जब तक इस अपनी कमी को पूरा न कर ले, यानी पूर्ण संतोख को न प्राप्त हो जावे, तब तक कर्म जाल से रिहाई नहीं मिलती। इस ही कैद से रिहाई पाने का नाम मुक्ति या ईश्वर प्राप्ति है।

वचन—7. सबसे बड़ा अज़ाब जीव को यह ही है कि झूठ चीज़ को सत मानकर उसके भोग में सुख जानता है। मगर वह चीज़ नाश हो जाती है। उस वक्त सुख दुःख सरूप हो जाता है। इस ही सिलसिले में हर एक जीव

1. सफलता 2. दुःख

दिन-रात लगा रहता है। मगर शाँति को प्राप्त नहीं होता। उल्टा कई नई ख़्वाहिशों की ग़ुलामी में आकर दुःख पाता है।

वचन—8. इस माया के जाल से छूटने के वास्ते यह मानुष की ज़िन्दगी है, जिसमें अनेक ज़रिये इख़्त्यार करके अपनी रूह को पाक करके अपने असली मकाम को हासिल कर लेवे। जिसने मानुष की ज़िन्दगी धारण करके अपने इस रोग की मुख़लिसी[1] की खातिर यत्न नहीं किया, वह महज़[2] पशु और नादान है। आखिर अपनी ग़लती का इवज़ाना[3] पाने में बहुत पछतायेगा।

वचन—9. पहले झूठी चीज़ को सत मान लेना और इसकी महसूसात[4] को धारण करना; फिर उसकी ख़्वाहिश की गिरफ़्तारी में आ जाना; फिर उसकी प्राप्ति पर खुशी और ग़मी को महसूस करना। यह ही एक बड़ी कैद है जिसमें हर वक्त भयभीत रहता है। तमाम दुनिया इस मजबूरी में जकड़ी हुई है और अन्दर से अति लाचार हो रही है।

वचन—10. वह ही असली मानुष है जिसने अपनी रूह का इलाज किया और इस अज़ाब[5] से मुखलिसी[6] हासिल की। उसकी ज़िन्दगी सूरज से भी ज़्यादा मुनव्वर[7] हुई है।

1. छुटकारा, मुक्ति 2. मात्र 3. फल 4. अनुभूतियों 5. दुःख 6. छुटकारा मुक्ति 7. रोशन, प्रकाशवान

वचन—11. असली खुशी जो हमेशा दायम-कायम[1] रहने वाली है और तमाम जरूरतों से बालातर[2] है, वह आत्मशक्ति, यानी संसार की जो ज़िन्दगी है, हर एक कालिब[3] के अन्दर चमक रही है। ज़र्रा-ज़र्रा[4] उसकी ताकत से खड़ा है। उसी को मरकज़ या मसदर[5] ईश्वरी शक्ति कहा गया है। उसी ताकत को हासिल करने से इस गहरे अज़ाब[6] से जीव शाँत होता है।

वचन—12. अन्दर तो सबके वह ताक़त मौजूद है, मगर जीव उसको पहचान नहीं सकता, क्योंकि अपनी ख़्वाहिशों की गिरफ़्तारी[7] इसको इधर-उधर भरमाती रहती है। जिस वक्त अपनी ख़्वाहिशों पर काबू पा लेता है, उस वक्त अपने अन्दर सत् आनन्द को प्राप्त हो जाता है। फिर तमाम कैदों से रिहाई पा जाता है। उस हालत को परम धाम या मेराज़[8] कहा गया है। सब का आखिरी अंजाम[9] वह ही जगह है। यानी अपना सत् सरूप जो हमेशा की खुशी और पूर्ण है, हर एक मानुष को उसकी तलाश करनी चाहिए। वह ही इस ज़िन्दगी का फल है। अगर उसको हासिल नहीं किया, तो अन्त को निराश ही दुनिया से चला जायेगा।

वचन—13. असली कोशिश को धारण करना, असलियत की तहकीकात[10] करनी, इस मानुष ज़िन्दगी

1. स्थिर, अमर 2. श्रेष्ठ 3. शरीर 4. कण-कण 5. केन्द्र 6. दुःख 7. इच्छाओं की अधीनता 8. ध्येय, लक्ष्य 9. अन्तिम परिणाम 10. खोज

का मिशन है। सब को अपनी आक़बत[1] का विचार करना चाहिए और इस अज़ाब से छूटने की कोशिश करनी चाहिए।

वचन—14. ख़्वाहिशों से एक दम कोई भी निज़ात हासिल नहीं कर सकता। इस वास्ते पहले ग़ैर ज़रूरी ख्वाहिशों पर काबू पाना चाहिए। ग़ैर ज़रूरी ख़्वाहिशें जीव को अति क्लेश देने वाली हैं। ग़ैर ज़रूरी ख़्वाहिशों पर काबू पाने से निज़ात के असबाब[2] पैदा हो जाते हैं, यानी नेक कर्म आदि परम गुणों को धारण करने की कोशिश करता है। ज्यों-ज्यों नेक कर्म करता है त्यों-त्यों ख़्वाहिश की आग कम होती जाती है, और हालते बेख़्वाहिशी[3] यानी प्रेम की ज़िन्दगी प्राप्त होती है।

वचन—15. ग़ैर ज़रूरी ख़्वाहिशों पर काबू पाने के बड़े ज़बरदस्त नियम सिर्फ ये ही हैं; सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत् सिमरण वग़ैरा। इनकी धारणा से जीव अपने आप पर काबू पाने की शक्ति पैदा कर लेता है। यह ही हालत मानुष ज़िन्दगी का सार है।

वचन—16. जो आदमी इन नियमों से उलट चलता है वह अपनी नाजायज़[4] ख़्वाहिशों में आकर हर जगह ज़िल्लत व ख़्वारी[5] पाता है।

1. अंतिम समय 2. छुटकारे के हालात या कारण 3. निरइच्छ हालत, इच्छा रहित स्थिति 4. अनुचित 5. अपमान व दुर्दशा

वचन—17. सब मज़हबों के रहनुमाओं का यह ही मक़सद था कि जीव नाशवान् संसार में आकर असली खुशी को हासिल कर लेवे। मगर उनके पीछे जो चलने वाले हुए, उन्होंने सिर्फ़ बादमुबाद को हासिल करना ही सीखा। जिसका नतीजा यह हुआ कि दुनिया में अशान्ति अधिक हो गई। किसी ही नेक आदमी को उनकी असलियत का पता लगा कि जिस तरह उन बुज़ुर्गों ने नेक अमल धारण करके राहत-ए-अबदी[1] हासिल की, उसी तरह मुझको कोशिश करके रास्ती[2] की तलाश करनी चाहिए। वह ही इन्सान असली मक़सद को जानने वाला है। इसके बग़ैर सब ज़हालत और खुदग़र्ज़ी का मुकाम है। असलियत की तहकीकात करना सबका फ़र्ज़ है। महज़[3] बुज़ुर्गों की बुज़ुर्गी से निज़ात[4] नहीं मिलती जब तक कि अपने अन्दर वे नेक असूल न धारण किये जावें।

वचन—18. सबसे पहला नेक असूल यह है—सादगी। इस असूल के धारण करने से मानुष बहुत ग़ैर ज़रूरी ख़्वाहिशों पर काबू पा जाता है और निर्मल बुद्धि से असली खुशी को हासिल करने की कोशिश करता है।

वचन—19. लिबास, खुराक और विचार को सादा करने का नाम सादगी है। इन तीन आदतों की

1. शाश्वत शान्ति 2. सच्चाई 3. केवल, मात्र 4. मुक्ति

गिरफ़्तारी में यह जीव लाचार रहता है। इस वास्ते सादगी को धारण करके इनसे निज़ात हासिल करनी चाहिए।

वचन—20. लिबास सादा से प्रेम बढ़ता है, आजज़ी[1] आती है। लज्या और अदब[2] हासिल होता है, और थोड़ी आमदन पर गुज़ारा चल सकता है। ज़रूरतों की ज़्यादती पाप करने की तरफ राग़िब[3] करती है। सादगी के धारण करने से इस अंधकार से छूट जाता है। सादगी ही जीवन है। अय्याशी म त्यु है। सादगी से मन विचारवान होता है। अपने भले-बुरे को अच्छी तरह सोच सकता है। सादगी देवताओं की धारणा है। नुमायशी ज़िन्दगी[4] राक्षसों की धारणा है। बड़ी-से-बड़ी कोशिश करके सादगी के जीवन को इख़्तियार[5] करना चाहिए। असली खुशी का राज़ इसमें ही है।

वचन—21. खुराक सादा खाने से सेहत अच्छी रहती है। बुद्धि निर्मल होती है और मन की वासना पर काबू पाने की शक्ति प्रगट होती है। जिसकी खुराक सादा नहीं यानी माँस, शराब और दीग़र मुनश्शी चीज़ों[6] का आदी है, वह कभी भी असली ख़ुशी को हासिल नहीं कर सकता।

वचन—22. वह चीज़ कभी भी नहीं खानी चाहिए जिससे बुद्धि पर बुरा असर पड़े। बुद्धि के बुरे असर के यह मानी हैं कि सत्-असत् का

1. नम्रता 2. आदर 3. आकर्षित करना, लगाना 4. दुराचारी जीवन, नुमायशी जीवन 5. धारण करना 6. अन्य नशीली वस्तुओं

विचार न रहे। जो मानुष यह कहते हैं– ऐसी चीजें खाने से ताकत बढ़ती है, वे महज़ नादान हैं। सबसे बड़ी ताकत इस वजूद[1] में बुद्धि यानी अक़्ल की है। अगर अक़्ल पर छाया ग़फ़लत की आ जाये तो कोई भी वजूद का पुरज़ा सही काम नहीं कर सकता।

वचन–23. सब विद्या की सार और नेक बुजुर्गों की हिदायत यह ही है कि अपनी बुद्धि को निर्मल करो, जिससे बड़े ऐश्वर्य को पा सकोगे।

वचन–24. जिसकी खुराक सादा नहीं वह कभी भी सच्चाई को हासिल नहीं कर सकता। माँस, शराब और मुनश्शी[2] चीज़ों के इस्तेमाल करने से गर्व और गुस्सा ज़्यादा बढ़ जाता है। खुदग़र्ज़ी में आकर बड़े से बड़े अत्याचार को धारण कर लेता है।

वचन–25. चतुराई का नाम अक़्लमन्दी नहीं है। जो कि ऐसी खुराक खाने वालों के अन्दर अक्सर होती है। यह ज़हालत और मनमुखता है। अक़्लमन्दी हक़ और नाहक की पहचान का नाम है, जिससे जीव को असली खुशी मिलती है।

वचन–26. खुराक और लिबास का असर मन पर बहुत पड़ता है। इस वास्ते उनकी सादगी निहायत ज़रूरी[3] है, जो कि असली खुशी देती है।

1. अस्तित्व, शरीर 2. नशीली 3. अति आवश्यक

वचन—27. विचार की सादगी यह है कि हर एक से निष्कपट होकर विचार करना, दिल में बुग्ज़[1] न रखना, साधारण गुफ़्तगू[2] करनी जिसमें पखवाद[9] न होवे, और वचन सोच करके उच्चारण करना। इससे अपना मन शाँति पकड़ता है और दूसरों को भी सुख मिलता है, और बहुत अज़ाबों से रिहाई[3] मिलती है।

वचन—28. सादगी का नियम असली ज़िन्दगी की बुनियाद है, इस वास्ते अगर कोई अपने गुनाहों से मुखलसी[4] चाहे या राहत-ए-अबदी[5] की तलाश करे, पहले सादगी को द ढ़ विश्वास करके धारण करे। क्योंकि सब पापों की जड़ नुमायशी ज़िन्दगी है। इस नुमायशी ज़िन्दगी से आचार-विचार बिलकुल नष्ट हो जाता है और मानुष के अन्दर घोर अन्धकार छा जाता है। जिससे फिर किसी सूरत में भी अपने मन पर काबू नहीं पा सकता।

वचन—29. असली खुशी और प्रेम का मरकज़[6] सादगी ही है। जिसने दिलोजान से धारण की, वह सब पापों से छूटकर असली खुशी को प्राप्त हुआ, और अपने असली अंजाम[7] का मालिक बना। असली धर्म की बुनियाद यह सादगी ही है।

वचन—30. जितनी खाने और पीने की गिरफ़्तारी[8] में रहेगा, उतना ही अशाँति को पायेगा। इस

1. ईर्ष्या, वैर, द्वेष 2. विचार-विमर्श 3. दु:खों से मुक्ति 4. छुटकारा 5. शाश्वत शान्ति, सदा का सुख 6. केन्द्र 7. परिणाम 8. पकड़, अधीनता 9. पक्षपात

वास्ते यह विचार करना चाहिये कि आला से आला[1] खाना खाने से भूख का अज़ाब[2] तो दूर नहीं होता और न ही आला से आला पोशाकें पहनने से दिल की ख़्वाहिश पूरी होती है। आख़िर भूखा और नग्न ही जाता है। इसलिए ज़िन्दगी में ही अपनी आदत पर काबू पाना चाहिये। सादगी को धारण करना चाहिये जिससे सब पापों से छूटकर असली शान्ति को प्राप्त हो सके।

वचन—31. ख़्वाहिशात रूपी अग्नि में यह इन्द्रियों के भोग घ त समान हैं। ज्यों-ज्यों भोग भोगता है, ख़्वाहिश की आग में लाचार होता जाता है। बिना विचार के कभी भी इस अज़ाब से छूट नहीं सकता।

वचन—32. अपनी बुद्धि को कायम करके नेक विचार धारण करना चाहिए, जिससे बेज़ारी और बेकरारी[3] से निज़ात[4] मिले। यह ही सामान इस ज़िन्दगी को पवित्र करने वाला है। जो विचार से हीन है वह कभी भी शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता।

पहला साधन-सादगी समाप्त हुआ

पाँचवां उपदेश—आत्मिक उन्नति का मुख्य दूसरा साधन—सत्य

वचन—33. सत् के मानी यह हैं जो चीज़ हमेशा दायम कायम[5] है, उसकी तलाश करने की कोशिश करनी और उसके मुताबिक[6] अपने जीवन

1. अच्छे से अच्छा 2. दुःख, कल्पना 3. निराशा और अधीरता 4. मुक्ति या छुटकारा 5. स्थिर 6. अनुसार

को बनाना। हर एक बात का सही विचार करना, हर एक बात को सही अमल में लाना यह सत् का सरूप है। जब तक सत् की तहकीकात[1] न की जावे तब तक कभी भी ख़्वाहिशों से अबूर[2] नहीं पा सकता।

वचन—34. अपना बोल-तोल हर पहलू[3] में सच्चा रखना, यह सत् का सरूप है। जो दिल में बात होवे वह ज़बान से कहनी, यह सत् का सरूप है। सच्चाई की ख़ातिर हर लमह अपने पापों से मुखलसी[4] हासिल करनी, यह सत् का सरूप है। सत् ही साधन है, सत् ही धर्म है। सत् ही शाँति है। इस वास्ते सत् की तहकीकात करके अमल में लाना ही असली बन्दगी और रियाज़त है। जब तक सच्चाई की तलाश न करे तब तक कभी भी इस दुनिया के जाल से रिहाई नहीं पा सकता।

वचन—35. सब संसार मिथ्या है। सत् एक ईश्वर है। इस विश्वास को धारण करना सत् की असली पूजा है। नाशवान् दुनिया के दुःख से सच्चाई की तलाश करने से ही निज़ात[5] मिलती है। जो आदमी सत्वादी नहीं वह अपनी अकल का चोर और मक्कार है। वह कभी भी राहत[6] को हासिल नहीं कर सकता।

वचन—36. सत् के साधन से निडरता और प्रेम हासिल होता है। सब ज़िन्दगी का मेराज़ सत् की

1. खोज, अनुभवता 2. इच्छाओं से छुटकारा 3. हर प्रकार, हर तरह 4. मुक्ति, छुटकारा 5. मुक्ति 6. शान्ति, विश्राम

तलाश है, सत् का विचार, सत् की कोशिश ही है। जिसके अन्दर ऐसे जज़बात[1] नहीं आए वह हमेशा के वास्ते दुनिया में निराश रहता है। सत् का साधन ही मूल धर्म है।

वचन—37. बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत् विश्वासी होना चाहिए। जो आदमी सत् का धारण करने वाला है, वह ही बड़ा तपीशर और ज्ञानी है। सत् का साधन बहुत मुश्किल है। जब तक अपनी अकल पापों की गिरफ़्तारी[2] में है, तब तक कभी भी सत् के सरूप को अनुभव नहीं कर सकता।

वचन—38. सत् के धारण से सील, संतोख, उदारता, प्रेम और समता प्राप्त होती है, जो अत ही विकारों को नाश करने वाली है। यह ही गुण मुक्ति के देने वाले हैं।

वचन—39. जिसके अन्दर सत् विश्वास नहीं है, वह कपट, मान, मद, ईर्खा, द्वेष, लोभ और मोह की अगन में जलता रहता है। यह ही हालत असली जहालत है, जिससे जीव बहुत क्लेशवान् रहता है।

वचन—40. बड़ी कोशिश करके सत् धारण करना चाहिए। किसी लमह[3] भी अपनी आदत की गुमराही में नहीं आना चाहिए। यह ही असली ख़ुशी है और सब धर्म की जड़ है।

वचन—41. अपने स्वभाव पर अटल रहना चाहिए। ख़ुदग़र्ज़ी के दामन[4] में आकर फिसलना

1. भावना 2. पकड़, अधीनता 3. क्षण 4. स्वार्थ के चक्र/चुंगल

नहीं चाहिए। दिल की स्याही तब ही दूर हो सकती है। सब विद्या की सार सत् ही है। अगर तुम सत् को धारण कर लो और हर घड़ी सत् की कोशिश करो, तब तुम ही फ़रिश्ता[1] हो।

वचन—42. ग़ैर ज़रूरी ख्वाहिशों से अबूर[2] पा जाता है जो सत् का आदी है। और वह ही हर वक्त अपने दिल का मालिक है और वह ही अपने अन्दर अपनी ग़फलत[3] पर पश्चाताप करता है, और वह ही बुद्धिमान पुरुष असली शान्ति को पा सकेगा।

वचन—43. सत् ही ज़िन्दगी है, सत् ही ऐश्वर्य है। सत् ही ज्ञान है, सत् ही ध्यान है, सत् ही मेराज़[4] है। बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत् के मैदान में चलो। रास्ते में राहज़न[5] बड़े हैं जो एक दम गुमराह करने वाले[6] हैं।

वचन—44. इस दुनिया में असली ख़ुशी का मुकाम ही सत् का आचरण है। जो इस सत् की तलाश में रहता है वह तमाम संशयों से मुक्ति हासिल करता है और अपने असली जीवन को पा लेता है।

वचन—45. गुरुओं की हिदायत[7], ग्रन्थों का विचार, अवतारों और पैग़म्बरों का मोजज़ा[8] यानी सिद्धि सत् ही है। इस वास्ते इस धारणा को धारण करना ही असली धर्म है।

1. देवता 2. अनावश्यक इच्छाओं से मुक्ति 3. अवहेलना, लापरवाही या भूल 4. मंजिल, लक्ष्य 5. डाकू 6. भटकाने वाले 7. शिक्षा 8. चमत्कार

वचन—46. सत् ही की खोज असली कोशिश है। सत् का विचार ही असली खुशी और आनन्द है। सत् का उच्चारण करना ही असली जीत है। जो सत् विश्वास और सत् विचार, सत् की कोशिश और सत् का बोल-तोल धारण करता है, वह ही अजीत पुरुष दुनिया में माना गया है। सब दुनिया उसकी ख़िदमत-गुज़ार है और वह ही ईश्वर परस्त और हक परस्त है। अपनी ज़िन्दगी को ज़िन्दा करना यह ही सत का साधन है।

वचन—47. सब जतन मानुष के अकार्थ हैं, जिसके मन में सत् विश्वास, सत् की कोशिश, सत् का विचार नहीं आया। तप, जप, पुन्न, दान और कठिन से कठिन तपस्या का सार यह ही है कि मन में सत् भावना पैदा हो जावे और हर वक्त सत् के साधन में मग्न रहे। यह ही खुशी है और निज़ात है।

वचन—48. ज्यों-ज्यों सत् की तलाश करता है त्यों-त्यों झूठ का अज़ाब दूर होता जाता है। संशय, शोक सब रफ़ा[1] हो जाते हैं। मुस्तकिल मिज़ाजी[2] पैदा हो जाती है। उस वक्त बड़ी कोशिश करके अपने मन को काबू कर लेता है। वह ही कामिल बुज़ुर्ग[3] है। उसने ही दुनिया का इम्तिहान पास किया है और आनन्द लेकर दुनिया से चला है।

1. दूर होना 2. स्थिर बुद्धि, निश्चयात्मिक बुद्धि 3. पूर्ण पुरूष

वचन—49. सत् की तलाश किसी ख़ास मज़हब की पाबन्द नहीं है। सत् का सबक अन्दर से कुदरत[1] खुद दे रही है, मगर ज़हालत से पता नहीं लगता। जिसको मौत का खौफ़[2] है, वह ही सत् का साधन कर सकता है। सब मज़हबों का मिशन सत् की तलाश है। इस वास्ते बादमुबाद[3] को दूर करके सच्चाई की तलाश करनी चाहिए।

वचन—50. हर वक्त अपनी ज़मीर (अन्तःकरण) को सच्चाई में रागिब[4] रखना चाहिये। किसी वक्त भी असत् भावना पैदा न होने देवें। तब सत् का असली जज़बा[5] मिलता है। मन और इन्द्रियाँ हर वक्त झूठ की तरफ गिरफ़्तार करने वाली हैं। इस वास्ते निर्मल बुद्धि, निर्मल विश्वास से इन विकारों पर काबू पाकर सत् का आदी[6] हो सकता है। वह ही शूरवीर है जिसने अपनी आदत को काबू करके सत् का निदिध्यास किया है।

वचन—51. खुदग़र्ज़ी यानी स्वार्थ बुद्धि को छोड़ कर पर-हित और उपकार में जो विचरता है, वह ही सत् के असली आदर्श को प्राप्त हो सकता है। ऐसा नेक अमल करते-करते उसके अन्दर यकसूई[7] आ जाती है। यकसूई से वह असली आनन्द को अनुभव कर लेता है, जो असली ख़ुशी है।

वचन—52. जिसने दुनिया को नापायदार[8] जाना है

1. प्रकृति 2. भय 3. वादविवाद 4. लीन रखना, लगाये रखना 5. भाव 6. आदत पड़ना, स्वभाव में दाखिल होना 7. एकाग्रता 8. असार

यकीन करके, और अपनी ग़फ़लत को छोड़ने की कोशिश हर वक्त करता है, वह ही सत् का मुतलाशी[1] है। एक दिन वह असली ख़ुशी को हासिल कर लेवेगा।

वचन—53. जो हमेशा मन की दुर्मत को विचार करता है और अन्दर से बड़ा दुःखी होता है बुरे कर्म से, वह सच्चाई को हासिल कर सकता है। वह ही नेक नीयत और जिज्ञासु है।

वचन—54. सत् का साधन कठिन है मगर असली खुशी इसी में ही है। इसलिए जो चीज़ अंजाम में सुखदाई होवे, उसको कोशिश करके धारण करना चाहिए। सब ज़िन्दगी का सार साधन यह ही है कि मन सत्-विश्वासी और सत्-कर्मी होवे। अगर यह मुद्दा[2] हासिल नहीं किया तो उसकी ज़िन्दगी सब अकार्थ और दुनिया के झगड़े में ही गुज़र गई। आखिर सब उम्मीदों से निराश चला जाता है।

वचन—55. सच्चे धर्म का जानने वाला सच्चा पैरोकार[3] वह ही अपने बुज़ुर्गों का है, जिसने अपने मन को सच्चाई की तरफ लगाया है। वह एक दिन अपने पूर्ण आनन्द को प्राप्त हो जायेगा। सत् की धारणा ही ज़िन्दगी है। हर वक्त कोशिश करो सत् के साधन की। मानुष ज़िन्दगी में यह ही कोशिश निज़ात[4] के देने वाली है।

1. जिज्ञासु 2. लक्ष्य, ध्येय 3. अनुयायी या अनुसरण करने वाला 4. छुटकारा

वचन—56. सब दुनिया की ताकतें सत् की आधार हैं, अपने-अपने असूल पर पूर्ण कारबन्द[1] हैं। इस वास्ते मानुष ज़िन्दगी को धारण करके ऐसा ही जीवन इख़्तियार करना चाहिए, यानी अपने सत् नियमों के परायण रहना चाहिए। यह ही साधन कल्याण के देने वाला है। दुनिया अज़ाब का घर[2] है। कोशिश करके अपने मन के असली मनोरथ को पूर्ण पायें और बुजुर्गों की असली तहकीकात[3] का नतीजा हासिल करें।

दूसरा साधन – सत् समाप्त हुआ

छटा उपदेश—आत्मिक उन्नति का मुख्य तीसरा साधन—सेवा

वचन—57. यह परम साधन ईश्वर शक्ति का प्रधान नियम है जिसके धारण करने से जल्दी ही सब विकारों से छूटकर परमानन्द सरूप में लीन हो जाता है। स्वार्थ बुद्धि यानी खुदग़र्ज़ी एक बड़ा भारी अज़ाब इस जीव को है, जिससे हर वक्त मोह की अगन में जलता रहता है और अत ही कामनाओं को धारण करके बड़े से बड़े उपद्रव करता है, यानी घोर पाप करता है। यह ही दशा नरक का सरूप है। इस अन्धकार से छूटने के वास्ते सेवा रूपी दीपक अति अत सुखदाई है। जो गुणी पुरुष इस नियम के धारण करने वाला है, वह स्वार्थ अन्धकार से छूटकर परमार्थ आनन्द को प्राप्त होता है।

1. नियम पर पूर्ण द ढ़ 2. दुःखों का घर 3. खोज का अनुभव

वचन—58. जीव को हर वक्त तीन प्रकार की कामना बनी रहती है—यानी धन, तन, मन के भोगों में गिरफ़्तार रहता है। किसी सूरत भी शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता, ख्वाहे बड़े से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त करके भोग करे। इस मोह में दिन-रात मग्न रहता है और अपने जीवन को पापयुक्त करके नाश कर देता है।

वचन—59. इस तीन प्रकार की कैद से छूटने के वास्ते सेवा रूपी साधन अधिक यथार्थ है। सेवा के धारण करने से इन सब पाबन्दियों[1] से छूटकर ईश्वर परायण हो जाता है। वह ही असली ख़ुशी है।

वचन—60. धन की आशा दानी पुरुष के अन्दर से नाश हो जाती है; यानी प्रेम और सेवा में त प्त हो जाता है। पर की सेवा परम त्याग और भक्ति है। इस नियम के धारण करने से सब संकटों से छूट जाता है।

वचन—61. निष्काम सेवा ही सेवा का असली सरूप है। कामना युक्त जो सेवा है वह अन्धकार को बढ़ाने वाली है, यानी मोह और मान की गिरफ़्तारी देने वाली है। इस खोटी धारणा से कभी जीव का भला नहीं हो सकता, जब तक निष्काम सेवा न धारण करे।

1. बन्धनों, बाधाओं

वचन—62. निष्काम सेवा मानुष ज़िन्दगी का मेराज़[1] है। जिस तरह पवन, पानी, धरती, सूरज और चन्द्रमा अपने फ़र्ज़ को जानकर हर वक्त सेवा में मसरूफ़[2] रहते हैं, इसी तरह मानुष को भी लाज़मी है कि अपना फ़र्ज़ जानकर दूसरे की सेवा करे। तब ईश्वर के हुक्म को मानने वाला हुआ। इस यथार्थ कल्याणकारी साधन को धारण करके जल्द ही परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।

वचन—63. धन, मन, तन तीनों को सेवा के मार्ग में लगाने से जीव सब विकारों से छूट कर अविनाशी खुशी को हासिल कर लेता है। इस वास्ते सेवा ही परम धर्म और कल्याण का मार्ग है। जो आदमी सेवा का भाव नहीं रखता, वह राक्षस बुद्धि अपनी कामना की ख़ातिर हर वक्त अशाँत रहता है। यानी लोभ, मोह, मान, मद, ईर्खा आदि अवगुणों में हर वक्त जलता रहता है। यह ही जीवन घोर नरक है। किसी पलक भी अपने मन में उदारता नहीं पाता। यह स्वार्थ अंधकार ही काल सरूप है। बार-बार जीव को असत् भोगों में भरमाता है। इससे छूटने के वास्ते सेवा रूपी खड़ग अति सुखदाई है। वह मानुष कभी असली खुशी को हासिल नहीं कर सकता जिसके अन्दर पर का हित और पर की सेवा नहीं है।

1. मंज़िल, लक्ष्य, ध्येय 2. लीन, व्यस्त

वचन—64. निष्काम भावना से ज्यों-ज्यों अपने तन, मन, धन को पर की सेवा में अर्पण करता है, अधिक से अधिक शाँति को प्राप्त होता है, यानी सील, सन्तोख, खिमा, विवेक, विश्वास आदि परम गुण अन्तःकरण में प्रगट होते हैं, जो सब तापों का नाश करके अखण्ड शाँति में मिला देते हैं। इसी साधन का नाम असली भगति या बन्दगी है।

वचन—65. मिथ्या कल्पना जो जीव को हर वक्त भरमाती है यानी तन, मन, धन की इच्छया में गिरासती है, इस निष्काम सेवा के साधन से यह सब विकार नाश हो जाता है और जीव ईश्वर परायण होकर अविनाशी सुख को प्राप्त हो जाता है। यह ही मार्ग कल्याण का है।

वचन—66. जब तक सेवा को धारण न करे, तब तक ममता का नाश नहीं होता जो जन्म-मरण का कारण है। निर्मल बुद्धि से अपने धन और मन को पर की सेवा में अर्पण करे और अन्तर से निर्मान भाव को धारण करे। तब ममता की फाँसी नाश हो जाती है और समता बुद्धि मोक्ष सरूप प्रगट होती है। उस वक्त जीव अपनी सब कामनाओं पर काबू पा जाता है और नित सरूप में स्थित हो

जाता है। इसका नाम मोक्ष या नित आनन्द है।

वचन—67. मन की कामनाएँ तब तक कभी भी नाश नहीं होतीं, जब तक अपने अन्दर ममता यानी ख़ुदग़र्ज़ी का अज़ाब धार रखा है। और न ही असली धर्म को पहचान सकता है। खुदग़र्ज़ यानी स्वार्थ बुद्धि वाले का न तो धर्म और न उसका कोई एतबार है। वह कपटी और फ़रेबी अपने दाँव में अपने सुख की खातिर सब को फंसाता है। यह ही भावना राक्षसों का जीवन है और हर वक्त त ष्णा की अग्नि में जलता रहता है। आखिर इस दुनिया से बहुत संकट लेकर जाता है।

वचन—68. मन को अगर सेवा की तरफ़ न लगाया जावे तो यह ख़ुदग़र्ज़ी में गिरफ़्तार हो जाता है। यानी मन का काम है कुछ न कुछ करते रहना। अगर धर्म की तरफ न लगाया जावे, तो अधर्म को तो ज़रूर ही धारण कर लेवेगा। यह निश्चय कर लेवें।

वचन—69. हर वक्त अपने मन को सत् धर्म की तरफ़ लगाना चाहिए; जिससे असली शान्ति को प्राप्त हो जावे और हमेशा की जलन से रिहाई पावे। मानुष ज़िन्दगी का सार निधान है जो मन को काबू करके सत-धर्म में

लगाया जावे। इस यतन से अन्त को परम सुख प्राप्त हो जाता है। फिर किसी संकट में गिरफ़्तार नहीं होता।

वचन—70. अपने धन को यथार्थ अधिकारी की सेवा में अर्पण करना चाहिए। अपने तन को दुःखी, दीन, अनाथ और लोक-सेवा में लगाना चाहिए। अपने मन को काबू करके ईश्वर के चरणों में जोड़ना चाहिए। ऐसी साधना करते-करते सब विकारों से छूटकर सत् आनन्द को प्राप्त हो जाता है, यानी ईश्वर सरूप में लीन हो जाता है।

वचन—71. धन को जो बुरे आचार में खर्च करता है, और तन को जो बुरे कर्मों में लगाता है, और मन को स्वार्थ की ख़ातिर लगाए रखता है, वह ही चण्डाल का सरूप जानना चाहिए। हर वक्त पाप कर्म में बांधा हुआ अपनी ज़िन्दगी को नाश कर देता है। यह ही माया का प्रचण्ड सरूप है। बड़ी कोशिश करके अपने मन को इन विकारों से काबू रखना चाहिए जिस से सब तापों से खुलासी मिले।

वचन—72. धन संचित करने की जो आशा और तन का मान और सुन्दरताई; मन का अति वासना में गिरफ़्तार रहना, यह ही घोर जाल है जिससे जीव एक पलक भी रिहा नहीं हो सकता। बड़ी से बड़ी सम्पदा, मान, भोग प्राप्त कर भी लेवे, तो भी हर वक्त

त खावन्त रहता है। यानी एक पलक का धीरज नहीं पाता। अज्ञान जो जीव की हर वक्त अशान्ति का कारण है, इसको निष्काम सेवा के शस्त्र से काटना चाहिए। तब ही अखण्ड शान्ति को प्राप्त हो सकता है।

वचन—73. जो हर वक्त दूसरे की भलाई चाहता है और अपना तन, मन, धन को त्यागने से ज़रा भी परवाह नहीं करता, वह ही असली त्यागी और दानी है; और मार्ग धर्म को उसने ही निर्मल जाना है। दूसरे की सेवा से अपना पाप नाश होता है। इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके सेवा का आदर्श धारण करना चाहिए। पाप विकार से तब ही छुटकारा हो सकता है, जब द ढ़ निश्चय से सेवा के मार्ग में लवलीन होवे।

वचन—74. सेवादार के अन्दर अधिक गुण प्रगट होते हैं। यानी प्रेम, एकता, निर्मानता, त्याग, वैराग, सील, संतोख आदि धर्म का यथार्थ सरूप प्रकाश करता है। यह ही रहनी सत्पुरुषों की है। जिसने ऐसी धारणा को प्राप्त कर लिया, उसने लोक-परलोक दोनों को जीत लिया। दुर्लभ उसका जीवन लोगों के वास्ते आदर्श बन गया।

वचन—75. जो अपनी खुलासी चाहे, या सच्चे धर्म ईमान का मुतलाशी होवे वह सेवा मार्ग को धारण करे। सब सुखों की सार और बुजुर्गों का जीवन सेवा ही है।

वचन—76. अपनी ग़फ़लत से तब ही छूट सकता है जब अपने आप में त्याग करने की शक्ति धारण करे। अज्ञान में आकर जीव ने मिथ्या कल्पना और भोग वासना का भण्डार जो शरीर है अपना सरूप मान लिया है। इसी ग़फ़लत में हर वक्त दुःखी और भयभीत रहता है। इस अज्ञान से छूटने के वास्ते पर-उपकार रूपी मार्ग सहज है। यानी शरीर की सब कामना दूसरे के अर्पण करता जावे और अपने अन्तर विखे निष्काम चित्त होता जावे। इस निश्चय से वह नित-सरूप और परमानन्द को पा लेता है।

वचन—77. इस कामना की अगन से छूटने के वास्ते यह ही यथार्थ साधन है कि अपनी जरूरतों को त्याग के दूसरे की जरूरतें पूर्ण करे। ज्यों-ज्यों दूसरे की सेवा में प्रव त्त होवेगा त्यों-त्यों निष्काम अवस्था को प्राप्त होता जावेगा। जिस वक्त अति ही परहित और पर-सुख में लीन हो जावेगा, उस वक्त निहकर्म सरूप परम शाँति को प्राप्त होवेगा, जो असली धाम है। हर वक्त अपनी ज़रूरतों पर काबू पाकर दूसरे की सेवा में स्थित होना चाहिए। इस धारणा से ही हालते बेख़्वाहिशी या आनन्द अवस्था प्राप्त होती है।

वचन—78. जो भी दुनिया में गुरु, पीर, अवतार, पैग़म्बर आया है उसका जीवन पर-उपकारी

ही देख लेवें। क्योंकि मन पर वह ही काबू पा सकता है जो अपनी ज़रूरतों पर काबू पा लेवे। जो अपनी ज़रूरतों पर काबू पा लेता है उसको फिर दूसरे की ज़रूरतों में राग़िब[1] होना पड़ता है। यह ईश्वर का नियम है। दूसरे की सेवा साधन से मन असली सरूप में लीन हो जाता है, जिसमें कोई विकार नहीं है। उस आनन्द अवस्था को प्राप्त होकर फिर आवागवन से रिहा हो जाता है।

वचन–79. सेवा के नियम की अधिक महिमा है। जिसने धारण की वह सब पापों से छूटकर अविनाशी आनन्द को प्राप्त हो गया। इस वास्ते हर एक प्राणी-मात्र को इस परम गुण को धारण करना चाहिए, जिससे जीव का कल्याण होवे।

वचन–80. जो मन में कामना रखकर सेवा करे, वह सेवा के असली फल को प्राप्त नहीं हो सकता। कामना के निवारण की ख़ातिर सेवा का साधन है, जो निर्मल रीति से धारण किया जावे। जो कामना रख कर सेवा करे तो सब अकार्थ है। असली फल नहीं प्राप्त हो सकता। यानी सेवा धारण करके भी अपनी ज़रूरतों पर काबू नहीं पा सकता।

वचन–81. जो दुनियावी भोगों की प्राप्ति की ख़ातिर सेवा करता है, वह कोशिश करके अपने आपको जकड़ता है। यह साधन सब

1. लीन होना, रुचि लेना

दुःखदाई, बन्धन सरूप हैं। इससे पाप की निव त्ति नहीं होती। सेवा का मार्ग अति गहन है। बड़े विचार से इसकी असलियत को पा सकता है। वैसे देखा-देखी जो कुछ भी करता है उसका फल पूर्ण नहीं पा सकता।

वचन—82. सेवा का पूर्ण सरूप यह है, अपने फ़र्ज़ करके दुखियों का दुःख निवारण करे, मन में कामना बिलकुल न रखे और यह विचार द ढ़ करे कि इस झूठ देही से किसी का भला हो जाए तो बेहतर है। इस दुनिया से एक दिन चलना ज़रूर है, इस वास्ते ज़िन्दगी में ही इस झूठ जीवन को पर सेवा में अर्पण कर दिया जावे तो बेहतर है। ऐसे निर्मल विश्वास वाले पुरुष ने सेवा के असली भाव को जाना है और वह ही परमानन्द को प्राप्त होता है।

वचन—83. जो दुःख प्राप्ति में सेवा को धारण करता है या मान मद की खातिर या कोई और कामना धार करके, वह असली सेवा धर्म को नहीं पहचान सकता, और न ही असली सेवा कर सकता है। यथार्थ सेवा यह ही है कि तन, मन, धन से किसी का भला करे और मन में निर्मानता धारण करे और अपनी ज़िन्दगी पर सेवा में अर्पण कर देवे। तब सेवा रूपी परम शान्ति को प्राप्त हो सकता है। वह ही पुरुष ईश्वर ज्ञाता और परम ज्ञानी है। उसका जीवन दुर्लभ है। अपनी ज़िन्दगी में ही शांत सरूप को प्राप्त

कर लिया और कई जीवों को सुख देकर चला। धन्न वह पुरुष जिसका यह आदर्श है।

समाप्त

सातवां उपदेश—आत्मिक उन्नति का मुख्य चौथा साधन—सत्संग

वचन—84. ''सत्संग'' यह नियम कल्याण मार्ग का सार साधन है, कि खल बुद्धि जीव सत्संग द्वारे परम गति को प्राप्त हो जाता है। इस वास्ते इस नियम का द ढ़ निश्चय से पालन करना चाहिए। यानी हर वक्त सत्संग में प्रेम रखना चाहिए। सत्संग ही मुक्त की नौका है, सत्संग से ही सत्-असत् का निर्णय मिलता है। सत्संग से ही राजनीति कायम है। सत्संग से ही प्रेम और एकता प्राप्त होती है। सत्संग से ही अपने बुरे-भले का विचार हो सकता है। सत्संग से ही परम शाँति को प्राप्त हो सकता है। सत्संग ही असली धन है जो दुःख-सुख में धीरज देता है। सत्संग के समान सुगम और कोई कल्याण का साधन नहीं है। सत्संग से ही सब विजय पाता है। सत्संग से ही राजा, प्रजा, देश सुखी रहता है। सत्संग से सब उपद्रव नाश और प्रेम प्रगट होता है। सत्संग ही औषधि सब तापों को नाश करने वाली है। सत्संग के बग़ैर कभी बुद्धि निर्मल नहीं

होती। जब तक देह में प्राण हैं, तब तक सत्संग में एकत्र हो कर अपने जीवन का सुधार करना चाहिए।

वचन—85. सब वडयाई और प्रभता का कारण सत्संग ही है। सब धर्म की जड़ सत्संग ही है। रूहानी <u>ग़िज़ा</u>[1] सत्संग से ही मिलती है। जिस जगह सत्संग का समाचार नहीं वह जगह और वह मानुष एक दिन तबाह हो जायेंगे।

वचन—86. मन को रंग सत्-संगत से ही है। जैसी संगत ऐसा भाव प्राप्त करता है। पैदाइश के वक्त जीव बिलकुल अज्ञान सरूप होता है। ज्यों-ज्यों दुनिया की संगत का मिलाप होता है, त्यों-त्यों उसके अन्दर दुनिया की जाग ति होती जाती है। मन की खुराक ही संगत है। जैसी संगत का सम्मेलन हुआ, वैसा ही गुण ग्रहण कर लिया। इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत्संग का प्रेमी बनना चाहिए।

वचन—87. हज़ारों वर्ष की तपस्या इतना फल नहीं देती जितना कि दो घड़ी सत्संग से लाभ होता है। सत्संग में सहज ही सब भेद का विचार समझ आ जाता है। मूर्ख आदमी भी गुणवन्त हो जाता है। सत्संग ही तीर्थ है। सत्संग ही सब ऐश्वर्य की प्राप्ति का कारण है। सत्संग ही जीव के कल्याण का रास्ता

1. खुराक

दिखाता है। वह मानुष नहीं बल्कि पशु से भी बदतर[1] है जो सत्संग से प्रेम नहीं रखता। दुनिया में जितने विखाद प्रगट होते हैं वह सत्संग के न होने से। हर एक आदमी अपना कल्याण का रास्ता भूल कर वैर-बदी में आ जाता है।

वचन—88. सत्संग का यथार्थ सरूप समझना चाहिये। वैसे तो हर जगह सत्संग होता ही है, मगर अशाँति बढ़ती ही जाती है। इसका कारण यह है कि हर एक आदमी सत्संग की आड़ में स्वार्थ का धर्म पालन करता है, जिससे बजाए प्रेम के वैर-बुग्ज़[2] आदि विकार प्रगट हो जाते हैं। यह सत्संग नहीं बल्कि कुसंग है। हमेशा दुर्मति को देने वाला है।

वचन—89. सत्संग वह ही यथार्थ है जिसमें एकत्र बैठकर हर एक गुण-अवगुण प्रेमपूर्वक विचार करना और सुनना। यानी जिसमें जो भी विचार होवे वह मन में जज़ब[3] हो जावे। अगर ऐसा सत्संग नहीं तो महज़[4] तमाशगाह बनी हुई है। उस जगह जाने से कोई फायदा नहीं। वह नुमायश बुद्धि को मलीन करने वाली है।

वचन—90. हर एक वाकयात[5], धर्मनीति, राजनीति का विचार सही तरीका से करना और सही तरीका से सुनना, इस धारणा का नाम सत्संग है। सत्संग में बैजन्तर और राग इतना विशेष फ़ायदा नहीं देते, जितना कि

1. बुरा 2. ईर्ष्या 3. पूर्ण रूप से रम जाना या अपना लेना 4. मात्र 5. घटनाओं

बिलकुल शाँतमयी होकर विचार सुना जाये। सत्संग के असली मानी यह हैं कि हर एक बात की असलियत पता में आ जावे। आगे मन खुद कोशिश करने लगता है। अगर असलियत का पता नहीं, तो सत्संग क्या सुना और निध्यास कैसे हो सकता है ? इस वास्ते सत्संग असली मानों में होवे तब शाँति मिलती है।

वचन—91. हर एक बुज़ुर्ग की ज़िन्दगी के सही हालात यानी वाकयात, हर एक नुक्ता का सही विचार, ईश्वर प्राप्ति का पूर्ण रूप, सत्-असत् का यथार्थ जिस जगह निर्णय होवे वह सत्संग है। जो उपदेशक पेट की खातिर बड़े-बड़े वाकयात सुनाते हैं और खुद आमिल[1] नहीं और पखवाद में दिलचस्पी[2] रखते हैं, वह सत्संग धर्म को नष्ट करने वाला है और वह उपदेशक उपदेश नहीं करता बल्कि अपने पेट का व्यौहार कर रहा है। सत्संग और कुसंग पहले विचार कर लेना चाहिए। एकत्र होकर अपनी ज़िन्दगी का सुधार करना चाहिए। यह कल्याण-कारक साधन है।

वचन—92. निर्वैर, निर्विखाद, निर्संशय, निर्मान सरूप का जहाँ विचार होवे, वह सत्संग है। इसके बग़ैर सब बादमुबाद है। सब मज़हबों की बुनियादी तालीम सत्संग ही है, जिससे जायज़ और नाजायज़[3] का पता लगता है।

1. क्रियान्वित नहीं, अमल न करना 2. रूचि 3. वाज़िब और नावाज़िब

मगर सही सत्संग न होने से वैर और ईर्खा बढ़ जाती है और देश में उपद्रव प्रगट हो जाता है। जो उपदेशक निर्लोभ होकर सत् विचार की सेवा करता है उसका सत्संग शाँति देने वाला है। इस वास्ते हर पहलू में सही विचार हासिल करके ही असलियत को प्राप्त कर सकता है।

वचन—93. सत्संग का पहला असूल इकट्ठा मिलकर बैठना, दूसरा अपनी बेहतरी के ज़रिये[1] विचार करने, तीसरे असली धर्म का विचार श्रवण करना, तमाम बुजुर्गों की ज़िन्दगी के हालात से वाकफ़ी हासिल करनी, चौथे इस संसार में आने का यथार्थ लाभ विचार करना, पाँचवाँ हर एक विघ्न निवारण करने का भाव पहचानना और सत् धर्म में जाग ति हासिल करनी, छेवाँ अंध-विश्वास से निज़ात हासिल करनी और सत् विश्वास को धारण करना, सातवें अपने गिरावट के कारण को विचार करना और विखाद से मुख़लिसी हासिल करनी। और भी कोटां-कोट फ़ायदे हैं। इस वास्ते सत्संग का ज़रूरी जीवन धारण करना चाहिये। सत्संग से सही विचार, सही विश्वास, सही कोशिश प्राप्त होती है। सब ज़िन्दगी की तरक्की का दारोमदार[2] सत्संग ही है। प्रेम का सागर और पाप की औषधि यह सत्संग ही है। निश्चय करके पधारना चाहिए।

1. साधन 2. आधार

वचन—94. सत्संग में एकत्र होकर के सत् सरूप का विचार करना चाहिए। अपने बुरे आचारों को छोड़ना चाहिये। अपने बुज़ुर्गों के नक्शे, कदम पर चलना चाहिए। सत् पुरुषार्थ को धारण करना चाहिए, मानुष ज़िन्दगी के असली फ़र्ज़ को विचार करना चाहिए। यह सब गुण सत्संग से प्राप्त होते हैं। हर वक्त इस साधन को धारण करना चाहिये।

वचन—95. जिस मानुष में सत्संग का प्रेम नहीं, जिस कौम में सत्संग का भाव नहीं, कभी भी तरक्की नहीं कर सकती, ख्वाहे और जितनी भी कोशिश करे। सबसे पहले तरक्की का मीनार सत्संग ही है। कोशिश करके हर एक को सेवा का लाभ उठाना चाहिये। सब देश और धर्म की तरक्की और ज़िन्दगी सत्संग से ही है। अपरम अपार महिमा है, धारण करके असली यश को प्राप्त करना चाहिए।

समाप्त

आठवां उपदेश—आत्मिक उन्नति का मुख्य पाँचवां साधन—सत् सिमरण

वचन—96. सत् सिमरण — यह नियम इन्सान से देवता बनाने वाला है। नास्तिक से आस्तिक बनाने वाला है। अन्ध-विश्वास से शुद्ध विश्वास देने वाला है। जन्म-मरण से मुक्ति के देने वाला है। दुःख और सुख में धीरज देने वाला है।

वैर और बख़ीली से छुड़ाने वाला है। इस चंचल मन को निश्चल करने वाला है। बुद्धि को सत् धाम देने वाला है। सब इबादत, रियाज़त[1], भक्ति, योग सत् सिमरण ही है। सब ग्रन्थों की सार, सब गुरुओं की हिदायत[2], सब अवतारों का जीवन सत् सिमरण ही है। मानुष ज़िन्दगी को पवित्र करने वाला, कर्म के जाल से छुड़ाने वाला, त ष्णा की आग से ठंडा करने वाला और अविनाशी सुख देने वाला सत् सिमरण ही है। सत् सिमरण असली बुनियाद है और सब नियम इसके मुआवन[3] हैं। इस संसार में आने का यथार्थ लाभ और मानुष ज़िन्दगी की अधिकता सत्-सिमरण ही है। मन का आखिरी साधन बन्ध खुलासी करने वाला सत्-सिमरण ही है। सत्-सिमरण का ही प्रकाश सब ग्रन्थों और बुज़ुर्गों में हो रहा है। इस वास्ते इस नाशवान संसार में सत् सिमरण को धारण करके कल्याण को हासिल करना चाहिए।

वचन—97. सब पापों से छुटकारा और ईश्वर की प्राप्ति सत् सिमरण ही है। इस वास्ते हर वक्त यह निर्मल विश्वास धारण करना चाहिए। मन का सरूप ही सिमरण है। जिस चीज़ को सिमरता है उसी का रूप हो जाता है। चूँकि संसारी पदार्थों को सिमर-सिमर के अति

1. पूजा, पाठ 2. शिक्षा 3. शाखाएँ

दुःखी और भयवान रहता है, इस वास्ते सत् सिमरण की तरफ मन को लगाना चाहिए, जिससे झूठ दुःख-सुख से छूट मिले और अविनाशी सुख प्राप्त हो जावे।

वचन—98. सत्सिमरण से ही मन की व त्ति लीन हो जाती है। सत्सिमरण से ही मन का फुरना नाश होता है। सत्सिमरण से ही ईश्वर का प्रकाश प्रगट होता है। इस वास्ते असली यह साधन का मूल धारण करना चाहिये; जिससे जल्दी ईश्वर प्राप्ति हो जावे। सत् सिमरण से मन की धारणा शुद्ध होती है। धारणा के शुद्ध होने से ध्यान प्राप्त होता है। ध्यान से एकाग्र चित्त होकर ईश्वर के आनन्द को अनुभव करता है, जो सब सुखों की खान है। ध्यान की द ढ़ता से ईश्वर के सरूप में लीन हो जाता है। यह ही अवस्था जीवन मुक्त धाम है। सब आनन्द सत्सिमरण से ही मिलता है। इस वास्ते कामिल उस्ताद[1] की शिक्षा द्वारा सत् सिमरण को धारण करना चाहिए।

वचन—99. कर्म में निहकर्मता सत्सिमरण से ही है। चंचल में निश्चलता सत्सिमरण से ही है। परमानन्द सरूप सत्सिमरण ही है। मन की सब उपाधियों से मुक्ति देने वाला सत्सिमरण ही है। संतोख रूपी कल्पव क्ष को देने वाला सत्सिमरण ही है। सब तीर्थों

1. पूर्ण गुरु

की सार सत्सिमरण ही है। ज्ञान, विज्ञान, भगति, योग, अनुराग, वैराग्य सत्सिमरण ही है। गुरुओं की महिमा शिष्य का अधिकार सत्सिमरण ही है। सब तापों का नाश करने वाला, सर्वज्ञ सरूप नारायण की प्राप्ति देने वाला सत्सिमरण ही है। सत्सिमरण ही परम सिद्धि और प्रकाश है। निश्चल चित्त होकर सत् सरूप का सिमरण करना चाहिए। इसी धारणा से सब गुण प्राप्त होते हैं और ममता रूपी सब अन्धकार नाश हो जाता है। जीव अपने साखी सरूप को सत्सिमरण से ही जान सकता है। इस वास्ते द ढ़ नियम करके सत्सिमरण को धारण करें।

वचन—100. मन एकाग्र सत्सिमरण से ही होता है। इस वास्ते हर घड़ी, हर लमह सत्सिमरण को धारण करना चाहिए। सत्सिमरण से ही प्रकाश का अनुभव होता है और ज़िन्दगी, मौत सब का पूर्ण पता लगता है। नाद सरूप घट-घट व्यापक अन्तर्यामी परमेश्वर का प्रकाश सत्सिमरण से प्रगट होता है। इस वास्ते द ढ़ चित्त होकर ईश्वर के नाम का सिमरण करना चाहिए।

वचन—101. अगम देश की प्राप्ति यानी हालते ग़ैब का जानना सत्सिमरण से होता है। ईश्वर कानून की कुंजी सत्सिमरण ही है, जिससे तमाम काएनात[1] का ज्ञान हो जाता है। मन

1. स ष्टि

के सब विकार जो एक पलक भी शाँत नहीं होने देते, वे सत्‌सिमरण की धारणा से सब लीन हो जाते हैं। अन्तर विखे चाँदना हो जाता है। सुबह व शाम ज़रूरी कुछ वक्त ईश्वर का सिमरण करना चाहिए। सब पापों से मुखलिसी[2] मिलती है।

वचन—102. अगर और ज़्यादा तप-जप नहीं हो सकता संसारी आदमियों से, तो सुबह व शाम दोनों वक्त दढ़ नियम करके ईश्वर का सिमरण करना लाज़मी है। इस ही से सब सिद्धि है। मन बड़ा विकराल है, आहिस्ता-आहिस्ता इसको पकड़ कर ईश्वर के सिमरण में लगाना चाहिए। हर एक मानुष के वास्ते लाज़मी है अपने मालिक की याद करे। ईश्वर की याद से सब भ्रम जाल का अभाव हो जाता है और अन्तःकरण विखे प्रकाश प्रगट होता है।

वचन—103. सत्‌सिमरण जो मन से किया जावे, वह श्रेष्ठ है, सरब सिद्धि के देने वाला है। ज़बान से जाप करने से या बुलन्द[1] आवाज़ करके जाप करने से नाम का असर उड़ जाता है। जो अन्तर चित्त करके आराधन किया जावे उसका असर मन में मौजूद रहता है और शान्ति देता है। ईश्वर को मालिक जान कर जो प्रेम से सिमरण करता

1. ऊँची 2. छुटकारा

है वह ही सिमरण योग को प्राप्त होता है। जो दुनिया का दिखलावा करता है वह पाखंडी पाप से कभी भी छूट नहीं सकता।

वचन—104. ईश्वर की प्राप्ति, सब पापों का नाश सत्सिमरण से ही है। एक ईश्वर के नाम की वडयाई सब पुस्तकों में बयान की हुई है। जो बातरीका[1] ईश्वर का सिमरण करता है वह ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। आहिस्ता-आहिस्ता ही रंग लगता है। इस वास्ते द ढ़ नियम करके ईश्वर सिमरण में चित्त लगाना चाहिये। एक दिन ज़रूर परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। त्याग, वैराग, संन्यास, योग सब सत्नाम के सिमरण में ही हैं। दुर्मत को नाश करने वाला और समता को प्रकाश करने वाला सत्सिमरण ही है। ईश्वर के नाम की अपार वडयाई है। जिसको प्राप्त हुई वह ही जान सकता है। ज़बान बयान नहीं कर सकती और कलम तहरीर[2] नहीं कर सकती। अत ही अश्चर्ज मुकाम है। अपने अमल करके ही हासिल होता है। इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके निर्भय अवस्था शब्द सरूप को प्राप्त होना चाहिए। वह परम धाम और निर्वास पद है। ईश्वर के सिमरण से ही प्राप्त होता है। सब दुनिया की सार, सब ज्ञानियों की

1. विधि पूर्वक 2. लिखना

सार, आनन्द का भंडार एक ईश्वर ही है। निर्मल प्रीति करके अपने हृदय में उसका सिमरण करना चाहिये, जिससे सब ममता का जाल नाश होवे और अपने निर्मल सरूप समता में स्थिति मिले।

वचन—105. आत्मिक उन्नति जो असली धर्म है, इन पाँच मुख्य साधनों के धारण करने से प्राप्त होता है। इस वास्ते हर वक्त अपने मन को इन सत्कर्मों में लगाना चाहिये जिससे अभय-पद प्राप्त होवे। सब विद्या की सार, सब योग की सार यह ही है कि मन सब पापों से छूट कर अपने सत्सरूप में लीन हो जावे। यह परम सिद्धि इन पाँच साधनों से जल्दी प्राप्त होती है और सब गुणी पुरुषों का जीवन आदर्श यह ही पाँच नियम हैं। द ढ़ निश्चय से इन नियमों को धारण करना चाहिये, जिससे दुर्मत का अन्धकार नाश होवे और आत्म-तत्त में निहचलता मिले।

वचन—106. ज़िन्दगी को ज़िन्दा करना चाहिये। असली खुशी की तलाश करनी चाहिये। बेज़ारी[1] से छूटने की कोशिश करनी चाहिये। असलियत की तहकीकात करनी चाहिये। अपनी ज़िन्दगी को खुशबूदार बनाना चाहिये। प्राणों के होते-होते निर्भय अविनाशी अवस्था को प्राप्त कर लेना चाहिये। इस संसार की गर्दिश[2] किसी को कायम नहीं रहने देगी। इस वास्ते गर्दिश के चक्र से निकलने की कोशिश करनी चाहिये। पापों का त्याग करना चाहिये और

1. निराशा 2. कालचक्र

इन सत् साधनों को धारण करना चाहिये। इससे खुशी और प्रसन्नता है। पूर्ण भाग्य वाला ही सच्चाई का मुतलाशी[1] और सच्चाई का जतन करता है। आखिर सच्चाई को प्राप्त करके सत ही हो जाता है, जैसा कि आनन्द-सरूप वास्तव में है।

पाँचवा साधन सत्सिमरण समाप्त हुआ।

नवाँ उपदेश—तीर्थयात्रा सिद्धान्त

वचन—1. तीर्थ वह ही जगह होती है, जिस जगह कोई ईश्वर का प्यारा पैदा हुआ हो, या रिहाईश की हो, या प्राणों का त्याग किया हो, या जिस जगह धर्मयुद्ध या धर्म की मर्यादा स्थापित की हो, या ईश्वर का तप किया हो।

वचन—2. तीर्थों पर जाने से सिर्फ़ इन हालात के मुताबिक[2] विचार करना, गुज़िशता ज़माने[3] और गुज़रे हुए बुज़ुर्गों की ज़िन्दगी से कुछ सबक हासिल करना है।

वचन—3. इन हालातों के बग़ैर जो जाते हैं, वे महज़[4] वक्त और दौलत को बर्बाद करते हैं। तीर्थों के स्नान से कोई फ़ायदा नहीं, जब तक ऊपर के हालात के मुताबिक विचार न धारण किया जावे।

वचन—4. सबसे बड़ा तीर्थ आत्म-सरूप है, जो घट घट व्याप रहा है। उसके जानने से सब जलन नाश हो जाती है।

1. खोजी 2. अनुसार 3. भूतकालीन समय 4. मात्र, केवल

वचन—5. तीर्थों पर दान करने से कोई फायदा नहीं, मुताबिक साधारण जगह के। जिस जगह दान-सेवा आदि शुभ गुण बरतते हैं, वह जगह ही तीर्थ है।

वचन—6. तीर्थों पर पिण्ड भरवाना और गति करवाना सब मन्द निश्चय है। पिण्ड भरवाने से गति नहीं हो सकती है। अपनी करनी की हर एक जीव सज़ा पाता है। यह ईश्वर की माया का कानून है।

वचन—7. जो चीज़ देह और मन को ठंडक देने वाली है, वह तीर्थ ही समझें। मसलन[1] सत्संग, सत् विचार, सत् सेवा, सत् सिमरण, गुरु उपदेश और तपोभूमि का स्थान, और विद्या के निदिध्यास की जगह वग़ैरह तीर्थ रूप जानने चाहिए।

वचन—8. प्रचलित तीर्थ पर जाने की कोई खास ज़रूरत नहीं है। सत्कर्म और सत्धर्म को धारण करना ही तीर्थ है।

वचन—9. तीर्थयात्रा का इतना फल नहीं जितना कि अपने मन में सत्कर्म, सत्विश्वास और सत्सिमरण को धारण किया जावे।

वचन—10. जितनी तीर्थ यात्रा की प्रभुता बताई गई है वह सही धर्म के नाशक और धन के लूटने वाले लोगों का प्रचार है।

1. उदाहरणतया

वचन—11. जब तक ईश्वर विश्वास नहीं तब तक कभी भी सत्कर्म और उपकार को धारण नहीं कर सकता। जब तक कर्म की शुद्धि नहीं कभी भी जीव को शाँति नहीं, ख्वाहे पद-पद पर तीर्थों की प्रदक्षिणा क्यों न करे।

वचन—12. मूल तीर्थ ईश्वर विश्वास है जो आवागवन रूपी घोर जाल से छुड़ाता है।

वचन—13. अपनी बुद्धि को सत्-विचार करके निर्मल करें तो तुम को ज़र्रा-ज़र्रा[1] तीर्थ रूप ही दिखाई देवेगा।

वचन—14. धरती की सीनरी और जल का प्रवाह तीर्थ नहीं हो सकता, जब तक कि सर्वशक्तिमान ईश्वर की कथा का वहाँ प्रचार न होवे।

वचन—15. सबसे ज़्यादा पाखंड, और अत्याचार, धर्म की नाश इस वक्त तीर्थ स्थानों में ज़ोर पकड़ रही है। बताओ शाँति कहाँ है ?

वचन—16. लाज़मी यह ही है कि हर जगह को तीर्थ बना सकते हो अपने नेक विचार और उपकार करके। तीर्थों की गुलामी दुःख देने वाली है। गुलामी अपने नेक विचार और उपकार की चाहिये जो तीर्थों का मखज़न[2] है।

1. कण-कण 2. ख़ज़ाना, भंडार

वचन—17. ईश्वर विश्वास को धारण करें। सत्कर्म और लोक-सेवा का साधन करें। तमाम दुनिया के तीर्थ तुम्हारे चरणों को नमस्कार करेंगे। तू ही श्रेष्ठ आचार को धारण करके अखण्ड तीर्थ रूप हो जायेगा।

वचन—18. माँ, बाप, बुजुर्गों तथा हमसाया[1] की प्रेम करके सेवा करनी बड़ी तीर्थ यात्रा है।

तीर्थ यात्रा सिद्धान्त समाप्त हुआ

दसवां उपदेश—दान का सिद्धान्त

वचन—1. जो फ़र्ज़ करके दान नहीं करता, ग़र्ज़ को मद्दे नज़र[2] रखकर दान करता है, वह निखिद[3] दान है।

वचन—2. जो पब्लिक उन्नति की खातिर दान नहीं करता और देवी-देवताओं को खुश करने की खातिर लक्ष्मी सर्फ़[4] करता है, वह भी निचले दर्जे का दान है।

वचन—3. जो नुमायश को मद्दे नज़र रखकर दान करता है वह भी अदना[5] दान है।

वचन—4. यथार्थ यह ही है कि फ़र्ज़ करके यथाशक्ति योग्य सेवा करनी। सबसे बड़ा दान यह है :

1. पड़ोसी 2. द ष्टि में रखकर 3. घटिया 4. व्यय, खर्च 5. नीचा

(1) विद्या के प्रचार में ख़र्च;
(2) रोग निव त्ति की ख़ातिर ख़र्च;
(3) देश और धर्म की जाग ति की ख़ातिर ख़र्च;
(4) श्रेष्ठ आचार साधु और विद्वानों के जीवन की ख़ातिर ख़र्च;
(5) ग़रीबों और यतीमों की उन्नति की ख़ातिर ख़र्च;
(6) सत्संग और समाज के एकत्र करने का ख़र्च;
(7) अन्न और वस्त्र का हर एक नदारद[1] की ख़ातिर ख़र्च;
(8) सरायें, तालाब, कुएँ, बावलियाँ, सड़कें, पुल इनके तामीर[2] करने का खर्च, सब दान उच्च कोटि का है। उससे बड़ी कल्याणता प्राप्त होती है।

वचन—5. दूसरे दर्जे का दान अपने कुन्बे की उन्नति की ख़ातिर ख़र्च, अपनी ग़र्ज़ की ख़ातिर, राजा, हाकिम[3], हकीम और भाटों की धन से सेवा करनी। देवी-देवताओं और तीर्थों के परसने का ख़र्च, निचले दर्जे का दान है। पूर्ण सिद्धान्त यह है, जो ग़र्ज़ कर के सेवा की जावे वह अदना है, जो फर्ज़ करके सेवा की जावे वह आला[4] है, थोड़ी मिकदार[5] की, ख़्वाहे बड़ी मिकदार की।

वचन—6. ग़र्ज़ वाली सेवा से बुद्धि निर्मल नहीं हो सकती, ख़्वाहे कितनी ही कोशिश करे। फ़र्ज़ को जानकर जो सेवा करता है वह आत्म-उन्नति को प्राप्त होता है। धन, मन

1. लाचार, हीन 2. निर्माण 3. पदाधिकारी, शासक 4. उत्तम, बढ़िया 5. मात्रा

और तन की यह तीन प्रकार की कैद इस जीव को है। इन तीनों ज़न्जीरों से छूटने की ख़ातिर त्याग का रास्ता बतलाया गया है। सो उसी त्याग को दान कहते हैं। जो लागर्ज़ भाव को मद्दे नज़र रखकर त्याग करता है वह इन कैदों से छूट जाता है। जो ग़र्ज़ करके त्याग करता है वह बार-बार इन ज़न्जीरों में कैद होता है।

वचन—7. **धन का त्याग** :—ईश्वर निमित्त और लोक-सेवा में जायज़ है। गर्व को त्याग कर जो दान किया जावे वह निज़ात[1] के देने वाला है।

तन का त्याग :—परोपकार कर्म और सच्ची ईश्वर परस्तिश[2] में शरीर को सर्फ़ करना। देह अभिमान से निज़ात मिलती है।

मन का त्याग : तमाम वासनाओं को ईश्वर निमित्त त्याग करना, होना और न होना उसकी आज्ञा में देखना, द ढ़ निश्चय से ईश्वर सिमरण करना। यह मन का त्याग और परम तप है। इससे निहकर्म रूप परम-आनन्द पार-ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है, जो असली मुकाम है।

वचन—8. यथार्थ निर्णय यह है तन, धन और मन को निष्काम भाव से दूसरे के निमित्त जो सर्फ़[3] करता है, वह ही परम दानी है और परम भगत है। ऐसे निष्काम भाव और पर-उपकार को साधन करते-करते कर्म चक्र से छूट कर निहकर्म सरूप में लीन हो जाता है।

1. मुक्ति 2. भक्ति, पूजा 3. खर्च करना, लगाना

फिर सब वासना खत्म हो जाती है, पूर्ण ब्रह्म रूप हो जाता है। दान रूपी त्याग-मार्ग को समझ कर हर घड़ी, हर लमह इसके परायण होना चाहिए और अपने जीवन का उद्धार करना चाहिये। यह ही समता-मार्ग का निर्णय है।

दान का सिद्धान्त समाप्त हुआ।

ग्यारहवां उपदेश—मूर्ति पूजा का सिद्धान्त

वचन—1. हर एक जीव माया की गिरफ़्तारी में बुत-परस्त ही है। यानी नाम, रूप और गुण, कर्म के भोगने में हर वक्त मुस्तग़र्क[1] रहता है। किसी हालत में भी तस्सवरे फ़ानी[2] से आज़ाद नहीं होता।

वचन—2. परस्तिश करना मन का काम है। अगर मन असत्‌नाम रूप के भोग में कैद है, तो वह वहदत-परस्त[3] कैसे हो सकता है?

वचन—3. जब तक ख्वाहिशात नफ़सानी[4] मौजूद हैं, तब तक बुत-परस्त ही बना रहता है। जब तक अपनी देह के मद में गिरफ़्तार है, तब तक बुत-परस्त[5] ही है।

वचन—4. जब तक कर्म का भोग्ता है तब तक कर्मफल, जो स्थूल विकार है, उसकी कैद में है।

1. लीन 2. संसार की नाशवानता की छाप 3. ईश्वर भक्त 4. इन्द्रियों के सुख की इच्छाएँ, 5. मूर्तिपूजक, देहाध्यासक, सगुणोपासक

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—5. बुत-परस्ती से वहदत-परस्ती की तरफ मन को ले जाना है। जब तक मन व त्ति के आधीन है कभी भी वहदत-परस्त नहीं हो सकता।

वचन—6. भक्ति-मार्ग में बुत-परस्ती यानी मूर्ति की पूजा सिर्फ़ इतना ही कल्याण दे सकती है कि सत्पुरुषों के गुण और कर्म का आदर्श उनके सरूप से लिया जावे।

वचन—7. आदर्श के बग़ैर जो मूर्ति पूजा है वह सख्त ज़हालत है। यानी आगे ही जीव जड़-प्रक ति की कैद में है, बाकी उपासना भी अगर जड़ सरूप की करनी शुरू की तो सब पुरुषार्थ दुःखदाई हो गया। यानी अन्धकार दर अन्ध ाकार बढ़ता गया।

वचन—8. माया की गिरफ़्तारी में जीव स्थूल की कैद में आ गया। इस कैद से निज़ात की खातिर उपासना या भगति है। इस वास्ते जिन पुरुषों ने इस प्रक ति से निज़ात पाई है उनके आदर्श को धारण करके ऐसा ही यतन करना चाहिये, जिससे स्थूल यानी <u>मादे की परस्तिश</u>[1] से आज़ाद होकर निराकार-सरूप में प्राप्त हो जावें।

वचन—9. सत्पुरुषों के सरूप को देखकर उनका आदर्श धारण करना लाज़मी है। अगर उनका आदर्श धारण न किया जावे, महज़ नमस्कार, आरती और चरणाम त से ही मुक्ति या आनन्द जो चाहते हैं, वे अन्धकार-परस्ती कर रहे हैं। बजाय शान्ति के अशान्ति को प्राप्त होवेंगे।

ॐ समता अपार शक्ति ॐ

1. माया की पूजा

वचन—10. पीर, पैग़म्बर, गुरु, अवतार सब का वजूद पाँच भूत का ही है, जैसे हर एक जीव की प्रक ति की बनावट है।

वचन—11. सिर्फ़ उन सत्पुरुषों के अन्दर जो ज्ञान शक्ति है, यानी आत्म-स्थिति है, वह ही तेज पूजने योग है—यानी निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निहचलता आदि दिव्य गुण जो कि ईश्वर सम्बन्धी हैं।

वचन—12. सत्पुरुष अपनी प्रक ति को जीत कर सत्सरूप में स्थित हुए हैं; यानी स्थूल विकार से मुक्त होकर निराकार सरूप में लीन हुए हैं। जब तक इस आदर्श को न धारण किया जावे तब तक उनकी देह की पूजा करनी सख़्त ज़हालत[1] है। यानी उन्होंने खुद अपनी देह का जीवन में ही त्याग किया है, दूसरे उनकी देह को पूजकर क्या हासिल कर सकते हैं—यानी सब अकार्थ है।

वचन—13. सत्पुरुषों का ज्ञान सरूप पूजने योग है, न कि महज़ स्थूल आकार। स्थूल आकार की परस्तिश मुक्ति नहीं दे सकती, जब तक उनके सही आदर्श को धारण न किया जावे।

वचन—14. सत्पुरूष अनेक सरूप में होते आये हैं, यानी उनकी प्रक ति का नाम, रूप, गुण और कर्म न्यारा-न्यारा होता आया है, मगर उनके अन्दर जो ज्ञान सरूप है वह एक ही धार का है।

1. मूर्खता

वचन—15. इस वास्ते सत्पुरुषों का ज्ञान-सरूप जो उनका सच्चा जीवन था, वह पूजने योग्य है।

वचन—16. जिस तरीके से उन महाशक्तियों ने निज़ात हासिल की है, यानी स्थूल विकार पर काबू पाया है, उस तरीका को धारण करना—यह उनकी सही पूजा है और कल्याण के देने वाली है।

वचन—17. सत्पुरुषों का आदर्श धारण करने से अन्तःकरण में सत्तता प्रगट होती है, और अज्ञान यानी स्थूल की कैद से त्याग हासिल होता है।

वचन—18. जिस भी बुजुर्ग का चित्त में विश्वास होवे, उस बुज़ुर्ग के अन्तर ज्ञान को धारण करना, यह उसकी असली पूजा है। यानी जिस तरह से वह माया से अतीत होकर ब्रह्म-सरूप में स्थित हुआ है, उसी तरह से उनका ज्ञान ब्रह्म-स्थिति देता है। यानी नाम, रूप, गुण और कर्म आदि प्रक ति विकार से मुक्त पाता है।

वचन—19. मूर्ति पूजा यानी स्थूल विश्वास कभी भी शान्ति नहीं दे सकता जब तक उसके अन्तर की ज्ञानगति का विश्वास न होवे।

वचन—20. जो भी देह-धारी संसार में आया है, ख़्वाहे शुद्ध माया में, ख़्वाहे मलीन माया में, वह गिरफ़्तारी में है। सत् सरूप यानी जीवन शक्ति, जो चिन्ह, वर्ण, आकार से न्यारी है, उसको प्राप्त होकर के ही उसने मुक्ति आनन्द को हासिल किया।

वचन—21. उस आनन्द को जो प्राप्त हुए हैं, वे ही पुरुष आदर्श योग हैं। उनका आदर्श उन जैसा ज्ञान देकर उसी आनन्द में लीन कर देता है। इस वास्ते उनका आदर्श पूजने योग्य है, न कि उनकी स्थूल प्रक ति की पूजा।

वचन—22. मूर्ति पूजा वह ही सुखदाई है जिससे उस मूर्ति का आदर्श धारण करके उन जैसा पुरुषार्थ प्राप्त करें। इसके बग़ैर जो कामना रखकर बहुरंग की पूजा करता है वह बन्धन दर बन्धन को प्राप्त होता है; यानी कभी भी सच्ची खुशी को प्राप्त नहीं होता।

वचन—23. अपना पुरुषार्थ ही सब कामना पूर्ण करता है। इस वास्ते सत्पुरुषों के वचनों अनुकूल पुरुषार्थ धारण करके इस संसार की बाज़ी को जीत लेना चाहिए।

वचन—24. जो सत्पुरुषों का आदर्श धारण नहीं करता और उनकी महज़ देह की पूजा करता है,

वह पुरुषार्थ हीन होकर मार्ग-धर्म से पतित हो जाता है और अन्त को घोर नरक में निवास करता है।

वचन—25. बड़ी-से-बड़ी कोशिश से सत्पुरुषों का ज्ञान-सरूप अनुभव करना चाहिए। जिससे अपने अन्तर में वह ज्ञानसरूप प्रगट होकर जीव को अखण्ड शान्ति देवे।

वचन—26. स्थूल की कैद यानी बुत-परस्ती[1] से कोई भी छूट नहीं सकता जब तक वह ख़्वाहिश का गुलाम है। इसलिए इस झूठ अन्धकार से छूटने के वास्ते केवल ज्ञान-मार्ग है। यानी निराकार शब्द-सरूप का विश्वासी और अभ्यासी होना। यह ही ज्ञान-सरूप सब गुरु, पीर, अवतारों का साधन है। इसको धारण करके वह अखण्ड शान्ति को प्राप्त हुए। इस वास्ते उन बुज़ुर्गों के आदर्श अनुकूल अपना जीवन बनाकर इस माया की कैद से मुक्त होना चाहिये। यह पूजा असली है। बाकी पाखण्ड अन्धकार परस्ती है। शुद्ध चित्त से विचार करना चाहिये।

मूर्ति पूजा का सिद्धान्त समाप्त हुआ।

बारहवाँ उपदेश—देवी देवताओं और ग्रहों की पूजा का सिद्धान्त

वचन—1. पूजा के मानी यह हैं कि किसी की प्रभुता की अराधना करना।

1. मूर्ति पूजा

वचन—2. जिसकी पूजा से कामना और कल्पना पैदा होवे, वह नाक़िस पूजा है।

वचन—3. जिसकी पूजा से वहम, भय और लोभ पैदा होवे, वह भी पूजा नाक़िस[1] है।

वचन—4. जिसकी पूजा से मान, छल और चतुराई पैदा होवे, वह भी पूजा नाक़िस है।

वचन—5. जिसकी पूजा से ईर्खा, बाद और ममता पैदा होवे, वह पूजा भी नाक़िस है।

वचन—6. जिसकी पूजा से शोक, गुस्सा और गुमान[2] पैदा होवे, वह पूजा भी नाक़िस है।

वचन—7. जिसकी पूजा से स्वार्थ और मोह पैदा होवे, वह पूजा भी नाक़िस है।

वचन—8. जिसकी पूजा से द्वन्द्व-भ्रम बढ़ता है, वह पूजा भी नाक़िस है।

वचन—9. जिस पूजा से कर्म-वासना फैलती है, वह पूजा भी नाक़िस है।

वचन—10. जो पूजा मुक़र्रर[3] स्थान के बग़ैर नहीं हो सकती, वह भी नाक़िस पूजा है।

वचन—11. जिसकी पूजा से लोक-परलोक का भ्रम बना रहता है, वह भी नाक़िस है।

वचन—12. जिस पूजा से मन, बुद्धि और कर्म में तबदीली बनी रहती है—यानी एक भाव नहीं होता, वह पूजा भी नाक़िस है।

वचन—13. देवी-देवताओं और ग्रह की पूजा इन विकारों से निज़ात यानी मुक्ति नहीं दे सकती,

1. हानिकारक, अपूर्ण 2. अहं, गर्व 3. निश्चित

क्योंकि इन तुच्छ पूजाओं से त ष्णा रूपी विकार नाश नहीं होता। जीव की कल्याण की ख़ातिर पूजा दरकार[1] है। जिस पूजा से बजाय कल्याण के इतने विकार पैदा हो जायें वह पूजा नहीं बल्कि अन्धकार, परस्ती है।

वचन—14. जो चीज़ खुद मजबूर है, उसकी पूजा सच्ची शान्ति नहीं दे सकती है।

वचन—15. जो चीज़ खुद बनी और बिगड़ी है, उसकी पूजा परम आनन्द नहीं दे सकती है।

वचन—16. जो चीज़ अपने स्वभाव की मुहताज़[2] है, उसकी पूजा आनन्द के देने वाली नहीं है।

वचन—17. अनेक तरीका की भावना रखकर अनेक देवी-देवताओं, ग्रहों की पूजा करनी सख़्त ज़हालत है और विकार के देने वाली है।

वचन—18. प्रारब्ध कर्म को कोई शक्ति बदलने वाली नहीं है। इस वास्ते कर्मों अनुसार दुःख-सुख ज़रूरी मिलता है। कोई रखया[3] नहीं कर सकता। इस वास्ते ईश्वर शक्ति का भरोसा छोड़कर इन वहमों का भरोसा रखना कभी भी सुखदाई नहीं हो सकता।

वचन—19. अपने कर्मों अनुसार जीव आवागवन में फिरता है। कोई देवी-देवता और ग्रह इस चक्र से छुड़ा नहीं सकता। इस वास्ते इनकी परस्तिश सब दुःखदाई और वहम के देने वाली है।

वचन—20. लाख पूजा की जावे, ग्रहों का असर मिट नहीं

1. वांछित 2. अधीन 3. रक्षा

सकता, क्योंकि वह भी मजबूरी में विचर रहे हैं। जो चीज़ स्वभाव रखती है वह कभी भी नहीं छोड़ती, क्योंकि उसकी ज़िन्दगी वह ही है। मसलन[1] आग का काम जलाना; पानी का काम बहाना; वायु का सुखाना; सूरज का तपिश देना। बताओ, इनकी पूजा करने से यह अपना स्वभाव छोड़ देवेंगे ? नहीं ! अपना स्वभाव कोई चीज़ नहीं छोड़ती, जब तक वह उस सरूप से मिट न जाये। ऐसे ही सब निज़ाम[2] को समझें।

वचन—21. कर्म चक्र से जीव को सज़ा[3] और जज़ा[4] मिलती है। देवी-देवता क्या कर सकते हैं ? इस वास्ते इनकी पूजा भी गिरफ़्तारी, अधीरता और भ्रम को बढ़ाने वाली है।

वचन—22. देवी-देवताओं की पूजा उनके गुण और कर्म का ग्रहण करना है—कि जिस शक्ति को धारण करके वे देवी और देवता बने, उस शक्ति का विचार करना उनके आदर्श करके, ऐसी पूजा धर्म को प्रगट करती है। जैसे-जैसे सत्कर्म और उपकार को उन हस्तियों ने धारण किया है, उसी के मुताबिक अपना जीवन बनाना, यह उनकी सच्ची पूजा है। कर्म गति ही देवता बनाती है। कर्म गति ही राक्षस बनाती है। इस वास्ते कर्मों का सुधार ही असली पूजा है। देवी-देवताओं का मार्ग यह ही है।

1. उदाहरणतयः 2. व्यवस्था, शासन 3. दण्ड 4. शुभ कार्यो का फल

वचन—23. जो अनेक प्रकार की कामना रखकर देवी-देवताओं को पूजते हैं, उनका गुण और कर्म धारण नहीं करते, वह सब निहफल और दुःखदाई है।

वचन—24. अपने कर्मों के अनुसार ही मन के मनोरथ पूर्ण हो सकते हैं, कोई देवी-देवता उनको बदल नहीं सकता।

वचन—25. मौत, जन्म, दुःख और सुख सब कर्मों का फल है। कोई ताकत इनसे छुड़ा नहीं सकती। ज़रूरी भोग भोगना पड़ता है। गुरु, पीर, अवतार, ज्ञानी, नबी और पैग़म्बर सबको अपनी करनी का फल मिलता है। यह ईश्वर की माया का खेल है।

वचन—26. इन सब बातों का विचार करके अपनी करनी को सुधारना चाहिये। जो सब तकलीफ़ों से छुड़ाने वाली है।

वचन—27. जो कर्म मन करके, बुद्धि करके, इन्द्रियों करके किये जाते हैं उनका फल ज़रूरी भोगना पड़ता है। कोई छुड़ाने वाला नहीं, ख़्वाहे तन-मन देवी-देवताओं के अर्पण क्यों न किया जावे।

वचन—28. देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा ईश्वरी-विश्वास को और सत्पुरुषार्थ को नाश करने वाली है। इस वास्ते सब पापों की बुनियाद यह ही पूजा है, अगर उनकी ज़िन्दगी का गुण, कर्म न विचार किया जावे।

वचन—29. जो देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा करने वाले हैं, वे कभी भी निष्काम भावना और पर उपकार को धारण नहीं कर सकते। इस वास्ते हर वक्त वहम और भय में गिरफ़्तार रहते हैं और अपना अमोलक जन्म झूटे लालच में गँवा देते हैं।

वचन—30. सत्कर्म ही देवता बनाने वाला है और मलीन कर्म ही राक्षस बनाने वाला है। इस वास्ते हर घड़ी हर लमह सत्कर्म को धारण करना चाहिये।

वचन—31. जो पूजा ग़र्ज़ को धारण करके की जाती है, वह सब धर्म के विरुद्ध है और आवागवन के देने वाली है।

वचन—32. इस दुस्तर संसार से सिवाय ईश्वर-ज्ञान और सही ईश्वर की पूजा के कभी भी निज़ात नहीं मिल सकती।

वचन—33. जो सर्व शक्तिमान घट-घट व्याप रहा है, देवी-देवताओं और ग्रहों को भी प्रकाशने वाला है, उस परिपूर्ण ईश्वर को छोड़कर नाशवान चीज़ की पूजन करना सब बेअर्थ और भ्रम चक्र के देने वाली है।

वचन—34. अपने साखी-भूत ईश्वर की पूजन कर्म जंजाल से छुड़ाने वाली है।

वचन—35. कर्म जो किये हैं, उनका फल ज़रूरी भोगना पड़ता है, मगर ईश्वर की उपासना से उन कर्मों के फल की आसक्ता से मुक्त हो

जाता है; यानी निर्द्वन्द्व अवस्था को प्राप्त हो जाता है। वह ही स्थान असली खुशी का है।

वचन–36. इस माया के अति गुबार से छूटने के वास्ते, एक ईश्वर की उपासना लाज़मी है।

वचन–37. त ष्णा रूपी अधिक रोग से छूटने के वास्ते, एक अखण्ड अविनाशी-रूप की उपासना लाज़मी है।

वचन–38. कर्मों के फल भोगने में धीरजवान रहने की खातिर एक ईश्वर की पूजा लाज़मी है।

वचन–39. निर्भय, निर्वासना होने की ख़ातिर ईश्वर की उपासना लाज़मी है।

वचन–40. तमाम दुनिया के ऐश्वर्य ईश्वर पूजा से प्राप्त होते हैं, जो सर्व शक्तिमान है। इस वास्ते उसकी उपासना लाज़मी है।

वचन–41. ईश्वर को छोड़कर देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा करनी बड़ी ज़हालत और नास्तिकपन है।

वचन–42. सबसे बड़ी ताकत अपना मन है, जो ईश्वर के सरूप में स्थित हो जावे तो वह खुद देवता है।

वचन–43. सत्कर्म को धारण करने वाला, ईश्वर पर द ढ़ विश्वास रखने वाला ही देवता है।

वचन—44. सबसे निकट, तीन काल प्राप्त, घट-घट की जाननहार, शुद्ध सरूप, एक-रस रहने वाला, अपने आप में सब ताकत रखने वाला, सब संसार जिस के प्रकाश से प्रकाश हो रहा है, उस को छोड़कर नाश होने वाले और कामनायुक्त शक्तियों की पूजा करनी सब अकार्थ और अन्धकार है।

वचन—45. जिसकी पूजा देवी-देवते करते आये हैं उसी ईश्वर की पूजा धारण करनी लाज़मी है।

वचन—46. ईश्वर एक है, देवी-देवते अनेक हैं। एक को छोड़कर जो अनेक की पूजा करता है, वह किस गति को हासिल कर सकता है? यानी संशय-शोक के बग़ैर कुछ भी हासिल नहीं कर सकता।

वचन—47. इस संसार में विचार को शुद्ध करके, जिस तरीका से देवी-देवताओं ने बुज़ुर्गी हासिल की है, उसी तरीका को धारण करके परम पिता परमेश्वर की पूजा करनी चाहिये। यह ही असली पूजा है।

वचन—48. हर घड़ी दुःख में या सुख में ईश्वर की पूजा और उसकी आज्ञा पालन करनी चाहिये। ईश्वर की भगति से सब देवी-देवते

अधीन हो जाते हैं। इस वास्ते परम-शक्ति नारायण शब्द-सरूप, सर्वव्यापक का सिमरण, ध्यान, कीर्तन, उपासना, विचार करना चाहिए। उसी के निमित्त दान करना चाहिए। यह ही असली पूजा है, और कल्याण का मार्ग है।

वचन—49. ईश्वर की महिमा के बग़ैर किसी शक्ति का निश्चय धारण नहीं करना चाहिए। देवी-देवताओं के अन्दर भी ईश्वर का चमत्कार है। ईश्वर ही पूजने योग और सरब सुखदाता है। ईश्वर-विश्वास, ईश्वर-उपासना से जीव परम शान्ति को प्राप्त होता है।

वचन—50. अवतार, सिद्ध, ऋखीशर, गुरु, पीर, नबी, रसूल सब इस परम शक्ति को सिमरते आए हैं और लोगों को भी उसकी महिमा का उपदेश देते आए हैं। मगर बाद में फरेबी लोगों ने ईश्वरी पूजा और महिमा को गुप्त करके ईश्वर के पूजने वालों की परस्तिश करानी शुरू कर दी, जिससे उनकी पेट-पूजा और ज़रूरयातेनफ़सानी[1] पूर्ण होने लगीं।

वचन—51. एक जीवन सरूप सर्व-प्रकाशक-शक्ति परमात्मा को छोड़कर अनेक देवी-देवताओं की पूजा ने अति खुदग़र्ज़ी, ईर्खा, छल को प्रगट कर दिया है, जिससे सब जीव अति क्लेशवन्त हो रहे हैं।

1. इन्द्रियों के भोग

वचन—52. अपनी सही अक्ल से, सही कोशिश से, सही विचार से एक ईश्वर का विश्वास होना चाहिये। उसी का सिमरण, ध्यान करना चाहिये। सब दुनिया में उसी का प्रकाश देखना चाहिए। ऐसी धारणा ही असली पूजा है और आनन्द के देने वाली है, और देवी-देवता बनाने वाली है। हर वक्त ईश्वर विश्वास और लोक सेवा को धारण करना चाहिये। यह ही परम धर्म, परम पूजा, परम योग और परम सिद्धि है। इसके सिवा सब छल और कपट है। शुद्ध बुद्धि करके विचार करना चाहिए।

वचन—53. जो ईश्वर को छोड़कर देवी-देवताओं को बलि और भेंट देता है, वह खुदग़र्ज़ आत्मघाती है। यानी देवी-देवता न कोई बलि लेता है और न ही बलि लेकर कल्याण दे सकता है। यह रिवाज़ अन्ध-बुद्धि वालों ने जारी किया है। अपनी पेट-पूजा का ज़रिया[1] बनाया है। ईश्वर विश्वास और लोक सेवा ही असली कल्याण का मार्ग है। इसी रास्ते पर चलकर देवी-देवताओं की पदवी को हासिल कर सकता है।

वचन—54. जो देवी-देवताओं के नाम पर माँस, मदिरा और कई तरीकों के चढ़ावे देता है या लेता है, वे दोनों पाखण्डी असली धर्म को नाश करने वाले हैं।

वचन—55. मानुष के वास्ते ईश्वर-पूजा और लोक-सेवा

1. साधन

असली धर्म का मार्ग है। इसके अलावा जो देवी-देवताओं पर बलियाँ चढ़ाते हैं, वे धर्म मार्ग से पतित होकर कई जन्म अधम जूनियों को प्राप्त होकर दुःख पाते हैं।

वचन—56. समता ही आदर्श देवी-देवताओं का है; समता ही ईश्वरी चमत्कार है; इस वास्ते देवी-देवताओं का जीवन विचार करके समता प्राप्ति की कोशिश करनी चाहिए, जो नित्य प्रकाश आनन्द-स्वरूप है। यह ही साधन असली धर्म है।

समाप्त

तेरहवां उपदेश—भूत-प्रेत व पितर का सिद्धान्त

वचन—1. संसार में हर एक चीज़ का वजूद दो ताकतों से बना है, यानी चेतन और जड़ यानी प्रक ति। चेतन शुद्ध सरूप नित दायम-कायम और एक-रस है, अनन्त है, आग़ाज़, इख्तताम के अमल से परे है। उसी ताकत को असली संसार का मूल कहते हैं। तीन काल सत्य है।

वचन—2. प्रक ति यानी फुरना शक्ति—इससे कई अनासर[1] पैदा होकर आपस में तबदील होते रहते हैं, यानी हर एक आग़ाज और इख़तताम[2] के अमल में मसरूफ़[3] रहते हैं। इन ही तत्त्वों की तबदीली का नाम पैदाइश, मौत व रंग-रंग की दुनिया है।

1. भौतिक तत्त्व 2. जन्म और म त्यु 3. व्यस्त

वचन—3. प्रक ति की गिरफ़्तारी में जो चेतन भासता है, उसी का नाम जीव है—यानी तत्त्वों की भुग्ता शक्ति। जीव का सरूप वास्तव में कोई नहीं है। वासना से जैसे-जैसे घट की गिरफ़्तारी में आता है उस प्रक ति का अभिमानी बनकर अपना नाम मान लेता है। इसी का नाम अज्ञानता है।

वचन—4. प्रक ति हमेशा तबदील होती रहती है। जिस वक्त बेहद तबदीली को प्राप्त होती है, उसी का नाम मौत है। पैदा होना और मरना प्रकृति की तबदीली का नाम है। प्रकृति का सरूप जीव भ्रान्त है, यानी जीव की कल्पना।

वचन—5. जिस वक्त जीव एक शरीर छोड़ता है, अपनी वासना के मुताबिक दूसरे वजूद[1] को रचता है, यानी धारण करता है। अपनी अज्ञानता ही उसको दूसरे सरूप का अभिमानी बनाती है। इसी तरह वासना की कैद में आकर रंग-रंग की प्रक ति को धारण करता है, यानी प्रगट करता है।

वचन—6. जो नाम शरीर सम्बन्धी है वह शरीर के साथ ही नाश हो जाता है। बाकी जीव का वास्तव में कोई नाम नहीं है। इस वास्ते भूत-प्रेत व पितर का जो वजूद माना गया है वह सब वहम और भ्रम मात्र है।

वचन—7. जीव अपनी कल्पना के अनुसार जिस नये सरूप को धारण करता है उसी नाम, रूप

1. शरीर

का वह अभिमानी है। पिछले नाम, रूप का उसको कोई ज्ञान नहीं है और न ही उसकी गिरफ़्तारी में है।

वचन—8. जैसे इधर मानुष देह को छोड़कर अपनी मलीन वासना की गिरफ़्तारी से पशु जूनी को प्राप्त होता है। उस वक्त उसको उसी पशु जूनी का मोह और ज्ञान है। पिछले मानुष जन्म के स्वभाव और नाम, रूप को अनुभव नहीं कर सकता।

वचन—9. भूत, प्रेत व पितर का कोई सरूप नहीं है। केवल मन का भ्रम है। जीव अपनी वासना अनुसार एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करता है। जिस वजूद[1] में जाता है उसका वह ही नाम हो जाता है। दायमी[2] उसका नाम कोई नहीं है। जैसी-जैसी तबदीली में आया वैसा ही नाम, रूप कल्पना को धारण किया। इसी चक्र को आवागवन कहते हैं।

वचन—10. जिस वक्त माया यानी प्रकृति को असत् जानता है और सत्सरूप अपनी सत्ता मात्र को पहिचान लेता है, उस वक्त यह तबदीली का अमल यानी पैदाइश और मौत की कैद से छूटकर अपने सरूप में लीन हो जाता है। जैसे बर्फ पिघल कर पानी हो जाती है, भूखन[3] पिघल कर स्वर्ण रूप हो जाता है, घट नाश होकर माटी सरूप हो जाता है। यह ही गति इस जीव की है।

1. शरीर 2. शाश्वत या स्थिर 3. भूषण

जिस वक्त अहंकार यानी कारण पैदाइश नाश हो जाता है उस वक्त वह नित सरूप में स्थित हो जाता है। इसी का नाम मोक्ष है।

वचन—11. फ़र्ज़ किया प्रेत, पितर का सरूप अगर हो भी तो भी जीव की अपनी कल्पना अनुसार है। उसको उस हालत से छुड़ाने वाला कोई नहीं है, जब तक कि वह अपने कर्मों का फल भोग न ले। इस वास्ते जो गति कराने का हक रखता है, वह महज़ पाखण्ड है। यानी जीव को अपनी करनी की सज़ा ज़रूर मिलती है, कोई गति नहीं दे सकता।

वचन—12. बुद्धि, मन, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, प थ्वी आठ तत्त्वों से स्थूल शरीर यानी कालब बनता है। यह तत्त्व जीव की कल्पना है। इसको प्रक ति कहते हैं। जो देह को धारण करता है, इन आठ तत्त्वों को ही कल्प कर धारण करता है। जब तक यह आठ तत्त आपस में न मिलें, तब तक पूर्ण सरूप की शक्ल में नहीं आ सकता।

वचन—13. चूँकि भूत, प्रेत व पितरों का कोई सरूप नहीं है, इस वास्ते महज़ कल्पना है। प्रक ति में इनकी असलियत नहीं मिलती है। क्योंकि प्रक ति आठ तत्त्वों से मिली हुई है और स्थूल रूप में भासती है, और जीव का वास्तव रूप कोई नहीं है, इस वास्ते भूत, प्रेत व पितर पाप कर्म का भय है, वजूद

कोई नहीं है। सार विचार यह है कि चार प्रकार की कुल दुनिया की पैदाइश है यानी जेरज, अण्डज, स्वेदज, अद्भुज। इसके सिवाए और कोई वजूद मानना तोहमात[1] परस्ती ही है।

वचन—14. जो अति दुराचारी है वह ही इन नामों से पुकारा जाता है और नीच जूनी को प्राप्त होकर नीच कर्म करता है। वह मलीन भाव वाला एक किस्म का प्रेत है। भूत-प्रेत व पितर एक नीच जूनी का आदर्श हैं और अहंकार है। वास्तविक कोई सरूप नहीं है।

वचन—15. हर वक्त एक ईश्वर का विश्वास रखना चाहिये। अपने कर्मों को श्रेष्ठ करना चाहिए। ईश्वर के ही नाम दान देना चाहिये। भूत-प्रेत व पितर की कल्पना को दूर करना चाहिये। जीव अपनी करनी के अनुकूल कई जूनियों को प्राप्त होता है, मगर वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होवे तो भी द श्य में आ सकता है। इस वास्ते भूत, प्रेत व पितर जो नीच जूनी का महज़ कल्पित सरूप है, उसका एहसास[2] करना या पूजा करनी निहायत ही नीच गति को देने वाली है। इसलिए इन सब वहमों को छोड़कर एक ईश्वर को आधार मानकर सत्कर्मों को धारण करना चाहिए। ऐसी धारणा से ही ऊँच गति को प्राप्त होता है यानी मोक्ष आनन्द को।

1. वहम 2. अनुभव

वचन—16. इस माया के जाल से छूटने के वास्ते महज़ ईश्वर भगति और सत्कर्म की धारणा है। इसके सिवाय जो भूत, प्रेत व पितरों की पूजा करता है वह कभी भी ऊँच गति को प्राप्त नहीं हो सकता।

वचन—17. हर एक जीव को अपने कर्मों के अनुकूल सज़ा मिलती है। इस वास्ते अपने सुधार का यतन करना चाहिये न कि खुद अन्धकार में जावे और दूसरों को गति देवे। अपनी करनी का सुधार हर वक्त मद्देनज़र[1] रखकर ईश्वर का विश्वास, सिमरण और ध्यान करना चाहिये। यह ही असली गति है।

वचन—18. जो ईश्वर भगति और ईश्वर निमित्त दान और सत्कर्म को छोड़कर, भूत-प्रेत व पितरों की पूजा में मसरूफ़ रहता है, वह अन्ध बुद्धि है, और धर्म के सही भेद को नहीं जानता है। महज़ तोहमात[2] में समय अनर्थ खो रहा है।

वचन—19. हर एक प्राणी मात्र को अपनी गति का विचार करना चाहिए। अगर खुद कैद में है तो दूसरे को कैसे गति दे सकता है? यह बिलकुल नामुमकिन[3] है। हर घड़ी हर लमह अपना सुधार करना लाज़मी है।

वचन—20. जब तक जीव अपनी करनी को खुद साफ नहीं करता, तब तक उस को कैद से रिहाई मुश्किल है। इसलिए सत्पुरुषों के जीवन अनुकूल अपना जीवन बनाकर अपनी गति करनी चाहिये, जिससे माया की कैद से

1. द ष्टि गोचर 2. वहम 3. असम्भव

रिहाई पाकर परमानन्द सरूप को प्राप्त हो जावे।

वचन—21. जब तक अपनी करनी खुद साफ़ नहीं करता तब तक कोई तीर्थ, कोई देवता, कोई मन्त्र गति नहीं दे सकता। इसलिए अपनी करनी का सुधार ही परम गति है। जो ज़िन्दगी में कुछ नहीं करते और मरने के बाद अपने अय्याल[1] से गति चाहते हैं वे सख़्त धोखे में हैं।

वचन—22. जो करेगा सो पायेगा। एक आदमी दूसरे पर कोई हक नहीं रख सकता, जब तक कि वह खुद अपने जीवन को पवित्र न करे। इस वास्ते हर घड़ी अपने आचार को दुरुस्त करना चाहिये, जिससे गति नसीब होवे।

वचन—23. जो प्राणी इन वहमों में फँसा रहता है वह कभी भी शाँति हासिल नहीं कर सकता, जब तक कि सब वहमों को छोड़कर एक ईश्वर का भरोसा न लेवे।

वचन—24. अपनी-अपनी गति करना हर एक का हक है। दूसरे के भरोसे रहना सख़्त गलती है, इसलिए ज़िन्दगी में अपनी कल्याण के निमित्त यतन करना चाहिए।

वचन—25. संसार में वह ही जीव गति को प्राप्त होता है, जो इन भूत, प्रेत, पितर आदि वहमों को छोड़कर एक ईश्वर का भरोसा लेवे। हर वक्त सत्कर्म को धारण करे। पाप कर्म की

1. संतान, परिवार जन

तरफ भूल के न जाये। दढ़ निश्चय एक ईश्वर के सिमरण में रखे। कर्त्ता-हर्ता महा-प्रभु जानकर सब कुछ उसकी आज्ञा में देखे। लोक सेवा और निर्मान भाव चित्त में धारण करे। तब निष्काम सरूप परम आनन्द को प्राप्त हो जाता है, फिर मिथ्या चक्र माया में नहीं आता। यह ही जीव की गति है। ऐसा निश्चय धारण करना चाहिए।

भूत-प्रेत व पितर का सिद्धान्त समाप्त हुआ।

चौदहवाँ उपदेश–
धर्म उपदेशकों के वास्ते हिदायत

वचन–1. धर्म का सही सरूप जानना और उसको अमल में लाना उपदेशक का परम धर्म है।

वचन–2. जब तक अपना अन्तःकरण बिल्कुल शुद्ध न होवे यानी वासना रूपी विकार से निर्मल न हो चुका होवे, किसी को कोई उपदेश करने का कोई हक नहीं।

वचन–3. धर्म की ज़ाग ति की खातिर उपदेश करना तथा लोगों के दुःख को महसूस करके और निष्काम भाव को धारण करके उपदेश करना, सत् उपदेश है।

वचन–4. जो ज़ाती ग़र्ज़[1] की खातिर उपदेश देता है, यानी अपनी रोज़ी की गुज़रान की खातिर या बड़ाई की खातिर, या लोगों को नाज़ायज़ वरग़लाने की ख़ातिर, वह उपदेशक दुराचारी है। देश और धर्म को नाश करने वाला है।

1. निजी स्वार्थ

वचन—5. सत्य, सादगी, सेवा, सत्विश्वास, सत्‌सिमरण और प्रेम आदि गुणों के बग़ैर जो उपदेशक है वह भी दुराचारी और पाखण्डी है; ख़्वाहे कितना ही विद्वान होवे।

वचन—6. जिस उपदेशक का लिबास, खुराक और वचन साधारण नहीं है, यानी प्रेम और निर्मान भाव नहीं रखता, वह उपदेशक धर्म के नाश करने वाला है।

वचन—7. जो उपदेशक बहुत विद्या का मद रखता है और आचार-विचार में सादगी नहीं रखता, वह भी उपदेशक विकारी है।

वचन—8. और कोई भी नशा पीने वाला, नुमायश को देखने वाला, ताश, चौपट और जुआ खेलने वाला और मांस खाने वाला अगर चतुर्वेदी पण्डित भी होवे तो वह दुराचारी है। उसका उपदेश धर्म को नाश करने वाला है और पाप को फैलाने वाला है।

वचन—9. जिसके अन्दर यतीम, अनाथों और ग़रीबों का प्रेम नहीं, धन और मद की आस रखकर उपदेश देता है, वह भी दुराचारी उपदेशक है।

वचन—10. जो विचार सादा नहीं करता और गहरे-गहरे वाकयात सुनाता है और बहुत ज़बान दराज़ है, वह भी पाखण्डी है।

वचन—11. जिसका मन खुद भोगों में ग्रसा हुआ है वह उपदेशक दुनिया को कभी भी रास्ती[1] नहीं दिखला सकता।

वचन—12. जो बिल्कुल पुस्तकों का कीड़ा है और कुदरती अनुभव नहीं रखता वह कभी भी यथार्थ धर्म को न ग्रहण कर सकता है और न ही दूसरों को आगाह[2] कर सकता है।

वचन—13. जो बहुत इतिहास विचार करके लोगों को सुनाता है और खुद एक का भी अमल नहीं करता वह पाखण्डी है।

वचन—14. जिसके उपदेश से ईर्खा और बाद प्रगट होवे वह धर्म के नाश करने वाला उपदेशक है।

वचन—15. जो ब्रह्म ज्ञान से हीन है और छोटे विश्वास वाला है वह उपदेशक भी तुच्छ है।

वचन—16. जिसके अन्दर खुद सत्, निर्मानता, निष्कामता, उदासीनता और प्रेम नहीं है वह बड़े से बड़ा विद्वान भी मूर्ख है। उसका कभी भी उपदेश खालस धर्म प्रगट नहीं कर सकता।

वचन—17. जिसके अन्दर ईश्वरी विश्वास और पर-उपकार और उदारता नहीं है, वह उपदेशक पाखण्डी है। दुनिया को अन्धकार की तरफ ले जाने वाला है।

1. सत्यता, सच्चाई 2. ज्ञात, परिचित

वचन—18. जिसके अन्दर देह अभिमान और कुल ज़ात अभिमान और विद्या अभिमान है, वह उपदेशक धर्म का नाश करने वाला है।

वचन—19. जिसके अन्दर मौत का भय नहीं और ईश्वर से प्रेम नहीं, वह कभी भी न पाप से छूट सकता है और न ही लोगों को रास्ती[1] दिखला सकता है।

वचन—20. जो मान की ख़ातिर उपदेश देता है और खुद प्रेम नहीं रखता, वह उपदेशक धर्म के नाश करने वाला है।

वचन—21. जो स्वार्थ की ख़ातिर उपदेश करता है, वह उपदेशक धर्म का नाश करने वाला है।

वचन—22. जिसका हृदय पूर्ण सीतल नहीं हुआ तत्त्व ज्ञान से, वह दुनिया को रास्ती नहीं सिखला सकता; ख़्वाहे तमाम दुनिया की विद्या का व्याख्यान क्यों न करे।

वचन—23. जो सिर्फ़ विद्वान ही है और अपने अन्दर ईश्वरी प्रेम और निष्कामता नहीं रखता, वह विद्वान नहीं बल्कि बोझ उठाने वाला ढोर है।

वचन—24. जिस क़ौम में धर्म विश्वास वाला न होवे और विद्वान बहुत होवें, एक दिन वह क़ौम को नाश कर देवेंगे। क्योंकि साधन के बग़ैर विद्या नाश कर देती है, ऐसा निश्चय करें।

1. सत्यता, सच्चाई

वचन—25. जिसका मन खुद संशय और वहम वाला है, कितना भी विद्वान होवे वह शान्त अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता और न किसी को आगाह[1] कर सकता है।

वचन—26. लोक दिखावे की ख़ातिर जो आरज़ी[2] धर्म रखता है और मान-ग़ुमान में मुस्तग़र्क[3] रहता है, वह उपदेशक पाखण्डी है।

वचन—27. जिसके अन्दर एक ईश्वर का विश्वास नहीं, एक ईश्वर की उपासना नहीं और दुनिया से चित्त जिसका आज़ाद नहीं, और परहित, पर उपकार नहीं रखता, वह कितना भी विद्वान क्यों न होवे, वह दुराचारी ही जानो।

वचन—28. जो प्रेम के बग़ैर है, एकता को नहीं चाहता और खुदग़र्ज है, वह उपदेशक चंडाल का सरूप जानें।

वचन—29. जो अपनी विद्या का बहुत ग़ुमान[4] रखता है और हर एक के साथ अन्दर से नफ़रत रखता होवे, और इन्द्रियों के भोगों में डूबा हुआ होवे, वह विद्वान न समझो बल्कि स्वान है। दुनिया को काट-काट करके खाने वाला है।

वचन—30. जो ज़्यादा स्त्रियों को उपदेश देने वाला होवे, और धन का लोभी होवे, और बहु-रंग की चाल चलने वाला होवे, वह उपदेशक

1. सूचित करना 2. अस्थाई 3. लीन, व्यस्त 4. अहं, अभियान

मानिन्द[1] कौवा के है। धर्म कर्म को नाश करने वाला समझो।

वचन—31. जिसके अन्दर और है और बाहिर से और कहता है, वह चालबाज़ और फ़रेबी है। दुनिया की तबाही करने वाला समझो।

वचन—32. जो बहुत राग का शौकीन है और बैजन्तर बहुत ताल से बजाता है, कभी नाचता है, कभी हँसता है, वह उपदेशक भी पाखण्डी है।

वचन—33. जिसके मन में उदासी नहीं है, और पापों से डरता नहीं है और जीवों से मन करके प्रेम नहीं रखता, वह कभी भी धर्म को पहचान नहीं सकता है, और न ही लोगों को रास्ती सिखला सकता है।

वचन—34. उपदेशक के वास्ते विद्या और निदिध्यास दोनों लाज़मी हैं। निर्मानता और निष्कामता को धारण करने वाला होवे वह उपदेशक दुनिया को सुखदाई है।

वचन—35. जिसने खुद अपने मन को पापों से आज़ाद किया है, ईश्वरी प्रेम और विश्वास को द ढ़ किया है; हर वक्त ईश्वर सिमरण को जिसने जाना है, दुनिया के तमाम सामान से आज़ाद होकर एक ईश्वर का ही भरोसा

1. भान्ति, तरह

रखता है; तमाम जीवों को ईश्वर का ही रूप जानकर उनको सुख देना अपना परम धर्म जानता है, वह उपदेशक धर्म का प्रकाश करने वाला है।

वचन–36. जिस सोसाइटी का जो उपदेशक होवे, वह उस सोसाइटी को सोशल ज़िन्दगी और रूहानी ज़िन्दगी के सुधार का उपदेश करे—वह उपदेशक सुखदाई है।

वचन–37. जो उपदेशक तत्त्व ज्ञान को प्राप्त हो चुका होवे, धीरजवान होवे, दुखियों के दुःख को महसूस करने वाला होवे, पाखण्ड को त्याग करने वाला होवे वह उपदेशक धर्म को प्रकाश करने वाला जानो।

वचन–38. जिस के अन्दर असली त्याग आया है और ईश्वरी आनन्द को प्राप्त हुआ है; तमाम जीवों के सुख की चाहना करने वाला है, वह उपदेशक धर्म का अवतार जानना चाहिए।

वचन–39. जिसने अपने मन और इन्द्रियों को काबू किया है और निष्काम चित्त को धारण किया है, दुःख-सुख में धीरज वाला है, वह उपदेशक धर्म का सरूप जानो।

वचन–40. जिसने समता तत्त्व को धारण किया है और समता ही के साधन में रहता है और हर एक को समता की हिदायत करता है, वह उपदेशक ममता रूपी घोर जाल से छुड़ाने वाला है और सत्यवादी है।

वचन—41. जो हर घड़ी निहकर्म अवस्था को अनुभव करता है, यानी आत्म-स्थिति वाला है, प्रेम और वैराग में पूर्ण है, वह उपदेशक खुद निज़ात को हासिल कर चुका है और लोगों को रास्ती सिखलाने वाला है। वह ही जगत-गुरु है।

वचन—42. जिसने शरीर के विकारों से जीत पाई है और ब्रह्म शब्द को प्राप्त हुआ है, और हर वक्त ईश्वरी प्रेम में मग्न रहता है, वह तत्त्ववेता पुरख सच्चा उपदेशक है।

वचन—43. जिसके अन्दर ब्रह्म प्रकाश हुआ है और माया के विकार से मुक्त हुआ है, वह उपदेशक परम सिद्धि देने वाला है।

वचन—44. जिसने सब संसार के अंजाम[1] को जाना है, यानी माया की प्रव त्ति और निव त्ति को अनुभव किया है, वह उपदेशक आनन्द दाता है।

वचन—45. जिसने पहले सही जाना है और फिर व्याख्यान किया है वह उपदेशक गुणकारी है।

वचन—46. जिसने पहले अपने मन को उपदेश देकर काबू किया है उसका उपदेश दुनिया को निज़ात[2] देने वाला है।

वचन—47. अपने सत्वचन पर जो अटल रहने वाला है, तन के नाश होने पर भी जो प्रण नहीं छोड़ता, वह उपदेशक धर्मवादी है।

1. परिणाम, फल, नतीजा 2. मुक्ति

वचन—48. जिसने अपना तन, मन, धन ईश्वर अर्पण किया है और द ढ़ निश्चय वाला है वह ही सच्चा उपदेशक है।

वचन—49. जो हर वक्त दुखियों की सेवा करने वाला और अपना सुख न चाहने वाला, ईश्वर का प्रेम अधिक रखने वाला—वह उपदेशक धर्म का सूरज है।

वचन—50. जो खुद अमल करता है सत्कर्मों पर और हृदय से सेवक रूप है सब जगत का, हर एक जीव की कल्याण चाहने वाला चित्त जिसका, अपने और ग़ैर के साथ एक जैसा प्रेम रखने वाला सत्वचन और मन का सुशील, परम भगति ईश्वर की धारण करने वाला, निर्मान भाव और सरब दयालु उत्साह रखने वाला उपदेशक सब संसार को कल्याण देने वाला है और वह ही धर्म अवतार है।

चौदहवाँ उपदेश, धर्म उपदेशक समाप्त।
तीसरा अनुभव समता नीति समाप्त हुआ।

ब्रह्म सत्यम् सर्वाधार

समता अपार शक्ति

महामन्त्र

ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा
अद्वैत पुरखा सर्व-व्यापक
कल्याण-मूरत परमेश्वराय
नमस्तं

चौथा अनुभव—समता धार

पहला भाग - समता धर्म

वचन—1. धर्म का यथार्थ अर्थ धारणा है यानी मन, वचन, कर्म करके किसी भाव को धारण करना। असत् भावना के धारण करने को अधर्म कहते हैं और सत् भावना के धारण करने को धर्म कहते हैं।

वचन—2. समता धर्म यानी बुद्धि का सम भाव में स्थित हो जाना, तमाम कामना और कल्पना से आज़ाद हो जाना, अपने निज सरूप यानी आत्म-आनन्द में प्रवेश कर जाना, जन्म और मरण के भय से मुक्त होकर अपने अन्तर विखे सत्‌सरूप में लीन हो जाना-यह

अवस्था ही पूर्ण धर्म का सरूप है और सब महापुरुषों की यह ही इन्तहाई तह्क़ीक़ात[1] है। उन्होंने इस अवस्था को प्राप्त होने की ख़ातिर अनेक प्रकार की साधना को प्रगट करके धर्म सरूप को प्रकाश किया, यानी सत्कर्म, सत्विचार, सत्विश्वास, सत्पुरुषार्थ, सत्संग और बन्धन, मुक्त भेद का निर्णय किया। इस प्रकार जो धर्म के सरूप को जानने वाला है और हृदय से इन शुभ गुणों का निदिध्यासी भी है, वह ही समता धर्म अखण्ड शान्ति को प्राप्त होवेगा।

वचन—3. अनानियत की गिरफ़्तारी[2] में जीव कई भावों में हर वक्त लीन रहता है, यानी स्वार्थ की कैद से द ढ़ निश्चित नहीं होता। इस चलायमान हालत में कई क़िस्म के पुण्य और पाप करता है और उनके फल की वासना में आसक्त होकर हर वक्त जलता रहता है। यह ही भ्रम अन्धकार है। हर एक जीव की अन्तरगति हालत यह ही होती रहती है, ख़्वाहे बड़े से बड़े ऐश्वर्य को क्यों न धारण कर लेवे।

वचन—4. इस अन्धकार से छूटने के वास्ते समता धर्म का मार्ग है जिसको प्राप्त करके जीव जल्दी ही परमानन्द को प्राप्त हो जाता है। हर एक जीव का परम यत्न यह ही होना चाहिये

1. अन्तिम खोज 2. अहंभाव की पकड़

कि समता मार्ग में चलकर अपनी कल्याण को हासिल कर लेवे। धर्म से पवित्रताई प्राप्त होती है, यानी शारीरिक, मानसिक और निश्चय शुद्धि को प्राप्त होता है।

वचन—5. इन तीनों हालतों की शुद्धि करनी, यानी शरीर, मन, बुद्धि को पवित्र करना ही असली धर्म का जानना है। अगर ऐसी साधना को प्राप्त नहीं हुआ तो वह धर्म के असली सरूप को न पहिचान सकता है और न ही असली शाँति को प्राप्त हो सकता है। सब महापुरुषों का यथार्थ उपदेश इन ही हालतों की शुद्धि का साधन बतलाता है। जो कायर और स्वार्थवादी अपनी कल्याण तो कर नहीं सकते वे पन्थ-भेद और कई प्रकार के मज़हबी बादमुबाद में लगे रहते हैं। वह न तो खुद शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं, और न ही साधारण जीवों को शान्ति की तरफ जाने देते हैं। यह अन्धकारमयी पन्थ-भेद का झगड़ा असली अज्ञान है और समता शान्ति को किसी सूरत में प्राप्त होने नहीं देता।

वचन—6. जीव को अपनी कल्याण की ख़ातिर धर्म सरूप को धारणा है न कि बादमुबाद और लोक दिखलावे की ख़ातिर। जिस वक्त अपनी तमाम कमज़ोरियों से पवित्र हो जावे, यानी समता आनन्द में लीन हो जावे, उसी वक्त वह गुणी पुरुष जीवों की कल्याण की ख़ातिर अपने पवित्र जीवन को तमाम जनता

की सेवा में भेंट करे। यह ही रास्ता गुरुओं, पीरों और अवतारों का है। जिस निश्चय को लेकर उस महापुरुष ने परम आनन्द को प्राप्त किया है, इस निश्चय से कई जीवों का उद्धार होता है। ऐसी पवित्र अवस्था को प्राप्त हुए जो महापुरुष जनता के उद्धार में अपना जीवन त्याग करते हैं, उनका सत् उपदेश और आदर्श धारण करना असली कल्याण के देने वाला है।

वचन—7. शारीरिक, मानसिक और निश्चय शक्ति को पवित्र करने की खातिर अनेक प्रकार के यतन महापुरुषों ने बतलाये हैं, जिनका पूर्ण प्रयोजन समता शान्ति की प्राप्ति ही है। यानी सत् साधना को धारण करके अपनी बुद्धि को निर्मल करके शब्द-सरूप अखण्ड-आनन्द में स्थिति प्राप्त करे। इस निश्चय के बग़ैर जो कोई और धर्म का सरूप मानता है, वह पाखण्डी और तोहमात परस्ती करने वाला है। स्वार्थ की कैद तो जीव को हर हालत में परेशान करती है। इस वास्ते जो स्वार्थमयी धर्म है वह असली धर्म नहीं है, बल्कि व्यापार है; यानी मिथ्या शरीर के भोगों की ख़ातिर कुछ न कुछ साधना धारण करते रहना।

वचन—8. स्वार्थ धर्म महज़ देह के भोगों की खातिर है, जो तीन काल अशान्ति के देने वाले हैं। यानी भोग अन्धकार में त ष्णा और भय से

एक लमह भी मुक्त नहीं हो सकता। स्वार्थ धर्म से देह के सुख और दुःख में हर वक्त गिरफ़्तार रहता है। असली समता शान्ति को हासिल नहीं कर सकता। स्वार्थ धर्म से ऊँच-नीच जूनियों में प्राप्त होता रहता है। अपने नित् सरूप को हासिल नहीं कर सकता जब तक कि परमार्थिक बुद्धि प्राप्त न होवे।

वचन—9. परमार्थ साधन जो धर्म है वह असली धर्म है। यानी सत् निश्चय को धारण करके सतपद समता, जो तीन काल शुद्ध सरूप है, उसको प्राप्त करने का पुरुषार्थ धारण करे। यह निश्चय ही असली शान्ति के देने वाला है। उस वक्त तमाम पन्थ-भेद के बाद-मुबाद को छोड़कर जीव अपनी आत्मिक उन्नति के यतन में प्रव त्त होता है और तमाम विकारों पर काबू पाने की खातिर हर घड़ी हर लमह सत् सरूप में निश्चल रहता है। ऐसी भावना जिस जीव को प्राप्त हुई है वो ही समता धर्म के जानने वाला है।

वचन—10. शरीर की शुद्धि स्नान से, पवित्र आहार, पवित्र व्यौहार और पवित्र संगत से होती है। मन की शुद्धि सत्विचार, दान, तप, वैराग और सतनाम के निदिध्यास से होती है। बुद्धि की शुद्धि द ढ़ निश्चय से एक ईश्वर सरूप में लगाने से होती है। बुद्धि जिस

वक्त पूर्ण आत्मपरायण हो जाती है, उस वक्त मन, इन्द्रियों पर काबू पा जाती है, और शुद्ध अविनाशी सरूप में हर वक्त मग्न रहती है। यह ही अवस्था असली समता शान्ति है। जब तक मन, देह, इन्द्रियाँ और बुद्धि पवित्र न होवे, तब तक कभी भी असली शांति को जीव प्राप्त नहीं हो सकता, ख़्वाहे शरीर के टुकड़े-टुकड़े क्यों न कर देवे। अपने रोग का जिसने उपाय नहीं किया और विद्या को धारण करके बड़े-बड़े व्याख्यान जिसने किये, वह सब अकार्थ ही जानें। जैसे जल में मछली प्यासी रहती है ऐसे ही वह गुणी पुरुष बेअमल होने के कारण नादान ही जानें।

वचन—11. तमाम दुनिया का फ़लसफ़ा[1] और तहक़ीक़ात आखिर जीव की शान्ति की तलाश दिखलाता है। जिसने अपनी ज़िन्दगी को पवित्र नहीं किया, सत् विचार को धारण करके, वह महज़ पशु ही जानें। तमाम महात्माओं की तहक़ीक़ात यह ही है कि ज़िन्दगी के होते-होते असली खुशी समता को हासिल कर लेवें, जिससे जीव का सब अज़ाब[2] नाश हो जावे।

वचन—12. जिसने अपनी आत्मिक उन्नति नहीं की और स्वार्थ की खातिर कई तरीकों को इख़्तियार करके अपनी बुद्धि को जो भरमाता रहता है, यानी ईश्वर विश्वासी नहीं होता, वह ही असली मूर्ख जानना चाहिये।

1. तत्त्वज्ञान, दर्शन 2. दुःख

हर एक साधना का फल अपने सत्-विश्वास से प्राप्त होता है। जिसने न सही करके जाना है और न ही सही कोशिश इख़्तियार की है, और न ही आख़िरत का जिसने अन्जाम[1] सोचा है, वह आरज़ी धर्म के जानने वाला भी नादान ही है।

वचन—13. तमाम वर्ण, आश्रम, मज़हब और पन्थ नालों की सूरत इख़्तियार किये हुए समता के समुन्द्र की तरफ दौड़ रहे हैं, जो परम प्रकाश है। मगर छोटी अक्ल वाला असलियत से बे बहरा होकर और खुद बाअमल[2] न होने से हर वक्त मज़हबी झगड़ों की तलाश करता रहता है। यह ज़हालत ही असली शैतानियत है। जो ऐसी नादानी में हर वक्त गिरफ़्तार रहते हैं, वे अपने पेशवाओं की ज़िन्दगी पर धब्बा लगाने वाले हैं और उनकी कुर्बानी को फ़रोख्त करके[3] अपने पेट का गुज़ारा करते हैं। वे असली धर्म के नाशक हैं, न खुद असली खुशी को प्राप्त हुए हैं न ही किसी को आगाह कर सके। महज़ बादमुबाद में अपनी ज़िन्दगी को छोड़कर ग़फ़लत में मिट गये हैं, और मिट जायेंगे।

वचन—14. ईश्वर शक्ति जिस तरह सब जगह और सब वक्त में एक सरूप में विचरती है, उसी तरह महापुरुषों ने अनुभव करके तमाम साधना के सरूप को प्रगट करके शाँति का रास्ता दिखलाया है। मगर जो चलने वाला

1. परिणाम 2. क्रियान्वित 3. बेचकर

है वह एक दिन मन्ज़ल मक़सूद को पहुंच जावेगा और जो बैठा हुआ ही बातें बनाता है वह असली गुमराह करने वाला है। न खुद कुछ कर सकता है और न दूसरों को तसल्ली दे सकता है।

वचन—15. हर एक सत्पुरुष ने अपनी गफ़लत को छोड़कर सत् सरूप को प्राप्त किया और जिन वजूहातों[1] से उन्होंने असली खुशी हासिल की, वे विचार सुनाए। उन्हीं विचारों का मजमुआ[2] धार्मिक पुस्तकें हैं। अगर उन विचारों को अमल में लाया जावे तो कुछ न कुछ कल्याण हो ही जावे, मगर जो महज़[3] मज़हब की आड़ लिये हुए जा रहे हैं और बिल्कुल अमल से बे बहरा हैं, वे न तो असलियत के जानने वाले हैं और न ही अपने बुज़ुर्गों के गौरव को जान सकते हैं। महज़ हुज्जत-बाज़ी में लगे रहते हैं और ज़िन्दगी को रायगाँ[4] खो रहे हैं।

वचन—16. असली खुशी का मम्बा[5] हर एक जीव के अन्दर है। मगर बग़ैर अन्तःकरण की शुद्धि के कोई उसको हासिल नहीं कर सकता है। अपनी गुमराह[6] और मुनकिर[7] अक्ल को उस मालिक-ए-कुल की तरफ रुजू किए बग़ैर कभी भी असली खुशी नहीं मिलती है। यह दुनिया एक गहरा हज़ाब है। रोशन ज़मीरी[8] से समझ में आ सकता है। नहीं तो हज़ाब[9] ही को खुशी मानकर हर वक्त जीव

1. कारणों 2. योग, जमा 3. केवल 4. अकार्थ 5. स्रोत 6. मार्ग भ्रष्ट, भूला हुआ 7. न मानना 8. आत्म प्रकाश 9. दुःख

परेशान रहता है। किसी हालत में भी असली शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता।

वचन—17. इस बेकरारी[1] हालत से मुखलसी[2] पाने की ख़ातिर सत्पुरुषों का सत उपदेश है जिसको अपना करके[3] जीव अपने अन्दर ही उस मालिक-ए-कुल को देख लेता है। यानी अपने असली स्वरूप को जानकर जन्म और मरण की कैद से रिहा हो जाता है। यह हालत ही समता धर्म प्राप्ति की है। हर वक्त अपने अन्जाम[4] की खबर रखनी चाहिये जिससे ज़हालत का नाश हो जावे और परम शान्ति मिले।

वचन—18. धर्म का स्वरूप हर पहलू में सही जानना चाहिये। जीव की कल्याणता समता प्राप्ति से है। बग़ैर समता की तहक़ीक़ात[5] के कभी खुशी हासिल नहीं हो सकती। यह निश्चय करके विचार करना चाहिये। हर एक चीज़ समता के बल से कायम[6] है। जो चीज़ समता से हीन हो जाती है, वह उस सरूप से मिट जाती है। यह ही ईश्वर शक्ति का चमत्कार है। हर वक्त अपने अन्दर सही तलाश करनी चाहिए।

वचन—19. अपनी ग़फ़लत[7] को छोड़कर असली ज़िन्दगी की तलाश करनी असली समता की तलाश है। जो मलीन बुद्धि के द्वारा अपनी ग़फ़लत को छोड़ नहीं सकता और बराय नाम[8] मज़हबों का दम भरने वाला है,

1. अधीरता 2. छुटकारा, मुक्ति 3. धारण करके 4. परिणाम 5. खोज 6. स्थिर 7. लापरवाही 8. नाम मात्र

वह असली खुशी से बहुत दूर है जो उसके पेशवाओं[1] को हासिल हुई। क्योंकि वह सही नक्शे कदम पर अपने बुज़ुर्गों के चलने वाला नहीं है, बल्कि उनके जीवन आदर्श से भी नावाक़िफ़ है।

वचन–20. हर एक कालिब[2] के अन्दर मालिक-ए-कुल रोशन हो रहा है। खुदी के हज़ाब[3] से जीव उसको जान नहीं सकता। खुदी से अबूर[4] पाने की ख़ातिर धर्म या ईमान है जिसको हासिल करके असली खुशी यानी मालिक-ए-कुल का मिलाप हासिल होता है। यह ही समता पद है। तमाम रंजोग़म[5] से मुक्त होकर जीव पूर्ण रूप हो जाता है। तमाम कामिल[6] बुज़ुर्गों का फ़लसफ़ा[7] इस जगह आकर खत्म हुआ है।

वचन–21. मज़हबी झगड़े मुक्ति नहीं दे सकते हैं, जब तक कि अपने आपको उन सही तरीकों में वक्फ़[8] न किया जावे, जो बुज़ुर्गों का सत् उपदेश है। मनुष्य का जन्म असली खुशी को हासिल करने की ख़ातिर है जो समता का पूर्ण रूप है। इसलिये हर घड़ी अपनी मूर्खताई को छोड़कर सत्सरूप आत्मा का विश्वासी और अभ्यासी होना चाहिये। दुःख व सुख ईश्वर की आज्ञा में जानकर धीरजवान रहना चाहिये। यह ही असली कल्याण का मार्ग है। अपने मन को एकाग्र करके ईश्वर नाम में लगाना चाहिये। ईश्वर

1. रहबरों, मार्ग दर्शकों 2. शरीर 3. स्वार्थ की कैद अथवा पर्दा 4. पार पाना, काबू पाना 5. कलह-क्लेश 6. पूर्ण 7. तत्त्व ज्ञान 8. समर्पित

सत् है, बाकी सब भय और भ्रम है। हर एक जीव का परम साधन यह ही है कि अपनी ग़फ़लत से मुक्त होकर ईश्वर परायण जीवन धारण करना। यह पुरुषार्थ ही समता धर्म के प्रकाश को देने वाला है। सत् बुद्धि से हर वक्त सत् मार्ग में द ढ़ होना चाहिये। शरीर पल-पल में नाश को प्राप्त हो रहा है।

वचन—22. तमाम पन्थ-भेद और मज़हबी झगड़ों को छोड़कर अपनी आत्मिक उन्नति करनी चाहिये, यानी आचार-विचार को पवित्र करके अपने जीवन सरूप की तलाश करनी चाहिये। तमाम शरीर की शक्ति उस मालिक-ए-कुल से जाननी चाहिये और हर वक्त अपने मन को एकाग्र करके परमेश्वर का सिमरण करना चाहिये, और अपने अन्तर विखे उस प्रकाशमयी जीवन शक्ति को अनुभव करना चाहिये। खुशी, ग़मी सब उसकी आज्ञा में समझकर सावधान रहना चाहिए। ऐसा द ढ़ निश्चय हासिल होने से मन सब भ्रमों को छोड़कर सत् शब्द ब्रह्म सरूप में लीन हो जाता है, जो समता धर्म का पूर्ण रूप है। सब संकट और अज्ञान से उस वक्त मुक्ति हासिल होती है। वह ही परम पद है। कोई ही पूर्ण कर्मी उसको प्राप्त होता है। उसकी कीर्ति दुर्लभ है। तमाम सत्पुरुषों का असली धाम यह ही है कि तमाम ख़्वाहिशों से मुखलिसी[1] पाकर समता आनन्द को प्राप्त

1. इच्छाओं से छुटकारा

हुए। उनके अन्दर तमाम औसाफ़[1] समता आनन्द की प्राप्ति से प्रगट हुए। हर वक्त सही मार्ग समता धर्म की तलाश करनी चाहिए और बादमुबाद से मुख़लिसी[2] हासिल करनी चाहिये। यह ही मानुष ज़िन्दगी का फल है।

वचन—23. ममता सरूप अज्ञान का है, यानी मिथ्या कल्पना का अभिमानी हो जाना, और समता सरूप ज्ञान का है यानी सत् सरूप में निश्चित होना। ममता के चक्र में सब चौरासी लाख जीव भरम रहे हैं। एक पलक भी निर्भय अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। कर्म फल की वासना की कैद में हर वक्त आवागवन में चक्र लगाते रहते हैं। यह ही सब संसार का खेल है।

वचन—24. कर्म फल की वासना राग-द्वेष में जीव को हर वक्त आसक्त करती रहती है। बड़े-से-बड़े परिश्रम करने से भी जीव तखित[3] रहता है। इस भयंकर माया के जन्तर से छूटने के वास्ते केवल एक समता धर्म का ही मार्ग है।

वचन—25. हर वक्त जो अशान्ति जीव को भरमाती है यानी शुभ-अशुभ कर्मों की गिरफ़्तारी, इससे जीव किसी हालत में भी निहकर्म अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता बग़ैर समता धर्म

1. गुण, विशेषताएँ 2. छुटकारा 3. प्यासा

की प्राप्ति के। कर्म फल की वासना एक गहरा जाल है। जब तक सम्मत (समत्व) बुद्धि प्राप्त न होवे तब तक कभी भी माया के मोह जंजाल से छूट नहीं सकता। इस ही अति क्लेश में सब जीव विचर रहे हैं।

वचन—26. मार्ग धर्म की प्राप्ति का फल यह ही है कि जीव तमाम कर्मों की कैद से मुक्त होकर निहकर्म सरूप पारब्रह्म को प्राप्त हो जावे, जो केवल समता शान्ति है। जब तक जीव स्वार्थ के धर्म में लीन रहता है, यानी अपनी कामना की खातिर सत्कर्म को धारण करता है, इसका फल छिन में प्राप्त करके फिर संकट को प्राप्त होता है। बग़ैर निष्काम कर्म की साधना के आवागवन से नहीं छूट सकता है।

वचन—27. एक ईश्वर विश्वास के बिना दूसरी शक्ति का आधारी होना, यह मन्द बुद्धि का निश्चय है। यानी बुद्धि अति कामनाओं के वश होकर निज स्वार्थ की ख़ातिर अनेक प्रकार की साधना को इख़्तियार करके हर वक्त भय में गिरफ़्तार रहती है और परम शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकती है। बार-बार जन्म-मरण के चक्र में फिरती है।

वचन—28. यथार्थ धर्म-सरूप को जान करके अपनी कल्याण का पुरुषार्थ करना चाहिये। यह भव-मार्ग अति दुस्तर है। निर्मल बुद्धि द्वारा नित सत्-धर्म में प्रवीण रहना चाहिये,

जिससे मन सब उपाधियों से छूट कर समता शान्ति को प्राप्त हो जावे और ममता के अन्धकार से छुटकारा हासिल करे।

वचन—29. हर वक्त कर्म गति का विचार करना चाहिये। पाप कर्मों से मन को रोकना चाहिये। सत्संग द्वारा अपने जीवन को धर्म-परायण बनाना चाहिये। निज स्वार्थ को त्यागकर ईश्वर की भावी में निश्चित होना चाहिये। हर घड़ी, हर लमह उस मालिक-ए-कुल की याद करनी चाहिये। दुःखी, अनाथों और अशक्त पुरुषों की यथा शक्ति सेवा करनी चाहिये। कर्त्ता, हर्ता, सर्व स्वामी नारायण का पूर्ण विश्वासी होकर मार्ग धर्म में निश्चल होना चाहिये। ऐसी भावना ही सब तापों के नाश करने वाली है और धर्म का पूर्ण सरूप है। जो नित ही नित अपने मन को सत् मार्ग में लगाए रखता है वह ही धर्मात्मा है।

वचन—30. एक ईश्वर को कुल दुनिया का आधार मानना और नित आनन्द सरूप जानना और हर एक के अन्दर उसका प्रकाश देखना, तमाम कर्मों के फल की वासना ईश्वर निमित्त त्याग करना, हर वक्त दीन भाव को धारण करना, सब जीवों का हितकारी होना, मन, वच, कर्म से सबका भला चाहना,

अपने शरीर के मद को त्याग करना, हर एक गुणी पुरुष का सत्कार करना, हर वक्त अपने जीवन उद्धार की ख़ातिर यत्न धारण करना, नाशवान् शरीर से जीवित में ही उपरस हो जाना और आत्म-आनन्द में हर वक्त मग्न रहना, यह धारणा ही असली धर्म है। इसको प्राप्त हो करके जीव सम भाव ब्रह्म शब्द में लीन हो जाता है जो सब संसार का मूल है और आनन्द धाम है।

वचन–31. शान्ति की खातिर तमाम धर्म कर्म हैं। जिसके मन में ईश्वर विश्वास नहीं आया और न ही जिसने अपनी अन्तिम दशा का विचार किया वह स्वार्थवादी पुरुष मार्ग धर्म को न जान सकता है और न उस पर कारबन्द हो सकता है। सत् नियमों के धारण करने से बुद्धि बलवान होकर सत् सरूप में निश्चल हो जाती है। इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके मन को मार्ग धर्म में लगाना चाहिये जिससे नित्य आनन्द अवस्था प्राप्त होवे और तमाम संकट से जीव मुक्ति हासिल करे।

वचन–32. मलीन कर्मों में तो जीव हर वक्त भरमता रहता है, यह प्रकृति का नियम है। सत्कर्मों में यत्न करके मन को लगाना यह धर्म का

विश्वास है। ऐसी द ढ़ता ही जीव को परम पद देती है। गुणी पुरुष हर वक्त अपनी कल्याण का यत्न करते रहते हैं, और बन्धन सरूप पाप कर्मों में मन को आसक्त होने नहीं देते। यह ही आत्मिक उन्नति का सरूप है।

वचन—33. त ष्णा रूपी बड़वाग्नि से शान्त होने की ख़ातिर एक धर्म का ही मार्ग है। इस वास्ते सत्पुरुषों की सत सिख्या द्वारा अपनी कल्याण करनी चाहिये। मानुष जन्म का असली सिद्धान्त यह ही है। हर वक्त अपने मन को आत्म-परायण बनाना चाहिये और द ढ़ निश्चय से कर्म जंजाल की आसक्ता को त्यागना चाहिये। अपने मानसिक रोग का उपाय नित ही करके अभय पद को प्राप्त होना चाहिये। यह ही असली धर्म सरूप की धारणा है।

वचन—34. जब तक मन पाप कर्मों में बँधा हुआ है, यानी इन्द्रियों के भोगों में सत्-असत् का विचार नहीं करता है, तब तक धर्म मार्ग से बहुत दूर है। यानी जड़ बुद्धि से हर वक्त मलीन हो रहा है और संसारी पदार्थों की कामना में पलक-पलक चलायमान होता रहता है। वह ही परम दुःखी और अधर्मी है।

वचन–35. इस मिथ्या संसार में जिसने एक ईश्वर का भरोसा लिया है, और तमाम शरीर के भोगों से जिसने छुटकारा पाकर एक अवगत नाम का पान किया है; तन, मन, धन करके लोक-सेवा में जो प्रव त्त हुआ है; दुःखी जीवों की खातिर जो अपना सुख त्याग करता है, हर वक्त निर्मान और प्रेम सरूप को जिसने धारण कर रखा है, एकान्त में बैठकर जो आत्म-चिन्तन करता है और तमाम संसारी पदार्थों से जो वैरागवान रहता है, शरीर का आधार एक आत्मा ही जो देखता है; कर्म फल हर वक्त जो नारायण के अर्पण करता है और साखी-सरूप को साक्षात् करके अन्तर विखे जो लीन रहता है, तमाम शरीर की गति से ऊँचा होकर शब्द-सरूप में जो स्थित हुआ है, द्वन्द्व विकार में जिसकी बुद्धि चलायमान नहीं होती है, वह ही महापुरुष सर्व उपमा योग धर्म के जानने वाला है और परम ज्ञानी है। उसकी सिखया और रहनी साधारण जीवों के वास्ते कल्याणकारी है। वह ही नमस्कार करने योग है। समता धर्म के भेद को उसी ने जाना है। धर्म की प्राप्ति का फल उस महापुरुष ने अपना निज-सरूप ''समता आनन्द'' प्राप्त कर लिया है और इस संसार से पूर्ण होकर चला है। उसी के

जीवन आनन्द से धर्म की महिमा अनन्त सरूप में पाई गई है। सत्-बुद्धि कर के विचार करें और सत-धारणा में मन को लगायें। इसी में असली खुशी है।

वचन—36. तमाम पन्थ, भेद और मज़हब का झगड़ा अज्ञान में है। वास्तव में मज़हब का कोई सरूप नहीं है। केवल समता आनन्द ही एक निर्मल धर्म है। जीव शरीर की कैद में आकर पन्थ व मज़हब का अभिमानी हो जाता है। वास्तव में जीव का कोई मज़हब नहीं है। जीव को बन्धन सिर्फ अपनी कल्पना का ही है। कल्पना ही को माया या भ्रम कहते हैं। निर्बन्ध अवस्था ही असली खुशी और आनन्द है। उसी तत्त्व को 'समता' कहते हैं, यानी हर हालत में पूर्ण—तमाम संसार का वह ही जगह मरकज़ है, और जीव की आनन्दमयी हालत भी वह ही है, और सत्पुरुषों की सार सत् प्राप्ति भी वह ही अवस्था है।

वचन—37. निर्वाण अवस्था की प्राप्ति के जो यत्न सत् पुरुषों ने बताए हैं, यानी अपने सत् विचार प्रगट किये हैं, वे ही मज़हब की सूरत में ज़ाहिर हैं। उन शुभ गुणों पर सही अमल करने से कल्याण होती है, जिस तरह कि सत्पुरुषों ने खुद अमल किया है।

वचन—38. जीव को वास्तव में आज़ादी की चाहना है, मगर अज्ञानवश होकर कर्म फल भोग में आज़ादी चाहता है। इस नासमझी को लिए हुए आवागमन के चक्र में फिरता रहता है। असली आनन्द को प्राप्त नहीं हो सकता है। यानी तमाम प्रक ति का जाल कर्ममयी है, जीव प्रक ति के मोह में फँसकर कर्मों की कैद में आ जाता है और कई जन्म तक भरमता रहता है। इस भ्रम अन्धकार को नाश करने की ख़ातिर समता ज्ञान है, जिसको प्राप्त करके जीव पूर्ण रूप हो जाता है यानी अपने आप में लीन हो जाता है।

वचन—39. जिस गुणी पुरुष ने अपनी कल्याण की ख़ातिर किसी सत्पुरुष के सत् उपदेश को धारण किया है, और हर घड़ी ईश्वर प्राप्ति का यत्न करता है, और मज़हबी बादमुबाद से जो मुतलक आज़ाद रहता है, वह किसी वक्त ज़रूर ही पूर्ण आनन्द को प्राप्त हो जावेगा।

वचन—40. सत् विश्वास करके जिसने अपने साखी पुरुष का चिन्तन किया है और अपने आप को कर्म जंजाल से हर वक्त जो आज़ाद करता है, यानी निष्काम कर्म को धारण किये हुए है, स्वार्थ अन्धकार को जिसने हृदय से नाश कर दिया है और हर वक्त परोपकार और पर सुख में जो लगा रहता

है, अपने मन को ईश्वर नाम के साथ जिसने एक कर दिया है, वह ही गुणी पुरुष अपने अन्तर विखे ब्रह्म प्रकाश को प्राप्त हुआ है और द्वैत उपाधि से मुक्त हुआ है। उसने असली धर्म को जाना है और वह ही सत्पुरुष है। उसकी हिदायत आनन्द के देने वाली है। इस वास्ते बादमुबाद को छोड़कर अपनी आत्मिक उन्नति करनी चाहिए। सत् श्रद्धा से सत् धर्म को धारण करके समता आनन्द को प्राप्त होना ही परम तप है। हर वक्त कोशिश करनी चाहिये।

वचन—41. तमाम बुज़ुर्गों का जीवन सरूप तो धर्म के सरूप में अमली मालूम होता है, यानी निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निहचलता और परोपकार आदि गुणों सहित है। तो फिर यह दुनिया में मज़हबी कशमकश[1] का कारण क्या है? असलियत यह है कि शरीर सम्बन्धी जो रिवाज़ कायम हैं, वे धर्म की सूरत में जानकर हर एक छोटी अक़ल वाला तास्सुब और बुग्ज़[2] को इख़्तियार कर लेता है।

वचन—42. शरीर सम्बन्धी जो धर्म संस्कार हैं वे आरज़ी हैं। इन पर झगड़ा करना महज़ नादानी है। असली धर्म जिससे मन पवित्र होता है,

1. खींचातानी 2. धार्मिक कट्टरता और द्वेष

जिस तरीके को इख़्तियार करके मन ईश्वर विश्वासी हो जावे और मान, मद, ईर्खा से छुटकारा पाये, वह धर्म निज़ात[1] के देने वाला है। शरीर सम्बन्धी संस्कार अलहदा-अलहदा[2] सरूप में हर एक मज़हब के हैं। यह वक्त के मुताबिक महापुरुषों ने ज़ाहिरी धर्म के चिन्ह कायम किये हैं। विचार तो इस बात का करना है कि ज़ाहिरा[3] तो किसी पन्थ के चिन्ह इख़्तियार[4] कर लिए मगर अन्दरूनी वह बिलकुल असलियत से बेबहरा[5] होकर मलीन कर्मों में विचर रहा है। वह किसी सूरत में भी धर्मवान नहीं हो सकता, ख़्वाहे ज़ाहिरी कितने भी रूप क्यों न बनाये।

वचन—43. शरीर सम्बन्धी जो धर्म संस्कार हैं, यानी कोई केसधारी है, कोई रुण्ड-मुण्ड, कोई तिलकधारी है; कोई कुछ भेष धारण करता है कोई कुछ, कोई शरीर का अंग क्षीण करके बुनियादी चिन्ह इख़्तियार करता है। इन सब से बिलकुल आत्मिक उन्नति नहीं हो सकती। यह सिर्फ दिखलावा है और अपने आपको ज़ाहिर करना है कि मैं फलाँ मत और पेशवा[6] को मानने वाला हूँ।

वचन—44. सिर्फ़ पेशवाओं के ज़ाहिरी चिन्ह इख़्तियार करने से असली खुशी समता प्राप्त नहीं होती। जब तक कि सही तौर पर पेशवाओं के नक्शे-कदम[7] पर न चले और अपने अन्दर से स्वार्थ अंधकार का त्याग न करे

1. मुक्ति 2. अलग-अलग 3. स्पष्ट तौर पर 4. धारण करना 5. अंजान, बेखबर 6. रहबर, गुरु, मार्ग दर्शक 7. अनुकरण

और निष्काम कर्म की धारणा न करे। ज़ाहिरी चिन्ह इख़्तियार करने सिर्फ इतने ही माने रखते हैं कि जिस तरह कि बच्चा को विद्या की ख़ातिर स्कूल में बिठाया जाता है। आगे जब तक बच्चा पूरी कोशिश विद्या हासिल करने की खातिर न करेगा, तब तक कभी भी विद्वान नहीं हो सकता, ख़्वाहे सारी उमर स्कूल में क्यों न जाता रहे।

वचन—45. ज़ाहिरी चिन्ह वक्त, देश और जनता के ख़्याल के मुताबिक जारी होते आये हैं और तबदील भी हो जाते हैं। इस वास्ते यह असल धर्म नहीं है बल्कि रिवाज़ है। इन पर झगड़ा करना असली मानुषपने के विरुद्ध है। हर एक का गुण धारण करना चाहिये, न कि बादमुबाद[1] में अपनी बुद्धि को भ्रष्ट किया जावे।

वचन—46. जिस पन्थ या मज़हब में जो है वह अपनी ज़िन्दगी को सही असूलों पर ले जाकर राहत-ए-अबदी[2] हासिल करे। यह असली कोशिश उस मज़हब की और उसके पेशवाओं की हिदायत उसको हो रही है। अगर अपनी सफाई क़ल्ब[3] को छोड़कर महज़ ज़ाहिरी चिन्ह के इख़्तियार करने से जो मज़हबी लाफ[4] मार रहा है, वह असली जाहिल[5] है और अपने बुज़ुर्गों की सही तालीम से नावाकिफ़ है। वह कभी भी मालिक के दरबार से सुर्खरुई[6] हासिल नहीं कर सकेगा।

1. वाद-विवाद 2. शाश्वत शन्ति 3. ह दय की शुद्धि 4. डींग, झूठी बड़ाई 5. अज्ञानी, मूर्ख 6. सम्मान या इज़्ज़त

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—47. दुनिया में हर एक चीज़ बेनाम है। उसके गुण और कर्म से उसका नाम रखा गया है, या रखा जाता है। जिस तरह कि एक चीज़ के नाम से गुण और कर्म को हासिल करने की कोशिश करता है, उस तरह अपने मज़हब के नाम लेवा होकर उस मज़हब की सही वाक्फ़ियत हासिल करनी और उसके मेराज़[1] पर पहुँचने की कोशिश करनी, यह असली धारणा है और कल्याण के देने वाली है, यानी समता-आनन्द को प्राप्त करने वाली है।

वचन—48. हर एक बुज़ुर्ग की तालीम के दो पहलू हैं, और तमाम मज़हब भी दो रास्तों की हिदायत करते हैं। एक रास्ता लागर्ज़ी-फेल[2] यानी निष्काम कर्म का, दूसरा आला-ज़ात-लाफ़ानी[3] का महज़ तसव्वर[4] यानी ऐन-उल-यकीन[5] की हिदायत[6] करता है। हर दो रास्तों का मूजब[7] यह ही है कि हालते-बे-ख्वाहिशी[8] प्राप्त होवे। ख्वाहिश हर एक जीव को गहरा अज़ाब दे रही है। इन्हीं दो रास्तों पर चलकर बुद्धि निर्मल होती है और समता आनन्द को हासिल कर सकती है।

वचन—49. लाग़र्ज़ी फेल[9] यानी निष्काम कर्म का निर्णय यह है कि तमाम कर्मों के फल को ईश्वर अर्पण करना और खुशी व ग़मी से मुबर्रा[10] हो जाना। यह हालत ही समता आनन्द की

1. मंज़िल 2. निःस्वार्थ कर्म, निष्काम कर्म 3. सर्वश्रेष्ठ तथा अविनाशी 4. केवल ध्यान 5. द ढ़ विश्वास 6. शिक्षा 7. कारण 8. निरइच्छा हालत 9. निःस्वार्थ कर्म 10. ऊपर उठ जाना, विरक्त, निव त

है। दूसरा रास्ता, जो महज़ ईश्वरी तत्त्व का विज्ञान है, उसमें अपनी अनानियत[1] को छोड़कर अपनी ज़ात को ही मालिके कुल जानना है। इसको ज्ञान-योग करके महापुरुषों ने विचार किया है। एक रास्ता में मालिके कुल को फायल[2] जानकर इबादत[3] करनी है। दूसरे रास्ता में ज़ाते आला[4] को ग़ैर फायल[5] जानकर इबादत करनी है। यह दोनों तसव्वर[6] ही हर एक आमिल[7] के अन्दर होते हैं। इन तसव्वरों की ताकत से तमाम दुर्मत के जाल से अबूर[8] पा जाता है।

वचन—50. जिसने सही कोशिश करके अपनी ग़फ़लत का इलाज नहीं किया, वह किसी मज़हब को इख़्तियार करने से कभी खुशी हासिल नहीं कर सकेगा। तमाम मज़हब और पन्थ यह ही बताते हैं कि इस फना[9] होने वाली दुनिया में आकर लाफ़ानी[10] हस्ती की तहक़ीक़ात[11] करो जो असली खुशी है और रंज व ग़म[12] से बालातर है। अपनी ज़िन्दगी को हर वक्त साबिर[13] व साकिन[14] हालत की तरफ रागिब करना असली धर्म है और तमाम बुज़ुर्गों का जीवन यह ही है। हर एक मानुष को चाहिए कि ख्वाबे ग़फलत[15] से बेदार[16] होकर ख़्वाहिश रूपी अज़ाब[17] से मुखलिसी[18] हासिल करे। और समता धर्म

1. अहं 2. कर्त्ता 3. पूजा 4. सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ 5. अकर्त्ता 6. ध्यान, भावनाएँ 7. साधक, मुमुक्षु 8. लाँघ जाना, पार पाना 9. नाश, खत्म 10. अविनाशी 11. खोज 12. दुःख-तकलीफ 13. संतोष 14. शांत, निश्चल 15. लापरवाह हालत, अवहेलना युक्त स्थिति 16. जागत 17. दुःख 18. छुटकारा

में अपने आपको वक्फ़[1] करके समता-आनन्द को प्राप्त करे, जो इस जीव का असली मुक़ाम है। हर वक्त सही कोशिश इख़्तियार करना ही असली खुशी के देने वाला है।

समाप्तम्

समता मार्ग संदेश

वचन—1. समता मार्ग में आत्म-निश्चय और लोक सेवा मुख्य साधन है।

वचन—2. समता मार्ग में सत्संग सम्मेलन एक अधिक ज़रूरी नियम माना गया है जिसमें हाज़िर होकर अपनी कमज़ोरियों का विचार करना और सत् नियमों को अपनाने की ख़ातिर यत्न करना लाज़मी है।

वचन—3. समता मार्ग में देवी-देवताओं और मूर्ति पूजा उनके सही आदर्श अनुकूल गुण व कर्म की धारणा असली पूजा मानी गई है।

वचन—4. समता मार्ग में सूतक-पातक की निव त्ति की ख़ातिर सत्संग का सम्मेलन मुख्य साधन माना गया है।

वचन—5. समता मार्ग में सुबह व शाम ईश्वर सिमरण व ध्यान करना लाज़मी निश्चित किया गया है।

1. ईश्वरार्पण

ग्रन्थ

वचन—6. समता मार्ग में सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग, सत्‌सिमरण की धारणा पूर्ण भाव से धारण करनी लाज़मी मानी गयी है।

वचन—7. समता मार्ग में जो पुस्तक आत्म-सम्बन्धी विचार वाली हो इसका स्वाध्याय करना लाज़मी है।

वचन—8. समता मार्ग में वक्त की पाबन्दी, नुमायश और मुनश्शी चीज़ों से परहेज़ करना सार साधन माना गया है। यानी धर्म युक्त काम में पूरी वक्त की पाबन्दी होवे। नुमायशगाहों और नशों से मुखलिसी हासिल करनी।

वचन—9. समता मार्ग में तीर्थ यात्रा असली सत्संग ही माना गया है।

वचन—10. समता मार्ग में एक ईश्वर विश्वास परम धर्म माना गया है। और किसी चीज़ का भरोसा करना दुर्मति है।

वचन—11. समता मार्ग में अपनी उन्नति का पूर्ण जतन करना असली निश्चय है। किसी की गति करने का हक रखना और किसी से गति चाहना यह मन्द निश्चय है। यानी सत्पुरुषों की हिदायत के मुताबिक अपने अन्तःकरण की शुद्धि करना परम सिद्धि है।

वचन—12. समता मार्ग में निष्काम कर्म की साधना मुख्य यतन है, यानी तमाम कर्मों को ईश्वर विखे समर्पण करना और उसी की आज्ञा में दृढ़ विश्वासी होना। सकाम बुद्धि यानी कामना रखकर ईश्वर की शक्ति को छोड़कर कई देवी, देवताओं और ग्रहों की पूजा करनी और याचना करनी बिलकुल मना है। प्रारब्ध कर्म को कोई शक्ति बदल नहीं सकती, इस वास्ते ईश्वर विश्वास को छोड़कर दूसरे का भरोसा रखना असली कल्याण के देने वाला नहीं है।

वचन—13. समता मार्ग में हर एक सुकृत कारज के शुरू करने में ईश्वर की उस्तत करनी लाज़मी है और किसी चीज़ का आधारी होना मना है।

वचन—14. समता मार्ग में दुनियावी रस्मोरिवाज़ को बिल्कुल साधारण करना और शुद्ध रीति वाली रस्म का बर्ताव में लाना लाज़मी है। दीगर[1] तमाम तोहमात[2] का त्याग लाज़म[3] है।

वचन—15. समता मार्ग में हर एक अधिकारी की यथा योग्य सेवा करनी लाज़मी है। लोक दिखलावे की ख़ातिर प्रपंच बिलकुल मना है।

वचन—16. समता मार्ग में सही वक्त, सही कोशिश, सही विश्वास और सही संगत को धारण करना लाज़मी है।

1. शेष, बाकी 2. वहम 3. ज़रूरी

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—17. समता मार्ग में शारीरिक अवस्था का विचार और उसके मुताबिक धर्म मार्ग में बड़ी से बड़ी कोशिश करनी लाज़म है।

वचन—18. समता मार्ग में तमाम प्रेमी अपने-अपने परिवार को समता अनुकूल बनाएँ। यह हर एक समतावादी का पहला फ़र्ज़ है और छोटे बच्चों को शुरू से समता की तालीम में प्रव त्त करना परम धर्म है।

वचन—19. समता मार्ग में ईश्वर आज्ञा को द ढ़ करके धारण करना परम साधन है। कर्म और निहकर्म भेद को जानना विशेष सत्संग है।

वचन—20. समता मार्ग में आत्मचिन्तन करना और सत्कर्म को धारण करना सार भक्ति है।

वचन—21. समता की तालीम आम हिन्दू सम्प्रदाय में और दीगर मज़हब में इस तरह है जिस तरह माला के मनकों में धागा।

वचन—22. समता की तालीम हर एक मज़हब की परस्तिशगाह[1] में जाने की इज़ाज़त देती है, ताकि उस जगह जाकर सही वाक़यात[2] को हासिल करें और अपने सत्संग में भी तमाम भाव की जनता को प्रेमपूर्वक स्वागत करने की और सत्विचार सुनाने की इज़ाज़त देती है।

वचन—23. दुनियावी रस्मोरिवाज़ जिस तरीका के जिस सम्प्रदाय में रायज़[3] हैं उन पर चन्दां[4] बादमुबाद[5] करने की कोई ज़रूरत नहीं।

ॐ समता अपार शक्ति ॐ

1. पूजा के स्थान 2. हालात 3. कायम, प्रचलित 4. सर्वथा, बिलकुल 5. वाद-विवाद

वचन—24. समता की तालीम इख़लाकी[1] ज़िन्दगी, और रूहानी[2] ज़िन्दगी और देशभक्ति में हर तरह से कुर्बानी करके अपने जीवन को अमली[3] बनाना सिखलाती है।

वचन—25. समता की तालीम सही कानूने कुदरत[4] का मुताल्या[5] करने में और अपने आपको कुदरती[6] जीवन बनाने के वास्ते हिदायत करती है।

वचन—26. समता की तालीम तमाम इख़लाकी बुज़ुर्गों[6-क] के जीवन आदर्श का विचार सुनना और उस पर कारबन्द[7] होना सिखलाती है।

वचन—27. अगर कोई नासमझी से सही ईश्वरी कानून से नावाकिफ़ और कई तरह के तोहमात[8] में फँसा हुआ है, उसको प्रेमपूर्वक अच्छी तरह समझाना हर एक समतावादी का प्रथम धर्म है।

वचन—28. अगर सही ग़ौर करके अपने जीवन सरूप को सही धर्म में ले आवे तो उसकी मर्ज़ी, नहीं तो ज़्यादा बादमुबाद करना समता के असूल के खिलाफ़ है।

वचन—29. समता मार्ग में निष्काम भाव से सत्कर्म की धारणा असली कल्याणकारी यतन माना गया है। तमाम गुणी पुरुषों का मार्ग यह ही है।

1. आचरण वाली, चरित्रिक 2. आध्यात्मिक 3. क्रियान्वित 4. प्राक तिक नियम 5. अध्ययन 6. प्राक तिक 6. क. सतपुरुषों 7. पाबन्द 8. वहमों

ॐ ग्रन्थ ॐ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—30. समता की तालीम धर्म मार्ग पर पाबन्द करती है और तोहमात से निज़ात[1] दिलाने वाली है। इस वास्ते हर एक प्राणी मात्र सही विचार करके समता के असूलों पर चलकर अपनी ज़िन्दगी को मुकम्मिल करे, जिससे इस संसार में आने का असली समर यानी परम शाँति प्राप्त हो जावे।

समाप्तम्

बुद्धि की पूर्ण व अपूर्ण अवस्था का निर्णय

वचन—1. जीव की बन्धन और मुक्त हालत का विचार करना और बंधन सरूप कर्म का त्याग करना, और निर्बन्ध अवस्था की प्राप्ति का सत् यत्न धारण करना—इन भावों का विचार सम्मिलित होकर करना असली सत्संग है।

वचन—2. समता सत्संग में हर एक व्यवहारिक और परमार्थिक कमज़ोरी का विचार करना, और सत् नियमों को धारण करने का पुरुषार्थ करना हर एक सत्संगी का मूल साधन है। यानी मलीन कर्मों का त्याग करना जो परमार्थिक बुद्धि को नाश करने वाले हैं।

वचन—3. वक्त की पाबन्दी अधिक ज़रूरी समझ कर हर एक दुनियावी कारज और परमार्थिक कारज बरमौका[2] करने चाहिये, यानी सोना, जागना, खाना, पीना, सत्संग, दान, तप, भजन बग़ैरा वक्त के मुताबिक होने चाहिये।

1. वहमों से छुटकारा 2. समय पर

वचन—4. कर्म गति का विचार करना चाहिए, यानी कर्मों का प्रगट और लय होना किन-किन भावों से होता है। जब तक कर्म के मार्ग का चित्त में पूर्ण निर्णय न होवे तब तक कभी भी जीव अपनी उन्नति नहीं कर सकता।

वचन—5. सत्संग द्वारा बुद्धि के पूर्ण रूप को विचार करना चाहिए, क्योंकि कुल संसार का चक्र बुद्धि की कमीबेशी में चल रहा है। बुद्धि की लीन अवस्था सत् सरूप आत्मा है। बुद्धि की विचरित हालत कर्म फल की वासना है। विचरित हालत में कल्पना द्वारा संसार को अनुभव करती है और लीन अवस्था यानी समाधि में केवल आनन्द स्वरूप को अनुभव करती है।

वचन—6. बुद्धि सात प्रकार की हालतों में विचरती है और रंग-रंग की कल्पना को धारण करके दुःख व सुख में चलायमान होती है, और अनेक सरूप को धारण करती है। यह ही भव-दुस्तर मार्ग है, इसी से पार होने के वास्ते मानुष जन्म है।

वचन—7. बुद्धि की चार अवस्था अंधकार की हैं और तीन प्रकाश की। अंधकार की अवस्था में जब तक बुद्धि गिरफ़्तार है, तब तक कभी भी कामना और कल्पना से नहीं छूट सकती।

वचन—8. बुद्धि की पहली अवस्था अंधकार की यह है कि अति देह के मद में गिरफ़्तार होकर अपने स्वार्थ कर्म में लीन रहना और स्वार्थ की ख़ातिर अधिक से अधिक यतन करना। अन्तर से न किसी की सीख को मानना और न ही ईश्वर की हस्ती पर विश्वास रखना। जो कुछ भी करना अपनी गर्ज़ की ख़ातिर। यह भावना चण्डाल स्वरूप की है। यह अधिक मलीन अवस्था है। इस अवस्था में संसार के भोगों में अग्नि की मानिन्द[1] जलता रहता है।

वचन—9. बुद्धि की दूसरी अन्धकार अवस्था यह है कि स्वार्थ की ख़ातिर अनेक प्रकार के जादू, जन्तर, मढ़ी, मसान, भूत-प्रेत आदिक इष्ट देव बनाकर पूजना और पाप कर्म में अधिक प्रीत रखनी, निज स्वार्थ की ख़ातिर हर प्रकार के पाप कर्मों को धारण करना और अपने आप को बहुत चतुर बुद्धि जानना, अंतर से ईश्वर की हस्ती को न मानना और इन अति तोहमात में गिरफ़्तार रहना और लोगों को भी अंधकार की तरफ़ राग़िब करना, बड़े-बड़े पाखण्ड को धारण करना। यह हालत भी अति दुःखदाई है। जीव हर वक्त जलता रहता है और पाप कर्मों के ज़रिये[2] अधिक कष्ट उठाता है।

1. तरह, भाँति 2. कारण

वचन—10. बुद्धि की तीसरी हालत अंधकार की यह है कि स्वार्थ की ख़ातिर अनेक प्रकार की साधना धारण करनी और देवी-देवताओं को बलियाँ चढ़ाकर अपने स्वार्थ की याचना करनी और दान-पुण्य भी स्वार्थ की ख़ातिर करना और हर वक्त संसारी पदार्थों के एकत्र करने में मग्न रहना, परमार्थ से बिल्कुल प्रीत न रखनी, ईश्वर पर विश्वास कभी भी न होना और अपनी चतुराई में अपने समान किसी को न देखना, अपनी मान बड़ाई की ख़ातिर बड़े-बड़े ढंग विचार करने, किसी हालत में भी परहित और परोपकार को धारण न करना। इस अवस्था में भी जीव अधिक दुःखी रहता है।

वचन—11. बुद्धि की चौथी अन्धकार अवस्था यह है कि अपने स्वार्थ की ख़ातिर ग्रहों और गुरु, पीर, अवतारों की पूजा करनी, लोक दिखलावा ज़्यादा प्रगट करना, संसारी भोगों की ख़ातिर कुछ तप-जप भी करना और कुछ दान भी करना, तीर्थ यात्रा आदिक अनेक साधन धारण करना मगर अन्तर से निज स्वार्थ में लीन रहना, संसारी ऐश्वर्य का ज़्यादा लोभ रहना और लोक यश की ख़ातिर कुछ धर्म के कार्य भी धारण करने, कुछ-कुछ सत्पुरुषों के जीवन हालात को

भी विचार करना और मौत का भी विचार करना, मगर स्वार्थ अन्धकार को भी न त्यागना और न ही ईश्वर विश्वासी होना। इस अन्धकार अवस्था में भी जीव परम दुःखी रहता है। प्रथम की दो अवस्था अधिक अंधकारमयी हैं, इनको ही राक्षसी स्वरूप जानना चाहिये, और बाकी दो अवस्था के मानुष धर्म मार्ग को प्राप्त कर सकते हैं अगर उनको सत् मार्ग चिताने वाला महापुरुष हासिल हो जावे।

बुद्धि की तीन अवस्था प्रकाश की ये हैं

वचन—12. पहली अवस्था सत्-असत् का पूर्ण निर्णय समझना और सत् कर्मों में प्रीति रखनी, मौत से डरना और स्वार्थ की आग से मुखलिसी चाहनी, किसी सत्-पुरुष की सिखया द्वारा अपनी आत्मिक उन्नति करनी और लोक-सेवा का अधिक प्रेम रखना, न्यायकारी होना, अपने सत्-विश्वास में द ढ़ रहना, हर एक जीव की भलाई चाहनी, सत्-व्यवहार धारण करना और अपने देह मद का त्याग करना, ईश्वर विश्वासी होना, गुरुवचन को सत् करके मानना, हुज़्ज़तबाजी और मसखरी का बिल्कुल त्याग कर देना, हर घड़ी, हर लमह परम-शान्ति का विचार करना, सादगी, सत्, सेवा, सत्संग और सत्

सिमरण आदि महागुणों का धारण करना, अच्छी तरह अपने मन की उपाधि को समझना और बार-बार सत्-पुरुषों की सिखया द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध करना। जब ऐसी भावना जीव को प्राप्त होती है, तब उसको कुछ शान्ति का पता लगता है और संसार में आने का सार निर्णय विचार करता है। इस अवस्था में आकर जीव सत् पुरुषार्थ को धारण करता है और अपने जन्म-जन्म के पापों से छूटने की ख़ातिर साधना में प्रव त्त होता है। इस अवस्था वाले जीव को असली भगत जानना चाहिये। उस वक्त उस गुणी पुरुष ने सब तोहमात का त्याग करके एक आत्म-चिन्तन की तरफ मन को लगाया है। किसी वक्त अपने सत्-जतन के द्वारा वह गुणी-पुरुष परम-सिद्धि को प्राप्त हो जावेगा।

वचन—13. दूसरी अवस्था बुद्धि के प्रकाश की यह है कि ईश्वर को सत् जानना और संसार को भ्रम रूप जानना। अन्तर से सब संसारी पदार्थों से वैरागवान रहना। सत्गुरु उपदेश को धारण करके ईश्वर भक्ति में द ढ़ होना और संसारी दुःख-सुख सब ईश्वर आज्ञा में देखना। हर एक जीव का भला चाहना और तन-मन-धन से सेवा करनी। दूसरे का कष्ट बर्दाश्त करना और खुद किसी को दुःख न देना। हर वक्त उदार चित्त और खिमावान रहना। द ढ़ निश्चय से ईश्वर नाम का

अभ्यास करना और तमाम शरीर के कर्म ईश्वर की आज्ञा में अर्पण करना। ऐसा परम तप जिस गुणी पुरुष ने धारण किया है वह ही देवता है और परम शान्ति आत्म-सरूप को अन्तर विखे अनुभव करके उसके परायण हो गया है। आनन्द अवस्था को उस ही गुणी पुरुष ने जाना है। वह ही भक्त और ज्ञानी है। संसार की असलियत को उसी ने जाना है और अपने कल्याण की ख़ातिर परम साधन को धारण किया है। एक ईश्वर के बिना किसी की चित्त में चाह नहीं रखता है। वह पुरुष धन्य है। ईश्वर के सरूप में जल्दी ही लीन हो जायेगा और परम सिद्धि को पावेगा।

वचन—14. तीसरी अवस्था बुद्धि प्रकाश की यह है कि तमाम शरीर विकारों से मन का उपरस हो जाना और बुद्धि का आत्म-सरूप में स्थित हो जाना, और अन्तर विखे सत् शब्द को प्राप्त कर लेना, हर वक्त ईश्वर आनन्द में मख़मूर[1] रहना, होना और न होना दोनों भावों में आसक्त न होना, विशाल बुद्धि को धारण करके एक ईश्वर में हर वक्त लवलीन रहना और परमानन्द रस का अन्तर विखे पान करना। इस अवस्था को उसी महात्मा ने जाना है। सब संसार की बाज़ी को उसने जीत लिया है और काल के भय से मुक्त होकर चिरंजीव पद को प्राप्त हुआ है। यह ही अवस्था असली शाँति है।

1. मग्न, मस्त

इस अवस्था को प्राप्त करने की खातिर तमाम धर्म-कर्म हैं जिस गुणी पुरुष ने उस धाम को प्राप्त करने का यतन धारण नहीं किया है उसने मानुष जन्म को अकार्थ त्याग किया है और संसार से त खित होकर गया है। तमाम गुणी पुरुषों का परम धर्म यह ही है कि उस प्रकाशमयी अवस्था को प्राप्त करने में हर वक्त निश्चल रहे। यह अवस्था ही असली धाम है जिसको प्राप्त करके जीव ब्रह्म स्वरूप हो जाता है और अपने आपको सरब आनन्द स्वरूप जानता है। जिस पुरुष को यह अवस्था प्राप्त हुई है उसे ही अवतार जानना चाहिए। सब संसार का खेल उसने यथार्थ स्वरूप से जाना है और अपने निज स्वरूप में हर वक्त मग्न रहता है। ये ही परम शाँति है। हर वक्त इसकी प्राप्ति की कोशिश करनी चाहिए।

समाप्तम्

एक प्रेमी को पत्रिका द्वारा

समदर्शी और समव त्ति मार्ग का उपदेश

ज़बानी कोई मानुष न समदर्शी हो सकता है और न ही समव त्ति। यह आत्म-स्थिति की हालतें हैं। जिस वक्त अन्तर विखे आत्म-स्थिति प्राप्त होती है उस वक्त उस आनन्दमयी हालत का पता लगता है। अगर इसका विस्तार किया जावे तो कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं।

मगर न वक्त है और न ही विस्तार की ज़रूरत है। सिर्फ़ चन्द लफ़्ज़ों[1] में हालात लिखे जाते हैं, सो अनुभव कर लेवें।

समदर्शी—खुशी व ग़मी से मुबर्रा[2] हो जाना, कर्म फल की कामना से मुक्त हो जाना, हर वक्त आत्म सरूप में स्थित रहना, इन्द्रियों के चलायमान होने से बुद्धि का चलायमान न होना। एक आत्म-सत्ता ही अन्तर बाहिर प्रतीत होना। सब कुछ संसार का चक्र आत्मा के आधार देखना। देह की ममता से मुक्त होकर आत्म-परायण होना। वैरी-मित्र, लाभ-हानि आदि द्वन्द्व कल्पना से न्यारा हो जाना। यह लक्षण समदर्शी पुरुष के हैं। सार यह है कि कर्मों के होने और न होने में समभाव, आत्मा में द ढ़ रहना। जीवन मुक्त अवस्था भी इसी को कहते हैं। ऐसी धारणा वाला संसार के वास्ते दुर्लभ है।

समव त्ति—ग्रहण और त्याग की कामना से मुक्त होना, आत्म-आनन्द में अति आरूढ़ हो जाना, देह से विदेह हो जाना, आकार स्वरूप का द ष्टि न होना। कर्त्तापन यानी फ़ाइलियत का बिलकुल अभाव हो जाना। कर्म और कर्मफल के वरतने में बिलकुल बेसुध होना और केवल ब्रह्म सरूप का ही अनुभव करना। ऐसी

1. शब्दों 2. ऊपर उठ जाना, मुक्त हो जाना

हालत को प्राप्त हुए महापुरुष न कुछ संसार का भला कर सकते हैं और न कुछ कह-सुन सकते हैं। बिलकुल अपने निज आनन्द में मुस्तग़र्क[1] रहते हैं।

प्रेमी जी ! मुख्तसर[2] सा हाल लिखा गया है, विचार कर लेवें। प्रेमी जी ! समदर्शी होना कोई सहल बात नहीं है। यह आख़िरी स्टेज योग की है और समव त्ति हालत इससे भी अधिक मुश्किल है। ज़बानी कथनी से न समदर्शी हो सकता है और न समव त्त पद को प्राप्त हो सकता है। इस समता के मैराज़[3] को पहुँचने के वास्ते निष्काम कर्म की सीढ़ी दरकार है। निष्काम कर्म करते-करते आत्म-स्थिति को प्राप्त हो जाता है, जो समदर्शी और समव त्ति का धाम है। जब आत्मा को अन्तर विखे अनुभव ही नहीं किया, देह के भोगों में बिलकुल आसक्त जो है, वह भोगों की ख़ातिर अगर समव त्ति वाला बनता है, वह सख़्त जाहिल है और अति नीच बुद्धि वाला है। पहले समदर्शी पद को प्राप्त हो करके ही समव त्त हालत बे-देही (विदेह अवस्था) को प्राप्त हो सकता है। इस वास्ते निष्काम कर्म द्वारा समदर्शी पद में स्थिति हासिल करनी चाहिए। फ़िर खुद-ब-खुद[4] ही समव त्ति हो जाता है। जो आत्म-तत्त्व के अनुभव बग़ैर समदर्शी और समव त्त का अभिमानी है, वह सख़्त पाखण्डी और दुराचारी है। प्रेमी जी ! यह परम

1. लीन 2. संक्षिप्त 3. मंज़िल, लक्ष्य 4. स्वयं

शुद्ध अवस्था उस जीव को प्राप्त है जो देह के विकारों से मुक्त होकर आत्म-स्थिति को प्राप्त हो चुका है।

समता स्थिति अपना मैराज़ समझकर हर वक्त कर्मों के फल से मुक्त होकर निष्काम कर्म में द ढ़ होना चाहिये। ज्यों-ज्यों आत्म-आनन्द प्राप्त होवेगा, त्यों ही त्यों समदर्शन रूप में लीन होता जायेगा। आख़िर विदेह मुक्त अवस्था को प्राप्त हो जावेगा जो परमानन्द सरूप है। समदर्शी और समव त्ति आत्म-स्थिति की हालत है। देह अभिमान और देह के भोगों से आत्मा पवित्र है। कोई ही पुरुष इस हालत को प्राप्त होता है।

सार खुलासा[1] यह है कि पहले निष्काम कर्म साधन करना चाहिये जिससे कर्मफल की आशा से मुक्ति मिले। जिस वक्त ऐसी साधना परिपक्व हो जावे उस वक्त आत्म सरूप में अन्तर विखे निहचल हो जाता है। यह ही अवस्था समाधि की है। सब कामना और कल्पना चित्त की नाश हो जाती है। वह सत्पुरुष फिर संसार के कल्याण की ख़ातिर कोशिश करता है। अपना सब मनोरथ पूर्ण कर चुका है। यह ही हालत समदर्शी यानी जीवन मुक्त की है। इससे ज़्यादा जिस वक्त आत्म आरूढ़ हो जाता है उस वक्त समव त्ति हालत यानी

1. सारांश, निचोड़, परिणाम

विदेह मुक्ति को प्राप्त होता है। पहले समदर्शी अवस्था को प्राप्त करना चाहिये जो ख़्वाहिश और ग़ज़ब[1] से बिलकुल पवित्र है। बिना समदर्शी होने के समव त्ति बिलकुल नहीं हो सकता। जो भोगों को भोगने में समव त्ति बनता है वह अति पशु है। जीव की असली शाँत अवस्था समभाव ही है। मगर इस असल मकसद को भूलकर कई मज़हबी बादमुबाद में दुनिया खराब हो रही है। इस वास्ते फिर समता की तालीम ईश्वर आज्ञा से प्रगट हुई है। इसको अमली जामा पहनाकर अपने निज आनन्द सरूप को प्राप्त होना चाहिये, जिससे संसार का दुःख दूर हो जावे। हिन्दू धर्म का असली मैराज़ समता ही है। तमाम बुज़ुर्गों का जीवन समता का आदर्श दिखलाता है। बताओ, आजकल क्या अन्धेरगर्दी मची हुई है? क्या आलम[2], क्या मूर्ख, क्या गुरु, क्या पन्थ आचार्य सब बादमुबाद की आग में जल रहे हैं। असली समता धर्म को भूल गये हैं, जो जीव का असली ठिकाना है। इसलिये ईश्वर आज्ञा से फिर यह विचार प्रगट हुआ है। इसको धारण करके अपनी आत्मिक उन्नति करें और अंधविश्वास से मुखलिसी[3] हासिल करें, जिससे मानुष जन्म सफल हो जावे।

पहला भाग समता धर्म समाप्त हुआ

----

1. क्रोध 2. विद्वान 3. छुटकारा या मुक्ति

समता अपार शक्ति

ब्रह्म सत्यं सर्वाधार

दूसरा भाग

समता योग सिद्धि

पहला अंग — सिमरण

वचन—1. सम बुद्धि यानी आत्म-आनन्द को प्राप्त करने की ख़ातिर प्रथम ईश्वर सिमरण परिपक्व होना चाहिये। अन्तरगत हृदय में नाम का सिमरण जो किया जाता है वह असली सिमरण है। ज़बान, होंठ बिलकुल बन्द होने चाहियें। ऐसी निर्मल धारणा से मन मिथ्या कल्पना को छोड़कर नाम आधारी हो जाता है और परम विवेक को प्राप्त होता है।

वचन—2. मन की निहचल भावना ज्यों-ज्यों नाम में द ढ़ होती है त्यों-त्यों मन व त्ति रहित होकर एकाग्र होता जाता है। मन की एकाग्रता ही असली सिमरण है। ऐसी हालत को प्राप्त करने की ख़ातिर प्रथम आहार, व्यवहार

और संगत पवित्र होनी चाहिये, क्योंकि मन शुद्ध होकर ही नाम आधारी हो सकता है।

वचन—3. मिथ्या नाम, रूप कल्पना मन को हर वक्त अशाँत करती रहती है, किसी हालत में भी तसव्वरेफ़ानी यानी संकल्प-विकल्प से आज़ाद नहीं होने देती है। यह ही बेकरारी दुःख व सुख और जन्म व मरण का कारण है। जब तक यथार्थ भावना से सत् सिमरण में मन को द ढ़ न किया जावे, तब तक कभी भी इस अनर्थ कल्पना के क्लेश से आज़ाद नहीं हो सकता है।

वचन—4. ईश्वर श्रद्धा, प्रेम की द ढ़ता से मन मिथ्या नाम, रूप की कल्पना को छोड़ कर सतनाम की जब प्रतीत करने लग जाता है, उस वक्त अन्तर हृदय में शाँति प्रगट होती है। इस वास्ते सब तरीकों की साधना से मुख्य नाम सिमरण ही है। नाम सिमरण का असर अधिक मन पर होता है और व त्ति जल्दी शुद्ध हो जाती है।

वचन—5. जिस वक्त ईश्वर नाम में मन पूर्ण निहचल हो जाता है, उस वक्त संसारी पदार्थों से वैराग प्राप्त होता है और ईश्वर प्रेम में मग्न होने की कोशिश करता है, और तमाम शारीरिक कर्म निष्काम भाव से ग्रहण करता है।

वचन—6. निर्मल भक्ति का अंकुर उस वक्त उस गुणी पुरुष के अन्दर उत्पन्न होता है। ऐसी श्रेष्ठ भावना ही असली कल्याण के देने वाली है। तमाम कथा प्रसंग, तीर्थ, दान, यज्ञ करने से भी यह हालत प्राप्त नहीं होती। केवल नाम सिमरण ही एकाग्रता प्रगट करता है। इसलिये तमाम सत्पुरुषों ने नाम सिमरण की बड़ी बड़याई की है।

वचन—7. जो कोई अपना कल्याण करना चाहे, यानी संसारी पदार्थों से छुटकारा हासिल करने की कोशिश करे, तो उसके वास्ते प्रथम नाम सिमरण ही परम साधन है। यह एक खास यत्न आनन्द को प्रकाश करने वाला है।

वचन—8. सिमरण का तरीका दुरुस्त होना चाहिए। यानी कोई माला से सिमरण करता है, कोई ज़बान से ऊँचा शब्द उच्चारण करके सिमरण करता है, कोई राग की सूरत में सिमरण करता है। अपनी-अपनी हालत में थोड़ी-थोड़ी त प्ति इनमें भी है। मगर असली मन को शाँति इन तरीकों से नहीं मिलती है जब तक कि अंतरमुख बिलकुल अडोल होकर सिमरण न किया जावे।

वचन—9. इस वास्ते सही तरीका और सही कोशिश के बग़ैर मन शान्त नहीं होता है। कई एक गुरु लोग कान में उपदेश देते हैं मगर शिष्य को कुछ भी समझ में नहीं आती है। और कई एक पाँच शब्द का उपदेश देते हैं मगर पता एक शब्द का भी नहीं है। यह अधूरापन कभी भी पूर्ण आनन्द को नहीं दे सकता है। बाज़ मारफ़त[1] के जानने वाले फ़कीरों ने परम धाम यानी ग़ैब की हालत को कई तरीकों से बयान किया है मगर वास्तव में भाव एक ही है। सिर्फ उस्तत करके कई सूरतें दिखाई हैं। एक ही नाम का निश्चय कल्याण के देने वाला है। और जो जिज्ञासुओं को ज़्यादा नाम सिमरण की हिदायत करते हैं वे एक को भी परिपक्व नहीं कर सकते हैं। ज़्यादा कहाँ द ढ़ कर सकेंगे ? सिर्फ भ्रम में ही वक्त गंवा देते हैं। असली सिमरण वह ही है जो मन और पवन की सन्धि करे; अन्तर गति और बाहिर गति में पूर्ण होवे।

वचन—10. सबसे पहले सिमरण की द ढ़ता, दूसरी हालत में भजन की प्राप्ति, तीसरी हालत में ध्यान अवस्था और चौथी हालत में समाधि यानी हालते महवियत है। जो आदमी सिमरण की द ढ़ता को छोड़कर पहले ही

1. परमार्थ

ध्यान शुरू करने लगता है, वह कभी भी निर्विकल्प ध्यान को प्राप्त नहीं हो सकता। वैसे नेत्रों के दबाने से कई रंग की रोशनियाँ देखता है। मगर वह सब तत्त्वों का सरूप है, असली ब्रह्मनाद को अनुभव नहीं कर सकता है।

वचन—11. जो कथनी मात्र अन्तर की हालतें दूसरे फ़कीरों के शब्द विचार करके दिखलाते हैं और खुद अनुभव नहीं है, और न ही अनुभव की कोशिश करते हैं, सिर्फ़ ज़ाहिरी नुमायश में गुरुडम फैलाते फिरते हैं, ऐसे पाखण्डी न तो खुद किसी शान्ति को प्राप्त हो सकते हैं और न ही दूसरों को कल्याण दे सकते हैं। अगर कोई असली भगति को चाहे तो कामिल उस्ताद की शरण ले।

वचन—12. पाँच शब्दों का उपदेश जो गुरु देते हैं पुरातन बुज़ुर्गों के शब्दों का विचार करके, वे भी असलियत से बे बहरा हैं। असली शब्द एक है, अवस्था उसकी कई हैं। यानी ज्यों-ज्यों अन्तरगत में मन लीन होता है त्यों-त्यों कई अवस्थाओं को अनुभव करता है। यह नहीं कि उस जगह जो नाम सिमरण करता है वह तबदील हो जाता है। अगर कोई एक नाम का सिमरण छोड़कर कई नामों का सिमरण अन्तर विखे करने लगता है, वह असली मैराज़ तक कभी भी नहीं पहुँच सकेगा।

वचन—13. उस अखण्ड अविनाशी शब्द की कई ध्वनि होती हैं, मगर नाम एक ही अन्तर विखे निहचल करना चाहिये। जिस वक्त एक नाम को छोड़कर दूसरा नाम पकड़ेगा वह असली हालत से गिर जायेगा। वैसे कामिल लोगों ने उस परम धाम यानी मैराज़ को कई नामों से ज़ाहिरी ज़बान में बयान किया है, लोगों की रुचि की ख़ातिर। मगर अन्तर विखे वे खुद एक ही नाम के आधारी बने रहे। यह खास विचार हर एक जिज्ञासु को पता होना चाहिये।

वचन—14. जिस-जिस अवस्था को आमिल[1] अबूर[2] करता है उस कुदरत-ए-कामिला[3] का अजीब खेल देखता है। मगर नाम एक ही में व त्ति को ढालता है। ऐसी करनी वाला पुरुष एक दिन परम धाम को प्राप्त हो जायगा। और जो एक नाम को छोड़कर दूसरे नाम को पकड़ेगा और दूसरे को छोड़कर तीसरे को पकड़ेगा, और इस तरह भिन्न-भिन्न नामों का सिमरण करेगा, वह कभी भी मुकम्मिल[4] शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकेगा। यह ही कामिल फ़कीरों का राज़ है। जो गुरु जिज्ञासुओं को एक नाम की बजाय पाँच नामों का उपदेश देते हैं, जो शब्द की अवस्था हैं, वह किसी हालत में भी नाम में

1. जिज्ञासु 2. पार 3. परिपूर्ण पुरुष 4. पूर्ण

परिपक्व नहीं हो सकते हैं और न ही असली शब्द को अनुभव कर सकते हैं।

वचन—15. नाम के सिमरण से अनाम पद को प्राप्त हो जाता है, यानी अखण्ड शब्द में लीन हो जाता है। इस वास्ते एक ही नाम का विश्वासी होना और अभ्यासी होना कल्याणकारी है। उस पारब्रह्म परमेश्वर के अनेक नाम सिद्धों ने कल्पित किये हैं, मगर साधना में एक नाम का सिमरण कल्याणकारी है। एक नाम का निर्णय यह है कि प्रथम में जो-जो महावाक्य मन में निहचल किया जावे उसी में मन को लीन कर देना निर्मल साधन है।

वचन—16. मन ऐसा चंचल धार वाला है, जिस वक्त एक धारणा को छोड़ता है उस वक्त फिर मुश्किल से दूसरी धारणा में द ढ़ होता है। यानी एक नाम को परिपक्व करते-करते अगर दूसरे नाम का अन्तर सिमरण शुरू कर देवे तो फिर वह निहचलता नहीं रहती। चंचल होकर कर्म अभिमानी हो जाता है। इस वास्ते एक ही नाम में मन को जज़्ब[1] करना चाहिए। यह ही निश्चय परम सिद्धि के देने वाला है।

वचन—17. कई एक गुरु लोग पहले ही ध्यान को सिखलाते हैं, मगर यह असली कामयाबी के देने वाला साधन नहीं है। जब तक परम तत्त्व अन्तर प्रगट ही नहीं, और न ही बुद्धि अनुभव

1. रम जाना, पूर्ण रूप से अपना लेना

कर सकती है, तो ध्यान किसका करेगी ? जो अन्तर बीनाई में रोशनियाँ देखी जाती हैं, वे तत्त्वों की रोशनियाँ हैं। मन इनमें निहचल नहीं होता है, जब तक कि सिमरण की भट्ठी में मन लीन न हो जावे।

वचन—18. तमाम कामिलों का प्रथम साधन सिमरण ही है। सिमरण के बल से बुद्धि पवित्र होकर भजन, ध्यान और समाधि अवस्था को प्राप्त हो सकती है। सिमरण की हालत में खामोशी लाज़मी है, और बोलने के वक्त बेहूदा विचार भी उच्चारण नहीं करना चाहिये। बल्कि शुद्ध और आनन्ददायक विचार होना चाहिये। इस से मन पर अच्छा असर पड़ता है।

वचन—19. सिमरण भी ऐसा होना चाहिए कि शरीर की हर हालत में नाम सिमरण बना रहे। ऐसा द ढ़ निश्चय वाला पुरुष अन्तर विखे ब्रह्म शब्द को अनुभव कर सकेगा। मन को रोक-रोककर नाम में लगाना चाहिये। तब ही मन नाम आधारी हो सकता है। अगर मन को रोका न जावे तो फिर नाम सिमरण को छोड़कर मिथ्या कल्पना में राग-द्वेष की आग में जलने लगता है और अति चंचल हो जाता है।

वचन—20. द ढ़ निश्चय करके एक नाम में तन-मन को लगाना चाहिये और अपनी अनानियत का त्याग करना चाहिये। सब कुछ उस ईश्वर को समझकर प्रेम करके सिमरन करना ही कल्याणकारी है, और कई जन्म की मैल

को थोड़े ही अरसे में पवित्र कर देता है। ऐसे सिमरण करने वाले पुरुष अपने अन्तर विखे ब्रह्म शब्द को अनुभव करते हैं।

दूसरा अंग—भजन

वचन—21. जब अन्तर विखे ब्रह्म शब्द अनुभव होता है और सुरति उसमें एकाग्र होती है, उस हालत को भजन कहते हैं। यानी निहचल होकर ईश्वर-रस को पान करना और संसारी विषयों से विरक्त होना।

वचन—22. भजन करते-करते यानी ब्रह्म शब्द में यकसू[1] होते-होते ध्यान की हालत प्राप्त होती है। यानी मन तमाम व त्तियों को त्याग कर ब्रह्म शब्द में एकाग्र होता है और कई रंग के शब्द अन्तर विखे अनुभव करता है। उस वक्त सब कुछ ईश्वर आज्ञा में देखता है और अपनी खुदी[2] को मिटाता जाता है।

वचन—23. शरीर के निचले हिस्से को छोड़कर बुद्धि अन्तर मस्तक और नाक की जड़ में स्थित होती है और ब्रह्म शब्द को अनुभव करती है। यह ही हालत असली ध्यान की है। तमाम शरीर के कर्मों से बुद्धि निर्मल होकर ब्रह्म शब्द में स्थित होती है।

वचन—24. देह अभिमान इस हालत से गिराने वाला है। इस वास्ते परम गुणी पुरुष जिसको यह अवस्था प्राप्त होती है, वह तन, मन, धन करके लोक सेवा में द ढ़ होता है और

1. एकाग्र 2. अहं

काफ़ी वक्त निकाल कर ईश्वर भजन में स्थित रहता है, और शारीरिक कर्मों से आज़ादी हासिल करता है।

वचन—25. अगर कोई आमिल[1] अपनी मैराज़ हालत[2] का इस अवस्था में बयान कर देवे या रिद्धि-सिद्धि दिखलाने लगे, तो वह फिर मुश्किल से असली आनन्द को प्राप्त हो सकता है। सिमरण, भजन की द ढ़ता से ध्यान द ढ़ होता है।

वचन—26. इस अवस्था में गुणी पुरुष को चाहिए कि अपने मन को बिलकुल संसारी पदार्थों में न जाने देवे, बल्कि ईश्वर की आज्ञा में अपने आपको खत्म करे।

वचन—27. ज्यों-ज्यों अभ्यास में निहचल होता है, त्यों-त्यों अन्तर्गत विखे ब्रह्म प्रकाश को अधिक अनुभव करता है और संसारी वासनाओं से मुक्त होकर ईश्वर प्रेम में मग्न रहता है। इस हालत को प्राप्त हुए पुरुष को चाहिये कि खिमा, दया, सील, निर्मानता, निष्कामता और उदासीनता आदि गुणों को द ढ़ करता रहे, क्योंकि मन ईश्वर आनन्द को छोड़ कर फिर शरीर के भोगों में आसक्त न हो जावे। खुराक थोड़ी, निद्रा थोड़ी, व्यौहार थोड़ा, ईश्वर भजन में ज़्यादा से ज़्यादा प्रीत करनी चाहिये।

1. भक्त, मुमुक्षु 2. लक्ष्य स्थिति

वचन—28. दृढ़ निश्चय से शब्द को अन्तर विखे पलक-पलक करके अनुभव करना और कर्म वासना को ईश्वर आज्ञा में अर्पण करना ही शब्द स्थिति यानी ध्यान के देने वाला है। भजन में जो आनन्द या सरूर प्राप्त होवे उसको जज़्ब[1] करना चाहिये और निर्मान होकर संसार में विचरना चाहिये।

वचन—29. तमाम संसारी पदार्थों से अधिक प्रीत ईश्वर सिमरण, भजन में जिसको प्राप्त हुई है वह शुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष जल्दी ही ब्रह्म में लीन हो जायेगा। मन की कल्पना दीर्घ रोग है। किसी हालत में भी जीव को शाँति नहीं मिलती है। इस वास्ते दृढ़ पुरुषार्थ करके अपने मन को जो सत् शब्द में स्थित करता है, वह ही अकर्मपद अखण्ड शान्ति को प्राप्त होवेगा।

वचन—30. छिन-छिन जो मन को अखण्ड शब्द में दृढ़ करता है और अभिमान को छोड़ता जाता है, वह ही असली ध्यान को प्राप्त हो सकता है।

तीसरा अंग—ध्यान

वचन—31. जिस वक्त तमाम कल्पना से मन न्यारा होकर ब्रह्म शब्द में स्थित होता है, आकार

1. नियन्त्रित, समावेष

दृष्ट की कल्पना नाश हो जाती है और केवल ब्रह्म आनन्द को अनुभव करता है, इस अवस्था को ध्यान कहते हैं। वह बड़े भाग वाला पुरुष है जिसको यह हालत प्राप्त हुई है।

वचन—32. इस हालत में प्राप्त होकर ब्रह्म शब्द को निहचल होकर अनुभव करता है। तब कई रंग की धुन में नाद सुनाई देता है और बिजली की रोशनी भी देखता है, और परम सुख का अनुभव करके संसारियों से असली ताल्लुक छोड़ देता है। निर्मल सरूप में पूर्ण निहचल होने की कोशिश करता है।

वचन—33. ईश्वर आज्ञा में तमाम शरीर के कर्मों को निश्चय करके अर्पण कर देता है। कर्मफल द्वन्द्व में समचित्त रहता है और अपने जीवन को कुदरती[1] बना देता है। यानी हर हालत में निर्वास होता जाता है।

वचन—34. ध्यान अवस्था में जो स्थित हुआ है वह ही योगी है और वह ही ज्ञानी है। तमाम कामना और कल्पना से मन न्यारा होकर सत् सरूप में स्थित होता है। किसी वस्तु की उसको न कल्पना रहती है और न ही किसी से वह द्वेष करता है। बल्कि प्रेम सरूर में मग्न रहता है।

1. प्राकृतिक

वचन—35. ज्यों-ज्यों ध्यान में द ढ़ होता है, अन्तर विखे अखण्ड नाद का किल्कार सुनाई देता है और उसमें अपने जीवन को प्रवेश करता है। तमाम दुनिया को उस परम तत्त का ही प्रकाश निश्चय करके देखता है। शरीर के भोगों से बिलकुल विरक्त हो जाता है। ईश्वर नाम के बग़ैर और कोई चीज़ उसको मोहित नहीं कर सकती है।

वचन—36. ईश्वर ध्यान ही असली कल्याण है। मगर तमाम कामनाओं के नाश होने से ईश्वर ध्यान प्राप्त होता है। जिस पुरुष ने शरीर के तमाम दुःख-सुख को ईश्वर अर्पण कर दिया है, और हर घड़ी अपने मन को सत्शब्द में स्थित करता है, वह ही उसका कल्याण अवस्था को प्राप्त होना है। ऐसी अवस्था को प्राप्त हुए पुरुष को बिलकुल निर्मान भाव में रहना चाहिए। अगर किसी कर्म का भी अभिमानी हुआ तो फिर उस आनन्द हालत से गिर जायेगा।

वचन—37. तकरीबन कोई ही इस अवस्था में आकर ग़लती खाता है। नहीं तो इस हालत को प्राप्त हुए पुरुष ज्ञान-विज्ञान में पूर्ण होते हैं और ईश्वर परायण होकर संसार में विचरते हैं। केवल एक नाम का ही आधार उनको है।

वचन—38. रिद्धि-सिद्धि की तरफ़ मन को बिलकुल राग़िब[1] न करे। निर्मान भाव और सेवक

1. आकर्षित

रूप में अपने जीवन को व्यतीत करे। संसारी पदार्थों से हर वक्त निर्वास रहे, द ढ़ निश्चय ईश्वर सरूप में रखे। शरीर के दुःख व सुख को सहन करे। तब ही पूर्ण ज्ञान को प्राप्त हो सकेगा।

वचन—39. तमाम मन की व त्तियों को त्याग करके एक अखण्ड शब्द में स्थित होना और सुरति का हर वक्त अकल्पित होना, और तमाम कर्मों के फल को ईश्वर समर्पण करना—ऐसी धारणा वाला पुरुष ब्रह्मध्यान को प्राप्त हो सकता है।

वचन—40. तमाम कर्मों की वासना जब नाश हो गई, और अपने जीवन को नित ही परोपकार में जो ख़त्म करता है और तमाम दुनिया को ईश्वर का ही सरूप जो देखता है, अन्तर विखे बिलकुल जो निहकर्म है, यानी ब्रह्म आनन्द में निहचल है, वह ही धीरजवान पुरुष ब्रह्म स्थिति यानी समाधि को प्राप्त हुआ है।

चौथा अंग—समाधि

वचन—41. जिस वक्त बुद्धि शब्द में द ढ़ हुई और तमाम कल्पना नाश हो गई, अहंभाव बिलकुल मिट गया, अपने आपको ब्रह्म सरूप ही जानने लगी, उस प्रकाशमयी

हालत को समाधि कहते हैं।

वचन—42. इस हालत-ए-महवियत[1] को जो प्राप्त हुआ है, उसको केवल ब्रह्म ही ब्रह्म अनुभव होता है और वह काल-कर्म के चक्र से आज़ाद हो जाता है। शरीर से बिलकुल न्यारा अपने सरूप को देखता है। तमाम कर्म प्रक ति में देखता है। उसको ही ब्रह्म ज्ञानी और जगत गुरु कहते हैं। तमाम माया के जाल से विलग होकर अपने सत् सरूप में स्थित हुआ है और अपने आपको अकर्म सरूप जानता है। इस स्थिति को जो प्राप्त हुआ है, सब कुछ उसने जान लिया है और बुद्धि पूर्ण संतोष को प्राप्त हुई है।

वचन—43. शरीर के कर्मों में किसी हालत में भी समाधि अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष चलायमान नहीं होता है। हर वक्त निहकर्म सरूप ब्रह्म नाद में स्थित रहता है और अपने आपको सब जगत में मुहीत[2] देखता है, और तमाम जीवों से अधिक प्रीत करता है। अंतर से बिलकुल असंग रहता है। यह ही विज्ञान अवस्था परम धाम है। इस अवस्था में वह महाज्ञानी अखण्ड नाद में लीन हो जाता है।

वचन—44. ब्रह्म शब्द में आरूढ़ होकर तमाम कर्मों से उसको समता प्राप्त हुई है, यानी हर हालत में एक ही जैसा है। खुशी, ग़मी के चक्र से मुक्त होकर अपने परमानन्द को प्राप्त हुआ

1. समयक स्थिति यानी समावस्था 2. व्यापक, फैला हुआ

है। वह ही असली परम संत और सिद्ध है।

वचन—45. अन्तर विखे क्या बाहर एक नाद ही नाद उसको अनुभव हो रहा है और हर वक्त अपने सरूर में मग्न रहता है। तमाम शरीर की नाड़ियाँ, हड्डी और रोम में से नाद ही नाद की प्रभुता को पाता है। वह ही समदर्शी पुरुष है। उसने तमाम कर्मों से मुक्त होकर निहकर्म अवस्था हासिल की है।

वचन—46. तमाम शरीर के कर्मों से अपने सरूप को भिन्न करके अन्तर विखे अनुभव किया है। वह आनन्दमयी अवस्था जिसको प्राप्त हुई है, वह ही जानता है। कहने-कथने का मुकाम[1] नहीं है।

वचन—47. समाधि अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष हर वक्त अपने आपको अकर्म, असंग, निर्धार, सर्वज्ञ, निर्वास, अचल, अछेद और गुणातीत जानता है। और शरीर को महज़[2] छाया सरूप देखता है। ऐसी द ढ़ स्थिति को जो प्राप्त हुआ है, वह ही सर्व का मानी और सर्व का आधारी है। उस ब्रह्म-नेष्ठी का दर्शन दुर्लभ है।

वचन—48. तमाम वासनाओं से न्यारा होकर शरीर के दुःख व सुख में अचल व त्ति रहता है, यानी अपने सरूप में सावधान रहता है। तमाम शारीरिक कर्म और गुणों का खेद उसको

1. अवसर, मौका 2. केवल, मात्र

चलायमान नहीं कर सकता है, यानी केवल सरूप में लीन हो जाता है। इस हालत को अनामपद[1] और निर्वाचपद[2] कहते हैं। कोई विरला ही परम सिद्ध इस पूर्ण गति को प्राप्त होता है।

वचन—49. निमख-निमख करके जिसने ईश्वर सरूप में द ढ़ता हासिल की है और तमाम संसारी पदार्थों से जो अन्तर विखे विरक्त हुआ है, और एक ही परम तत्त्व अविनाशी नाद का जिसको आधार हुआ है, वह ही उस परम प्रकाश और निर्द्वन्द्व अवस्था को प्राप्त हो सकता है।

वचन—50. इन्द्रियों के भोगों में मन पलक-पलक करके लुभायमान होता है। वह परम तपीशर इस मन को इन्द्रियों से विलग करके एक ईश्वर के नाम में द ढ़ करता है और तमाम शारीरिक वासनाओं को ईश्वर इच्छा में अर्पण करता है। चौंसठ घड़ी अन्तर विखे ब्रह्म शब्द में जाग त होता है। ऐसी अधिक प्रीत वाला पुरुष ही समाधि को प्राप्त हो सकता है।

वचन—51. जो असली परम अवस्था को प्राप्त नहीं हुए, और मुख से ब्रह्म ज्ञान का व्याख्यान करते हैं और अपने आपको जगत् गुरु या अवतार

1. नाम-रूप से परे की अवस्था 2. जिस का वर्णन न हो सके

मानते हैं, वे कपटी पुरुष कई जन्म तक इस कर्म चक्र से छूट नहीं पावेंगे। ब्रह्म स्थिति यानी निर्वास अवस्था को प्राप्त करने की खातिर परम प्रयत्न, श्रद्धा, वैराग और सत्पुरुषों की संगत धारण करनी लाज़मी है। तीन काल में शरीर को जो नाश देखने वाला है और आत्म-चिन्तन में निहचल होकर तमाम शरीर की वासनाओं से जो मुक्त हुआ है, वह ही ब्रह्म नाद में स्थिति पाता है।

वचन—52. सबसे पहले अनर्थक कर्म जो अधिक पाप रूप हैं, उनको त्यागना चाहिए। फिर गुरु उपदेश करके निष्काम कर्म की साधना और ईश्वर भक्ति, सिमरण, भजन में द ढ़ होना चाहिए, यानी तमाम वासनाएँ ईश्वर समर्पण करके निर्वास होकर नाम सिमरण करना चाहिए। अधिक प्रीत जिस वक्त नाम सिमरण में प्राप्त होवेगी उस वक्त काल-कर्म के चक्र का अभाव होता जावेगा, और अन्तर विखे ब्रह्म शब्द का अनुभव होवेगा। फिर शब्द की प्रतीत ही शब्द में लीन कर देवेगी। ऐसा निर्मल निश्चय धारण करना चाहिए।

वचन—53. सत् धाम की प्राप्ति परम श्रद्धा और परम यत्न से होती है। जो महज़ कथनी में ही वक्त गंवाते हैं और पुरातन फ़कीरों के शब्द

सुना-सुना कर ही अपने आप को सिद्ध बनाते हैं, वे महज़ नादान हैं और इन्द्रियों के भोगों में हर वक्त जल रहे हैं, और धर्म की सत्ता को नाश करने वाले हैं। ऐसे कथनी ज्ञानी कई जन्म तक नीच जूनियों में प्रवेश करते हैं।

वचन—54. कल्याण अपने आपकी प्रथम चाहिए। जब तक अपने अन्तर का दोष नाश नहीं हुआ तब तक निश्चय करके असली तत्त्व को न जान सकता है और न ही सत् व्याख्यान कर सकता है। जो महज़ पाखण्ड को धारण करके संसारी साधारण जीवों को कथनी ज्ञान का जाल फैलाकर अपना उपासक बनाते हैं और उनसे भोग पदार्थों का लाभ हासिल करते हैं, ऐसे कपटी गुरु खुद नरक के गामी हैं और शिष्यों को भी नरक निवास दिलाते हैं।

वचन—55. जिसने अपने मन को निर्दोष किया है और तमाम संसारी पदार्थों की वासना से जिसने विजय हासिल की है, हर वक्त जो ब्रह्मनाद में स्थित रहता है और सेवक रूप में जो विचरता है, निष्कपट और निर्विखाद जिसका आन्तरिक, बाहिर जीवन है, किसी वस्तु की भी कामना जिसके हृदय में नहीं है, अन्तर से अपने आप में जो किसी मज़हब की कैद

में नहीं है, केवल ईश्वर परायण जिसका जीवन है, वह ही ज्ञानी सत् पद को प्राप्त हो सकता है।

वचन—56. सत् उपदेश को सुन करके मन में धारण करना, फिर बार-बार निदिध्यास करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। तब नाम सिमरण, भजन, ध्यान, समाधि की अवस्था को आहिस्ता-आहिस्ता प्राप्त होता है।

वचन—57. कर्म का कर्त्तापन ही अधिक अन्धकार है। जब तक इसका अभाव नहीं होता तब तक ब्रह्मशब्द में स्थिति प्राप्त नहीं होती है। इस वास्ते हर घड़ी अपने अन्तर विखे जो नाम में मन को लगाए रखता है और कर्म अभिमान से बुद्धि जिसकी निर्मल हो चुकी है, केवल अखण्ड, अविनाशी तत्त्व का निश्चय ही जिसका आधार है, वह ही परम पुरुष परम समाधि को प्राप्त हुआ है और आइन्दा के जन्म-मरण से छूट पाई है।

वचन—58. कर्म जंजाल जो संसार भासता है, इसको यथार्थ भक्ति और ज्ञान के हथियार से जो छेदन करता है, वह ही परम गति को प्राप्त होता है, यानी अखण्ड शब्द में लीन हो जाता है। हर घड़ी, हर लमह अपने पूर्ण धाम को प्राप्त करने का यत्न करना ही मानुष जन्म का परम धर्म है।

वचन—59. मन बड़ा विकराल है। इसको बड़े यतन से ही नाम सिमरण में लगाया जावे तो वैराग से त प्त होकर अन्तर्मुख में विश्राम करता है, और कर्मों की वासना से विरक्त होकर परम आनन्द को प्राप्त होता है। इसी अवस्था को समाधि कहते हैं। जिस अवस्था में दुर्मत आदि का अभाव हो जाता है, केवल परम तत्त ईश्वर ही ईश्वर अनुभव होता है।

वचन—60. मिथ्या शरीर का अभिमान त्याग कर जो ईश्वर का नाम सिमरण करता है और सब कुछ ईश्वर आज्ञा में देखता है, पलक-पलक करके नाम ध्यान में जो द ढ़ होता है, वह ही परम भगत ब्रह्म शब्द को अन्तर विखे प्राप्त करके उसमें ही लीन हो जाता है। यह ही यतन मानुष के वास्ते दुर्लभ है, जिसको प्राप्त करके अपने पूर्ण सरूप में स्थिति मिलती है। वह ही परम ज्ञानी है जिसको ईश्वर चरणों की प्रीत प्राप्त हुई है। वह आप परम आनन्द को प्राप्त हुआ है और कई जीवों का उद्धार उसके जीवन आदर्श से हो गया है।

वचन—61. अति सूक्ष्म बुद्धि गुणों से रहित होकर आत्म तत्त्व में स्थित होती है और तमाम कामना, कल्पना से मुक्त होकर परम आनन्द को

हासिल करती है। तब सब मिथ्याकार कर्म जाल का अभाव हो जाता है। केवल आनन्द सरूप ब्रह्म शब्द ही प्रतीत होता है। ऐसी द ढ़ता ही परम धाम और अखण्ड शान्ति है।

वचन—62. तमाम तत्त्वों के विकारों से बुद्धि निर्मल होकर ही सत्नाम सिमरण में द ढ़ होती है और सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को विचार करके अपने आप में धीरज को प्राप्त होती है। एक अखण्ड शब्द आत्मा के बग़ैर तमाम प्रक ति सरूप को मिथ्या जान करके अपने अन्तर विखे द ढ़ निश्चय से पारब्रह्म परमेश्वर में लीन हो जाती है। यह ही मार्ग और यत्न सत्पुरुषों का है।

वचन—63. सत्पुरुषों के वचन पर द ढ़ विश्वास रखने वाला और अपने बन्धन को अच्छी तरह प्रतीत करने वाला, और आत्म-आनन्द की प्राप्ति की खातिर मन, वच, कर्म से द ढ़ पुरुषार्थ धारण करने वाला पुरुष ही इस माया के घोर जाल से निकल कर ईश्वर सिमरण, भजन, ध्यान और समाधि को प्राप्त होता है।

वचन—64. यह जगत संग्राम अत अश्चर्ज है। बिना सत् विचार और सत्पुरुषों की सिखया के कोई भी इससे पार नहीं हो सकता है। कर्म वासना पलक-पलक में बुद्धि को चलायमान

करती रहती है। वह महातपीशर जिसने सत्पुरुषों की सिखया द्वारा एक आत्मसरूप में निश्चय पाया है और चौंसठ घड़ी अपने मन की व त्तियों को ईश्वर नाम में लीन करता रहता है, देह के भोगों से जो नित ही वैरागवान रहता है, ऐसी निश्चय बुद्धि वाला पुरुष ही परम तत्त्व को प्राप्त होकर परम आनन्द को पाता है। उसकी जीवन कीर्ति दुर्लभ है।

वचन—65. इस मार्ग संसार में निर्मल विचार करके अपनी कल्याण के निमित्त यतन करना ही परम साधन है। एक ईश्वर का द ढ़ विश्वासी होना और तमाम तोहमात[1] के बन्धन से मन को निर्मल करना, कर्त्ता-हर्ता महाप्रभु जानकर तमाम शरीर की प्रभता उसकी दयालता जानना, आहार, ब्योहार को पवित्र करना और निश्चल चित्त करके परम परमेश्वर का सिमरण करना, और देह अभिमान से बुद्धि को निर्मल करना, स्वार्थ अंधकार से निर्मल होकर परमार्थ में अपने आपको निश्चल करना ही असली भगति है।

वचन—66. लोक सेवा मुख्य धर्म जानकर हर घड़ी अधिकारी को सुख देने का यत्न करना, शरीर के दुःख व सुख नारायण की आज्ञा में द ढ़ निश्चय से देखना, सुबह व शाम नाम अभ्यास में द ढ़ होना और एकाग्र चित्त होकर अपने अन्तर विखे सूक्ष्म तत्त्व ब्रह्म शब्द को अनुभव करना, नौ द्वार के भोगों

1. वहमों

से मन को न्यारा करके एक ईश्वर के सरूप में स्थित करना यानी अन्तर विखे शब्द की धारा में अपने आपको लीन करना, सब संसार की अन्तर्गति और बहिर्गति का प्रकाशक एक ईश्वर को देखना ही दिव्य द ष्टि है।

वचन—67. हर घड़ी, हर लमह अपनी बुद्धि का निहचल ध्यान अन्तर विखे द ढ़ करना, तमाम वासनाओं को त्याग करके ईश्वर भावी पर द ढ़ रहना, निष्काम कर्म की धारणा से तमाम जीवों को सुख देना—ऐसा निर्मल त्याग और विवेक जिस पुरुष को प्राप्त हुआ है वह ही त्रिगुण माया के जाल से छूटकर आत्मसरूप में अपने अन्तर विखे स्थित हुआ है, और नित आनन्द अवस्था को अनुभव करके त ष्णा के जाल से मुक्त हो गया है। यह निर्वास, अचल, अडोल अवस्था ही समाधि है। जो इस पूर्ण अवस्था को प्राप्त करके संसार में विचरता है वह ही समदर्शी पुरुष तमाम संसार को कल्याण के देने वाला है। उसका वचन और कर्म अश्चर्ज है। नाम ही उसका आधार है। नाम ही उसका परिवार है। नाम ही उसका व्यौहार है। ऐसी द ढ़ स्थिति वाला पुरुष ही जीवन मुक्त है और जानने योग्य तत्त्व को उसने जाना है। सरब ज्ञाता होकर पूर्ण स्वरूप में लीन हुआ है। ऐसी रहनी ही अखण्ड शान्ति और परम पद है।

वचन—68. अपनी आत्मिक उन्नति करनी ही परम धर्म है। नहीं तो मन माया के मोह में गिरफ़्तार होकर अति पाप कर्म में प्रव त्त हो जाता है। फिर कई जन्म तक आवागवन के चक्र में फिरता है। इस वास्ते मानुष जन्म को धार कर परम यतन करके परम पद की प्राप्ति करनी चाहिये। यह ही उपदेश सत्पुरुषों का है और उस उपदेश को अपनाना ही उनकी पूजा है।

वचन—69. जो हर घड़ी अपनी अन्तिम दशा का विचार करके अपने साखी सरूप आत्मा का चिन्तन करता है और अपने निर्मल विचार से तमाम जीवों का हितकारी होता है, अपनी कामना को त्याग करके निष्काम व त्ति करके जो दूसरे की सेवा करता है और अन्तर विखे निमख-निमख करके सत्नाम का सिमरण करता है, वह परम भक्त सहज ही परम आनन्द को प्राप्त हो जावेगा। सत्पुरुषों की सिखया में अपने आप को जो मिटाने वाला है, वह ही निज सरूप आत्मा का दर्शन पा सकता है, जो परम आनन्द अवस्था है।

वचन—70. परम धाम की प्राप्ति तमाम संसार में जीवित में ही निर्वास होने से होती है। सो निमख-निमख जो सत् सरूप में द ढ़ होते हैं, वे ही गुणी पुरुष परम पद को प्राप्त होते हैं। संसार में उनका जीवन दुर्लभ है और कल्याणकारी है। वे ही ईश्वर तत्त्व के

चिताने वाले हैं और संसार की अगन से शाँति दिखाने वाले हैं, उनका दर्शन दुर्लभ है। और उनका वचन जो निश्चय करके धारण करता है वह भी सत्-पद को प्राप्त होता है, जो असली आनन्द स्थान है। इस वास्ते हर एक प्राणी मात्र को चाहिये कि बाद-मुबाद को छोड़कर अपने आपको पवित्र करे और आनन्दमयी अवस्था को प्राप्त करने की ख़ातिर छिन-छिन विखे अपने मन को ईश्वर नाम में द ढ़ करें, और लोक सेवा को धारण करें। ऐसे निश्चय से ही परम पद प्राप्त होता है।

वचन—71. जितने भी सत्पुरुष, गुरु, पीर, अवतार दुनिया में आये हैं, उन्होंने पहले सत्-पद को खुद प्राप्त किया है, फिर दूसरों के वास्ते कल्याणकारी हुए हैं। सबका सार विचार यह ही है कि जीव अपनी कुबुद्धि से माया के मोह में दुःखी होता है। इस दुःख की निव त्ति की ख़ातिर सत् सरूप की उपासना, भगति और ज्ञान है। सो जो गुणी पुरुष सत् सिखया को धारण करके अपने अन्दर सत् यतन दुर्मत के नाश करने का करेगा, वह ही परम शाँति को प्राप्त होवेगा।

वचन—72. यह संसार देखने में परम सुखदाई मालूम होता है, मगर अन्तर में बिख सरूप है। यानी बग़ैर रञ्ज व ग़म के कुछ हासिल इसमें नहीं है। गुणी पुरुष हर वक्त परम धाम की प्राप्ति का

यत्न करता है, क्योंकि छिनभंगुर शरीर किसी वक्त नाश हो जावेगा। जीवित में ही परमानन्द को जो प्राप्त होवेगा वह असली कल्याण को पावेगा, जो अविनाशी अडोल पद है।

वचन—73. हर घड़ी अपने मन को अन्तरमुख करके सत्नाम का सिमरण करना और तमाम कामनाओं का निरोध करना ही जिज्ञासुओं का परम धर्म है। आहार, व्यौहार, विचार और संगत का निर्मल व्रत धारण करने से आत्म-तत्त्व प्राप्त होता है। यह ही मुख्य साधन हर एक महापुरुष का जीवन है।

वचन—74. पवित्र आहार भूख निव त्ति की ख़ातिर खाना और बाज़-बाज़ मौका[1] पर निराहार रहना, यह आहार का व्रत है। अपने कारोबार में पवित्रता हासिल करनी और अपनी कमाई सत्कर्मों में लगाना, किसी के साथ धोखा न करना, सब इन्द्रियों पर काबू पाना, मर्यादा से कारोबार करना वक्त मुकर्रर करके[2], यह व्यौहार का व्रत है। अपने विचार की आन्तरिक सोच और मुख से उच्चारण करने में पवित्रता हासिल करनी और किसी से कपट न करना, और बार-बार सत्पुरुषों के इतिहास विचार करना, और अपने जीवन में सत् अनुराग को धारण करना, और हर एक की भलाई विचार करना, यह विचार का व्रत है।

वचन—75. सत्पुरुषों की संगत करनी और उनके सत् वचन को अपनाना, अपने मन की दुष्ट

1. किसी किसी अवसर 2. समय निश्चित करके

वासनाओं को त्याग करके निष्काम भगति धारण करनी, ईश्वर विश्वास और लोक सेवा को हृदय में द ढ़ करना, संसारी ऐश्वर्य प्राप्ति के मान-गुमान का त्याग करना, सब कुछ ईश्वर का ही जानकर निश्चय से सिमरण करना और अधिक प्रीत से अधिकारी की सेवा करनी, यह सत्संग का व्रत है। ऐसे महाव्रतों को जो धारण करता है वह ही असली सिमरण, भजन, ध्यान और समाधि को प्राप्त हो सकता है। इस वास्ते अपने जीवन को पवित्र करने की कोशिश करनी चाहिये, जिससे ज़िन्दगी में ही अपने बन्धन काटकर निर्भय धाम को प्राप्त हो जावे।

ईश्वर सत् प्रतीत देवे, जो इस अगोचर कथा का विचार करके अपने जीवन को निर्मल करने की भावना जिज्ञासु की द ढ़ होवे।

दूसरा भाग समता योग सिद्धि समाप्तम्

तीसरा भाग—*गुरुपद का सिद्धान्त*

वचन—1. गुरु शब्द का अर्थ यह है कि अन्धकार को नाश करने वाला। वास्तव में तो गुरु एक शब्द सरूप परमेश्वर ही है, जो तमाम भ्रम अन्धकार से निर्मल है और तमाम भ्रम अन्धकार को नाश करने वाला है। अखण्ड

प्रकाश घट-घट व्याप रहा है। उस परम तत्त को जब बुद्धि अनुभव करती है तब सब अन्धकार से पवित्र होकर प्रकाश सरूप में लीन हो जाती है।

वचन—2. संसार की विचरित हालत में संसारी नीति का ज्ञान भी जिससे प्राप्त होवे वह संसारी गुरु माना जाता है। यानी इस जीव को हर वक्त सिखया की जरूरत है, बग़ैर सिखया के सांसारिक तथा परमार्थिक बोध नहीं हासिल कर सकता है।

वचन—3. परमार्थिक गुरु वह ही हो सकता है जिसने परम तत्त अविनाशी परमेश्वर में स्थिति हासिल की हो और तमाम त ष्णा विकार से जो पवित्र हो चुका हो, यानी हर वक्त अपने अन्तर विखे परम प्रकाश में जो लीन रहता हो।

वचन—4. सिर्फ ईश्वर प्राप्ति का रास्ता जानने वाले को गुरु नहीं कहते हैं, बल्कि ईश्वर सरूप में जो आनन्दित हुआ हो, वह असली गुरु है। सिर्फ रास्ता जानने से गुरु कहलाने का मुस्तहिक[1] नहीं हो सकता है, जब तक कि वह अपनी सत् श्रद्धा और प्रेम भगति से अंतरगत में परमेश्वर में लीन न हो जावे।

1. योग्य, पात्र

वचन—5. ऐसे कथनी गुरु जो ईश्वर तत्त को प्राप्त नहीं हुए हैं, वे विद्या के मान में आकर बड़े-बड़े अनर्थिक पाप कर्म करके खुद असली शान्ति को न प्राप्त हो सकते हैं और न ही शिष्यों को पापों से छुड़ा सकते हैं। यानी गुरु व शिष्य दोनों दुराचारी होकर लोक व परलोक दोनों को बिगाड़ देते हैं।

वचन—6. जो कथनी ब्रह्म-ज्ञानी हैं, और देह के मद में गिरफ़्तार हैं, और शिष्यों से अपनी देह की पूजा करवाते हैं, वे शिष्यों का धन-माल लूटकर अपने भोगों में सर्फ़[1] करते हैं। वे गुरु नहीं बल्कि धर्म के नाशक हैं और दुनिया में पाप को फैलाने वाले हैं।

वचन—7. जो कथनी मात्र अपने आपको कर्मों से विलग मानते हैं और शिष्यों को यह उपदेश करते हैं कि आत्मा निर्लेप है, पाप व पुण्य देह करके हैं, हम आत्म-सरूप हैं, हमको कोई कर्म लेप नहीं कर सकता है, इस वास्ते हमारी करनी पर ग़ौर न करो बल्कि तुम अपनी सत् श्रद्धा से गुरु को ब्रह्म सरूप जानकर पूजा करो। ऐसे कपटी गुरु इन्द्री भोगों की ख़ातिर गुरुडम फैलाकर कई स्त्री और पुरुषों को चेले-चेलियाँ बनाकर खूब प्रक ति के भोगों का आनन्द हासिल करते हैं और तमाम धर्म की सत्ता को नाश कर देते हैं। उनके कथनी ज्ञान और पापयुक्त रहनी को विचार करके जनता दुराचारी हो जाती है और संसार में उपद्रव फैल जाता है,

1. खर्च

और अत्यन्त कष्ट में हर एक जीव हो जाता है। कथनी गुरुओं की करनी का यह फल संसारी जीवों को प्राप्त होता है।

वचन—8. गुरुपद अत ही कठिन अवस्था है, कोई ही गुरमुख प्राप्त होता है। जिसने अपने तमाम शारीरिक भोगों से त्याग हासिल किया हो और हर वक्त आत्म-सरूप में स्थित रहता है, पर उपकारी जीवन जिसका हो, हर एक जीव से अधिक प्रेम रखने वाला हो, लाभ व हानि,खुशी व ग़मी, सर्दी व गर्मी, मित्र-शत्रु, भय व भ्रम से जिसकी बुद्धि बिलकुल न्यारी हो चुकी हो और शब्द सरूप ब्रह्म में स्थिति हो गई हो, वह ही गुरु है। यानी प्रथम उसने अपना अंधकार दूर किया है और ईश्वर प्रकाश को प्राप्त हुआ है। उसका उपदेश दूसरों के वास्ते भी कल्याणकारी है।

वचन—9. जो कथनी गुरु तन, मन, धन की भेंट की प्रतिज्ञा शिष्यों से लेकर शिष्यों के धन से अपने भोग पूर्ण करते हैं, और उनके तन से अपने शरीर की सेवा करवाते हैं, और मन से अपनी देह की पूजा कराते हैं और शिष्यों को यह हिदायत करते हैं कि तुम्हारा कल्याण सिर्फ गुरु की भगति में ही है, ऐसे कपटी गुरु क्या कल्याण दे सकते हैं, जो खुद माया में मोहित हो रहे हैं। यह सब ठगी है। अपनी बुद्धि द्वारा विचार करके यह सम्बन्ध धारण करना चाहिये।

वचन—10. असली गुरु तन, मन, धन की भेंट इस तरह शिष्यों से लेते हैं और उपदेश करते हैं कि अपनी ममता को त्याग करके अपने धन को सत् कर्म में लगाओ और तन से जीवों की सेवा करो, और मन से परम परमेश्वर का सिमरण करो, जो तुम्हारे अन्दर प्रकाश कर रहा है। हमारी गुरु भगति यह ही है कि तुम सत् उपदेश द्वारा अपनी कल्याण करो, यानी असली गुरु शिष्यों को अपनी पूजा या सेवा नहीं सिखलाते हैं, बल्कि तमाम जनता की सेवा अपनी सेवा मानते हैं और शिष्यों को जगत की सेवा का उपदेश करते हैं।

वचन—11. जो कपटी गुरु अपने चेले और चेलियों को यही हिदायत करते हैं कि गुरु की देह की पूजा करो, आरती करो, चर्णाम त लो और तमाम अपना धन-माल गुरु अर्पण गुप्त रूप में करो और बिलकुल दूसरे सत्संग में न जाओ, गुरु खुद तुम्हारी कल्याण करेगा, यह सब दम्भ है और धन लूटने का रास्ता है। इस अन्धकार परस्ती में न किसी की कल्याण हुई है और न ही होगी। बल्कि दीन दुनिया दोनों में ज़िल्लत[1] व ख़्वारी[2] हासिल होती है।

वचन—12. असली गुरु ईश्वर पूजा सिखलाते हैं और

1. अपमान 2. दुर्दशा, कष्ट

लोक सेवा अपनी सेवा समझा कर शिष्यों को लोक सेवा में लगाते हैं, और बिलकुल शिष्यों का धन अपने शारीरिक भोगों में इस्तेमाल नहीं करते हैं। बल्कि खुद शिष्यों की सेवा प्रेमपूर्वक करते हैं। ऐसे गुरु धर्म के शिक्षक हैं और जीवों का उद्धार करने वाले हैं। उनका उपदेश असली त्याग सिखलाता है और अन्तर विखे परमानन्द को प्रकाश करता है।

वचन—13. जो गुरु माया इकट्ठी करने की ख़ातिर या अपनी पूजा की ख़ातिर अनेक जादू, जन्तर-मन्तर इस्तेमाल करते हैं, और गुरुडम का जाल फैलाते हैं, और शिष्यों को हर वक्त गुरु भक्ति का उपदेश करते हैं, और हर तरीका की चालाकी करके शिष्यों पर रोब डालकर खूब अपने भोग हासिल करते हैं, ऐसे कपटी गुरु की सेवा नरक के देने वाली है। यह बिलकुल नादानी है कि कपटी गुरु से कोई कल्याण होवेगी। बल्कि धर्म का निश्चय ही नाश हो जावेगा। ऐसे गुरु का कोई श्राप नहीं लगता है। वह खुद अपनी खोटी भावना का फल पाता है। असली गुरु का अगर शरीर भी कोई नाश कर देवे, तो वह श्राप नहीं देवेगा। यह निश्चय कर लेवें।

वचन—14. गुरु वह ही है जो द्वैत मिथ्या कल्पना से निर्मल होकर ईश्वर सरूप में स्थित हुआ

है। हर वक्त संसारी पदार्थों से वैरागवान रहता है। जो ईश्वर भगति में अधिक प्रीति रखता है, अंतर विखे अपनी सुरति को द ढ़ करके सत् शब्द में लीन करता है, और तमाम अन्तर व बाहर की गति को जानने वाला है, और अति परउपकारी जिसका जीवन है, बड़े से बड़े कष्ट में धीरजवान रहता है और सरब दयालु जिसका स्वभाव है, एक आत्मा ही जिसका भोग है, आत्मा ही जिसका आधार है, आत्मा ही को जो सरब जगत में अनुभव करता है, तमाम द्वन्द्व कल्पना से जो विरक्त हुआ है। समसरूप आत्मा में जो लीन रहता है, वह ही तत्त्ववेता पुरुष असली गुरु है। उसी ने तमाम माया से मुक्ति पाई है। उसकी सिखया भी सरब कल्याण के देने वाली है।

वचन–15. कपटी गुरु शिष्यों को जो उपदेश करते हैं कि तमाम संसारी पदार्थ गुरुओं के वास्ते हैं, इस वास्ते तुम सत् श्रद्धा से गुरु सेवा करो, यह ही तुम्हारी कल्याण है, यह सब पाखण्ड का जाल है। सब चीज़ें माया के चक्र में उत्पन्न होती हैं और नाश हो जाती हैं। गुरु व शिष्य के जो ताल्लुक़ात[1] हैं वे रूहानी[2] हैं, न कि महज़ संसारी पदार्थों की भेंट लेने का जाल हैं। यह निश्चय होना चाहिये।

वचन–16. शिष्य को अपने कल्याण की ख़ातिर गुरु की ज़रूरत है और गुरु को जीव उद्धार की

1. सम्बन्ध 2. आत्मिक

ख़ातिर शिष्य अधिकार देने की ज़रूरत है। यानी हर दो को अपना-अपना फर्ज़ मजबूर कर रहा है। किसी पर कोई अहसान नहीं है। यह ईश्वर की माया का नियम है।

वचन—17. शिष्य का फर्ज़ है कि सत् उपदेश द्वारा अपनी आत्मिक उन्नति करनी कि जिस तरह से गुरु ने अपने आपकी कल्याण की है। वह आदर्श द ढ़ होना चाहिये।

वचन—18. गुरु का फर्ज़ है कि शिष्य को उसकी बुद्धि के मुताबिक उपदेश देकर मार्ग पर-उपकार पर द ढ़ करना और परमार्थ निश्चय परिपक्व करवाना, शारीरिक विकारों से निर्बन्ध करके उपदेश देकर ईश्वर विश्वासी बनाना, ऐसा धर्म में निश्चित कर देना कि फिर माया के मोह में न गिरफ़्तार होवे। गुरु और शिष्य का यह ही असली सम्बन्ध है।

वचन—19. ऐसे सम्बन्ध में संसारी पदार्थों के लेन-देन का कोई झगड़ा नहीं है। गुरु का फ़र्ज़ है कि प्रथम अपनी कल्याण करनी और शिष्य को निष्काम लोक सेवा की भावना का उपदेश देना। इन भावों के उलट जो गुरु लोक सेवा के बजाय अपनी सेवा करवाते हैं, ईश्वर पूजा की जगह अपनी देह की पूजा कराते हैं, और शिष्य को खुद अपना अमली जीवन बनाने की बजाय यह दावा करते हैं कि हम तुम्हारी कल्याण करेंगे—यह सब पाखण्ड है। ऐसे गुरु व शिष्य दोनों

मूर्ख हैं। दुनिया में अंधकार फैलाने वाले हैं।

वचन—20. गुरु का फ़र्ज़ है कि निष्काम भावना से शिष्य का उद्धार करना और शिष्य से बिलकुल किसी वस्तु की चाहना न करनी। शिष्य का फ़र्ज़ है कि यथा-शक्ति गुरु की सेवा करनी और सत् उपदेश द्वारा अपनी आत्मिक उन्नति का यत्न करना। जो गुरु लोक सेवा की ख़ातिर शिष्य को हिदायत करते हैं और अपने आप जीवन को निर्मल करने का मुख्य धर्म समझते हैं, वह गुरु कल्याणकारी हैं। इसके उलट जो महज़ अपनी देह का ही स्वार्थ शिष्य से चाहते हैं, वह सब दम्भ है। ऐसा विचार कर लेना चाहिये।

वचन—21. शिष्य को चाहिये कि गुरु की ऐसी तहक़ीक़ात करे जिस तरह लोहार लोहे की सार लेता है। असली गुरु जो होता है उसकी तहक़ीक़ात करने से धर्म निश्चय द ढ़ होता है और जो दम्भी गुरु होता है, उसकी तहक़ीक़ात करने से सब जाल का पता लग जाता है। यह जाँच अधिक जरूरी है। नुमायश में नहीं भूलना चाहिए।

वचन—22. गुरु उपदेश का सिद्धान्त यह है कि मिथ्या माया से उपरस होकर ईश्वर प्राप्ति का यतन करे, जो आनन्द सरूप है। शिष्य परम श्रद्धा और निर्मल प्रेम से इस मार्ग में कामयाब हो सकता है। जो सत् यतन को

छोड़कर महज़ कथनी मात्र गुरु के आसरे रहता है, वह कभी भी कल्याण को प्राप्त न हो सकता है और न ही गुरु भगत हो सकता है। यानी कथनी निश्चय कोई कल्याण नहीं दे सकता है। साधन से ही सिद्धता प्राप्त होती है। बग़ैर साधन के कोई कामयाबी हासिल नहीं कर सकता है।

वचन—23. गुरु का फर्ज़ है कि शिष्य की कल्याण की ख़ातिर अपना सब कुछ निछावर कर देवे और शिष्य का फर्ज़ है कि गुरु वचन में अपने आपको मिटा देवे। अगर ऐसा प्रेममयी सम्बन्ध होवे तो कल्याणकारी है। इसके उलट जो गुरु अपने दाव में रहता है और शिष्य अपने दाव में, ऐसे निश्चय से कभी भी कल्याण नहीं हो सकती है।

वचन—24. गुरु का फर्ज़ है कि कल्याण की ख़ातिर शिष्य का अधिकार शिष्य को देवे, न कि माया की ख़ातिर शिष्य बनावे। अगर माया के प्रेम की ख़ातिर जो शिष्य बनाता है, वह गुरु भी और चेला भी कई जन्म अधम जूनियों को प्राप्त होते हैं।

वचन—25. जो गुरु अधिकारी शिष्य के बग़ैर परमार्थ का उपदेश देते हैं, या कुंवारी कन्या और छोटे बच्चों को परमार्थ का उपदेश देते हैं, उसका नतीजा गुरुओं की बेइज़्ज़ती और धर्म का नाश है। क्योंकि जब तक सही श्रद्धा और समझ न होवे तब तक परमार्थ

का उपदेश कल्याण नहीं दे सकता। इसके अलावा स्त्री उपदेश अपने पति के गुरु से, या पति की आज्ञा लेकर पति सहित गुरु से परमार्थ का उपदेश लेवे, तो वह दोनों के वास्ते सुखदाई है। अगर पति गुज़र गया होवे तो और किसी नज़दीक के रिश्तेदार को साथ लेकर परमार्थ का उपदेश गुरु से लेवे, तो सुखदाई है। इसके उलट अपनी मनमानी करके और बग़ैर पूरी पहिचान के जो स्त्री किसी गुरु से उपदेश लेती है, वह उसके वास्ते सफलता के देने वाला नहीं है, बल्कि अपयशदायक है, और संसारी नीति के बरखिलाफ[1] है। और कुंवारी कन्या को गुरु धारण करना भी धर्म नीति के विरुद्ध है; और गुरु को कुंवारी कन्या को शिष्य बनाना भी योग्य नहीं है और जगत मर्यादा के प्रतिकूल है। इसका नतीजा धर्म की हानि और पाप का फैलाव है।

वचन–26. जो गुरु स्त्रियों से अपनी आरती करवाते हैं, वह भी धर्म के विरुद्ध है। किसी हालत में भी अकेली स्त्री को नज़दीक न बैठने देवे। और ज़्यादा अकेली स्त्रियों की संगत में, जिसमें कोई पुरुष न होवे, गुरु उपदेश न करे। इन नियमों के विरुद्ध जो गुरु चाल चलते हैं, यानी ज़्यादा स्त्रियों को उपदेश करते हैं और अपनी देह की आरती बग़ैरा करवाते हैं, वे एक दिन कलंक को पावेंगे और गुरु पद को नाश कर देवेंगे। ऐसी

1. विरुद्ध

उलट धारणा से दुनिया में अधर्म प्रगट हो जावेगा। गुरु का फ़र्ज़ है कि परमार्थ बुद्धि वाले को परमार्थ का उपदेश करे और स्वार्थ बुद्धि वाले को शुद्ध आचरण का उपदेश देवे, जिससे हर एक जीव को अपनी बुद्धि के मुताबिक धर्म उपदेश सुनकर शाँति होवे।

वचन—27. गुरु को ज़्यादा उपदेश पुरुषों को देना चाहिये और स्त्रियों को पुरुषों के ज़रिये[1] हिदायत करवानी चाहिये, या स्त्री-पुरुष दोनों को बैठा कर उपदेश करना चाहिये। सार यह है कि खुल्लमखुल्ला स्त्री को उपदेश करना, या याचना किसी वस्तु की करनी गुरु के वास्ते बाइसे[2] कलंक है और धर्म नीति के विरुद्ध है।

वचन—28. जो गुरु जिह्वा की बहुत रसना चाहने वाला है, और पहनावे का बहुत शौकीन है, और अपनी कामना पूरी करने की ख़ातिर बहुरंग के विचित्र उपदेश देता है, और वह उपदेश उसके जीवन में मौजूद नहीं हैं, ऐसे कपटी गुरु के नज़दीक तक नहीं जाना चाहिये, इसका नतीजा कलंक और क्लेश है।

वचन—29. गुरु पूर्ण रहनी वाला, पूर्ण कहनी वाला, पूर्ण सहनी वाला, और द ढ़ आसन वाला होवे तो वह कल्याणकारी है। यानी पूर्ण ज्ञान को पहचानने वाला होवे और जो वचन कहे उस पर पूर्ण अमल करने वाला होवे। अन्तर

1. द्वारा 2. कारण

बाहिर एक ही भाव वाला होवे। दुःख-सुख में अचल रहने वाला होवे और बैठक जिसकी बहुत होवे, और किसी वस्तु की चित्त में कामना जिसको न होवे। वह गुरु धर्म की मर्यादा को कायम करने वाला है और जीवों को कल्याण देने वाला है।

वचन–30. सार निर्णय यह है कि गुरु रहनी वाला अपने उदार आत्मा से शिष्य के कल्याण की ख़ातिर हर वक्त सत् धर्म उपदेश शिष्य को देवे, और भली प्रकार करके शिष्य की उन्नति की ख़ातिर यतन करे, और चित्त में रचंक भी शिष्य से अपनी सेवा का भाव न रखे, यानी दयालु होकर हर वक्त क पा करे। शिष्य का फ़र्ज़ है ऐसे उपकारी गुरु के वचन में अपने जीवन को मिटा देवे, और आज्ञाकारी पद हासिल करे। तब संसार में धर्म का सूरज प्रकाश होता है और सब जीव धर्मवान हो जाते हैं, ऐसी भावना ही असली कल्याणकारी है। ईश्वर गुरु को गुरु-पद का निश्चय देवे और शिष्य को शिष्य का अधिकार बख़्शे। सब प्रेमी सत् बुद्धि द्वारा यह विचार निश्चय में धारण करें।

गुरु सरूप लखना

शबद तत्त गुरु मूरत पेख ।

महमा गुरु की घट-घट देख ॥
इन्द्री-संजम गुर का व्यौहार ।
शुद्ध-विवेक गुर का नित आहार ॥
पर-उपकार गुर बस्तर ओढ़े ।
निर्वास-गती अनुभव चित्त जोड़े ॥
दुःख-सुख परे सतगुर बिराजे ।
अकाल सरूप हो सरब निवाजे ॥
ज्ञान ध्यान खिमा संतोखा ।
भगति प्रेम तत्त परस अनोखा ॥
अन्तरगत में गुर रहे लवलीना ।
नित परकाश उपरस रस चीन्हा ॥
अडोल अचाहक गुर की रहनी ।
सत्-परतीत है गुर की कहनी ॥
द्वन्द्व त्याग करनी गुर धारी ।
दीन भाओ गुर चरण विचारी ॥
आतम निश्चय गुर आरती पहचान ।
अकल्प ध्यान चरण अम त गुर जान ॥
आपा त्याग गुर पूजा सोध ।
सरब हितकारी मन्तर गुर बोध ॥
पाँच पच्चीस से रहे अतीत ।
गुर का धाम खोज गुणी मीत ॥
एह बिध गुर की जो लखना करे ।
सो शिष्य बौहड़ नहीं जन्मे मरे ॥

दुर्मत त्याग पद परसे निर्वाना ।
गुर की महमा जिस करी पहिचाना ॥
ज्ञान गुरू का नित लखावे ।
सो साजन परम-गत पावे ॥

अखण्ड अछेद गुर धाम है, परमानन्द की खान ।
''मंगत'' जो लखना करे, सो तीन लोक परवान ॥

तीसरा भाग गुरुपद सिद्धान्त समाप्तम्।

समतावाद

वचन—1. समतावादी सज्जन ईश्वर के सत् नियमों का पालन करना अधिक ज़रूरी फ़र्ज़ जानकर हर एक मज़हब के साथ निर्वैर होकर बर्ताव करना ही अपना मुख धर्म जाने, और अपने आपको ईश्वर आज्ञा में निश्चित करके समभाव में स्थित होना ही परम साधन समझे।

वचन—2. जिस-जिस मज़हब या पन्थ में जो समतावादी सज्जन होवे उसको अपना जीवन निर्विकार बनाना और दूसरों की कल्याण चाहनी अपना मुख उद्देश्य जाने।

वचन—3. भिन्न-भिन्न मज़हबी व मुल्की रस्मों-रिवाज़ के तंग दायरों से अपने आप को आज़ाद करके उनके बादमुबाद से मुखलिसी हासिल करे और निष्काम भाव से सत् कर्मों में अपने आपको द ढ़ करे।

वचन—4. समभाव ही कल्याण है। समभाव ही जीव का वास्तव सरूप और परमधाम है। समभाव ही धर्म है। समभाव की प्राप्ति में यतन करना ही गुरमुख मार्ग है। इस वास्ते अपने आपको मज़हबी खुदगर्ज़ी[1] से आज़ाद करके सत् उसूलों में पाबन्द होने का सत् साधन धारण करे, और हर घड़ी हर लमह अपने आप पर काबू पाने की कोशिश करे। इसमें ही असली शाँति है।

समतावाद समाप्तम्

उत्तरायण व दक्षिणायण मार्ग के मुत्तल्लिक[2] विचार

इस संसार की विचरित हालत के दो पहलू हैं। इन दो हालतों को कई नामों से वाज़ह[3] किया गया है। आखिर जितने भी नाम हैं दो हालतों का निर्णय दिखलाते हैं। ग़ौर करके विचार करें।

ज्योतिर्मयी अग्नि यानी ब्रह्म सरूप

इससे दो हालतें प्रगट होकर संसार के सरूप में भासती हैं, और जीव इन दो हालतों का विचार करे तो असलियत को पहुँच जावेगा।

दो हालतों का निर्णय एक दूसरे के उलट है— दिन के मुकाबले में रात, शुक्ल पक्ष के मुकाबले में

1. पंथक स्वार्थ 2. विषय 3. बयान

कृष्ण पक्ष। पक्षों के हिसाब पर साल के दो हिस्से किये गये हैं। एक हिस्सा अन्धेरे से ताल्लुक रखता है दूसरा चान्दने से, यानी तमाम दुनिया की उत्पत्ति और नाश बारह महीनों में ही होती है। छः महीने अन्धेरे के और छः महीने चाँदने के। तमाम दुनिया की पैदायश व फना कोई चाँदने में होती है और कोई अन्धेरे पक्ष में होती है। आखिर में निर्णय यह है, यह दो पहलू संसार की जो दो हालतें हैं हर एक से गुज़रती हैं। ऐसे ही शरीर की अन्तर्गति और बाहिर्गति की भी दो हालतें हैं। उत्तर दिशा के मानी ऊँचाई और दक्षिण दिशा के मानी निचाई। इस जगह यह निर्णय होता है कि शुक्ल पक्ष मानिन्द (की तरह) उत्तरायण दिशा यानी अन्तर्गति मानिन्द दिन जो प्रकाशमयी हालत अन्तर स्वरूप है। इस वास्ते अन्तर्मुख अवस्था में व त्ति को लीन करके जो शरीर छोड़ता है वह अखण्ड अबिनाशी सरूप, जो सूरज की तरह अखण्ड है, उसमें लीन हो जाता है। उसके बरअक्स[1] क ष्ण पक्ष मानिन्द रात्रि बाहिर्गति हालत, जो धुआँ के समान कर्म वासना का अम्बार[2] है, उसमें जो शरीर छोड़ता है वह चन्द्रमा सरीखा[3] हालत, जो घटने बढ़ने वाली है, उसमें प्रवेश करता है यानी जन्म-मरण में आता है। अर्थात् उत्तरायण दिशा जो अन्तर्गति है उसको शुक्ल पक्ष, दिन और सूरज से तशबीह देकर समझाया

1. उलट, विप्रति 2. ढेर, इक्कट्ठ, समूह 3. जैसी, की तरह

गया है। और छः माह के मानी यह हैं कि कुल दुनिया की पैदायश बारह महीने के अन्दर-अन्दर होती है, कोई चाँदने पक्ष में पैदा होता है और मरता है, कोई अन्धेरे में। तमाम की पैदायश व फ़ना छः माह अन्धेरे पक्ष में होती है और छः माह चाँदने पक्ष में होती है। यानी साल में किसी वक्त भी कोई मरे, इस जगह निर्णय अन्तर्गति सूरज सरूप और बाहिर्गति चन्द्रसरूप का आया है। अन्तर्गति ब्रह्म प्राप्ति और बाहिर्गति कर्म वासना। अन्तर्गति बाहिर्गति तशबीह[1] देकर समझाया गया है।

तशबीह (तुलना)

अन्तर्गति	बाहिर्गति
उत्तरायण	दक्षिणायण
सूरज	चन्द्रमा
शुक्ल पक्ष	क ष्ण पक्ष
साल की तकसीम :	
छः माह शुक्ल पक्ष	छः माह क ष्ण पक्ष
अखण्ड प्रकाश सरूप	धुआँ समान तबदीली युक्त

1. तुलना

इन्हीं दो हालतों का बयान किया है कि अन्तर्गति जो ऐसी है, इसमें शरीर छोड़ने से मोक्ष मिलती है और बाहिर्गति जो हालत है इसमें शरीर छोड़ने से आवागवन में फिरता है। यह निश्चय कर लेवें। असली सिद्धान्त यह है कि भीष्म पितामह के हालात को कवियों ने उत्तरायण, दक्षिणायण का अलंकार देकर उसकी बुजुर्गी ज़ाहिर की है। मगर यह मुक्ति और बन्धन के हालात जीव की अन्तर्गति और बाहिर्गति में घटता है। ये ही दो रास्ते हैं। अन्तर्गति निष्काम कर्म, विज्ञान सरूप, देवयान मार्ग और बाहिर्गति सकामकर्म, पित यान मार्ग है। जीव के बन्धन और मोक्ष के दो रास्ते हैं। मूर्ख बुद्धि वाले बाहिर कहीं सड़क तलाश करते हैं। यह सब हालात शरीर के हैं। योगी लोग ही अन्तर्गति में प्रवेश करके बाहिर्गति जो भ्रम सरूप है, उसका निर्णय करते हैं। बन्धन और मोक्ष की हालत बयान करते हैं। इसका निश्चय कर लेवें। तमाम दुनिया का इल्म[1] इन ही दो हालतों में मौजूद है। अन्तर्ज्ञानी योगी ही जान सकता है। इस वास्ते हर वक्त अपने मन को अन्दर समेट कर नाम में द ढ़ करना चाहिये, तब ब्रह्म प्रकाश अन्दर प्रगट होकर जीव को शान्त कर देता है, यानी कर्मों से निर्बन्ध कर देता है। यह ही मोक्ष है। इसके उलट जब तक बाहिर्मुखी है तब तक कर्म वासना में गिरफ़्तार होकर कई प्रकार के शरीर धारण करता है और चन्द्रमा के समान तबदीली में रहता है।

तीसरा भाग गुरुपद सिद्धान्त समाप्त हुआ।

----

1. विद्या, ज्ञान

समता अपार शक्ति

ब्रह्म सत्यं सर्वाधार

चौथा भाग—पवित्र जीवन

भव सागर के तरन को, निर्मल करे विचार।
सत संगत सत सीख को, निश्चय मन में धार।।

सत पढ़िये सत सुनिये, सत कीजे निदिध्यास।
एह विध यत्ना जो धरे, तिस मन हो परकास।।

मारग सहज कल्याण के, सकले दिए बताए।
'मंगत' जो साधे नित प्रेम से, सो निश्चय तर जाए।।

वचन—1. पवित्र जीवन के भेद को जानना ही मानुष जन्म की उच्चता है। वैसे तो सब जीव शारीरिक पवित्रता को तो बहुत अच्छा समझते हैं, मगर अन्तःकरण की पवित्रता को न समझते हुए नाना प्रकार के विलखन[1] कर्म करके नित ही अधीर रहते हैं। इस वास्ते अन्तःकरण की पवित्रता को समझना और श्रेष्ठ कर्त्तव्य धारण करना ही असली पवित्रता है। जब तक अन्तःकरण की पवित्रता को न समझा जावे, तब तक कभी

1. विलक्षण, अनोखे, विचित्र, अजीब

भी निर्मल कर्म में उत्साह पैदा नहीं होता है, और निर्मल कर्म के न धारण करने से मलीन कर्म अवश्य करने पड़ते हैं, जो परम दुःख और अशान्ति के देने वाले होते हैं। इस वास्ते अधिक से अधिक यत्न करके मानसिक पवित्रता के भेद को समझना ही परम कल्याण के देने वाला साधन है।

वचन—2. शरीर रूपी संसार में यह खास शक्तियाँ नित्य ही काम कर रही हैं—और इन ही शक्तियों के अनुकूल काम करने का सरूप जीवन है—पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ, पाँच कर्म इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और प्राण। ज्ञान और कर्म इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा को मनन करने वाली शक्ति को मन कहते हैं। और मन के दोषों को अच्छा या बुरा समझने वाली शक्ति को बुद्धि कहते हैं। यानी बुद्धि की समझ के मुताबिक[1] ही मन दौड़ता है और मन की दौड़ के मुताबिक ही इन्द्रियाँ कर्म करती हैं। इस वास्ते इन्द्रियों के कर्म अनुकूल या प्रतिकूल का होना बुद्धि की पवित्रता पर मुनहसिर[2] है। जितनी बुद्धि निर्मल होती है, उतनी ही इन्द्रियों द्वारा निर्मल कर्म करके सत् शान्ति को प्राप्त होती है, और जितनी बुद्धि मलीन होती है, उतने ही इन्द्रियों द्वारा मलीन कर्म करके नित अशाँत रहती है। इस वास्ते तमाम जीवन का आधार

1. अनुसार 2. निर्भर

बुद्धि की पवित्रता के मुताबिक है, और बुद्धि की पवित्रता को ही असली पवित्रता कहते हैं।

वचन—3. बुद्धि की पवित्रता सत् विचार, सत् आचार, सत् विश्वास और सत् यत्न से ही हो सकती है। वास्तव में परम पवित्र सरूप तो एक जीवन शक्ति आत्म-सत्ता ही है, जो तमाम खेदों और विकारों से न्यारी है और नित परिपूर्ण आनन्द सरूप है। उसी शक्ति को परमेश्वर, ब्रह्म, और ज्ञान आदि अनन्त नामों से सिद्धों ने उच्चारण किया है और वह ही शक्ति बुद्धि के परे प्रकाश कर रही है। ऐसी महाशक्ति के परायण जब बुद्धि होती है तब असली शुद्धि को प्राप्त हो सकती है। और उस महाशक्ति के विचार को सत् विचार कहते हैं। और उस शक्ति के परायण होकर के निर्मल कर्म शरीर द्वारा करने—इस को सत् आचार कहते हैं। और उसी शक्ति का अधिक से अधिक विश्वास द ढ़ होना ही सत् विश्वास है और उसी शक्ति के अनुभव करने का यत्न ही सत् यत्न है।

वचन—4. ऐसे महाप्रभु परम तत्त्व शुद्ध चेतन सरूप के अनुराग के बल से बुद्धि असली पवित्रता को प्राप्त होती है और सत् शाँति को अनुभव करती है। बुद्धि त्रैगुण अहंकार कर्त्तापन को धारण करके त्रैगुणी वासना में नित ही चलायमान होकर के इन्द्रियों के शुभ-अशुभ कर्म करके नित ही अधीर रहती है, और सत्

शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकती है। इस वास्ते यह अहंकार ही परम मलीनता का सरूप है। जब तक बुद्धि इस अहंभाव को निर्मल करने का यत्न नहीं करती है तब तक असली पवित्रता को प्राप्त नहीं हो सकती है, और न ही शरीर द्वारा निर्मल कर्म कर सकती है।

वचन—5. इस जीवन यात्रा में अधिक उत्तम कर्त्तव्य केवल एक सत् सरूप परमेश्वर की महिमा को जान करके और शारीरिक दोषों को भी अच्छी तरह समझ करके नित ही सत् सरूप के परायण होना ही परम कल्याण का सरूप है। बुद्धि कर्त्तापन अहंकार के वश हुई हुई नाना प्रकार की वासना को धारण करके कर्म फल द्वन्द्व में नित ही दुखित रहती है, और राग-द्वेष की अग्नि में जलती रहती है। यह ही अवस्था परम मलीनताई का सरूप है।

वचन—6. नित ही सत् विचार द्वारा जीवन के सही भेद को समझना और फिर सत् यत्न को धारण करना ही परम शुद्धि और कल्याण है। जब तक बुद्धि अहंकार की गिरफ़्तारी में है तब तक कर्म वासना में आसक्त रहती है, और जब तक कर्म वासना में चलायमान होती रहती है, तब तक असली पवित्रता को नहीं जान सकती है—जो निहखेद तत्त्व है। इस वास्ते अधिक से अधिक यत्न करके सत् सरूप के परायण होना ही परम कल्याण का

निश्चय है और यह ही भावना असली पवित्रता के देने वाली है। नित ही ऐसे प्रयत्न को धारण करना जीवन का उच्च कर्त्तव्य है।

वचन—7. वैसे स्वभाव करके बुद्धि शारीरिक भोगों में आसक्त रहती है और शरीर की उत्पत्ति से ही शारीरिक भोगों का ज्ञान बुद्धि को होता है—यानी खाना-पीना, सोना-जागना, लेना-देना, मित्र-शत्रु तथा तमाम इन्द्रियों के भोगों को अच्छी तरह से शारीरिक अवस्था के मुताबिक समझती है, और इन भोगों को प्राप्त करने की ख़ातिर नाना प्रकार के यत्न करती है। यह ही अवस्था जीवन सरूप संसार है।

वचन—8. जब तक बुद्धि मलीनताई में विचरती है, यानि शरीर और शरीर के भोग ही परम सुखरूप समझती है, तब तक कभी भी पवित्र स्थिति को धारण नहीं कर सकती है। यानि ऐसी अंध भावना को धारण करके शरीर के भोगों में अति आसक्त होकर के काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की भयानक अग्नि में नित ही जलती रहती है और मलीनताई की अधिकता को धारण करती रहती है। यह ही जीवन अधिक संकट सरूप है।

वचन—9. बुद्धि ऐसे असत् भाव को धारण करके केवल शारीरिक भोग ही जीवन का कर्त्तव्य जब समझती है; तब शारीरिक सुखों की प्राप्ति की ख़ातिर नित अधिक क्रूर कर्म धारण करती है; यानि झूठ, चोरी, छल, कपट और पर नाश

के यत्न में दिन-रात रहती है। ऐसी मलीन वासनाओं के धारण करने से अधिक संकट में भरमती है और कई जन्म धारण करके परम दुःख को प्राप्त होती है। यह अवस्था ही परम मलीनताई अंधकार का सरूप है। इस वास्ते जीवन यात्रा के सही भेद को समझना ही असली कल्याण है।

वचन—10. सार विचार यह है कि बुद्धि सत् सरूप परम तत्त्व आत्मा को भूलकर के अहंभाव को धारण करके त्रैगुणी माया के ज़ेरे-असर[1] होकर के नाना प्रकार के कर्मों को धारण करती है और कर्मफल द्वन्द्व की प्राप्ति में अधिक भयभीत रहती है। यह तमाम चक्र ही मलीनताई यानी अविद्या का सरूप है।

वचन—11. ऐसे अन्धकारमयी जीवन के भेद को समझकर नित ही सत् यत्न द्वारा जब बुद्धि सत् परायण होने का यत्न करती है, यानी एक परमेश्वर को ही सत् और आनन्द सरूप समझती हुई और तमाम शारीरिक भोग वासना को खेद रूप जानती हुई नित ही अपनी उन्नति का यत्न करती है, तब ही असली पवित्रता के मार्ग को जान सकती है।

वचन—12. स्वभाव करके बुद्धि शारीरिक भोगों की आसक्ति में यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार की अधिक वासना में नित ही मलीन और दुखित रहती है। ऐसे खेद-युक्त मलीन जीवन के भेद को जानना ही सत् विचार का

1. अधीन

बोध करना है, और जो भी देहधारी संसार में प्रतीत हो रहे हैं, वे इन विकारों की अग्नि में जल रहे हैं और अन्धमति को धारण करके इन विकारों को ही जीवन सरूप समझते हुए, असली पवित्रता और शान्ति के मार्ग को न धारण करते हुए परम दुखित रहते हैं—यह ही अज्ञानमयी जीवन सरूप है।

वचन—13. ऐसे जीवन के भेद को जब तक न समझा जावे, तब तक सत् सरूप परमेश्वर का द ढ़ विश्वास प्राप्त नहीं होता है, जो परम पवित्रता और शान्ति के देने वाला है। इस वास्ते इस त खावन्त जीवन के भेद को अच्छी तरह से समझना ही उन्नति के देने वाला सत् विचार है और जीवन समय में ही सत् शाँति परम सुख की प्राप्ति का साधन है। इस वास्ते अधिक से अधिक यत्न करके सतग्रही भावना को धारण करना चाहिये—जिस करके तमाम दोषों से पवित्रता प्राप्त होवे।

वचन—14. जो भी संसार में उत्पन्न हुआ है, वह अपनी कमी को पूरा करने के यत्न में द ढ़ हो रहा है। मगर अज्ञानवश हो करके अपनी कमी को पूरा करने की बजाय कमी दर कमी को धारण कर रहा है, और ऐसा समझता है कि मैं अपनी उन्नति कर रहा हूँ—यह ही असली मूढ़ता है। वास्तव में अपनी-अपनी वासना को पूर्ण करने की ख़ातिर अधिक से अधिक इन्द्रियों के भोग एकत्र करने में हर एक जीव विचर रहा है। मगर ऐसा नहीं जान सकता है कि इन्द्रियों के भोग वासना को पूरे करने वाले नहीं हैं, बल्कि वासना को बढ़ाने वाले हैं, जो

शरीर के अंत में परम दुःख सरूप प्रतीत होते हैं। ऐसा न समझना ही परम मलीनताई है।

वचन—15. ऐसे खेद-युक्त जीवन को समझते हुए नित ही एक प्रभु का विश्वास धारण करके जो अपनी तमाम मलीन वासनाओं का त्याग करते हैं, और सत्, सील, खिमा, दया, सन्तोष और प्रेम को धारण करते हैं, वे ही गुणी परम पवित्रता को प्राप्त हो करके निहखेद स्थिति को प्राप्त होते हैं। उनका जीवन ही आदर्श सरूप है।

वचन—16. नित ही एक प्रभु विश्वास को धारण करके अपनी जीवन उन्नति की खातिर यत्न करना ही मानुष जन्म की सफलता है। इस वास्ते केवल सत् आनन्द सरूप एक परमेश्वर को ही जानते हुए और शारीरिक अवस्था महज़ उस परम तत्त्व के बोध के वास्ते ही समझते हुए जो विचरते हैं, वे ही परम पवित्रता और परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

वचन—17. सत् परायणता के बग़ैर बुद्धि कभी भी शुद्धि को प्राप्त नहीं हो सकती है, और मलीनताई में अधिक विकारों को धारण करके नित नाश और दुःख को प्राप्त होती है। क्योंकि शारीरिक भोगों की अधिकता परम दुःख और मलीनताई के देने वाली है। इस वास्ते निर्मल बुद्धि द्वारा जीवन के सही चरित्र को समझ करके नित ही सत् अनुराग को धारण करना चाहिये, जो परम शुद्धि के देने वाला है।

वचन—18. वास्तव में एक परमेश्वर ही शुद्ध सरूप और

तीन काल आनन्दमयी है, और तमाम प्रक ति जाल मलीनता और खेद के सरूप में विचर रहा है। ऐसा तब ही प्रतीत होता है, जब उस महाप्रभु की शक्ति का अनुभव किया जाता है। जैसे सूरज के प्रकाश से अन्धकार के खेद को समझा जाता है और प्रकाश की महानता को अनुभव किया जाता है, ऐसे ही प्रभु की अनुभवता से प्रक ति के अंधकार को समझा जाता है।

वचन–19. नित ही आत्म-तत्त्व महाप्रभु के परायण होकर के तमाम शारीरिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी चाहिये, क्योंकि शारीरिक दोष ही परम दु:ख का सरूप हैं। ऐसे सत् परायणता के बल से उस झूठ का त्याग प्राप्त होता है, जो तमाम अशुद्धि का कारण है। जब सत्‌ग्रही भावना बुद्धि धारण करती है, तब तमाम शारीरिक विकारों से विजय हासिल करने का यत्न करती है। ऐसी स्थिति ही कल्याणकारी है। जिस वक्त बुद्धि सत् आधार में निश्चित होती है, उस वक्त तमाम विकारों के खेद को अनुभव करती है और छूटने का अधिक यत्न करती है। ऐसा यत्न ही परम उन्नति का सरूप है।

वचन–20. परमेश्वर की सत्ता को निश्चय में द ढ़ करने से बुद्धि बलवान हो जाती है और मन और इन्द्रियों के तमाम विकारों पर विजय हासिल कर लेती है। ऐसी बुद्धि ही पवित्रता

के भेद को जानने वाली है। शारीरिक विकारों से छूटने या पवित्र होने का सिर्फ़ यह ही उपाय है कि बुद्धि इन विकारों को विकार और दुःख रूप समझे, तब ही पवित्र होने का यत्न कर सकती है। जब शारीरिक विकारों को विकार ही न समझे, तब इनसे पवित्रता हासिल करनी अति कठिन है।

वचन—21. वैसे तो तमाम शरीर ही विकार का सरूप है, मगर कुछ कर्म ऐसे हैं जो शारीरिक उन्नति के सहायक हैं, और कुछ कर्म ऐसे हैं जो शारीरिक और मानसिक खेद के देने वाले हैं। मगर बुद्धि अंध-विचार को धारण करके फिर भी ऐसे कर्म कर ही देती है, और परम दुःख को प्राप्त होती है। अपने सुख की ख़ातिर दूसरों को दुःख देना, चोरी, जुआ, छल, झूठ, अति मद, अति लोभ, अति क्रोध, अति काम वासना और अति से अति स्वार्थ भावना—ये सब विकार का ही सरूप हैं। इसके मुकाबले में सत्वादी होना, निर्लोभ, निर्मोह, निर्मान, परहित, पर सेवा और अपने सत् स्वार्थ में संतोष धारण करना ही तमाम विकारों से निर्मल करने की धारणा है।

वचन—22. जितनी बुद्धि सत् परायणता में द ढ़ होती है, उतनी ही देव-व त्तियों को धारण करती है, और जितनी मद के परायण होती है उतनी आसुरी व त्तियों को धारण करके परम दुःखी

रहती है। इस वास्ते अधिक यत्न करके सत् के परायण होना चाहिये, जिससे तमाम दोषों का नाश होवे और पवित्र आचरण की प्राप्ति कर के परम शुद्धि और सत् शाँति प्राप्त हो सके।

वचन—23. सत्‌ग्रही भावना ही मूल उन्नति का साधन है, यानी संसार और शरीर की तबदीली को निश्चय समझ करके और तमाम शारीरिक सुखों का अन्त दु:ख रूप समझ करके नित ही अपने जीवन में सत् कर्त्तव्य पालन करने का यत्न करना ही परम पवित्रता के देने वाला है। यानी अपने शारीरिक सुखों में निर्मल मर्यादा धारण करके दूसरों की उन्नति की ख़ातिर अपने शारीरिक सुख त्यागने ही मानसिक शुद्धि का साधन है।

वचन—24. सतग्रही भावना को धारण करके नित ही परहित, पर सेवा और अधिक प्रभु चिंतन में प्रेम द ढ़ करना ही कल्याण सरूप है। ऐसे पवित्र निश्चय को धारण करके निष्कामता, निर्मानता, पर उपकार और परम वैराग को बुद्धि प्राप्त होकर के सत् सरूप में निहचल होती है, जो परम शुद्ध और निर्विकार अवस्था है।

वचन—25. हर वक्त झूठ का परित्याग करना और सत् का ग्रहण करना, और अपने स्वार्थ का अधिक मोह त्याग करके दूसरों की सेवा करनी निष्काम सरूप में; और अपने मानसिक दोषों

को पवित्र करने का नित ही यत्न करना; पर निन्दा, पर धन, पर नारी को नित ही बिख सरूप जान करके त्याग करना ही श्रेष्ठ आचरण के देने वाला साधन है। यानी अधिक भयानक वासनाओं की ऐसे आचरण से शुद्धि होती है और बुद्धि धीरज को प्राप्त होती है। ऐसा यत्न ही देवमार्ग और कल्याण सरूप है।

वचन—26. जिस वक्त बुद्धि सत् आचरण में द ढ़ होती है, उस वक्त तमाम दोष खुद-ब-खुद ही नाश हो जाते हैं। जैसे प्रकाश के होने से अन्धकार का नाश होता है, ऐसे ही सत् आचरण से मलीन वासनाओं का अभाव हो जाता है। ऐसे यत्न-प्रयत्न करते-करते एक दिन प्रभु भगति जो परम शुद्धि का सरूप है, उसको प्राप्त होकर के परम शाँति ज्ञान सरूप में स्थिति हासिल होती है—जो निर्भय, निर्विकार और नित प्रकाश धाम है।

वचन—27. हर वक्त शारीरिक यात्रा के सही भेद को समझ करके तमाम विलखन[1] कर्मों को त्याग करना ही उच्च जीवन है। इस वास्ते अधिक से अधिक यत्न करके नुमायशी और अय्याशी जीवन का त्याग करना, तमाम मुनश्यात[2] (मादक वस्तुओं) का त्याग करना और कुसंग से परहेज़ रखना, और नित ही प्रभु चिंतन में मनोव त्ति को लगाना ही परम शुद्धि के देने वाला यत्न है, और यह ही सत्पुरुषों का मार्ग है।

वचन—28. असत् शरीर के भोगों की आसक्ति को त्याग करना, निष्काम पर-उपकार धारण करना

1. विचित्र 2. मादक वस्तुओं, नशेवाली चीजें

और शारीरिक मद त्याग करके नम्रता, खिमा, दया आदि गुणों को धारण करना, अनात्म मिथ्या नाम-रूप की कल्पना को त्याग करके केवल सत् सरूप आत्मा का चिंतन करना ही तमाम दोषों से निव त्ति के देने वाला यत्न है। क्योंकि बुद्धि शारीरिक विकारों से निर्बन्ध होकर सत् सरूप के परायण ज्यों-ज्यों होती है, त्यों-त्यों मलीन वासनाओं के अन्धकार से पवित्रता को प्राप्त होती है। आखिर अधिक सत् परायणता के बल से तमाम वासनाओं से पवित्र हो करके निज सरूप आत्मा में लीन हो जाती है—यह ही अवस्था परम पवित्रता का सरूप है।

वचन—29. शारीरिक भोगों की आसक्ति में तो जन्म से ही हर एक जीव बंधा हुआ है और भोगों के ही यत्न में अगर जीवन व्यतीत कर दिया तो इस जीवन की क्या सफलता हासिल की? महज़ पशु समान ही जीवन व्यतीत कर दिया। यथार्थ जीवन का लक्षण यह है कि भोग वासना से निर्बन्ध अवस्था प्राप्त कर ली जावे, जो कि नित शाँति को देने वाली है। ऐसा यत्न ही मानुष जीवन की सार है।

वचन—30. शारीरिक भोगों की वासना कभी पूर्ण नहीं हो सकती है, अगर अधिक से अधिक भोग प्राप्त कर भी लिए जावें तो बल्कि जितने भी अधिक भोग प्राप्त होते जावेंगे उतनी ही वासना बढ़ती जावेगी, और शरीर नाश को प्राप्त हो जावेगा, मगर वासना का अन्त न हो सकेगा। यही भयानक माया का चक्र है। उसको सत्विचार द्वारा समझ करके नित ही

सत्परायण होने का यत्न करना ही वासना पूर्ति का साधन है, और यह ही मार्ग केवल मानुषपन की सार है।

वचन—31. अधिक भोग वासना के वेग को धारण करके अति ही क्रूर कर्म करने में द ढ़ता प्राप्त होती है, जो परम दुःख का सरूप है। यानी अपनी वासना की ही कैद में आकर के बड़े-बड़े उपद्रव जीव करता है, मगर आखिर वासना भी पूर्ण नहीं होती है बल्कि उलटे क्रूर कर्म अधिक दुःख का सरूप हो जाते हैं। यह ही अद्भुत जीवन का चक्र है। बड़े-बड़े गुणी इस चक्र में भरमते हुए अपनी मानसिक त प्ति की ख़ातिर विलखन कर्म करते हुए इस संसार की यात्रा से निहायत त खावन्त ही हो करके शरीर की नाश को प्राप्त हुए हैं। इस वास्ते ऐसे संसार के चक्र को समझ करके नित ही सत् सोझी को धारण करना चाहिए।

वचन—32. सार विचार यह है कि हर एक जीव शारीरिक भोगों की वासना को धारण करके दूसरे जीवों का बधिक बनता है—यह ही प्रक ति का बन्धन है। इस अंधकार से छूटने के वास्ते केवल सत् सरूप परमेश्वर के परायण होना और उसकी उपासना करनी, और उसी के जगत की निष्काम भाव से सेवा करनी और शरीर के अन्त का नित ही विचार करना—ऐसी श्रेष्ठ विचार की धारणा से बुद्धि पवित्रता को प्राप्त होकर तमाम दोषों से निर्बन्ध हो जाती है, और यह ही निर्मल उन्नति का मार्ग है।

वचन—33. नित ही मानसिक दोषों को पवित्र करने की ख़ातिर स्वतन्त्र रहना और सत् आचरण का धारण करना, और सत्पुरुषों की सीख द्वारा अपने आपको सत् शिक्षक बनाना—ऐसे श्रेष्ठ निश्चय से मानसिक दोष निव त्त होते हैं, और सत् अनुराग प्राप्त होता है, जो परम शाँति और शुद्धि को देने वाला है।

वचन—34. शारीरिक सुखों के राग को धारण करके नित ही अनुकूल और प्रतिकूल कर्म करते हुए हर एक शरीरधारी विचर रहे हैं। मगर शारीरिक सुख अंत में नाश और दुःख सरूप हैं। इस वास्ते तमाम यत्न अशान्ति के देने वाला ही होता है। इस अन्धकारमयी जीवन को समझ करके नित ही सत् अनुराग एक प्रभु शक्ति को धारण करना चाहिए, जो सरब उन्नति का सरूप है।

वचन—35. सत् अनुराग उस वक्त प्राप्त होता है जिस वक्त बुद्धि निश्चय करके शरीर और शारीरिक सुख दुःख रूप जानती है और इससे छूटने के वास्ते उस महाशक्ति परम तत्त्व आत्मा के परायण होने का यत्न करती है। जिस वक्त निश्चय करके एक परमेश्वर के परायण होती है, उस वक्त तमाम शारीरिक विकार सहज ही नाश को प्राप्त होते हैं, और बुद्धि स्वतन्त्र हो करके श्रेष्ठ गुणों को धारण करती है, यानी नित ही नम्रता, प्रेम, वैराग और सुखों का परित्याग, और दुःख को बर्दाश्त करने की भावना को द ढ़ करती है। ऐसे निर्मल तप को धारण करके परम शुद्धि विज्ञान सरूप को प्राप्त होती है, जो नित

सरूप आनन्द का सागर है।

वचन—36. शारीरिक भोग वासना ही जीवन का सफ़र है। इस सफ़र को पूर्ण करने की ख़ातिर हर एक जीव यत्न करता है। मगर शरीर खत्म हो जाता है, और शारीरिक भोग वासना का सफ़र खत्म नहीं होता है, जो दोबारा फिर जन्म देता है। राजा से लेकर रंक तक, धनी से लेकर दलिद्री तक, परिवारी से लेकर निरपरिवारी तक, गुणी से लेकर मूर्ख तक, तथा ऐसे ही और तमाम जूनियों के जीव इस भोग वासना को पूर्ण करने की ख़ातिर विचर रहे हैं, मगर बग़ैर तत्त्व ज्ञान के इस सफ़र में मुक़ाम हासिल होना अति कठिन है। अच्छी तरह से इस जीवन यात्रा को अनुभव करके अपनी निर्मल उन्नति करनी चाहिये।

वचन—37. चूँकि तमाम शारीरिक भोग छिनकारक हैं, और शरीर भी छिनभंगुर है, उसमें सत् शाँति प्राप्त होनी जानना यह अधिक मूढ़ता है। इस मूढ़ता को धारण करके हर एक जीव विकराल कर्म करता हुआ अपने बंधन दर बंधन को धारण करता है। आखिर बंधन में यानी शारीरिक भोग वासना में ही शरीर को छोड़ता है। यह ही जीवन की अश्चर्ज यात्रा है।

वचन—38. शरीर भी अपूर्ण है और शारीरिक भोग भी अपूर्ण हैं। इनमें त प्ति का भ्रम त्याग करके निर्मल जाग्रत अवस्था को धारण करना चाहिये, जिससे सत् तत्त्व आत्मा का प्रेम उत्पन्न होवे, जो तमाम खेदों को नाश करने वाला है। निश्चय करके शारीरिक

भोग दुःख रूप जानने चाहियें, और निश्चय करके तमाम शारीरक कर्म बंधन सरूप जानने चाहिए और निश्चय करके एक परम तत्त्व आत्मा को निहकर्म, निहखेद, शुद्ध, शाँत सरूप जानना चाहिये। ऐसी निर्मल-व त्ति को धारण करके नित ही यथार्थ लाभ के मार्ग पर चलना चाहिये, जो निर्भय शाँति के देने वाला है।

वचन—39. शारीरिक भोगों से उपरसता प्राप्त करके महा-रस आत्म-आनन्द को पान करने का यत्न-प्रयत्न धारण करना ही यथार्थ लाभ का मार्ग है। ज्यों - ज्यों बुद्धि आत्म-सत्ता को ग्रहण करती है त्यों-त्यों शारीरिक वासना का सफ़र पूर्ण होता जाता है, यानी अन्तर सत् शाँति को प्राप्त करके तमाम शारीरिक वासनाओं से पवित्रता हासिल करती है। ऐसा यत्न ही गुणी पुरुषों का मार्ग है।

वचन—40. नित ही अपनी निर्मल उन्नति को करते हुए एक प्रभु प्रेम की धारणा में निश्चित हो करके तमाम मानसिक विकारों को जो त्याग करते हैं, वे परम सज्जन सरब उन्नति और सरब कीर्ति को प्राप्त होते हैं। उनका सत् यत्न एक आदर्श सरूप है।

वचन—41. जब निश्चय करके तमाम शारीरिक भोग दुःख सरूप प्रतीत हुए, उस वक्त निर्मल वैराग को प्राप्त करके सत् मार्ग में द ढ़ता प्राप्त होती है, यानी एक प्रभु ही सत् आनन्द और जानने योग समझ करके नित ही अपनी मानसिक अवस्था को पवित्र करने के सत् यत्न को प्राप्त होते हैं। वे ही परम गुणी जीवन यात्रा की सम्पूर्णता प्राप्त करते हैं, यानी निज

आनन्द नित सरूप को अनुभव करके सरब विध्न से पवित्र हो जाते हैं।

वचन—42. नित ही सत् यत्न को धारण करके एक प्रभु परायणता को द ढ़ करना चाहिये, और नित ही सत्संग द्वारा अपनी मानसिक उन्नति का विचार धारण करना चाहिये। और नित ही अनाथ, अभ्यागत की सेवा में द ढ़ रहना चाहिये, और नित ही शारीरिक अन्तिम दिशा विचारते हुए निर्मल प्रभु भगति में द ढ़ होना चाहिये, जो सब तापों को हरने वाली है।

वचन—43. शारीरिक भोगों की वासना को पवित्र करने के वास्ते शरीर का साखी-सरूप, जो परम-तत्त्व चेतन-सरूप आत्मा है, उससे अधिक प्रेम रखना चाहिये। ज्यों-ज्यों सत्सरूप में प्रेम उत्पन्न होता है, त्यों-त्यों शारीरिक मान, मोह जो तमाम दुःख और विकारों का मूल है, वह नाश को प्राप्त होता है। ऐसे निर्मल-यत्न से ही निर्भय शाँति प्राप्त होती है।

वचन—44. तमाम शारीरिक भोगों की वासना अधिक बंधन; अधिक दुःख और अधिक मलीनताई के देने वाली है। इस वास्ते सत् विश्वास को धारण करके शारीरिक भोगों में निर्मल मर्यादा धारण करके, यानी आहार निर्मल, व्यौहार निर्मल, संगत निर्मल और निर्मल यत्न में प्रवीण होकर के नित ही अपने परम धाम को प्राप्त करने का यत्न धारण करना ही निर्मल कल्याण के देने वाला है। भोग वासना में जले हुए जीव आत्म-शान्ति को प्राप्त करके ही परम प्रसन्नता को हासिल करते हैं, क्योंकि आत्मा ही परम शान्त और सुख रूप है—ऐसा निश्चय द ढ़ करना चाहिए।

ग्रन्थ

वचन—45. जानने योग्य एक प्रभु का सरूप है, और सिमरण योग्य एक प्रभु का नाम है। त्यागने योग अहंभाव है, जो तमाम विकारों की जड़ है, और समझने योग अपनी उन्नति और अपनी विनाश का भेद है। मान करने योग्य सत्पुरुषों का जीवन है और ग्रहण करने योग्य नित ही सत् सिखया है। संग करने योग्य सत्गुरु और सत्पुरुषों का संग है और ध्यान करने योग्य केवल आत्म-सरूप का ध्यान है, जो नित प्राप्त है। और यत्न करने योग्य केवल सत् पद प्राप्ति का यत्न श्रेष्ठ है। ऐसे उत्साह को धारण करके नित ही अपनी मलिनताई को त्यागना ही श्रेष्ठ कर्त्तव्य है।

वचन—46. एक प्रभु का भरोसा रखते हुए जो गुणी तमाम मानसिक विकारों का निरोध करते हैं, और श्रेष्ठ आचरण को धारण करते हैं, वे ही परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं। ऐसे यत्न में नित ही प्रवीण रहना चाहिये, क्योंकि शरीर की विनाश का समय नित ही निकट आ रहा है।

वचन—47. शरीर की विनाश से पहले-पहले अपने मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करके निर्भय पद को प्राप्त कर लेना ही परम उच्चता है। शारीरिक भोग नित अपूर्ण और दुःख रूप हैं। शारीरिक ममता अधिक अन्धकार है। अपने शरीर द्वारा ही प्रत्यक्ष संसार का अनुभव किया जाता है। इस वास्ते अपना-अपना शरीर ही सबका संसार है। चूँकि शरीर आदि-अन्त होने वाला है, इस वास्ते इसके मान-मोह को त्याग करके शरीर का जो जीवन रूप परम तत्त्व आत्मा है, उसका विश्वासी और निदिध्यासी होना ही पवित्र निश्चय है।

वचन—48. पवित्र निश्चय को धारण करके शरीर का जीवन सरूप जो परम सखा, नित रखयक और नित सहायक है, उसका सिमरण और ध्यान तमाम मानसिक दोषों के नाश करने वाला है और सत् शाँति निर्भय पद के देने वाला है। नित ही ऐसे निर्मल विश्वास को धारण करना ही परम कल्याण है।

वचन—49. इस संसार चक्र को सही समझते हुए यानी जिसका आद है उसका अन्त भी जरूरी है, जो सुख है वह दुःख रूप हो जायेगा, जो बनी है सो बिगड़ जायेगी, जो अपना है सो बेगाना हो जायेगा; जहाँ पूर्ण आशा के यत्न में लगा हुआ है, वहाँ अन्त को निराश ही जाना है; जिस शरीर के अधिक सुखों का चिंतन दिन रात किया जाता है अन्त में वो शरीर ही को छोड़ना पड़ता है—ऐसे संसार के अचरज खेल को समझते हुए नित ही सत् पद प्राप्ति का यत्न करना ही परम पवित्र साधन है।

वचन—50. छिनभंगुर इस जीवन यात्रा को अनुभव करके अधिक से अधिक कोशिश करके सत् सरूप के सिमरण ध्यान में निहचलता धारण करनी चाहिए। यह ही अधिक विशेष यत्न जीवन उन्नति का है। प्रभु के सिमरण से तमाम असत् नाम-रूप की स्म ति का अभाव होता है। प्रभु के निज सुख को प्राप्त होने से तमाम दुःख रूप वासना का जाल अभाव हो जाता है। प्रभु के परायण होने से देह की परायणता, जो परम अन्धकार का सरूप है, उसका नाश होता है और बुद्धि बलवान हो करके अहम् विकार, जो मूल भ्रम का सरूप है, उसका त्याग करती है। तब ही निर्मल शाँति को

अनुभव करती है, जो अकथ और अलेख है।

वचन—51. जो कुछ श्रेष्ठ कर्त्तव्य करना होवे, वह स्वतन्त्र जीवन यात्रा में कर लेना चाहिए, क्योंकि शरीर के विनाश का समय निश्चित नहीं है। अपने शारीरिक सुखों को दूसरों के दुःखों में जो समर्पण करता है और निर्मान भाव में जो स्थित हुआ है, तमाम संसार को जो काल का चक्र देखता है, और केवल अकाल सरूप एक आत्म-शक्ति को जो समझता है और अनन्य प्रेम से उस परम तत्त्व के सिमरण में द ढ़ रहता है, ऐसे पवित्र निश्चय को जिसने धारण किया है, उसी ने इस मिथ्या संसार में सब कुछ प्राप्त कर लिया है, और परम त प्ति निर्भय पद को प्राप्त हुआ है।

वचन—52. इस जीवन यात्रा के यथार्थ लाभ को प्राप्त करना ही परम उच्चता है। असत् शरीर जिसकी शक्ति से सरजीत हुआ है और तमाम तात्त्विक आकार स ष्टि जिसके बल से खड़ी है, ऐसे उसी महाप्रभु का सिमरण और उसकी निर्मल आज्ञा पालन करते हुए अपनी जीवन यात्रा को जो व्यतीत करता है, वह ही अधिक स्वार्थ की अग्नि से ठण्डा होकर निर्मल त्याग को प्राप्त होता है, जो परम पवित्रता का सरूप है।

वचन—53. अपने पवित्र निश्चय से एक प्रभु के परायण हो करके अपने तमाम सुख जो दूसरों के दुःखों में समर्पण करता है, और हृदय में नित ही सत् सरूप का निदिध्यासन करता है और छिनभंगुर जीवन यात्रा में नित ही उदास रहता है, मान-अपमान, लाभ और हानि, सुख व दुःख में जो धीरजवान रहता है—ऐसी

निर्मल स्थिति वाला पुरुष ही असली पवित्रता के भेद को जानने वाला है और उसका जीवन कर्त्तव्य परम कल्याणकारी है।

वचन—54. जो अपना जीवन महज़ दूसरों के कल्याण की ख़ातिर जानता है और अटल विश्वास से प्रभु परायणता में जो द ढ़ हुआ है, और तमाम शारीरिक कर्म जो प्रभु आज्ञा में समर्पण करता हुआ निर्मल जीवन क्रिया में विचरता है—ऐसे निश्चय वाला पुरुष ही तमाम दुर्मत वासना की मलीनताई को त्याग करके शुद्ध आत्म-आनन्द को प्राप्त होता है। ऐसे सत् यत्न को धारण करना ही गुणी पुरुषों का परम धर्म है, जिस करके अपने आप का भी कल्याण प्राप्त होवे और दूसरे जीवों के भी उद्धार का आसरा बने।

वचन—55. ज्यों-ज्यों जो गुणी अपनी श्रेष्ठ उन्नति करता है यानी निर्मल कर्त्तव्य का पालन करता है, त्यों-त्यों दूसरे जीव उसका आदर्श जीवन देख करके अपनी निर्मल कल्याण का यत्न करते हैं, और ऐसे सम्बन्ध से सत् शाँति, सत् कर्त्तव्य और सत् धर्म की जाग ति होती है, जो तमाम पापों के नाश करने वाली है और परम शुद्धता के देने वाली है। नित ही सत्-यत्न द्वारा नित सरूप की खोज करनी चाहिए, जो अपने आप नित परिपूर्ण और निर्विकार सरूप है। मानुष जीवन का यथार्थ लाभ यह ही है कि तमाम शारीरिक विकारों से पवित्र होकर सत् सरूप परमानन्द में स्थिति प्राप्त होवे।

वचन—56. जिस पुरुष ने सत् पद प्राप्ति का यत्न धारण किया है, और तमाम मानसिक दोषों से जिसने पवित्रता प्राप्त की है और अधिक निर्मान, निर्मोह भाव को जिसने निश्चित किया, और अपने मन, वचन, कर्म करके तमाम जीवों की सेवा करने में जो द ढ़ रहता है, वह ही परम विवेकी यथार्थ यत्न, यथार्थ कर्त्तव्य, यथार्थ नीति और यथार्थ स्थिति के जानने वाला है और परम शुद्ध निर्विकल्प अवस्था को अनुभव करके त्रिगुणी माया की मलिन से पवित्र हुआ है। उसका जीवन कर्त्तव्य दुर्लभ है।

वचन—57. सार विचार यह है कि अन्तःकरण की मलीनताई को दूर करने के वास्ते केवल प्रभु भगति और पर सेवा निष्काम भाव की यथार्थ साधन है। ऐसे सत् यत्न को नित ही धारण करके अपनी उन्नति करनी ही निर्मल यत्न है। प्रभु परायणता से तमाम खेदों का नाश होता है और बुद्धि स्वतन्त्र होकर के तमाम शारीरिक भोगों की आसक्ति से निर्मल हो जाती है, और नित सरूप आत्म-आनन्द को पान करके काल कर्म के चक्र से निर्बन्ध होती है—यह ही अवस्था अखण्ड शाँति है।

वचन—58. इस नाशवान शरीर में सत् कर्त्तव्य को धारण करना ही परम श्रेष्ठ उद्यम है, क्योंकि सत् कर्त्तव्य से ही मलीन वासनाओं का अभाव होता है और अन्तर में सत् शाँति प्रतीत होती है। नित ही प्रभु चिंतन में द ढ़ होना चाहिए। नित ही सुख व दुःख प्रभु आज्ञा में देखने चाहिए। नित ही अपने सुख दूसरों के दुःख के वास्ते समझने चाहिए। नित ही निर्मान भाव को ग्रहण करना चाहिए। नित ही सत् विचार प्राप्ति की ख़ातिर सत्संग में प्रेम रखना चाहिए। नित ही

अन्तर्ध्यान में निहचल होने का यत्न करना चाहिए, क्योंकि अन्तर में ही सुख सागर प्रभु स्वरूप विराजमान हैं।

वचन—59. जिस वक्त बुद्धि शारीरिक विकारों से निर्मल होकर के केवल सत्नाम के परायण होती है, उस वक्त तमाम वासना के अन्धकार से निर्मल होकर शुद्ध निर्विकल्प सरूप अखण्ड शब्द आत्मा को अनुभव करती है, जो त्रैकाल वासना अतीत, कर्म अतीत और काल अतीत है। ऐसे परम पद को प्राप्त होकर के फिर आवागवन के चक्र से शान्ति प्राप्त होती है।

वचन—60. नित ही सत् सरूप के परायण हो करके सत् नाम का सिमरण अनन्य भाव से करना चाहिए और पर-उपकार के मार्ग में द ढ़ रहना चाहिए। ऐसे सत-यत्न के धारण करने से तमाम प्रक ति के बन्धन से छुटकारा प्राप्त होता है और नाम की द ढ़ उपासना से अन्तर में सत्-सरूप का साख्यातकार अनुभव होता है, जो केवल जानने योग और पूजने योग पद है। ऐसी अवस्था का जब बुद्धि अनुभव करती है, तब ज्ञान-विज्ञान के अखण्ड भण्डार को प्राप्त होकर के तमाम कर्म वासना के जाल से निर्मल हो जाती है। ऐसी शुद्ध अवस्था को प्राप्त करके नित आनन्द सरूप में लीन होती है, जो वास्तविक अपना ही निज सरूप है। यह ही अवस्था जानने योग्य है। वह पुरुष धन्य है जिसने तमाम वासना की मलीनताई को त्याग करके निर्द्वन्द्व सरूप निज आत्मा में विश्राम पाया है। उसने संसार के मार्ग में पूर्णताई प्राप्त की है, और उसका अति निर्मल जीवन कर्त्तव्य चिरकाल तक दूसरे जीवों के वास्ते एक कल्याणकारी आदर्श सरूप रहता है।

वचन—61. वास्तविक जीवन यात्रा के निर्मल भेद को जानकर के नित ही मदवाद से पवित्रता हासिल करनी ही परम कल्याण है, क्योंकि अहंभाव की अति जड़ता से बुद्धि विचारहीन होकर के नित ही शरीर द्वारा अति मलीन कर्म करके परम दुःख को प्राप्त होती है। और जितने भी संसार में देहधारी विचर रहे हैं वे अहंभाव के ज़ेरे-असर होकर के विचरते हैं। जैसा-जैसा अहंभाव जिस-जिस बुद्धि में द ढ़ है उसके मुताबिक ही अपनी शारीरिक स ष्टि का फैलाव फैलाती है—यह ही अद्‌भुत संसार की रचना है।

वचन—62. अधिक प्रयत्न करके अहंभाव यानी कर्त्तापन की दुर्मत मैल से पवित्रता हासिल करनी ही परम कल्याण है और मानुष जन्म का उच्च कर्त्तव्य है। निर्मल विवेक द्वारा जितनी बुद्धि सत् के परायण होती है उतनी ही अहंभाव की मलिन से शुद्ध होती है और निर्मल कर्त्तव्य करके निर्भय शान्ति को प्राप्त होने का यत्न करती है। बुद्धि अति अहंभाव की द ढ़ता से ही शारीरिक भोग परम सुख जान करके नित ही शारीरिक विकारों में त प्त रहती है। मगर सत् शान्ति का मार्ग सूझ नहीं आता है, क्योंकि अहंभाव की अधिक द ढ़ता की छाया में बुद्धि बिलकुल अंधी हो करके दुःख को सुख प्रतीत करती है—ऐसे अज्ञान से छूटने का यत्न ही परम साधन है।

वचन—63. पाँच तात्त्विक शरीर विकारों का एक अथाह सागर है। बुद्धि इसमें अति आसक्त होकर के विकारों को ही सुख रूप प्रतीत करके नित ही चलायमान होती रहती है। चूँकि तमाम इन्द्रियों के भोग छिनभंगुर और वासना के वेग को अधिक तीव्र करने वाले हैं, इस वास्ते नाना

प्रकार के अन्दरूनी और बैरूनी तापों में बुद्धि तपन को धारण करती हुई नित ही भयभीत रहती है। न ही इन्द्रियों के भोगों से सन्तुष्टि प्राप्त होती है और न ही वासना की जलन से छुटकारा हासिल हो सकता है, इस मन्द और अपवित्र निश्चय से बुद्धि को सावधान करना ही कल्याणकारी यत्न है।

वचन—64. शारीरिक भोगों का अंत परम दुःख रूप है और शरीर भी अंत में भयानक कष्ट रूप को प्राप्त होता है—ऐसी जीवन यात्रा में जिसने शारीरिक भोगों की मर्यादा धारण नहीं की है और शारीरिक मद का त्याग करके एक परम तत्त्व चेतन सरूप जीवन शक्ति का विश्वास प्राप्त नहीं किया है, वह अपने आपका असली घातक है और अन्त को अपने मलीन कर्मों के अनुसार अति पश्चाताप को प्राप्त होता है—ऐसा निश्चय होना चाहिए।

वचन—65. शारीरिक यात्रा एक तुच्छ समय के लिए है। इसका नाश होना आवश्यक है। और इसके सुख भोग परम क्लेश के सरूप में अन्त को अधिक प्रतीत होते हैं—ऐसा जीवन का असली भेद जानना चाहिए और निर्मल सत् यत्न इस जीवन यात्रा में धारण करना चाहिए, जिससे परम शान्ति प्राप्त हो सके।

वचन—66. शरीर परम दुःख रूप है। आत्मा परम सुख रूप है। शरीर विनाश को प्राप्त होने वाली वस्तु है। आत्मा नित है। शरीर कर्म संयुक्त होने के कारण छिन-छिन विखे नाश को प्राप्त हो रहा है। इस वास्ते इस जीवन चक्र से स्वतन्त्र होकर के सत् सरूप की प्राप्ति का प्रयत्न करना ही महा-कारज है।

वचन—67. नित ही पवित्र विश्वास को धारण करके बुद्धि को सत् तत्त्व की खोज में द ढ़ करना ही तमाम विकारों से पवित्रता को देने वाला नियम है। इस वास्ते नित ही एक आत्मा के परायण होने का यत्न करना चाहिये। परम तत्त्व आत्मा की द ढ़ परायणता से बुद्धि बाहिर्मुखी इन्द्रियों के भोगों की वासना से पवित्र होकर के अन्तर्मुख में निहचल होने का यत्न करती है और अन्तर्मुख होने से ही परम शुद्ध निराधार अविनाशी तत्त्व का बोध प्राप्त होता है—जो अखण्ड शान्ति है।

वचन—68. एक आत्मा को जब बुद्धि कर्त्ता हर्ता जान करके अधिक द ढ़ निश्चय से मन और पवन के साथ अनन्य प्रेम से चिन्तन करती है, तब ही कर्त्तापन मूल अंधकार का नाश होता है और शारीरिक विकारों से बुद्धि असंगता को प्राप्त होती है। यानी तमाम शारीरिक कर्मों का फल प्रभु आज्ञा में समर्पण करके राग-द्वेष की अग्नि से ठण्डक को हासिल करती है—ऐसा निश्चय ही श्रद्धा भगति का स्वरूप है।

वचन—69. जब बुद्धि एक आत्मा को ही केवल सत् प्रतीत करती है और तमाम आकारमई स ष्टि और अपना शरीर भी उसी चेतन तत्त्व के आधार ही देखती है, तब देह मद से पवित्रता को प्राप्त करके केवल सत् परायण होकर के तमाम शारीरिक सुख दूसरों की सेवा में त्याग करती है और अन्तर से अधिक प्रीत और प्रतीत से उस परम तत्त्व के चिंतन में द ढ़ होती है। तब ही तमाम वासनाओं से पवित्र हो करके सत् सरूप के बोध को प्राप्त होती है—ऐसी निर्मल तपस्या जिसको प्राप्त हुई है, वह ही परम शुद्धि निर्वाण शाँति को प्राप्त हुआ है, और उसने ही

अपनी जीवन यात्रा को मुकम्मिल कर लिया है।

वचन—70. जब बुद्धि निश्चय करके एक आत्मा को ही अपना आधार और प्रकाशक जानती है, तब शारीरिक मोह से पवित्रता प्राप्त कर लेती है और अनन्य प्रेम से आत्म तत्त्व के चिन्तन को प्राप्त होती है और असत् नाम, रूप, गुण और कर्म जो संकल्प-विकल्प का सरूप हैं, इनसे पवित्र हो करके केवल सत्नाम के परायण हो करके परम प्रसन्नता आत्म-आनन्द को प्राप्त होती है।

वचन—71. जब बुद्धि निश्चय करके अन्तर में आत्म-सरूप अविनाशी शब्द को बोध करती है, तब मन, देह, इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा से पवित्र हो करके एक आत्म-ध्यान में अकल्प होती है और शारीरिक यात्रा में यानी शारीरिक कर्मों में वासना रहित हो करके विचरती है—यह ही निहखेद स्थिति परम पवित्रता का सरूप है।

वचन—72. जब बुद्धि निश्चय करके अन्तर में आत्म तत्त्व को अकर्त्ता और निर्वास करके बोध करती है, तब शारीरिक कर्मों की वासना से पवित्र हो करके निज सरूप में निहचल होती है, और शारीरिक कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति से निर्बन्ध हो करके स्थिर होती है।

वचन—73. जब बुद्धि निश्चय करके आत्मा को अन्तर में निराकार और निर्लेप करके अनुभव करती है, तब तमाम आकारमयी स ष्टि से असंग हो कर के एक परम तत्त्व आत्मा में समता को प्राप्त होती है, और तमाम शारीरिक और मानसिक दोषों से पवित्र होकर के सत् सरूप में एकाग्र होती है—यह ही आनन्दमयी अवस्था है।

वचन–74. जब बुद्धि अधिक द ढ़ निश्चय से आत्मचिन्तन को धारण करती है तब तमाम शारीरिक भोगों की वासना से पवित्र हो करके अन्तर्मुख में निज सरूप अविनाशी शब्द को अनुभव करती है, जो अनन्त महिमा और अनन्त शक्ति का भण्डार है, जिसके अनुभव करने से तमाम संसार जड़ सरूप छाया सम प्रतीत होता है और केवल एक अखण्ड आत्मा ही सरब प्रकाशी और सरब सरूप जान पड़ता है। ऐसा जानना ही केवल सार है।

वचन–75. जब बुद्धि अन्तरात्मा को असंग और गुणातीत करके अनुभव करती है, तब तमाम गुणमयी स ष्टि की कामना और कल्पना से निर्बन्ध हो जाती है। और शारीरिक कर्मों की तमाम आसक्ति से विजय हासिल करती है—यानी राग-द्वेष से रहित होकर शारीरिक कर्मों में निमित्त मात्र विचरती है—यह ही अवस्था वासना अतीत और परम पवित्र है।

वचन–76. जब बुद्धि आत्मा को निर्द्वन्द्व करके अनुभव करती है, तब तमाम शारीरिक कर्मों की द्वन्द्वता से पवित्र हो करके नित सरूप में निहचलता होती है—ऐसी अखण्ड समाधि की अनुभवता को धारण करके नित ही आनन्द सरूप में विचरती है। यानी शारीरिक सुख व दु:ख की कल्पना से पवित्र हो के अन्तर में अविनाशी शब्द में स्थिर होती है।

वचन–77. जब बुद्धि तमाम इन्द्रियों के भोगों से उपरस होकर के एक अविनाशी नाम के चिन्तन में द ढ़ होती है, तब अनन्त महिमा के सरूप को अन्तर में अनुभव करती है। जिसका प्रमाण, अप्रमाण है, और जिसका विचार अकथ और अलेख है।

केवल शान्ति ही शान्ति है, जिसमें रंचक मात्र खेद नहीं है—ऐसी अवस्था को जानना ही सत्-पद प्राप्ति है। नित ही निर्मल यत्न से शारीरिक प्रकाशक तत्त्व के परायण होने का उत्साह धारण करना चाहिए।

वचन—78. अधिक प्रेम से, अधिक परतीत से और अधिक सत् यत्न से अपने जीवन सरूप के परायण हो करके तमाम खेद सरूप शरीर के दोषों से पवित्रता और असंगता धारण करनी चाहिये। जब निश्चय करके बुद्धि सत्याग्रह में द ढ़ होती है, तब अपने आप में स्वतन्त्रता और बलवानता को प्राप्त कर लेती है और तमाम शारीरिक दोषों से विजय हासिल करती है।

वचन—79. इस जीवन सरूप संग्राम में अति पवित्र बुद्धि को धारण करके तमाम अशुद्ध वासनाओं का त्याग करना चाहिए। फिर पवित्र वासना के अति वेग से निर्वास तत्त्व अविनाशी सरूप आत्मा के अनुभव करने का सत् यत्न धारण करना चाहिए, जिस परम तत्त्व के बोध से दुर्मत अन्धकार भ्रम का नाश होता है और सरब शान्ति निर्भय पद प्राप्त होता है, और फिर दोबारा जन्म-मरण के चक्र से विजय हासिल होती है।

वचन—80. अधिक पुरुषार्थ से अपनी जीवन उन्नति का निर्मल नियम धारण करना चाहिये, जिससे मानसिक दोषों से पवित्रता प्राप्त करके सत् पद अविनाशी सरूप में स्थिति प्राप्त होवे, जिस अवस्था की वास्तव में सबको चाहना बनी हुई है। इस मार्ग संसार में सत् और पवित्र जीवन की स्थिति की ख़ातिर जो यत्न करता है और अपने तमाम मानसिक विकारों के निरोध करने में जो प्रवीण है, वह ही परम विवेकी सत् पद

प्राप्त करके परम आनन्दित होता है। उसका निर्मल पुरुषार्थ परम आदर्श सरूप है।

वचन–81. इस संसार यात्रा में केवल सत्पुरुषों के सत् आदर्श जीवन को विचार करके अपने आपकी निर्मल कल्याण का यत्न करना ही सब विकारों से पवित्रता के देने वाला है। हर समय एक अखण्ड अविनाशी परमेश्वर परम तत्त्व का पूर्ण निश्चय धारण करके इस नाशवान् शरीर को नित ही निर्मल कर्त्तव्य में स्थित करना चाहिए।

वचन–82. निर्मल कर्त्तव्य की धारणा से बुद्धि निष्पाप होकर के सत् सरूप की भगति और उपासना में द ढ़ होती है, यानी आहार, व्यौहार और संगत अति पवित्र रूप में धारण करके नित ही एक अखण्ड अवनाशी परमेश्वर के सिमरण, ध्यान में निहचल होती है और शरीर द्वारा निष्काम पर उपकार में स्थित होने का यत्न करती है। ऐसा प्रयत्न अन्तःकरण की अशुद्धि को हरने वाला यथार्थ साधन है। इस वास्ते परम उत्साह से इस छिनभंगुर शरीर से परमार्थ महाप्रशाद का लाभ प्राप्त कर लेना चाहिए, क्योंकि एक समय यह शरीर नाश को प्राप्त हो जावेगा। ऐसे निर्मल सत् पुरुषार्थ की द ढ़ता सबको प्राप्त होवे।

इस अगोचर प्रसंग को श्रवण, मनन और निदिध्यासन करके अपने आप का सुधार करना ही गुरमुखों का परम कर्त्तव्य है। और अपने सुधार से ही तमाम मानुषों का सुधार होता है—ऐसा पवित्र निश्चय द ढ़ करना चाहिए।

प्रसंग ''पवित्र जीवन''

चौथा अनुभव समताधार समाप्तम्

ब्रह्म सत्यम् सर्वाधार

समता अपार शक्ति

महामन्त्र

ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा
अद्वैत पुरखा सर्व-व्यापक
कल्याण-मूरत परमेश्वराय
नमस्तं

पांचवां अनुभव—समता बोध

पहला निधान—वासना विवेक

वचन—1. इस द ष्यमान संसार का जब तक पूर्ण निर्णय न प्राप्त होवे, तब तक जीव को कोई कल्याण का मार्ग नहीं सूझता। इस वास्ते इस अश्चर्ज (आश्चर्य) सरूप संसार की लीला का भेद जानना ही ''सत् विचार है''—और मानुष जन्म का परम धर्म है। वैसे तो हर एक मानुष जीवन क्रिया में हर वक्त लवलीन रहता है, ख्वाह उसको उस क्रिया से सुख प्राप्त होवे ख्वाहे[1] दुःख— यानी एक लम्ह भी निहकर्म नहीं होता।

वचन—2. इस अधिक अशान्ति का विचार करना और

1. अथवा, चाहे

फिर अनुकूल यत्न धारण करना, जिससे निहकर्म अवस्था प्राप्त होवे—यह ही ''सत् पुरुषार्थ'' है। गहरी ग़ौर करके विचार किया जावे तो हर एक जीव त खावन्त होकर भरम रहा है और अधिक से अधिक यत्न करके भी फिर अशान्त है, और इस ही अशान्तमयी हालत में शरीर को छोड़कर फिर किसी दूसरी सूरत को इख़्तियार[1] करके फिर अपनी पूर्ण अवस्था प्राप्ति का यत्न करता है। यह ही चक्र ''आवागवन'' है—यानी जब तक पूर्ण आनन्द प्राप्त न हो जावे, तब तक अनेक शरीरों को धारण करके अर्थिक-अनर्थिक क्रिया को करता है, और दुःख-सुख पाता है। यह ही असली संसार की रचना है। हर एक जीव अपनी-अपनी कल्पना का बाँधा हुआ अनेक कर्मों को धारण करके शरीर यात्रा में विचर रहा है।

वचन—3. वास्तव में अंतर से हर एक जीव अटल शाँति को प्राप्त करने का ही यत्न करता है। मगर सत् विचार और सत् निदिध्यास के न होने से यह यत्न अकार्थ हो जाता है—यानी अनर्थिक क्रिया का साधन करके अपने आपको फिर अशाँति के ही भंवर में ले जाता है और आखिर में अपनी अन्ध-मति पर बड़ा पश्चाताप करता है। मगर जो कुछ भी सत्-असत् जीवन में कर लिया उसका दण्ड ज़रूर ही मिलता है। यह ही माया का अश्चर्ज चक्र है।

वचन—4. हर एक जीव को इस संसार की यात्रा का

1. धारण

भली प्रकार से विचार करना चाहिए कि इस मार्ग में आने का क्या कारण है। और आकर कौन-सा साधन धारण किया जावे जिससे सब मनोरथ पूर्ण हो जावें। अगर बग़ैर विचार के ही शारीरिक क्रिया को पूर्ण करने का यत्न धारण कर लिया जावे तो पूर्ण शांति होनी मुश्किल है। आखिर इस संसार से अति दुःखी होकर ही जाना पड़ता है। इस वास्ते जीवन के हर एक पहलू को विचार करना चाहिये और फिर सही पुरुषार्थ धारण करके अपनी कल्याण करनी चाहिये। ऐसा विचार और साधना ही जीवन का सार है।

वचन—5. जीव की अशाँति का कारण एक वासना ही है, जिसकी कैद में आकर अनेक प्रकार के कौतुक को देखता है, और भोगने के यत्न में लगा रहता है। वासना का बन्धन ही भ्रम मूल है और यह ही भव दुस्तर है। जब तक पूर्ण सत् भाव से यत्न न किया जावे तब तक निर्वास होना कठिन है। प्रथम इस भ्रम में फँसे हुए जीव को पता ही नहीं लगता कि वासना दुःख का कारण है या सुख का, यानी वासना ही को पूर्ण करते-करते अनेक प्रकार के सत्-असत् कर्मों के भोग में हर वक्त चलायमान रहता है, मगर शाँति प्राप्त नहीं होती। इस अधिक दीर्घ रोग का सही विचार करना और फिर सत् उपाय करना ही असली ज्ञान है।

वचन—6. इस वासना रूपी संसार के अद्‌भुत चक्र का कोई वार-पार नहीं है। यानी जीवन अनेक प्रकार की कल्पना द्वारा सूक्ष्म-स्थूल स ष्टि को पलक-पलक में अनेक सरूप में धारण करके दुःख व सुख पाता है, यानी स्थिर नहीं होता। यह ही चलायमान हालत संसार का सरूप है। जब तक वासना रूपी अन्धकार का नाश नहीं होता, तब तक सच्चिदानन्द सरूप को अनुभव नहीं कर सकता, जो अखण्ड शाँति है।

वचन—7. अपनी अज्ञान सरूप वासना ही अनेक प्रकार का चक्र जीव को दिखलाती है। मगर सत् बोध न होने के कारण जीव इस वासना सरूप अंधकार को अधिक से अधिक यत्न करके बढ़ाता है, और इस जाल में असली खुशी तलाश करता है। मगर इस बेबुनियाद[1] और छिनभुंगर कल्पना के समुद्र में शान्ति कहाँ? आखिर इस अधिक वासना अंधकार में ही कई प्रकार की रचना को देख-देख कर मोहित होता रहता है। यह ही माया का खेल है।

वचन—8. इस तरह जीव अनेक वासना के तुरंग देख-देखकर कामना के वश में होकर अनेक प्रकार के यत्न संतोख की ख़ातिर करता है। मगर इस बैतरनी रूपी वासना के सागर में शान्ति प्राप्त नहीं होती। इसी भ्रम अंधकार में नित ही अनेक प्रकार की शरीर रूपी स ष्टि को धारण करता है, और त्याग

1. निर्मूल

करता है, यानी जन्म-मरण के चक्र में भरमता रहता है। यह ही अद्भुत लीला है। इससे पार होना ही परम धाम की प्राप्ति यानी अविनाशी सरूप में स्थिति है।

वचन–9. वासना की कैद जीव को एक पलक भी शान्त नहीं होने देती यानी कर्म फल द्वन्द्व के दुःख व सुख में नित ही चलायमान रहता है। अधिक से अधिक चतुराई धार करके भी फिर अज्ञान वश होकर उलटा अपने आप को कर्म फल द्वन्द्व में फँसा कर नित ही दुःखी रहता है, यह ही भवदुस्तर मार्ग अति गहन है। इससे पार होना ही मानुष जन्म का पूर्ण फल है।

वचन–10. जब जीव कर्म अभिमानी हुआ–यानी कर्त्तापन के बन्धन में आया तब कर्म फल द्वन्द्व जो पाँच तत्त्वों का विकार है–उसकी वासना में भरमने लगा और वह ही अभिमान युक्त अवस्था ही जीव का सरूप है। कर्त्तापन के बन्धन में आने का कोई कारण नहीं है। इस वास्ते यह कल्पना ही माया का सरूप है। इसका निर्णय यथार्थ सरूप से होना कठिन है। निर्णय हमेशा सत् वस्तु का होता है। जो चीज़ वास्तव में है ही नहीं और प्रत्यक्ष सरूप में भासती है, जब उसकी सार विचार की गई तो उसका सरूप अभाव हो जाता है। सार निर्णय यह है कि माया भ्रम ही जीव की कल्पना है। जब जीव अकल्पित हुआ तब सब भ्रम से निर्मल

होकर केवल सरूप हो जाता है, जो जीव का नित सरूप है और यह निर्वाच अवस्था अपने अनुभव करके ही जानने योग है, न कि बाद-विवाद से कुछ हासिल हो सकता है। इस वास्ते प्रथम अपने अज्ञान को जो अशांति का कारण है—इसको दूर करना चाहिए। जब ममता भ्रम का नाश हो गया तब खुद ही अपने अनुभव में समता आनन्द प्राप्त हो जाता है, जो केवल सरूप है और कहन-कथन से बाहर है।

वचन—11. कर्त्तापन का अभिमान ही वासना रूपी जाल को उत्पन्न करता है। जब तक इस मूल भ्रम का अभाव न हो जावे तब तक वासना निव त्त नहीं होती और जब तक वासना में जीव बाँधा हुआ है, तब तक जन्म मरण के दुःख से छुटकारा नहीं मिलता। इस वास्ते निर्मल विचार के द्वारा अपने भ्रम का छेदन करना ही कल्याणकारी यत्न है और मानुष जन्म का योग धर्म है।

वचन—12. कर्त्तापन अभिमान से तीन गुण सरूप वासना प्रगट होकर चराचर भूत संसार को रचती है, और हर एक जीव इस त्रैगुणी वासना में बँधा हुआ अनेक प्रकार से कर्म करता है, और वासना के अद्‌भुत सागर में बारम्बार ग़ोते खाता है। कोई ही विवेकी पुरुष इस कठिन जाल से मुक्त होकर सत् सरूप में लीन होता है। सब जीवों का परम धर्म यह

ही है कि मानुष जन्म में आकर अपनी उन्नति सत् पद की प्राप्ति की ख़ातिर करनी, जिससे निर्भय सुख प्राप्त होवे।

वचन—13. त्रैगुणी वासना का सरूप ही कुल संसार है। और उत्पत्ति, प्रलय का कारण भी वासना ही है। जो कुछ भी प्रक ति जाल प्रतीत हो रहा है, वह सब वासना का ही प्रकाश है। यह सब निर्णय सत् सरूप के अनुभव से होता है। इस वास्ते परम तत्त्व चेतन-प्रकाश के अनुभव करने का यत्न ही वासना की निव त्ति है और अचल शांति है। हर एक मानुष में पूर्ण निश्चय सत्-सरूप की प्राप्ति का होना चाहिये, यह ही आस्तिकपन है।

वचन—14. जिस-जिस गुण के बंधन में जीव बँधा होता है, उसी के मुताबिक ही संसार में कर्म क्रीड़ा करता है, और गुणों की तबदीली ही वासना अन्धकार को फ़ैलाती है। जीव वासना के वश होकर शारीरिक भोगों में आसक्त हो जाता है और शरीर के भोगों के बंधन में आकर द ष्यमान संसार में मोहित होकर भरमता है। यानी जीव अपनी वासना से ही शरीर और प्रत्यक्ष संसार के मोह में

गिरफ़्तार रहता है। जब तक वासना रूपी चक्र का अभाव नहीं होता, तब तक समता अखंड शान्ति प्राप्त नहीं होती।

वचन—15. गुणों के वश में होकर जीव अश्चर्ज से अश्चर्ज खेल को रचता है और अपनी मनोकामना पूर्ण करने के भाव में रहता है। मगर यह नाशवान् माया का चक्र कहाँ शाँति दे सकता है ? अंत को दुखित होकर ही शरीर को छोड़ता है। इस वास्ते जीवित काल में ऐसा पुरुषार्थ धारण करना चाहिये जिससे सत् सरूप की प्राप्ति हो जावे और वासना रूपी भ्रम जाल से रिहाई मिले।

वचन—16. जितने भी ऊँच-नीच कर्म जीव करता है, वह सब त्रैगुणी वासना के अनुकूल ही करता है। जीव का स्वभाव ही गुणों का सरूप है। जो जीव सातकी वासना को लिये हुए विचरता है वह अत ही निर्मल कर्म करता है। यानी सत्य, सेवा, खिमा, प्रभु विश्वास, सील, संतोख, सादगी, प्रेम आदि महागुणों को अपने सातकी स्वभाव से प्रगट करता है और जीवों को सुख देना ही अपना परम धर्म समझता है। ऐसा पुरुष ही अपने सत् पुरुषार्थ द्वारा निर्वास पद को प्राप्त हो सकता है, जो समता आनन्द का सागर है।

वचन—17. जो जीव अधिक रजोगुणी वासना के बन्धन में विचरता है, वह अत ही स्वार्थ भोग सम्पदा को एकत्र करने के यत्न में रहता है। यहाँ तक कि सब संसार को दमन करके अपने भोगों को पूर्ण करता है। मगर आखिर शरीर के विनाश के समय सब भोग अधिक दुःख का सरूप दिखाई देते हैं और इस संसार से अति त खावन्त हो करके ही जाता है। ऐसा पुरुष जो अधिक रजोगुणी स्वभाव वाला है, वह हर वक्त अपने शारीरिक भोगों में ही आसक्त रहता है, यानी अधिक कामी, क्रोधी, लोभी और अभिमानी होता है। किसी हालत में भी स्वार्थ अंधकार से रंचक-भर रिहाई नहीं पा सकता। अपने शरीर के सुख प्राप्त करने में ही परम धर्म जानता है। यह रजोगुणी वासना अधिक अंधकार है—एक पलक भी जीव निर्भय नहीं हो सकता।

वचन—18. जो जीव तमोगुणी वासना लेकर विचरता है वह अधिक अशान्ति में रहता है और अत ही मलीन कर्म करता है। यानी शरीर की नियम अनुकूल क्रिया को छोड़कर अति भोगों का भोगना ही जीवन धर्म समझता है, और उसी को असली आनन्द समझता है। अधिक से अधिक विकारों को धारण करता है। यानी छल, कपट, निर्लज्या, चोरी, कत्ल, अन्ध विश्वास आदि महा-अवगुणों में विचरना अपना धर्म समझता है। अन्त को

वह अधिक क्लेशयुक्त होकर इस संसार से जाता है, और कई जन्म धार कर पाप कर्मों की सज़ा को भोगता है।

वचन—19. सब दुनिया का चक्र गुण अनुकूल चल रहा है। जब सातकीगुण प्रधान होता है, तब सत् धर्म का प्रकाश होता है। और तमाम जीव शाँतिपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं और शारीरिक भोग वासना से त्याग हासिल करने का यत्न करते हैं। मानसिक शाँति को प्राप्त करना परम धर्म जानते हैं।

वचन—20. जब रजोगुण प्रधान होता है तब जीव अधिक सम्पदा एकत्र करते हैं और अधिक भोगों में आसक्त रहते हैं, और विचित्र से विचित्र शारीरिक सुख के सामान प्रगट करते हैं। जीवन धर्म शारीरिक सुख ही जानते हैं। नाना प्रकार के भोग पदार्थों को प्राप्त करने की खातिर दिन-रात लगे रहते हैं। शारीरिक उन्नति के साधन ऐसे-ऐसे धारण करते हैं जिनके जाल में आसक्त होकर ईश्वर हस्ती से मुनकिर हो जाते हैं। यानी सब कुछ शरीर का ही सुख जानते हैं। मानसिक शाँति के विचार वाली बुद्धि को अधिक शारीरिक भोगों में फँसकर नाश कर देते हैं। और आखिर अधिक भोग विकारों से शारीरिक उन्नति भी नाश कर देते हैं, और आत्मिक उन्नति से पहले ही नास्तिक हो चुके हैं। ऐसी हालत में अधिक

तमोगुणी वासना प्रगट होकर जीवों को अधिक संकट में घेर लेती है, और तमाम जीव मलीन वासना की पाबन्दी में आकर अधिक दुःख पाते हैं। यह ही प्रभु माया का खेल है।

वचन–21. जब तमोगुणी वासना प्रधान जीवों में आ जाती है, तब स्वार्थ अन्धकार इस कदर बढ़ जाता है कि तमाम जीव आपस में कट-कट करके मरते हैं—एक दूसरे का हक हासिल करने की ख़ातिर। और कोई शाँति का रास्ता दिखलाई नहीं देता। एक दूसरे की नाश की ख़ातिर दिन-रात लगे रहते हैं। इस कदर वासना अन्धकार हर एक जीव को घेर लेता है कि छल-कपट के बग़ैर एक वचन भी करना कठिन हो जाता है। तब अधिक उपद्रव संसार में प्रगट होने लगता है और तमाम जीव तमोगुणी वासना के जाल में आकर हर प्रकार की उन्नति को नष्ट करके अधिक दुःखी होते हैं।

वचन–22. यह त्रैगुणी वासना का जाल ही कई सूरतें जीवों को दिखलाता है। हर एक जीव वासना की पाबन्दी में प्रेरक होकर शुभ-अशुभ कर्म करके उनका नतीजा दुःख या सुख पाता है। किसी हालत में भी अचल शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता। यह ही संसार का मार्ग है। मानुष जन्म में आकर जिसने इस भ्रम जाल का विचार नहीं किया,

और न ही अपनी जीवन क्रिया का विचार किया, वह मानुष सरूप में पशु ही जानें। मानसिक शाँति की प्राप्ति की ख़ातिर ही मानुष जन्म है। शारीरिक भोगों में तो और जूनियों में भी जीव आसक्त होकर सुख व दुःख पाता है। इस वासना रूपी घोर जाल से छूटने के वास्ते ही मानुष जन्म है, इस वास्ते नित ही सत् पुरुषार्थ द्वारा अपनी कल्याण करना हर एक मानुष मात्र का परम धर्म है।

वचन—23. इस वासना रूपी भ्रम जाल का—जिसमें तमाम संसार लोत-पोत हो रहा है—अच्छी तरह विचार करके इससे छूटने के वास्ते जो यत्न करता है, वह ही प्रधान मानुष और धर्मवादी है। वासना से ही छूटने के वास्ते सत् धर्म की साधना है।

वचन—24. वैसे तो जीव शारीरिक क्रिया को वासना की पाबन्दी में आकर अच्छी तरह से जानता है। और शारीरिक भोगों की प्राप्ति की ख़ातिर हर तरीका की ग़ौरो-फ़िकर में लगा रहता है, ख़्वाहे[1] धर्मवादी है ख़्वाहे अधर्मवादी है। एक लमह भी शाँति करके नहीं बैठ सकता है। यह ही भ्रम चक्र है। अच्छी तरह से विचार करके वासना निव त्ति की ख़ातिर पुरुषार्थ धारण करना ही सत् धर्म की द ढ़ता है।

1. अथवा, चाहे

वचन—25. धर्म मार्ग की सार यह है कि जिन साधनों से वासना का अंधकार अन्तःकरण से निव त्त होता है, और आत्म-निश्चय प्राप्त होता है—वह साधना ही धर्म का सरूप है। इसके उलट जिस मलीन धारणा से वासना अंधकार बढ़ता है और पाप कर्मों में आसक्ता पैदा होती है, वह साधना अधर्म का सरूप है। इन ही धर्म-अधर्म दो मार्गों का विचार हासिल करना और धर्म मार्ग पर द ढ़ होना ही परम साधन है, जो सत् शान्ति के देने वाला है।

दूसरा निधान—वासना छेदन विवेक

वचन—26. इस वासना रूपी भयंकर जाल की पहले पहचान करनी और फिर निव त्ति की ख़ातिर अनुकूल यत्न करना ही विशेष साधन है। इस वास्ते सत्पुरुषों की संगत द्वारा अपने बन्धन और मुक्त के भेद को जानना चाहिये और शुद्ध विवेक को धारण करके वासना रूपी अंधकार की निव त्ति करनी चाहिये। ऐसी साधना करते-करते जीव को निर्मल शाँति प्राप्त हो जाती है।

वचन—27. कर्म अभिमान और कर्म फल भोग की आसक्ति ही भ्रम जाल है। जब तक इसकी निव त्ति न होवे, तब तक सत् तत्त्व की प्राप्ति होनी कठिन है, जो समता आनन्द का सरूप है। इस वास्ते कर्म अभिमान का त्याग करना ही परम त्याग है, और इस निर्मल त्याग को प्राप्त करके जो सार सरूप अनुभव होता है वह ही निर्भय धाम है।

वचन—28. सत्पुरुषों की सीख द्वारा अपनी उन्नति करनी ही मुख्य धर्म है। वासना जाल में तो हर एक जीव स्वाभाविक विचर रहा है और दुःख व सुख पा रहा है। इस अन्धकार से छूटने के वास्ते यथार्थ साधन की ज़रूरत है। जो-जो उपाय सत्पुरुषों ने धारण किये हैं उनका अपने जीवन में निदिध्यास करना ही सत् साधन है।

वचन—29. मन की विकराल अवस्था पर विजय हासिल करनी अत ही कठिन है। मगर निर्मल साधन से जीव निहचलता को प्राप्त हो जाता है। बुद्धि, मन और पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ जब तक एक सरूप में न आ जावें तब तक कर्म अभिमान का नाश नहीं होता, जो भ्रम का मूल है।

वचन—30. सत्पुरुषों की सीख द्वारा प्रथम अपने स्वार्थ की शुद्धि होनी चाहिये। स्वार्थ की शुद्धि से

परमार्थ बोध प्राप्त होता है। जीवन क्रिया की शुद्धि ही स्वार्थ शुद्धि है। यानी आहार, व्यौहार, संगत, विचार की हर वक्त पवित्रता हासिल करनी चाहिये। यह शुद्ध आचरण बुद्धि को बलवान करता है और सत् सरूप का निश्चय देता है। सत् सरूप के द ढ़ निश्चय से जीव वासना अन्धकार को छेदन करके निर्भय हो जाता है।

वचन—31. प्रथम शरीर के विवेक का हासिल करना ही सत् सरूप का निश्चय देने वाला है। यानी शरीर और जीवन-शक्ति के भेद को जानना ही निर्मल विवेक है। बुद्धि, मन, अहंकार और पाँच तत्त्वों का यह शरीर एक जन्तर बना हुआ है, और जीवन शक्ति यानी आत्मा नित इसको प्रकाश कर रही है। बुद्धि तमाम शरीर की क्रिया को जानती है मगर जीवन शक्ति को अनुभव नहीं कर सकती है। जीवन शक्ति का अनुभव करना ही बुद्धि की निहचलता और वासना से निव त्त होना है।

वचन—32. बुद्धि हर वक्त कर्म अभिमान में आसक्त होकर कर्म फल भोग में विचरती रहती है, और दुःख व सुख में चलायमान होती रहती है। यह ही तमाम शरीर की क्रिया है। यानी ग्रहण और त्याग के खेद में नित ही अधीर रहती है। एक तत्त्व सरूप आत्मा का

जानना ही इस अंधकार से प्रकाश के देने वाला है, जो परम आनन्द सरूप है।

वचन—33. सत् सरूप का विश्वास और सत् सरूप का निदिध्यास ही सब भ्रम गुबार से विजय देने वाला है। तमाम गुणी पुरुषों का सार निर्णय यह ही है। शरीर की ममता ही वासना का अन्धकार है और आत्म-समता ही परम योग और निर्भय शान्ति है। शरीर की ममता का छेदन करना ही वासना की निव त्ति है।

वचन—34. शरीर की ममता का छेदन करना अत ही कठिन है, क्योंकि जीव कर्म अभिमान में आसक्त हुआ हुआ एक पलक भी शरीर के भोगों से छूट नहीं सकता। इस अद्‌भुत माया के बन्धन को तोड़ना ही सरब विजय है। वह तत्त्व-ज्ञानी सरब सार के जानने वाला है जिसने नित ही निर्मल यत्न से अपने मानसिक दोषों को सत् सरूप के प्रेम में भस्म किया है, और समता आनन्द अति निर्मल गति को जो प्राप्त हुआ है।

वचन—35. एक आत्मा का विश्वास और अभ्यास धारण करने वाला, तमाम शरीर के भोगों को जो दुःख सरूप करके जानने वाला और तमाम सुखों को जो और जीवों की सेवा में अर्पण करने वाला, ऐसा पर-उपकारी और सत्-विश्वासी पुरुष ही इस वासना के गहरे जाल से निकल कर परम धाम को प्राप्त होता है।

वचन–36. जिसने निश्चय करके शरीर को विनाश जाना है और आत्मा को अविनाशी जाना है, और हर वक्त आत्म-चिंतन में जो यथार्थ सरूप से द ढ़ हुआ है और नित निर्मान भाव से जो संसार में विचरता है, और अधिक प्रेम से सब जीवों की सेवा करता है, और तमाम शारीरिक कर्म प्रभु आज्ञा में समर्पण करता जाता है, सुख-दुःख में समान भाव धारण करता है, ऐसी द ढ़ उपासना को जिसने धारण किया है और निमख-निमख करके प्रभु नाम का सिमरण करता है, वह ही परम पुरुष समता बुद्धि को प्राप्त होकर निर्वास पद में स्थित हो जाता है, जो नित आनन्द सरूप है।

वचन–37. द ढ़ निश्चय से जिसने निष्काम कर्म का मार्ग धारण किया है, यानी तमाम कर्मों के फल को ईश्वर इच्छया में जो देखता है, और एक नाम में चित्तव त्ति को द ढ़ करता है, कर्मों के फल द्वन्द्व में निहखेद रहता है—उस महापुरुष ने समता बुद्धि प्राप्त की है और अन्तर्गत विखे आत्म-आनन्द में मग्न रहता है। पूर्ण यत्न से आत्म-धुन में स्थिर होकर सब वासना के जाल से उस गुणी पुरुष ने विजय प्राप्त की है। उसकी जीवन क्रीड़ा तमाम जीवों के वास्ते आनन्ददायक है।

वचन–38. कर्म फल द्वन्द्व में हर वक्त जीव आसक्त रहता है, यानी किसी चीज़ की प्राप्ति में हरखमान होता है और किसी की प्राप्ति में

शोकमान। इसी राग-द्वेष की अग्नि में हर वक्त जीव अशान्त रहता है। क्या बड़े से बड़े ऐश्वर्य वाला, क्या दलिद्री कंगाल सब की मानसिक दशा ऐसे ही अधीर रहती है। यह ही अनर्थक कल्पना सत् सरूप का अनुभव होने नहीं देती—जो हर हालत में समसरूप है।

वचन—39. इस कर्म फल द्वन्द्व ममता रूपी घोर जाल से छूटने के वास्ते निष्काम कर्म का मार्ग सहज है। यानी तमाम शारीरिक कर्म प्रभु आज्ञा में समर्पण किये जावें और अन्तर्गत विखे सत्पुरुषों की सीख द्वारा एक नाम का चिन्तन किया जावे। बारम्बार मनोव त्ति को एक नाम में लगाया जावे। होना और न होना सब प्रभु इच्छया में देखा जावे। यह अनन्य भक्ति ही सब अन्तःकरण के दोषों को नाश कर देती है, और अन्तर्गत विखे पारब्रह्म शब्द को अनुभव करके बुद्धि उसी में लीन हो जाती है। ''यह ही समता तत्त का बोध है''। यानी बुद्धि तमाम कर्मों के फल में समानता को प्राप्त करके निहकर्म हो जाती है। एक पलक भी निहकर्म हालत में स्थिर होने से आत्म-तत्त को अनुभव कर लेती है, जो अखण्ड शान्ति का सागर है।

वचन—40. कर्म अभिमान ही इस वासना रूपी अन्धकार को प्रगट करने वाला है। जब तक कर्म अभिमान नाश न हो जावे, तब तक वासना

से निव त्ति नहीं हो सकती है, ख़्वाहे कितने ही और उपाय या साधन क्यों न करे। जिस तरह के पल-पल विखे जीव ''मैं कर्त्ता'' को कल्पता है और कर्मों में आसक्त होकर दुःख व सुख को ग्रहण करता है। एक पलक भी इस अनर्थक वाणी का त्याग नहीं करता। यानी अपना जीवन सरूप ही यह कर्त्तापन बना लिया है, और बारम्बार वासना के चक्र में भरमता हुआ नित ही भयभीत रहता है।

वचन—41. कोई ही विवेकी पुरुष इस कर्म अभिमान से मुक्त होने का यत्न करता है, और कोई ही साधना युक्त पुरुष निहकर्म सिद्धि को प्राप्त होता है, यानी समता आनन्द को अनुभव करता है। बड़े-बड़े यज्ञ, तप, योग, दान, सेवा आदि कर्मों को अगर धारण कर लिया जावे और पलक-पलक विखे अपने शरीर को घायल किया जावे, तो भी वासना अन्धकार का नाश नहीं होता। बल्कि ऐसे उच्च कर्म करने से बुद्धि ज़्यादा अभिमानयुक्त होकर सत् मार्ग से पतित हो जाती है और अधिक स्वार्थ भोगों के बन्धन में आकर नित ही अशान्त रहती है।

वचन—42. वासना निव त्ति की ख़ातिर तो इतने यत्न किये, मगर सब कुछ करके भी फिर वासना अन्धकार कई गुना बढ़ गया। यह ही अश्चर्ज चक्र है। बग़ैर निर्मल विवेक के और

सत्पुरुषों की सीख के कभी भी जीव निर्वास गति यानी आत्म-आनन्द को प्राप्त नहीं हो सकता, ख़्वाहे लोक दिखलावे की ख़ातिर कितना ही ज़ाहिरी प्रपंच क्यों न बना लेवे।

वचन—43. तप, ज्ञान, ध्यान, उपासना आदि सब कर्म वासना निव त्ति की ख़ातिर हैं। अगर सत् विश्वास करके अपने जीवन कल्याण की ख़ातिर इन साधनों को यथार्थ सरूप से न धारण किया जावे, तो सब यत्न अकार्थ ही जानें। यानी मानसिक दोषों की निव त्ति की बजाय इन साधनों का अधिक अभिमान प्रचण्ड होकर वासना के वेग को अधिक कर देता है।

वचन—44. बड़े-बड़े धर्म आचार्य और दानी पुरुष और कई विद्वान, ज्ञानी देखने में अधिक-से-अधिक नित आ रहे हैं। मगर ऐसा पुरुष जो निर्वास गति में स्थिर हुआ हो, उसका दर्शन तो अत ही दुर्लभ है। इसका सार यह है कि जितने भी यह श्रेष्ठ आचारी ज़ाहिरी दिखलाई देते हैं, और बड़े-बड़े धर्म के कामों में अपने जीवन को कुर्बान करते हुए देखने में आते हैं, उनके अन्दर से कर्म अभिमान का नाश नहीं हुआ, जो निर्वास आनन्द के देने वाला है। यानी अधिक सत् कर्मों को धारण करने से उनके फल सुख सरूप प्राप्ति की चाहना अन्तःकरण में बनी रहती है, जो आवागवन का कारण है।

वचन–45. जब तक कि शरीर के सुखों की ख़ातिर सत् कर्म करता है और आत्म-निश्चय को प्राप्त नहीं हुआ, वह स्वार्थवादी पुरुष सब कुछ करके भी अपने आपको बंधन में डाल रहा है। कर्म तो हर हालत में जीव को करना पड़ता है, ख़्वाहे आसक्ति रहित होकर ज्ञान बुद्धि से किया जावे, ख़्वाहे आसक्ति सहित होकर अज्ञान बुद्धि से किया जावे। आसक्ति रहित यानी अभिमान रहित होकर जो कर्म किया जावे उसके फल का बंधन जीव को नहीं है, और जो अभिमानयुक्त होकर कर्म किया जावे, उसका फल फिर जीव को आवागवन के देने वाला है। सार निर्णय यह है कि कर्मों की आसक्ति यानी अभिमान जब तक अन्तःकरण से नाश न हो जावे तब तक निर्वास आनन्द प्राप्त नहीं होता, ख़्वाहे कितने ही स्वार्थ बन्धन में आकर कठिन नियम क्यों न धारण किये जावें।

वचन–46. ज्ञान निश्चय से ही कल्याण हो सकती है। इस वास्ते निर्मल भावना से कर्म, निहकर्म मार्ग को विचार करके सत् पुरुषार्थ धारण करना चाहिये, जिससे मानुष जन्म में आकर कल्याण प्राप्त हो जावे। कर्म का फल तो अमिट है, ख़्वाहे ज्ञान भावना से किया जावे

ख़्वाहे अज्ञान भावना से। सार निर्णय यह है कि जो कर्म ज्ञान भावना से यानी प्रभु इच्छया में समर्पण करके किये जावें, उन कर्मों के फल में बुद्धि अधीर नहीं होती, यानी आसक्ति रहित होकर विचरती है; और जो कर्म अभिमानयुक्त होकर किये जावें उनके फल प्राप्ति में बुद्धि अधीर हो जाती है और फिर उस दुःख निव त्ति की ख़ातिर और यत्न करती है। इस तरह कर्म जंजाल वासना सरूप बढ़ता जाता है और नित ही जन्म-मरण के मार्ग में जीव विचरता है।

वचन—47. कर्मफल द्वन्द्व का त्याग ही असली त्याग है। जब तक कि इस निर्मल त्याग को प्राप्त न होवे, तब तक कभी भी बुद्धि स्थिर नहीं होती, ख़्वाहे ज़ाहिरी सरूप में सरब अतीत हो जावे। बग़ैर द ढ़ उपासना के कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति नाश नहीं होती। जो कथनी मात्र ब्रह्मज्ञानी हैं और निर्मल उपासना से जिनकी बुद्धि निर-अभिमान नहीं हुई, वह कभी भी निर्वास पद को प्राप्त नहीं हो सकते हैं, ख़्वाहे कितने ही प्रमाण, अनुमान से क्यों न व्याख्यान करें।

वचन—48. ज्ञान की सार यह है कि बुद्धि समभाव को प्राप्त होकर वासना के दीर्घ रोग से निव त्ति

हासिल करे। अगर कर्मफल द्वन्द्व की वासना अन्तर धारण की हुई है, तो ज़ाहिरी[1] कथनी ज्ञान कुछ फ़ायदा नहीं दे सकता। जैसे कि जल की तखा जल के पीने से जाती है न कि देखने से। ज्ञान का कथना सहल है, मगर धारणा अधिक कठिन है। कोई ही पूर्ण विवेकी सत् विश्वास को धारण करके जो अपने मानसिक दोषों की निवत्ति करके ज्ञान सरूप में विचरता है, उसका जीवन दुर्लभ है।

वचन—49. साधना अपने कल्याण की ख़ातिर है, न कि खुद अन्धकार में और दूसरों को प्रकाश बनावटी दिखलाया जावे। इस अनर्थ से कुछ हासिल नहीं। ख़्वाहे कोई गहस्थी है या विरक्ती, ख़्वाहे कोई आचार्य है या दुराचारी, ख़्वाहे कोई धनी है या दलिद्री, ख़्वाहे कोई राजा है या प्रजा, ख़्वाहे कोई गुरु है या शिष्य, सबको अपने मानसिक दोषों की निवत्ति करनी ही उनके जीवन की कीर्ति है। सत् मार्ग के बग़ैर कोई भी अपनी कल्याण नहीं कर सकता। इस वास्ते निर्मल ज्ञान का मार्ग धार कर अपने जीवन की उन्नति करनी हर एक प्राणी मात्र का धर्म है, जिससे जीवन-काल में ही पूर्ण आनन्द प्राप्त हो जावे।

वचन—50. यह संसार का चक्र अत ही दुस्तर है। अधिक पुरुषार्थ से ही जीव निर्भय पद को

1. बाहरी, बाह्य

प्राप्त हो सकता है। स्वाभाविक जीव तो अपनी कल्पना के अनुसार ही क्रीड़ा करता है। इसके वास्ते अत ही कठिन है कि अपनी कल्पना को छेदन करके सत् मार्ग में अपने आपको द ढ़ करे। प्रथम जिस भाव को अनुभव करता है, उसके मुताबिक ही निश्चय कर लेता है और फिर निश्चय के अनुकूल ही यत्न और कर्म को धारण करता है। यह ही अन्तर में लीला बनी रहती है। इस वास्ते पहले सत् मार्ग का पूर्ण अनुभव होना चाहिए कि इस निर्मल साधना से यह सार प्राप्त होगा और इसके उलट चलने से यह कष्ट प्राप्त होगा। इसके वास्ते सत्पुरुषों की संगत अधिक जरूरी साधन है, जिससे सत् मार्ग की सार को श्रवण करके मनन और निदिध्यासन मन में लाया जावे, जिस तरह कि उन गुणी पुरुषों ने अपना उद्धार किया है। इस संसार में इन दो भावों को हर वक्त निश्चय में धारण करना चाहिये—एक जीव की बन्धन हालत, और दूसरी निर्बन्ध अवस्था।

वचन—51. वासनायुक्त जीवन ही बन्धन सरूप है और निर्वासना स्थिति ही निर्बन्ध है। वासनायुक्त होकर तो हर एक जीव विचर रहा है, और निर्वासना स्थिति वाला कोई विरला ही ज्ञानी है। वह ही संसार का गुरु है और परम तत्त्व की श्रद्धा-प्रेम को प्रकाश करने वाला है। उसकी जीवन कीर्ति कल्याणकारी है।

अगर इस वासना रूपी गम्भीर रोग का उपाय न किया जावे तो यह अधिक वेग में प्रगट होकर जीवन को नष्ट कर देती है। इस वास्ते वासना निव त्ति के जो साधन हैं उनको निश्चय से धारण करके अपनी कल्याण करना चाहिये।

वचन–52. यह शरीर जो कर्म का जन्तर है, और जिससे नाना प्रकार के कर्म पलक-पलक विखे प्रगट होते हैं और जीव शरीर की ममता धारण किये हुए तमाम कर्मों के भोगों में आसक्त होकर हर वक्त चलायमान होता रहता है। किसी हालत में भी संतोष को प्राप्त नहीं हो सकता। इस अशान्ति की निव त्ति का सहज उपाय यह ही है कि पहले अनर्थक कर्म जो शारीरिक उन्नति को नाश करने वाले हैं, उनका त्याग किया जावे। बाद में सत् कर्म जो बुद्धि को निर्मल करने वाले हैं, उनमें द ढ़ निश्चय धारण करके प्रभु इच्छया सम्बन्ध को निश्चित करके विचरना ही कल्याण के देने वाला है।

वचन–53. सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत् सिमरण आदि गुणों के साधनों को धारण करने से अधिक बुद्धि बलवान होकर तमाम अनर्थक कर्मों को त्याग कर देती है। यानी इन साधनों के बग़ैर कई प्रकार के अवगुण हर वक्त बुद्धि को भरमाते रहते हैं। अच्छी तरह से विचार करने से सब सार का पता

लग जाता है। एक प्रभु विश्वासी होकर तमाम शरीर के दुःख व सुख उसकी आज्ञा में निश्चित करने ही असली कल्याण का मार्ग है।

वचन—54. शरीर कर्मयुक्त है, और आत्मा निहकर्म है। बुद्धि शरीर के धर्म पालन करने में हर वक्त लवलीन रहती है। आख़िर शरीर विनाश को प्राप्त हो जाता है, और बुद्धि अधीर होकर फिर अपनी कामना को पूर्ण करने की ख़ातिर दूसरा शरीर धारण करती है। यह सिलसिला जारी रहता है जब तक आत्म-सरूप में स्थिरता प्राप्त न हो जावे। इस वास्ते एक आत्मा का निश्चय ही कल्याण का मूल है।

वचन—55. आत्मा यानी जीवन शक्ति जो सब संसार को जीवित कर रही है और त ण-त ण में पूर्ण सरूप से व्याप रही है, और अनन्त नामों से सिद्धों ने उसकी स्तुति गाई है, वह ही परम तत्त्व पूजने योग है। और वह ही अखण्ड शान्ति समता का सरूप है। हर एक शरीर का जीवन सरूप वह ही सच्चिदानन्द आत्मा ही है। बुद्धि आत्मसत्ता को भूलकर अभिमानवश होकर कई प्रकार की रचना को देखती है, और ग्रहण और त्याग के कर्म में लगी रहती है। जब तक आत्म-तत्त्व का साख्यातकार (साक्षात्कार) न होवे, तब तक मिथ्या कल्पना यह वासना का अन्धकार

नाश नहीं होता। इस वास्ते सत् पुरुषार्थ को धारण करके अपने सत् सरूप का अनुभव करना चाहिये, जो निर्वास अखण्ड शान्ति है।

वचन—56. अपने शरीर के अन्तर ही उस परम तत्त्व को बुद्धि अनुभव कर सकती है, क्योंकि वह एक शक्ति है। उसका रूप, वर्ण, चिन्ह, आकार कोई नहीं है। सब आकारमयी संसार उस ही शक्ति में विचर रहा है, और हर एक चीज़ की मर्यादा उसी परम तत्त्व से है। उसके बग़ैर न किसी वस्तु का सरूप है और न ही कोई वस्तु स्थिर रह सकती है। यानी तमाम तत्त्वमयी संसार उस चेतन सत्ता प्रकाश के आधार पर ही स्थिर है। ऐसी अपार महिमा वाला परमेश्वर विज्ञान सरूप निहचल बुद्धि करके अनुभव हो सकता है।

वचन—57. बुद्धि सत् तत्त्व को अनुभव करके अपने आप को उसमें लीन कर देती है—यह ही हालत मोक्ष की है। जब तक बुद्धि उस ज्ञान सरूप शब्द को अनुभव नहीं करती, तब तक अभिमान-युक्त होकर इस वासना के भंवर में फंसकर नाना प्रकार के कर्म करती है और हर वक्त भयभीत रहती है। इस संसार में जानने योग और पूजने योग वह ही परम आधार एक आत्मा नारायण सरूप है, जिस को अनुभव करके बुद्धि पूर्ण सन्तोष को प्राप्त हो जाती है, यानी वासना अंधकार से मुक्त होकर केवल सरूप हो जाती है।

वचन—58. वह परम तत्त्व आत्मा शरीर के अन्तर-बाहर पूर्ण सरूप करके प्रकाश कर रहा है। निर्मल बुद्धि से उसका सिमरण, ध्यान करना ही सब दोषों से निव त्ति के देने वाला है। सब कर्मों से महा-कर्म एक प्रभु उपासना ही है। तमाम सत् कर्म अन्तःकरण की शुद्धि के वास्ते हैं जिससे बुद्धि पवित्र होकर एक प्रभु परायणता हासिल करे, और तमाम मानसिक दोषों से निव त्त होकर प्रभु सरूप में लीन हो जावे, जो अखण्ड आनन्द सरूप है।

वचन—59. आत्मा शरीर में इस तरह प्रकाश कर रहा है, जिस तरह दूध में घ त। इसलिए सत् यत्न से ही वह परम तत्त्व शब्द सरूप अनुभव हो सकता है। द ढ़ निश्चय से प्रभु उपासना को धारण करना, और तमाम शरीर की शक्ति को उस परम तत्त्व के आधार पर देखना, और कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ता को प्रभु आज्ञा में समर्पण करना, नित ही अन्तरगत विखे पवन संजुगत होकर अखण्ड नाम का सिमरण करना ही परम योग है। जो इस प्रकार करके पलक-पलक विखे प्रभु नाम का सिमरण करता है, उसकी मनोव त्ति निरोध हो जाती है। और मन एकाग्र होकर अपने अन्तर विखे अखण्ड अविनाशी शब्द को अनुभव करता है, जो सब संसार का जीवन सरूप है और वह ही निर्वास पद है।

वचन—60. जब तक मन मिथ्या नाम-रूप संसार की कल्पना में लगा रहता है, तब तक वासना के अन्धकार में चलायमान होता रहता है। इस भ्रम की निव त्ति के वास्ते एक प्रभु नाम सिमरण ही सहज उपाय है, जो यथार्थ सरूप से धारण किया जावे। जिस गुणी पुरुष ने मिथ्या नाम-रूप कल्पना को त्याग करके सत् नाम का आधार पाया है, और निमख-निमख करके अपनी मनोव त्ति को एक नाम में लगाता है, और तमाम शरीर के प्रिय और अप्रिय पदार्थों को प्रभु इच्छया में त्याग करता है, ऐसी द ढ़ उपासना वाला ज्ञानी अपने अन्तर विखे सत् सरूप को अनुभव कर लेता है, और परम कल्याण को प्राप्त हो जाता है।

वचन—61. बुद्धि की चंचलता ही ''अज्ञान'' सरूप है, और बुद्धि को निहचल करना ही परम ''तप'' है। जब तक बुद्धि कर्म अभिमान संजुगत है, तब तक वासना अन्धकार में चलायमान होती रहती है। जिस समय बुद्धि तमाम कर्मों को ईश्वर इच्छया में निश्चय से त्याग कर देती है, उस समय अन्तर विखे शब्द सरूप ब्रह्म प्रकाश को अनुभव कर लेती है, जो ''समता आनन्द का पूर्ण सरूप है।'' और अधिक प्रेम संजुगत (संयुक्त) होकर अपने आपको उस परम तत्त्व में लीन कर देती है, यह अवस्था ही ''परम धाम''

है। धन[1] वह पुरुष है जिसको ऐसी स्थिति प्राप्त हुई है।

वचन–62. जब तक शारीरिक भोगों से वैराग प्राप्त न होवे, और द ढ़ अनुराग सत् सरूप का अन्तःकरण में प्रगट न होवे, तब तक ऐसी स्थिति प्राप्त होनी कठिन है। इस वास्ते सहज स्वभाव से ही यथार्थ सरूप से भगति को धारण करना चाहिए। जिसके बल से सब विकारों पर जीत हासिल करके परम तत्त्व के सरूर में स्थिरता प्राप्त होवे। निर्मल भगति यह है कि प्रभु परायणता हासिल करके निष्काम कर्म का साधन प्राप्त किया जावे। यानी अपने स्वार्थ को छोड़कर नित ही निष्काम भाव से पर उपकारी जीवन बनाया जावे और अपने तमाम शारीरिक सुख दूसरों की सेवा में समर्पण किये जावें। ऐसा यह निर्मल विवेक का मार्ग है। जो गुणी सत् विश्वास करके विचरता है, वह शारीरिक सुखों की कैद से छूट कर आत्म-आनन्द को प्राप्त हो जाता है।

वचन–63. शारीरिक सुख ही बुद्धि को बार-बार जन्म-मरण के चक्र में फिराते हैं। मगर वास्तव में शारीरिक सुख ही परम दुःख का मूल हैं। जिस भोग का सुख माना जाता है, वह ही अंत में दुःख सरूप हो जाता है, यानी सुख के निश्चय से दुःख प्रगट होता है। जब तक किसी वस्तु का सुख अनुभव करता है, तब

1. धन्य

तक उसके मोह में गिरफ़्तार रहता है। आख़िर वह सुख ही दुःख सरूप में प्रगट होकर अति क्लेश देता है। ''यह ही अज्ञान का चक्र है।'' इससे छूटने के वास्ते एक निष्काम कर्म का मार्ग ही सहज है।

वचन—64. अपने शारीरिक सुखों को दूसरों की सेवा में भेंट करना और मन में निर्मान भाव रखना, अधिक से अधिक तन, मन, धन से सेवा करके प्रभु इच्छया में निश्चित होना—यह ही एक निर्मल त्याग का मार्ग है। ज्यों-ज्यों गुणी पुरुष पवित्र भावना से इस पर-उपकार के मार्ग में विचरता है, त्यों-त्यों उसके अन्तःकरण के दोष नाश होते जाते हैं। तब सत् सरूप में द ढ़ विश्वास प्राप्त होता है, और संसारी पदार्थों से चित्त को वैराग्य हासिल होता है। यह धारणा ही निर्मल भक्ति के अंकुर हैं। यानी शारीरिक सुखों को तुच्छ जानकर प्रभु आज्ञा में निश्चित होकर तमाम जीवों के सुख की ख़ातिर अपने आपको जो निष्काम भाव से न्यौछावर करता है, वह ही गुणी आत्म-आनन्द का अधिकारी है।

वचन—65. जब तक शारीरिक सुखों में जीव ग्रसा हुआ है, तब तक कभी भी निर्वास पद आत्म-शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता है। मलीन बुद्धि शारीरिक सुखों को ही असली आनन्द जानती है। ज्यों-ज्यों विचार से पवित्रता

हासिल होती है, त्यों-त्यों शारीरिक सुख ही दुःख का सरूप दिखाई देते हैं! ऐसी निर्मल धारणा को प्राप्त होकर बुद्धि निर्वास आनन्द की खोज में अपने आपको त्याग करती है। तब एक सत् सरूप के आधार को प्राप्त हो जाती है, जो ''परम आनन्द'' का धाम है।

वचन–66. शारीरिक सुख ही दुःख को उत्पन्न करते हैं। यानी जिस चीज़ के संजोग से सुख प्राप्त होता है, उसके वंजोग से दुःख हो जाता है। यह संजोग-वंजोग ही कर्म का चक्र है और अमिट है। इसी अज्ञान के वश होकर जीव हमेशा के वास्ते सुख चाहते हैं। मगर ऐसा हो नहीं सकता। हर एक वस्तु काल-चक्र को धारण किये हुए अपने आपको तबदील कर रही है। जो वस्तु आद-अन्त को प्राप्त होने वाली है, उसका संजोग असली सुख नहीं दे सकता है। यह गहरी ग़ौर करके विचार करना चाहिये। जब शरीर ही नाशवान है, तब शरीर के सुख कहाँ हैं? यह तो अन्धमति से जीव सत-सरूप जो आनन्द का सागर है, को भूलकर इस नाशवान शरीर में अचल शान्ति को खोज रहा है। न तो शरीर की स्थिरता रही, और न ही असली सुख प्राप्त हुआ। मिथ्या कल्पना को धार करके अन्त को निरास ही इस संसार से जाता है। इस वास्ते इस भ्रम जाल का विचार करके मानुष-जन्म की सार को प्राप्त करें। यानी सत्-सरूप की प्राप्ति

और सत्-सरूप की परायणता में अपने आपको नित ही सावधान करें।

वचन—67. कुछ न कुछ तो जीव करता ही रहता है, ख़्वाहे बंधन क्रिया को धारण करे, ख़्वाहे निर्बन्धन क्रिया को। सत् विवेक यह ही है कि निर्बन्धन क्रिया को धारण करके अपने जीवन की उन्नति की जावे। अगर ऐसा यत्न करने में आसक्त है तो फिर पापयुक्त होकर अपने आपको कलंकित कर देवेगा। इस वास्ते निर्मल विचार द्वारा सत् शाँति का मार्ग स्वीकार करना ही जीवन की उच्चता है। जैसा-जैसा जीव कर्म करता है, उसका फल अवश्य भोगता है। इस वास्ते ऐसा कर्म न धारण किया जावे जिससे अधिक संकट प्राप्त होवे। सब तापों से छूटने के वास्ते एक प्रभु परायण होना ही मुख साधन है, और यह ही सार विचार है।

वचन—68. एक प्रभु का विश्वासी और अभ्यासी होकर जो नित ही निष्काम भाव से सत् कर्मों में विचरता है, वह ही विवेकी पुरुष कर्म बन्धन से छूटकर निहकर्म पद समता शान्ति को प्राप्त हो जाता है। सब कुछ प्रकाश एक प्रभु का ही देखना और सब जीवों को सुख देना अपना परम धर्म समझना, अपने आचार-विचार में नित ही पवित्रता हासिल करनी—यह ही 'निर्मल भक्ति'' है, जो प्रभु सरूप में लीन कर देती है। नित ही सत् यत्न धारण करना चाहिये।

वचन—69. जिसने अपने पाप निव त्ति की खातिर सत् यत्न धारण किया है, और सत् पुरुषों की सीख द्वारा जो प्रभु विश्वास को प्राप्त हुआ है, और हृदय से सब जीवों का जो हितकारी है, और शरीर की अन्तिम दशा को हर वक्त जो विचार करता है, तन, मन, धन सब प्रभु का ही जो देखता है, और प्रभु आज्ञा में अपने आपको जो स्थिर करता है, निर्मान भाव से सर्व सेवक होकर जो नित ही विचरता है, उसके अन्तर द ढ़ प्रभु अनुराग प्रगट हो जाता है। जो सब तापों के हरने वाला है और अनन्य भग्ति अविनाशी सरूप की देने वाला है।

वचन—70. जब ऐसी पवित्र भावना जिसके अंतःकरण में प्रगट हुई, वह सत् पुरुषार्थ से सत् पुरुषों की सिखया (शिक्षा) को हासिल करके नित ही अन्तर्गत विखे आत्म-चिंतन में अपने आपको वह गुणी पुरुष स्थिर करता है, और द ढ़ निश्चय से निर्मल साधन करते-करते आत्म-साख्यातकार (साक्षात्कार) को अनुभव कर लेता है, जो सब संसार का मूल है, और जीव का निर्मल धाम है। उस ही गुणी पुरुष ने संसार में आकर असली जीवन को पाया है, जहाँ काल का भय प्रवेश नहीं कर सकता। उसकी महिमा इस नाशवान संसार में अधिक दुर्लभ है।

वचन–71. हर वक्त एक आत्म-चिन्तन में मन को लगाये रखना और संसारी पदार्थों से त्याग हासिल करना, यानी अपने जीवन के सुख पदार्थ दूसरों की सेवा में निष्काम भाव से त्याग करने, केवल एक प्रभु का ही मन में भरोसा रखना, सब संसार को निश्चय से नाशवान देखना और जीवित में ही आत्म-स्थिति को प्राप्त करने का निर्मल यत्न करना ही सब वासना के अन्धकार को नाश करने वाला है और समता आनन्द निर्दोख पद के देने वाला है।

दूसरा निधान वासना छेदन विवेक समाप्त हुआ।

तीसरा निधान—वासना अभाव विवेक

वचन–72. काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार आदि अवगुण वासना अन्धकार से ही प्रगट होते हैं। जब तक वासना का अभाव न हो जावे, तब तक इन विकारों से शान्ति प्राप्त नहीं होती। इसलिए मूल पाप सरूप जो वासना है, उसका निवारण करना ही असली कल्याण है। नित ही सत् यत्न द्वारा प्रभु परायणता प्राप्त करके वासना के अद्भुत भरम चक्कर से निव त्ति हासिल करनी ही निर्मल साधना है।

वचन—73. जिस वक्त एक प्रभु का द ढ़ विश्वास हो जाता है, और सब कर्म प्रभु इच्छया में निश्चय से समर्पण किये जाते हैं, और निर्मल प्रेम से प्रभु भगति में मन द ढ़ होता है, उस वक्त अन्तर्गत विखे परम आनन्द शब्द सरूप का अनुभव होता है जो केवल शाँति ही शाँति है। उस वक्त बुद्धि सब अन्धकार को त्याग कर प्रभु सरूप में निहचल हो जाती है, और उस महाशक्ति की महिमा विचार करके उसी में लीन हो जाती है। यह ही अवस्था निर्वास और समता पद है।

वचन—74. कर्म अभिमान अति दुस्तर है। पलक-पलक विखे बुद्धि को भरमाता है। जिस गुणी पुरुष ने सत् श्रद्धा से सत्नाम का सिमरण धारण किया है, और तमाम शरीर के विकारों से अपने आपको जिसने पवित्र किया है, और नित ही सत्, शील, सन्तोख, संजम आदि महागुणों को धारण करता है, वही विवेकी पुरुष वासना के अन्धकार को छेद करके अपने अन्तर विखे बुद्धि को संकोच करके प्रभु सरूप को अनुभव कर लेता है।

वचन—75. प्रभु सरूप की अनुभवता ही वासना निव त्ति का सार यत्न है। जब तक बुद्धि को सार ठिकाना प्राप्त न होवे, तब तक इस अन्धकार को त्याग नहीं कर सकती है। इस वास्ते तमाम तापों को हरने वाला और नित शाँति के देने वाला एक प्रभु नाम ही है। जो

निर्मल चित्त से कर्त्ता-हर्ता सरब शक्तिमान समझकर सिमरण करता है वह ही निश्चल भावना वाला गुणी पुरुष सरब कल्याण को प्राप्त होता है। इस वास्ते एक प्रभु का विश्वासी होना, सब संसार का आधारी उस परम तत्त्व को जानना और अधिक श्रद्धा से सिमरण-ध्यान करना ही सब दोषों के नाश करने वाला है।

वचन–76. संसारी पदार्थ नित ही विनाश होने वाले हैं। उनका मोह अधिक दुःख के देने वाला है। इस वास्ते अविनाशी तत्त्व का सिमरण-ध्यान और श्रद्धा-प्रेम धारण करना ही असली शाँति के देने वाला है। द ढ़ निश्चय से उस महा-आनन्द ज्ञान सरूप प्रभु की शरणागत होना ही इस मिथ्या संसार में अधिक लाभ है। वह ही परम विवेकी है, जिसने यथार्थ सरूप से एक प्रभु का आसरा लिया है और सेवक रूप होकर तमाम जीवों को सुख देने का यत्न करता है। वह तमाम वासनाओं से मुक्त होकर सत् पद को प्राप्त हो जाता है।

वचन–77. जिसने तमाम शारीरिक भोगों से निव त्ति हासिल की है और द ढ़ निश्चय से जो आत्म-परायण हुआ है, दुःख-सुख में जो धीरजवान रहता है, अन्तर्गत विखे अखण्ड

शब्द के आनन्द में जो मग्न रहता है, वह ही ज्ञानी वासना से अतीत होकर परम-आनन्द सरूप में लीन हो जाता है। इस संसार का पूर्ण निर्णय उसने ही पाया है। वह ही सिद्ध और तत्तवेत्ता है।

वचन—78. जिसने अपनी तमाम मनोव तियों को प्रभु प्रेम में भस्म कर दिया है और अन्तर-बाहर एक नाम के आधार पर ही जो जीवित है, किसी वस्तु की प्राप्ति में लुभायमान नहीं होता और किसी के नाश से खेदमान नहीं होता, अन्तर विखे हर वक्त शरीर से न्यारा होकर सत् पद में स्थित हुआ है—वह ही वासनातीत पुरुष है और निर्मल विज्ञान के तत्त्व को जानने वाला है।

वचन—79. जिसने निहकर्म सरूप शब्द को अन्तर विखे अनुभव किया है, और शारीरिक कर्म फल द्वन्द्व से न्यारा होकर जो तत्त्व शब्द में स्थित हुआ है, वह ही ज्ञानी है, यानी शारीरिक कर्मों का मोह त्याग कर जो परम तत्त्व में स्थिर हुआ है। जो तमाम कर्मों का चक्र प्रक ति विखे देखता है और उसने आत्मा को बिल्कुल निर्विकार करके अनुभव किया है, उस ज्ञानी ने तमाम वासना के अन्धकार से छूट पाई है।

वचन—80. अखण्ड अविनाशी शब्द सरूप ब्रह्म जिसके अन्दर प्रगट हुआ है और अनन्य भावना करके उस विवेकी ने तत्त्व सरूप का अम त

पान किया है, वह ही वासना की जलन से ठण्डा होकर सर्व प्रकाश परम-आनन्द सरूप में स्थित हुआ है। वह सब संसार को उस परम तत्त्व का प्रकाश देखता है। यानी अपने आप में ही वह परम तत्त्व को अनुभव करता है और उस परम तत्त्व में अपने आपको पूर्ण देखता है, यानी केवल सरूप स्थिति को प्राप्त हुआ है। वह ही ब्रह्मज्ञानी है। उसका दर्शन दुर्लभ है।

वचन–81. जिसने सत् पुरुषार्थ करके कर्म के संग्राम से विजय हासिल की है और निहकर्म जोत में समता प्राप्त की है, वह ही उदार चित्त निहसंशक बुद्धि वाला ज्ञानी वासना के अन्धकार से मुक्त हुआ है और समता आनन्द को प्राप्त हुआ है। उसके वास्ते संसार में कुछ करने योग नहीं रहा, यानी सब प्रक ति के विकार से निर्मल हो गया है।

वचन–82. आत्म-निश्चय, आत्म-परायणता, आत्म-अनुभवता और आत्म-स्थिति के प्राप्त करने में जो हर वक्त स्वतन्त्र है, वह ही सत् पुरुषार्थ-धारी विवेकी वासना के जाल को छेदकर निज आनन्द को प्राप्त कर लेता है। जब शरीर के अन्तर आत्म-जोत को प्रगट पाता है, उस वक्त शरीर का मोह सब नाश हो जाता है। वह ही सरब अजीत पुरुष कुल वासना के संग्राम से मुक्त होकर परम तत्त्व में स्थिर होता है।

वचन–83. शारीरिक क्रिया के बन्धन में हर वक्त जीव अशाँत रहता है, यानी कर्म फल द्वन्द्व में दुःख व सुख प्राप्त करके चलायमान होता रहता है। जिस वक्त शरीर के मोह को त्याग कर जीवन शक्ति आत्मा के प्रेम में मग्न होता है, उस वक्त इन सब तापों से मुक्त होकर निर्भय हो जाता है। यह ही अवस्था कल्याण सरूप है।

वचन–84. इन्द्रियों के विकारों से जिसने मन को न्यारा किया है और एक नाम में स्थिति प्राप्त करने के यत्न में जो रहता है, और तमाम शारीरिक अनर्थक क्रिया को जिसने त्याग दिया है, और नित ही एकान्त में बैठ करके आत्म-ध्यान में जो निश्चल होता है, वह ही अभ्यासी सब दुर्मत विकार को छेद करके आत्म-आनन्द को प्राप्त हो जाता है। बग़ैर साधन के सिद्धता प्राप्त नहीं होती और बग़ैर सिद्धता के वासना अन्धकार नाश नहीं होता, यह निश्चय करके जानना चाहिये।

वचन–85. जिसने अपने मन की स्म ति निर्मल की है एक प्रभु का नाम धारण करके, वह ही गुणी आत्म-अनुभव और आत्म-स्थिति को प्राप्त हो सकता है। आत्म-स्थिति ही समता यानी केवलता का सरूप है। जिस जगह आकारमयी स ष्टि सब लय हो जाती है और निराकार ज्योति का ही प्रकाश अनुभव होता है, वह ही स्थान सब संसार का मूल है और

अखण्ड अविनाशी धाम है। उस अवस्था को जो प्राप्त हुए हैं, वे फिर वासना के अन्धकार में नहीं आ सकते हैं, यानी अपने सरूप में पूर्ण हो गये हैं।

वचन—86. जब मन व त्तियों का त्याग करता है और अन्तर नाम आधार को प्राप्त होता है, उस वक्त निहचल होकर अपने सरूप को लीन कर देता है। तब एक अखण्ड अविनाशी तत्त्व ही सरब में पूर्ण दिखलाई देता है। वह ही सिद्ध अवस्था है। बारम्बार एक नाम का निदिध्यास करना और शारीरिक विकारों का त्याग करना, और निष्काम भाव से पर-उपकारी मार्ग को धारण करना ही सब सिद्धि के देने वाला है।

वचन—87. कर्म अभिमान को प्रभु इच्छया के द ढ़ अनुराग से जिसने छेदन किया है, और मन, पवन की एकता करके एक नाम में जो निश्चल हुआ है—उसी परम योगी ने अन्तर्गत विखे अखण्ड शब्द-ब्रह्म को अनुभव किया है और एकाग्र चित्त होकर उस परम तत्त्व को पान करके नित ही त प्त रहता है, यानी वासना की अग्नि से सरजीवित होकर निर्भय हो जाता है। तमाम प्रक ति पर उस महापुरुष ने जीत पाई है। वह ही सार तत्त्व को जानने वाला है।

वचन—88. प्रभु भावी पर जिसने दृढ़ विश्वास पाया है और सब कुछ प्रभु आज्ञा में जो देखता है, तमाम संसार उसी एक प्रभु की लीला जो विचार करता है और परम श्रद्धा से अन्तर्गत विखे नाम का जो निदिध्यास करता है, वह सत्विश्वासी पुरुष आत्म-सिद्धि को प्राप्त करके निर्वाण पद में लीन हो जाता है, जो अचल, अछेद और अनादि है।

वचन—89. जिसने शारीरिक भोगों को दुःख समझ कर त्याग किया है और आत्मा को अजर-अमर अविनाशी समझकर निर्मल निदिध्यास को धारण किया है, और निष्काम भाव से अचल चित्त होकर जिसने आत्म-परायणता धारण की है, वह ही गुणी सब मानसिक दोषों से निवृत्त होकर अन्तर्गत विखे अखण्ड शब्द को प्राप्त हो जाता है। बारम्बार एक आत्म-निश्चय में बुद्धि को स्थिर करना और अनात्म पदार्थ दुःख सरूप जानकर हृदय से उनका मोह त्याग करना ही कल्याणकारी यत्न है। नित ही स्वतन्त्र होकर अपने तापों का छेदन करना चाहिये—जिससे परम आनन्द परमेश्वर सरूप प्राप्त हो जावे।

वचन—90. जिसने नित ही अविनाशी सुख प्राप्त करने का विश्वास चित्त में धारण किया है और तमाम शारीरिक सुखों को चित्त से त्याग कर दिया है, एक प्रभु आधार पर ही जिसने अपना जीवन स्थिर रखा है, वह ही दृढ़

निश्चय वाला परम विवेकी अपने अन्तर विखे सत् सरूप को अनुभव कर सकता है, जो आनन्द का भण्डार है। नित ही निर्मल यत्न से अपने आपको पर-उपकार के मार्ग में लगाना चाहिये, जिससे सब दोष नाश होकर एक आत्म-परायणता प्राप्त होवे।

वचन–91. जिस पुरुष ने अपने तमाम जीवन सुख से उपरसता प्राप्त की है और हृदय में एक सच्चिदानन्द सरूप का आधार पाया है, नित ही अपने तन, मन और धन से तमाम जीवों की सेवा में जो प्रव त्त रहता है—उस परम तपीशर ने अपने तमाम ताप सत् सेवा के साधन से भस्म कर दिये हैं और अन्तर्गत विखे अविनाशी सरूप को प्राप्त होकर परम शाँत के सागर में लीन हो गया है, दुर्लभ उसका जीवन है। अपना भी उद्धार कर लिया है और कई जीवों को सुख देकर के चला है। संसार में उसका आना सफल है। उसका जीवन आदर्श तमाम जीवों के वास्ते कल्याणकारी है।

वचन–92. स्वार्थ अगन से जिसने छूट पाई है और परमार्थ में जो निश्चल हुआ है, तमाम जीवों के दुःख को जो अपना दुःख जानता है और नित ही सत् श्रद्धा से अपना सुख औरों के दुःख में जो त्याग करता है—वह ही गम्भीर बुद्धि वाला पुरुष निर्मल भावना से आत्म-निश्चय को प्राप्त करके अपने

तमाम विकारों पर जीत पा लेता है, और सत् श्रद्धा से केवल प्रभु-परायण होकर जीवन व्यतीत करता है। उसी शुद्ध आचरण वाले पुरुष ने संसार में असली जीवन को जाना है। यानी अपने आपको निश्चय से मुसाफ़िर जानकर अंतर से एक प्रभु प्रेम में ही मग्न रहता है। वह ही परम तत्त्ववेता है, यानी संसार में विचरते हुए अन्तर से निर्लेप रहता है। उसी पुरुष ने वासना रूपी अग्नि को भस्म किया है।

वचन—93. जो सब कुछ करते हुए उस कर्म के दोख में चलायमान नहीं होता, यानी द ढ़ निश्चय से प्रभु परायणता को प्राप्त हुआ है, वह ही निहकर्म बुद्धि वाला अजीत पुरुष है। यानी उसी ने वासना रूपी नदी से पार पाया है और एक आत्म-आधार को प्राप्त होकर अपने जीवन को संतुष्ट कर दिया है। शारीरिक दोषों से निर्मल होकर अपने आपको समेट करके एक चेतन प्रकाश में स्थिर कर दिया है, यानी हर वक्त अपने आप में निहचल होकर शरीर से ऊँची अवस्था अखण्ड नाद में नित विराजमान रहता है। अपनी गति को वह आप ही जानने वाला है। यह ही अवस्था निर्वाच पद है।

वचन—94. जिस ज्ञानी ने अपनी तमाम कामनाओं के इन्द्रजाल को समेट कर अपने अन्तर विखे स्थिरता प्राप्त की है, वह ही निहचल बुद्धि होकर अपने अन्तर विखे सत्सरूप को अनुभव करता है, जिसका कोई पारावार नहीं है। और नित नौ द्वारों से ऊँचा होकर महा-आकाश में पारब्रह्म से संयुक्त होकर स्थिर रहता है। तमाम संसार की रचना को वही जानने वाला है और वही योगी त्रैकालदर्शी है।

वचन—95. जिसने सत्शब्द को अन्तर विखे अनुभव किया है और मन-वाणी का निरोध कर दिया है, एकाग्र बुद्धि होकर तत्त्व सरूप में जो नित स्थिर रहता है और पाँच तत्त्वों से विजय प्राप्त करके नित तत्त्वातीत अवस्था में जो निहचल हुआ है, वह ही इन्द्रीजीत पुरुष निर्वास समता आनन्द को प्राप्त हुआ है। जो कुछ भी उसने अनुभव किया है वह ही सार तत्त्व है। उसका सत् उपदेश सर्व जीवों को कल्याण के देने वाला है—जो निश्चय पूर्वक धारण करने में यत्न करते हैं।

वचन—96. सबसे प्रथम जिसने कर्म मार्ग को शुद्ध किया है, यानी पाप कर्मों का त्याग करके सत् कर्मों को धारण किया है; फिर सत् कर्मों के फल को भी जिसने प्रभु समर्पण किया है, यानी निष्काम कर्म की धारणा को प्राप्त किया है; और साथ ही जिसने निर्मल

युक्ति से प्रभु सिमरण में द ढ़ता हासिल की है—वह ही विवेकी पुरुष निश्चल भावना करके अन्तर आत्मस्थिति को प्राप्त हो जाता है, जो निर्विकार अवस्था है। बग़ैर सत् यत्न के कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। इस वास्ते इस संग्राम सरूप संसार में आकर नित ही सत् विजय प्राप्ति के पुरुषार्थ में प्रवीण रहना चाहिये। यानी अनुकूल समय की पाबन्दी करके स्वार्थ कर्म और परमार्थ प्राप्ति का यत्न करना चाहिए।

वचन—97. जब तक व्यवहारिक नियम और परमार्थिक संजम में बुद्धि स्वतन्त्र न होवे तब तक इस भव दुस्तर मार्ग से पार होना अत ही कठिन है, यानी शारीरिक क्रिया की मर्यादा, आहार, व्यवहार और संगत का अति पवित्र होना उन्नति के देने वाला है। और सत् सरूप की प्राप्ति की ख़ातिर अपने आप में सब दोषों की निव त्ति की ख़ातिर सत् संजम को धारण करना, यानी एक प्रभु विश्वासी होना, सत्, सील, संतोख, पर-उपकार और निर्मल अभ्यास में अपने मन को निश्चल करना, ऐसा निर्मल यत्न करते-करते जीव सब वासनाओं से मुक्त होकर सत् सरूप में लीन हो जाता है। इस संसार में मानुष-जन्म की प्रभुता यह ही है कि अपनी मानसिक दशा को पवित्र करके परम पद को प्राप्त करने में नित्य ही सत् यत्न धारण किया जावे।

वचन—98. जो गुणी समय का पाबन्द होकर शारीरिक क्रिया भी करता है और आत्मिक उन्नति का यत्न भी करता है, वह सब तापों से छूटकर निर्भय पद को प्राप्त हो जाता है। जिसकी शारीरिक क्रिया में कोई मर्यादा नहीं, यानी अति लोभी और विकारी है, वह अन्धमति पुरुष अपने मानसिक दोषों की अग्नि में हर वक्त जलता रहता है। उसके वास्ते कोई शान्ति का स्थान नहीं है। सार विचार यह है कि मन की धार को रोकने से आत्मिक उन्नति परम शान्ति प्राप्त होती है और मन को अति चंचल करने से परम दुःख प्राप्त होता है। वह मूढ़ पुरुष है जो मन को रोकने की बजाय मन की मलीन वासना में आसक्त होकर नित ही भरमता है, उसको कभी भी धीरज प्राप्त नहीं होता। मन सत् कर्मों से निहचल होता है और मलीन कर्मों से चंचल होता है। इस वास्ते सत् विचार को धारण करके अपनी उन्नति के मार्ग पर चलना ही सच्चा मानुष जीवन है।

वचन—99. जो कथनी ज्ञानी हैं और बड़े-बड़े उपदेश औरों को सुनाते हैं, उनकी मनोव त्ति अगर अपनी संतोष को प्राप्त नहीं हुई, यानी शारीरिक विकारों पर विजय हासिल नहीं की—वह अन्तर से मूर्ख ही जानें। ज्ञान का सार यह ही है कि तत्त्व भेद को समझ कर अपनी अनर्थिक वासना का त्याग किया जावे और निर्वास पद जो समता सरूप है, उसमें

निहचलता प्राप्त की जावे। जब तक अन्तर में वासना अन्धकार मौजूद है, तब तक सब ज्ञान-ध्यान फीका है, यानी कुछ भी सार प्राप्त नहीं हुई। वासना से निर्वासना होना ही असली ज्ञान, योग, तप और विवेक है। अगर इन साधनों को लोक दिखलावे की ख़ातिर धारण किया है और अन्तर से निर्वास भाव को प्राप्त नहीं हुआ, तो वह कपटी पुरुष अपने आपको प्रकाश से अन्धकार की तरफ ले जा रहा है। उसका उपदेश दूसरों के वास्ते क्या कल्याणकारी हो सकता है! इस वास्ते जो कुछ जाना जाए उसके अनुकूल यत्न करके अपनी मानसिक पवित्रता हासिल करनी ही सार साधन है। ज्ञान, ध्यान और योग वह ही पूर्ण है, जो अपने अनुभव से प्रगट होवे और अंतर्गत विखे वासना की अग्नि को शाँत करके परम आनन्द सरूप में निहचल कर देवे। जो ऐसी स्थिति वाला यानी निर्वास आनन्द को प्राप्त हुआ है, वह ही परम ज्ञानी समता तत्त्व के जानने वाला है। उसका दर्शन व उपदेश परम कल्याण के देने वाला है।

वचन—100. सदाचारी जीवन धारण करके नित ही अपने मानसिक दोषों की निव ति करनी ही असली धर्म विश्वास है। हर एक जीव अपनी अर्थक-अनर्थक कल्पना को अच्छी तरह समझता है। मगर सब कुछ जान करके भी

फिर अपनी उन्नति के मार्ग पर जो नहीं चलता, वह पशु ही जानें। ज्ञान-ध्यान वह ही कल्याणकारी है जो अपने जीवन को सत् शाँति देवे। इस वास्ते अधिक विद्या के होने से या अधिक चतुराई के धारण करने से अगर मानसिक अवस्था शाँति को प्राप्त नहीं हुई, तो उसने उस विद्या का कोई फल नहीं पाया, बल्कि उल्टा मद के बन्धन में आकर अपने आपका नाशक हो गया है। यह निश्चय कर लेना चाहिए।

वचन–101. मानसिक अवस्था की पवित्रताई ही मानुष जन्म की सार है। इस वास्ते एक प्रभु का विश्वास धारण करके नित ही इस नाशवान संसार में सरब जीवों का हितकारी होकर विचरना चाहिये। न तो यह शरीर स्थिर रहेगा और न शारीरिक भोग। यह सब प्रभु माया का खेल है। पवित्र बुद्धि को धारण करके उस खेल के खिलाड़ी का विचार करना चाहिए, जिससे भरम अन्धकार वासना नाश हो जावे और परम शाँति प्राप्त होवे। जीव का पूर्ण सरूप निर्वास होना है और अपूर्ण सरूप वासना-युक्त होना है। इस वास्ते अपने सरूप की पूर्णताई प्राप्त करनी ही उन्नति का मार्ग है। जितनी भी जिसने इस जीवन में पवित्रता हासिल कर ली है, उतना ही उसने जीवन का सार पाया है। यह विचार निर्मल बुद्धि से विचार करके हर

वक्त अपने कल्याण के मार्ग पर चलना चाहिये, क्योंकि अपनी करनी ही कल्याण और बंधन के देने वाली है।

वचन–102. सत् सरूप प्रभु को हर वक्त साखी जान कर नित ही पवित्र कर्म धारण करने और उस दीनदयाल की शरणागत होकर अपने मानसिक दोषों पर विजय हासिल करनी, पवित्र भावना करके उस दीनदयाल की आज्ञा में विचरना और कर्म फल द्वन्द्व में धीरजवान रहना, नित ही निष्काम भाव से सब जीवों पर दया करनी और अनन्य प्रीत करके सत् सरूप की प्राप्ति का यत्न करना, यानी संसारी पदार्थों से अधिक प्रेम प्रभु-सिमरण में करना–ऐसी निर्मल धारणा जब द ढ़ भाव से प्राप्त हो जावे तब अन्तर्गत में सरूप प्रकाश हो जाता है; जो सरब प्रकार की शाँति, सरब प्रकार की सिद्धि, सरब प्रकार की अनुभवता, सरब प्रकार की पवित्रता और सरब प्रकार की पूर्णता है। जिसने इस निर्मल गुह्य भेद को जाना है वह ही सरब का मानी आनन्द सरूप ज्ञानी है। हर एक मानुष मात्र को अपनी कल्याण करके इस परम धाम को प्राप्त होना चाहिये, जो निराधार समता सरूप है।

वचन—103. यत्न से ही कल्याण प्राप्त होती है, इस वास्ते मानुष जन्म में आकर सत् मार्ग की प्राप्ति करनी चाहिये, जिससे जीवन का पूर्ण फल प्राप्त होवे। हर वक्त सत् विचार और सत् पुरुषार्थ संजुगत होकर अपने जीवन को पर-उपकारी बनाना चाहिये। स्वार्थ कर्म बुद्धि को मलीन कर देते हैं और अति भोगों की त खा में जलाते हैं। इस वास्ते परउपकारी जीवन प्राप्त करके नित ही सत् कर्मों में विचरना चाहिए। जब तक कर्म का मार्ग शुद्ध नहीं होता, तब तक निर्भय शाँति प्राप्त होनी कठिन है। जो अन्धमति वाले पुरुष कर्मगति की पवित्रता नहीं करते और प्रपंच की ख़ातिर योग, तप और ज्ञान को धारण किये हुए हैं, वे कभी भी परम सिद्धि निर्वास अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। सार निर्णय यह है, कि कर्म की पवित्रता से ही बुद्धि निर्विकार होती है और निहकर्म शान्ति को प्राप्त करने की खातिर सत् साधना को धारण करती है। जब कर्म ही पवित्र नहीं, तब योग और तप क्या! सब अकार्थ ही जानें। निर्मल कर्म को धारण करके प्रभु विश्वास प्राप्त होता है, और प्रभु विश्वास से कर्मजाल की आसक्ता नाश होती है, यानी प्रभु-परायणता में द ढ़ता प्राप्त होती है। प्रभु-परायणता से अनन्य भगति प्रकट होती है, जो सब वासना के दोष को नाश कर देती है। भक्ति की द ढ़ता से सरूप प्रकाश

अन्तर में अनुभव होता है और सरूप के अनुभव से कर्म अभिमान जो मूल वासना है, वह नाश हो जाती है, यानी निराभिमान होकर जीव निज सरूप में लीन हो जाता है। वह ही पद निर्द्वन्द्व अविनाशी समता का सरूप है। ऐसी स्थिति को प्राप्त होकर वह परम योगी फिर आवागवन के चक्र में नहीं आता, यानी अपने आप में पूर्ण होकर निर्वास हो जाता है। वह ही परम पुरुष है—दुर्लभ उसका दर्शन है।

तीसरा निधान वासना अभाव विवेक समाप्त हुआ।

चौथा निधान—शुद्ध आचरण विवेक

वचन—104. अगर कोई अपना कल्याण चाहे, तो सबसे पहले अपना आचरण पवित्र करे, यानी स्वार्थ जीवन में पवित्रता प्राप्त करे। बग़ैर स्वार्थ शुद्धि के परमार्थ निर्वास पद प्राप्त होना कठिन है। इस वास्ते हर एक मानुष मात्र के वास्ते यथार्थ यत्न यह ही है कि सांसारिक रीति में विचरते हुए अपने जीवन को मर्यादा-अनुकूल व्यतीत करे, तो उसको निर्मल बोध, निर्वास शान्ति प्राप्त होनी सहल है। बुद्धि हर वक्त इन्द्रियों के दोखों[1] में आसक्त होकर अत ही भोग विकार में

1. दोषों

संजुगत होकर शारीरिक उन्नति और आत्मिक उन्नति दोनों को नाश कर देती है। इस वास्ते इन्द्रियों के भोगों में समानता हासिल करना ही शुद्ध आचरण है। ज्यों-ज्यों अपने आप में बुद्धि द ढ़ता पकड़ती है त्यों-त्यों अन्तर विखे सन्तोख को प्राप्त होती है, और नित ही पवित्र विचार संजुगत होकर अत निर्मल कर्म को धारण करती है और परम सुख को प्राप्त होती है। उसके उलट जब बुद्धि अधिक इन्द्रियों के मोह में आसक्त हो जाती है उस वक्त भोग पदार्थों के एकत्र करने में बड़े-बड़े अनर्थक कर्म को धारण करती है। यानी झूठ, चोरी, जुआ, कपट, डाका, व्यभिचार[1] और मुनश्यात[2] सेवन आदि घोर मलीन कर्मों में विचरती है और इन पाप कर्मों का असर अन्तःकरण में अग्नि से भी ज़्यादा जलाने वाला होता है। ऐसे मलीन बुद्धि वाले मानुष शारीरिक उन्नति को भी नाश कर देते हैं, और आत्मिक उन्नति का तो नामोनिशान ही नहीं जानते हैं।

वचन—105. यह शरीर एक बन्दीखाना है और जीव इसमें कैद है, यानी नौ द्वारों के भोगों में आसक्त है, और इन द्वारों से कई प्रकार के शुभ-अशुभ कर्म करके नित ही अधीर रहता है। जब तक सत् विचार को न धारण किया

1. अनयुक्त 2. मादक अथवा नशीली

जावे, तब तक इस कैदखाने की सज़ा खत्म नहीं होती, बारम्बार जन्म-मरण के मार्ग में फिरना पड़ता है। बुद्धि की पवित्रता ही इन सब दोषों से छुड़ाने वाली है। इस वास्ते जिन कर्मों से बुद्धि चंचल और विकारयुक्त हो जावे उन कर्मों का त्याग करना ही असली धर्म है। बुद्धि सत् कर्मों से निर्भय होती है और मलीन कर्मों से नित ही भय में गिरफ़्तार रहती है।

वचन–106. इस वास्ते अपने जीवन में स्वतन्त्र होकर पाप कर्मों का त्याग करना ही असली उन्नति का साधन है। हर वक्त अपने आचार, विचार, आहार, व्यवहार और संगत में पवित्रता धारण करनी चाहिये और इन शुभ गुणों को यानी सत्, सील, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, पर-उपकार, खिमा और प्रभु विश्वास में अधिक द ढ़ता धारण करनी ही सब मानसिक दोषों से विजय प्राप्त करनी है। यह ही पवित्र गुण शुद्ध आचरण का सरूप हैं, और निर्वास गति को देने वाले हैं। पथ-कुपथ की धारणा तो मन का मनन-भाव ही है। इस वास्ते कुपथ को निर्मल बुद्धि के द्वारा त्याग करके अपने आपको निर्बन्धन करना चाहिये—यह ही मानुष जन्म की अधिकता है।

वचन–107. ऊँच गति की प्राप्ति या नीच गति को प्राप्त होना अपने विचारों पर ही है। जब विचार शुभ भाव के चित्त में द ढ़ हो जाते हैं, उस

वक्त वह शुद्ध आचरण वाला होकर संसार में अधिक निर्मल कर्म करके सुखी होता है। और जब मलीन विचारों में द ढ़ता प्राप्त कर ली जाती है तब अन्धकार में भरमता हुआ कई प्रकार के उपद्रव कर्म करता है, और अपने आपको कलंकित करके नाश को प्राप्त हो जाता है। यह ही हालत नरक का सरूप है। तमाम ज़िन्दगी का प्रकाशमयी होना या अन्धकार-संयुक्त होना शुभ-अशुभ विचारों पर ही मुनहसिर[1] है। इस वास्ते विचार ही ज़िन्दगी का सरूप है। जैसा-जैसा विचार जिसके अन्तःकरण में द ढ़ हो जाता है उसके अनुकूल ही वह यत्न धारण करता है, और फल को प्राप्त होता है। चूँकि विचार ही जीवन को पवित्र करने वाले हैं और विचार ही मलीनता के देने वाले हैं, इस वास्ते शुभ विचारों का धारण करना अधिक कल्याणकारी है और सत्संग की महिमा भी इसी वास्ते अपार है। यानी जीवन-उन्नति का प्रथम साधन सत्संग ही है, जिसमें प्रव त्त होकर सत्‌विचार को गुणी पुरुष धारण कर सकता है।

वचन—108. अगर कोई अपनी उन्नति करनी चाहे तो नित ही पवित्र विचारों को धारण करे, जो सत्पुरुषों की सत् सिखया है। शुभ गुणों के धारण करने से बुद्धि निर्विकार होकर प्रभु

1. निर्भर

परायण हो जाती है। सत् की धारणा से सब पापों का नाश हो जाता है और निर्भय जीवन प्राप्त होता है। जितने भी शुभ गुण जिस गुणी पुरुष के अन्तःकरण में स्थित हों, उतना ही वह सत्यवादी और ईश्वरवादी है। ईश्वर के मानने का यह सार नहीं कि अन्तर से पाप कर्मों में आसक्त हो और बाहर से बहु प्रकार की पूजा धारण कर लेवे—इस भेद को जानना ही निर्मल विचार है। ईश्वर एक शक्ति है, जो निर्विकार, परिपूर्ण आनन्द सरूप, सरब व्यापक और सरब आधार है। जब तक यह जीव उस शक्ति का विश्वासी नहीं होता, तब तक अनेक पाप कर्मों में संजुगत होकर अधिक दुःख पाता है। इस वास्ते निर्मल प्रभु-विश्वास को धारण करके अपने पाप कर्मों से विजय हासिल करनी ही आस्तिकपन है। ईश्वर निहकर्म और परम शाँत सरूप है, और जीव कर्म संजुगत और नित ही अशाँत है। इस वास्ते अपने कर्म बंधन से निव त्त होने की ख़ातिर ईश्वर पूजा है। जिसने इस भाँति से ईश्वर परायणता धारण की है वह ही पूर्ण आस्तिक है और अपने सत् यत्न द्वारा निर्दोख पद को प्राप्त हो जावेगा।

वचन–109. एक ईश्वर ही सरब शक्तिमान और एकरस है और तमाम संसार जो द श्यमान हो रहा है, वह सब पलक-पलक विखे अपने सरूप को तबदील कर रहा है। इस वास्ते जब तक जीव संसार में प्रव त्त है तब तक संसार की तबदीली में आसक्त होकर नित ही भयभीत रहता है। ईश्वर परायणता को जब द ढ़ निश्चय से प्राप्त होता है, तब सब दोखों से निर्मल होकर निर्भय सरूप ईश्वर में लीन हो जाता है। यह ही पूर्ण अवस्था है। जो कर्म बुद्धि को निर्मल करने वाले हैं और ईश्वर परायणता देने वाले हैं, वे कर्म कल्याणकारी हैं। और जो कर्म बुद्धि को अभिमान-संजुगत करने वाले हैं और ईश्वर से नास्तिक करने वाले हैं, वे पाप कर्म नीच गति के देने वाले हैं। कर्म ही जीव का आधार है। जैसा-जैसा कर्म करता है, उसके अनुकूल ही दुःख या सुख पाता है। इस वास्ते निर्मल विचार को धारण करके सत् कर्मों में नित ही प्रवीण रहना चाहिए, यह ही शुद्ध आचरण की धारणा है।

वचन–110. ज्यों-ज्यों बुद्धि पवित्र कर्मों में द ढ़ होती है, त्यों-त्यों ही अन्तर में त्याग बल पैदा होता है और ऐसे यत्न करते-करते परम त्याग को प्राप्त हो जाती है, जहाँ वासना का अभाव हो जाता है। यानी निर्वास सरूप ब्रह्म में लीन हो जाती है। जो सत् कर्म निर्मान भाव से ईश्वर इच्छया संजुगत होकर किये जाते

हैं, वे अत ही निर्मलता के देने वाले हैं। ऐसी द ढ़ भावना वाला शुद्ध आचारी पुरुष सहज ही परम पद को प्राप्त हो जाता है। जो नित ही स्वभाव से दूसरे का दुःख हरने वाला है और अपना सुख त्यागने वाला है। वही पर-उपकारी पुरुष है। और जो दूसरे के अवगुण को त्याग करता है और अपने पवित्र गुणों से उसको शाँति देता है। वह ही खिमावान परम तपीशर है। जो निश्चय से एक प्रभु का विश्वासी है और कर्म दोषों को ईश्वर इच्छया में देखता है। और हर एक की आत्मा को अपनी ही आत्मा जो जानता है, नित ही दूसरों के कल्याण में अपना कल्याण जो निश्चय करता है, वह ही शुद्ध आचारी सत्यवादी है।

वचन–111. जो कर्म चक्र में ईश्वर इच्छया निश्चय करता है, और सब कुछ एक प्रभु का ही चमत्कार देखता है; अपने तन, मन, धन के मद से जो निर्लेप रहता है और दूसरों की सेवा में नित ही निष्काम भाव से जो द ढ़ है; सुख व दुःख प्रक ति भोग समझकर ईश्वर आज्ञा में जो त्याग करता है, वह ही महागुणी, परम सन्तोष और द ढ़ ईश्वर परायणता को प्राप्त हुआ है। ऐसे निर्मल यत्न को प्राप्त किये हुए वह सहज ही

निर्वाण पद में लीन हो जाएगा। उस ही पुरुष ने अत ही शुद्ध आचरण को धारण किया है। उसका जीवन अनन्त जीवों को शान्ति देने वाला है।

वचन–112. जिसने अपनी बुद्धि को ईश्वर सरूप में लगाया है और तमाम इन्द्रियों के विकारों से जिसने विजय हासिल की है, तमाम शरीर की शक्ति जो ईश्वर से ही देखता है, नित ही पवित्र आहार वाला, पवित्र विचार वाला और पवित्र संगत में जो विचरता है और शारीरिक क्रिया में जो बिलकुल सादगी धारण किये हुए है, तमाम स्त्रियों को जो माता सरूप में देखता है और बिन्द की भली प्रकार से जो रखया करने वाला है, नित ही सत् सेवा में जो निर्मान भाव से विचरता है, वह ही ब्रह्मचर्य के भेद को जानने वाला है। वह ही तेजस्वी और अधिक बुद्धिमान है। सब संसार के कष्ट को अपने निर्मल जीवन से उद्धार करने वाला है। ईश्वर-भक्ति और देश-भक्ति में अपना जीवन व्यतीत करना ही मुख्य धर्म जानता है। ऐसा सरब-उपकारी भाव ही सत् शान्ति के देने वाला है।

वचन–113. जो नित ही शुद्ध आचरण में प्रवीण है और गुरु भगत है, वह सहज ही निर्वास गति को प्राप्त हो सकता है। कर्मों की शुद्धता ही परम विवेक है। तीर्थ, यज्ञ, दान, तप और

सत्संग आदि साधनों के धारण करने की सार यह ही है कि शुद्ध आचरण प्राप्त होवे। यह मन बड़ा विकारी है, इस वास्ते नित ही सत् साधना से इसको स्तंभित[1] करना चाहिये। सत् गुणों का विचार ही मन को शान्ति देने वाला है, और बुद्धि को बलवान करने वाला है। हर वक्त शरीर की अन्तिम दशा का विचार और अपने मानसिक दोषों की अशान्ति का विचार, और द ढ़ अनुराग निर्वास पद की प्राप्ति का— यह निश्चय ही शुद्ध आचरण के देने वाला है। तन, मन और धन के मद में हर वक्त जीव आसक्त रहता है, और अति कामना संजुगत होकर कई प्रकार के अनर्थक कर्म करता है, और अति दुखित होता है। इस वास्ते निष्काम कर्म का मार्ग धारण करके अपने तन, मन और धन से दूसरों का उद्धार करना ही सर्व कल्याण के देने वाला है, और यह ही यत्न शुद्ध आचरण का सरूप है।

वचन—114. जब तक इन तीन प्रकार की कामनाओं से जीव उपरस नहीं होता, तब तक कर्म अभिमान मूल वासना का नाश नहीं होता, और न ही सत् स्थिति प्राप्त होती है। इस वास्ते जो गुणी शुद्ध व्यवहार से धन को एकत्र करता है, और निष्काम भाव से पर-सेवा में जो अर्पण करता है, वह ही

1. रोकना, स्थिर करना

कल्याण को प्राप्त हो सकता है। जिसने अपने तन और मन को नित ही पवित्र किया है सत् कर्मों से—और नित ही सत् मार्ग में निश्चय धारण किये हुए है, वह ही निर्मान होकर आत्म-निश्चय को प्राप्त हो जाता है और शुद्ध आचरण के बल से सब विकारों पर जीत पाकर निर्भय सुख अविनाशी शब्द में लीन हो जाता है। यह भव मार्ग अत ही कठिन है। नित ही शुद्ध आचरण को धारण करके अपने आपकी कल्याण करनी चाहिए।

वचन—115. जब शुद्ध आचरण से बुद्धि निर्विकार हुई, यानी तमाम शरीर के सुखों से उपरस भाव को प्राप्त हुई, तब एक आत्म-चिन्तन में द ढ़ होकर कर्म अभिमान जो वासना का मूल है, उसको नाश करके सहज पद समता आनन्द को प्राप्त हो जाती है। वह ही पूर्ण अवस्था है। ऐसे निराधार धाम को प्राप्त करने की ख़ातिर कर्म मार्ग की शुद्धता ही प्रथम कल्याणकारी साधन है। जब तक कर्म खेद में बुद्धि चलायमान होती रहती है तब तक सत् सरूप का बोध नहीं हो सकता है। इस वास्ते प्रथम शुद्ध आचरण को धारण करके सत् मार्ग अन्तर्मुख योग में स्थित होना चाहिये, ताकि विलखन (विलक्षण) कर्म फिर उस मार्ग से पतित न कर देवें। जो द ढ़ निश्चय से शुद्ध आचारी होकर अन्तर्मुख साधना में प्रवीण हुआ है, वह निर्मल विवेक के बल से आत्म-साख्यातकार परम सिद्धि

को सहज ही प्राप्त हो जाता है। ऐसी निर्मल साधना करने वाले के वास्ते सूखम (सूक्ष्म) आहार पवित्र सरूप में ग्रहण करना चाहिये और पवित्र व्यवहार जीवन निर्वाह की ख़ातिर, और सत् सेवा पवित्र निश्चय से और समय की पाबन्दी करके स्वार्थ कर्म में वरतना, और समय पर निहचल चित्त करके सत् सरूप में आरूढ़ होना—ऐसा यत्न जो पूर्ण नियम से दिवस-रैन धारण करता है वह ही सत् अभ्यासी सरूप अनुभव को प्राप्त हो जाता है।

वचन—116. सबसे पहले गुरु शरणागत होकर पवित्र विवेक धारण करके सत् अभ्यास में द ढ़ होना चाहिये। ऐसे कर्म जो पाप व त्ति को प्रगट करने वाले हैं उनका त्याग करने से अभ्यास में द ढ़ता प्राप्त होती है। पूर्ण अभ्यास का निर्णय यह है कि पहले आसन की द ढ़ता, यानी अभ्यास के वक्त शरीर की निहचलता और एकान्त सेवन (2) आहार का संयम यानी वक्त पर जो कुछ भी पवित्र आहार प्राप्त होवे उसको खुदया (क्षुधा) अनुकूल ग्रहण करना (3) व्यवहार का संयम, जीवन निर्वाह की ख़ातिर समय की पाबन्दी में शुद्ध व्यवहार करना (4) संगत का संयम यानी सत्पुरुषों की संगत करनी और शुभ विचार को धारण करना। ऐसा शारीरिक नियम जिसने द ढ़ सरूप में धारण किया है और नित ही सत् मार्ग में अनुराग

लिए हुए विचरता है, वह ही गुरु भगत सत् उपदेश में अपने आपको मिटा करके सत् सरूप में लीन हो जाता है। यह ही शूरवीरता है कि अपने दोषों से सत् यत्न[1] द्वारा विजय प्राप्त कर ली जावे।

वचन—117. जब बुद्धि तमाम कर्मों के बन्धन से निर्बन्ध हो जाती है, तब सत्-सरूप की परायणता को प्राप्त होती है, यानी अपने अन्तरविखे जाग्रत होकर परम आनन्द शब्द को अनुभव करती है। इस महासुख का विचार करना अत (अति) कठिन है, यानी तमाम शरीर की वासना से निव त्त होकर सत्पद में अडोल हो जाती है। सब संसार उस वक्त उसको स्वप्न समान दिखलाई देता है और एक चेतन प्रकाश ही सरबगत गामी अनुभव होता है। वह परम योगी सरूप स्थिति को प्राप्त होकर हर वक्त निर्वास रहता है और द ढ़ निश्चय अन्तर शब्द अम त का पान करता है। उस महान रस को पान करके परम त प्त हो जाता है, यानी तमाम शारीरिक विकारों से निर्बन्ध होकर केवल सरूप में ही स्थिति पाता है। ऐसी योग निद्रा को जो तत्त्ववेत्ता प्राप्त हुआ है उसने ही चिरंजीव गति को जाना है। उसका जीवन पुरुषार्थ दुर्लभ है और वह सरब कल्याण के देने वाला है, क्योंकि वह अपने आप में कल्याण सरूप हो चुका है।

1. पवित्रता, नेक कमाई

वचन—118. जब बुद्धि निहकर्म होकर अन्तर सरूप में निहचल होती है, तब उस पारगरामी की लीला को अनुभव करती है, जो कि सरब में प्रकाशक और सरब से न्यारा है। उस परम तत्त्व के समान संसार में जब कोई प्रमाण पाया नहीं जाता है, तब नाना प्रकार की उस्तत करके बुद्धि उस में लीन हो जाती है। अनन्त महिमा उस परम प्रकाश की विचार करके अपने आप में अधिक प्रसन्नता को प्राप्त होती है। उस वक्त सब वासना का जाल अभाव हो जाता है और केवल शांत सरूप परम तत्त्व अखण्ड ब्रह्म समता ही सरब प्रतीत होता है। तब शरीर की क्रीड़ा उस ज्ञानी को छाया सम भासती है। इस अलौकिक गति को जो गुणी प्राप्त हुआ है वह ही परम सन्त है। पूर्ण भाग्य से ही ऐसे सरब ज्ञाता अन्तर्यामी महापुरुष के दर्शन हो सकते हैं और उनकी सत् सिखया से कल्याण मार्ग में जीवन द ढ़ निश्चय को प्राप्त हो जाता है।

वचन—119. नित ही अपने जीवन कल्याण में प्रवीण होकर इस संसार के मार्ग में विचरना चाहिये, क्योंकि जीवन-नाशक भोग पदार्थ अनेक द श्य में आ रहे हैं और जीवन कल्याण तत्त्व सरूप का अनुभव नहीं हो सकता है। केवल अपनी सत् बुद्धि द्वारा इस विनाश सरूप संसार की लीला का विचार करके सत् सरूप की उपासना, ज्ञान आदि

साधनों को धारण करना चाहिए, जिससे सरब संतोष प्राप्त होवे जो इस जीव की वास्तव में चाहना है। यह मार्ग संसार अत ही अंधकार सरूप है और जीव छाया के पीछे नित्य ही दौड़ रहा है। जब तक साखी सरूप का अनुभव न कर लेवे तब तक यह छाया सरूप कर्म का मार्ग पूर्ण नहीं होता। इस मानुष जन्म में आकर शुद्ध आचरण संजुगत होकर इस भरम संग्राम से विजय प्राप्त करनी चाहिये। यह ही सत्पुरुषों की कीर्ति है।

वचन—120. हर वक्त सत्कर्म की धारणा और प्रभु विश्वास ही कल्याण के देने वाला है। वह ही गुणी उस जीवन की सार को पाता है, जो नित ही मार्ग धर्म में अपने आपको द ढ़ करता है और शाँतमयी निर्वास जीवन की प्राप्ति की खातिर नित ही प्रवीण होकर अपने तन, मन और धन से जनता का उद्धार करता है, और अन्तर से नित ही निर्मान रहता है। ऐसा जो निष्काम कर्म के मार्ग में विचरने वाला है, वह ही प्रभु-परायणता, निर्मल भगति को प्राप्त करके निर्वास आनन्द को प्राप्त हो जाता है। इस मार्ग संसार में आकर सत् यत्न जिसने धारण किया है, वह ही परम कल्याण को प्राप्त हुआ है और उसकी कीर्ति दुर्लभ है। जो सत् यत्न को छोड़कर नित ही बिलखन

(विलक्षण) कर्म करते हैं वे अपने आप के नाशक हैं और हर वक्त भ्रम चक्र में दुखित रहते हैं। इस वास्ते मानुष जीवन में आकर सत् विचार करके अपने आपको निर्भय करना चाहिए, यानी मिथ्या वासना के चक्र से पवित्र होकर तत्त्व सरूप में स्थिति प्राप्त करनी चाहिए। यह ही सार विवेक और परम निर्मल पुरुषार्थ है।

चौथा निधान शुद्ध आचरण विवेक समाप्त हुआ।

समता सत् नियम

पहला नियम—*सत्संग*

वचन—1. सत्संग का रोज़ाना धारण करना अधिक सुखदाई है क्योंकि विवेक इससे अधिक प्राप्त होता है। और विवेक के बल से अपने पापों से निव त्ति सहज ही हो जाती है। सत्संग शुद्ध रीति से होना चाहिए, यानी निर्विखाद और निर्मान भाव जिन विचारों से प्राप्त होवे वही सत्संग निर्मल है। हफ़्ता-वारी सत्संग ज़रा विशाल रूप में होना चाहिये। माहवारी सत्संग इससे भी विशाल रूप में होवे और सालाना इनसे भी अधिक विशाल रूप में होवे, जिससे ज़्यादा तादाद

में प्रेमी एकत्र होकर अपनी जीवन उन्नति का विचार करें—यानी, सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत् सिमरण आदि महागुणों के अपनाने में द ढ़ता हासिल करें।

दूसरा नियम—*अभ्यास*

1. समता आनन्द प्राप्ति की ख़ातिर अभ्यास अधिक जरूरी है, यानी जो समता का प्रेमी है उसको सत् उपदेश धारण करके अभ्यास जरूरी करना चाहिये। यानी 15 वर्ष की उमर से 30 वर्ष की उमर तक एक घण्टा सुबह अभ्यास करना और एक घण्टा शाम को अभ्यास करना लाज़मी है। अभ्यास में वक्त की पाबन्दी और अधिक द ढ़ता होनी चाहिए, यानी रोटी खाने से भी लाज़मी अभ्यास को समझना चाहिये। 30 वर्ष की उमर से 40 वर्ष की उमर तक डेढ़ (1½) घण्टा सुबह अभ्यास और डेढ़ (1½) घण्टा शाम को। चालीस (40) वर्ष से साठ (60) वर्ष तक दो घण्टा सुबह अभ्यास और दो (2) घण्टा शाम को अभ्यास और साठ (60) वर्ष से ऊपर फिर बहुत ज़्यादा वक्त अभ्यास में लगाना चाहिये, जिससे अन्तःकरण की अधिक शुद्धि होवे। अगर कोई शुरू से अभ्यास से नावाकिफ़ है तो फिर अवस्था के मुताबिक अभ्यास में अपनी उन्नति आहिस्ता-आहिस्ता

करता जावे। बग़ैर अभ्यास के कभी भी मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती और न ही प्रभु शक्ति पर पूरा विश्वास हो सकता है। खुराक, लिबास और व्यवहार जितना शुद्ध होता है उतना ही अभ्यास में प्रेम पैदा होता है। जब तक अपनी अन्तःकरण की भावना पवित्र नहीं होती तब तक कभी भी जीवन उन्नति को प्राप्त नहीं हो सकता है। इसलिए सुबह व शाम ज़रूर ही अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास से ही सब ताप नाश होते हैं और बुद्धि ईश्वर परायण होकर निर्भय हो जाती है।

2. जिस तरह से शारीरिक उन्नति में हर एक जीव लवलीन रहता है, उसी तरह से आत्मिक उन्नति में भी अधिक यत्न करना चाहिये। आत्मिक उन्नति से ही सरब सुख प्राप्त होता है, यानी शरीर आरोगी, बुद्धि स्वतन्त्र, आयु दीर्घ और प्रभु विश्वास के बल से सुख व दुःख में समानता प्राप्त हो जाती है। यह ही हालत असली आनन्द है। निर्मानता, निष्कामता और पर-उपकार सम्बन्धी होकर जो अभ्यास किया जावे वह ही परम सिद्धि के देने वाला है। यानी अपने आपको तुच्छ जानकर प्रभु परायण होकर गुप्त सरूप में विचरना चाहिए और अन्तर गति के हालात बिल्कुल किसी को बतलाने नहीं चाहिये। अगर अधूरी हालत में किसी को अन्तर्गत विचार ज़ाहिर कर दिया जावे तो फिर अभिमानवश होकर किसी हालत में भी असली धाम को प्राप्त नहीं हो सकता है। यह निश्चय कर लेना चाहिये। प्रभु आज्ञा में जो द ढ़ निश्चय वाला होता है, वही अभ्यास में पूर्ण हो सकता है।

तीसरा नियम—*सेवा*

1. निष्काम भाव से अपनी कमाई का दसवंध धर्म मार्ग में खर्च ज़रूरी करना चाहिये। अगर कुछ ज़्यादा बचत होवे तो पाँचवाँ हिस्सा तक भी धर्म मार्ग में खर्च करना चाहिये। यानी जब तक निष्काम सेवा अधिक प्रीत से न धारण की जावे तब तक कभी भी जीवन पवित्र नहीं हो सकता है। और समता नियम अनुकूल सेवा करनी कल्याणकारी है, यानी अनाथ, अभ्यागत, बेवा, रोगी की सहायता में और दीगर जो असूल दान के हैं, उनके अनुकूल अपनी कमाई को वरताना हर प्रकार की कल्याण के देने वाला है।

2. दसवंध का अपने खर्च में इस्तेमाल करना हानि के देने वाला है। यह ही सत्पुरुषों की नीति है। बल्कि ज़्यादा से ज़्यादा धर्म मार्ग में अपनी सम्पदा का त्याग करना ही असली सिद्धि के देने वाला है। जो प्रेमी समता का अनुयाई है, उसको हर पहलू में अधिक से अधिक कुर्बानी के जज़बात[1] धारण करने चाहियें। इससे धर्म की जाग ति और देश में शान्ति प्रकाश करती है।

चौथा नियम—व्रत

1. हफ़्ता में एक व्रत रखना चाहिए। अगर इतनी कुर्बानी न हो सके तो माहवारी एक व्रत रखना चाहिए। व्रत के दिन बिल्कुल सूक्षम चीज़ का इस्तेमाल शाम के वक्त करना चाहिये, ज़्यादा अभ्यास और ज़्यादा सत्संग

1. भाव

उस दिन होना चाहिये। यानी हर पहलू में अधिक पवित्रता व्रत के दिन धारण करनी चाहिये।

पांचवां नियम—*तप*

1. अगर किसी को ज़्यादा फ़रागत[1] संसारी कामों से प्राप्त हो जावे, तो उसको कुछ-कुछ वक्त तप में भी रहना चाहिये; यानी एकान्त सेवन, थोड़ा बोलना, थोड़ा खाना और ज़्यादा अभ्यास करना चाहिये। यानी अपनी आत्मिक उन्नति की ख़ातिर अधिक द ढ़ता धारण करनी चाहिये। पहले अपनी आदत के मुताबिक घण्टों की आज़ादी, फिर दिनों की और फिर हफ़्तों तक एकान्त सेवन करके आत्म-आनन्द को प्राप्त करना चाहिये। सबसे प्रथम तो अभ्यास का नियम ही द ढ़ करने से सरब आनन्द प्राप्त हो जाता है। अगर इसके अलावा ज़्यादा संसारी ताल्लुकात से जिसको आज़ादी प्राप्त हो जावे और अनुराग भी अधिक होवे और शरीर में कोई रोग न होवे, तब ज़्यादा वक्त एकान्त सेवन कर के अभ्यास में द ढ़ होना चाहिए। इस तप के बल से अधिक संसारी जीवों में शाँति प्रगट हो जाती है, और अपने आपको तो परम आनन्द प्राप्त हो जाता है। ऐसे मौका पर किसी की वस्तु ग्रहण करनी हानिकारक है। जो रोज़ाना अभ्यास में मुकम्मिल नहीं हो सकता है, वह

1. फुर्सत, अवकाश

हरगिज़ तप में कामयाब नहीं हो सकता है। इसलिए रोज़ाना अभ्यास ही परम तप है। द ढ़ निश्चय से धारण करना चाहिए।

2. हर हालत में ऐसा जीवन धारण करना चाहिये, जो संसार में विचरते हुए संसार से अन्तर में निर्लेपता प्राप्त हो जावे। यह द ढ़ता केवल रोज़ाना अभ्यास और दीगर सत्-असूलों के बल से ही प्राप्त हो सकती है। इस वास्ते रोज़ाना का जो अभ्यास और नियम है वह ही परम साधन है। धर्म का प्रचार और धर्म की जाग ति अपने जीवन को पवित्र करने से ही होती है। इस वास्ते सत्संग द्वारा, सेवा द्वारा, सिमरण की द ढ़ता द्वारा और ईश्वर-परायणता द्वारा अपने जीवन को सत् साधना से पवित्र करके समता सरूप में निहचल होकर, देश व धर्म की उन्नति की ख़ातिर विचरना ही सर्व विजय के देने वाला है।

3. समता का पूर्ण सरूप निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निहचलता और परउपकार है। इसलिये इन महागुणों को प्राप्त करने की ख़ातिर सत् साधन को धारण करना लाज़मी है। (1) पवित्र विचार और ईश्वर-परायणता से निष्कामता प्राप्त होती है। (2) एक ईश्वर को सरब प्रकाशी जानना और शरीर को छिन-भंगुर जानने से निर्मानता प्राप्त होती है। (3) अभ्यास की द ढ़ता से आत्म-निश्चय प्राप्त होता है। आत्म-निश्चय से उदासीनता और निहचलता प्राप्त होती है, यानी

शरीर का निश्चय से मिथ्या भासना और सत् सरूप में अधिक अनुराग का प्राप्त होना ही असली स्थिति है। तमाम कर्मों के फल को ईश्वर आज्ञा में समर्पण करने से निर्मल पर-उपकार प्राप्त होता है। इन महागुणों की प्राप्ति से दुर्मत अन्धकार का अभाव हो जाता है, और केवल प्रकाश समता आनन्द में बुद्धि स्थिर हो जाती है।

4. सार निर्णय यह है कि पवित्र सत्संग, निर्मल अभ्यास और सत् सेवा के बल से सब पापों से विजय प्राप्त होती है। निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निहचलता पर-उपकार आदि महान गुण अन्तःकरण में प्रगट होकर सरब आनन्द को प्रकाश करते हैं। ऐसी धारणा वाला पुरुष ही सब संसार में उजाला करने वाला हो सकता है। इस वास्ते अपने जीवन को नित नियम में द ढ़ करके निदिध्यासन करना चाहिये और अपने आपको समता आनन्द में लवलीन करके सब जीवों की सेवा में प्रव त्त करना चाहिये। इसी धारणा से निर्मल धर्म और सत् शान्ति संसार में प्रकाश करती है और सब जीव सत् धर्म को प्राप्त होकर प्रेम सरूप में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। सब प्रेमियों को इन सत् नियमों का अधिक पाबन्द होना चाहिये। इस सत् पुरुषार्थ से सरब कल्याण प्राप्त होती है। ईश्वर गुरु वचन विश्वास और जीवन उन्नति का अनुराग देवे।

पाँचवाँ अनुभव समता बोध समाप्त हुआ।

सत् आज्ञा निरंकार

ब्रह्म सत्यम् सर्वाधार

समता अपार शक्ति

महामन्त्र

ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा
अद्वैत पुरखा सर्व-व्यापक
कल्याण-मूरत परमेश्वराय
नमस्तं

छटा अनुभव—समता विवेक

वचन—1. जीवन विज्ञान का जब तक पूर्ण निर्णय न समझा जावे, तब तक मानसिक शान्ति प्राप्त होनी कठिन है। इस वास्ते मानुष जन्म की और जूनियों से प्रधानता यह ही है कि जीवन के विज्ञान को पूर्ण अनुभव करके अपनी अनर्थ कल्पना का चित्त से निरोध किया जावे। जिससे जीव शरीर की यात्रा में ही परम शान्ति को प्राप्त कर सके, और मानुष जन्म की उच्चता को सही सरूप में समझे।

वचन—2. जीवन निर्णय कई सरूप में सत्पुरुषों ने किये हैं—अपने-अपने अनुभव के मुताबिक; मगर वास्तव में सबका एक ही भाव है। सिर्फ थोड़ी बहुती विचारों में कमी बेशी है।

ग्रन्थ

जब तक अन्तर्गत विखे निदिध्यासन तत्त्व सरूप का न किया जावे, तब तक अपने अनुभव में पूर्ण निश्चय नहीं होता। इस वास्ते प्रथम सत् तत्त्व का समझना फिर निदिध्यासन करना ही समता अनुभव के प्रकाश करने वाला है।

वचन—3. अन्तर्गत में निर्मल निदिध्यासन से तमाम जीवन का बोध प्राप्त होता है। इस वास्ते यथार्थ सरूप से परम तत्त्व अविनाशी सरूप का सिमरण ध्यान ही परम सिद्धि और शाँति के देने वाला है। और जो साधना से हीन होकर महज़[1] पाठ-पठन से ही असली निर्भय अवस्था चाहते हैं, वे कायर पुरुष हैं और समय को व्यर्थ खो देते हैं।

वचन—4. तत्त्व निर्णय जो कि सत्पुरुषों ने आन्तरिक अचल, अडोल अवस्था में अनुभव किया और विचार द्वारा किसी विद्या के सरूप में जनता को समझाया, उसका भाव यह नहीं है कि महज़ वह निर्णय सुनने से ही पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जावे। बल्कि निर्मल सत् यत्न से अपने आन्तरिक वह हालत अचल और अडोल प्राप्त की जावे, ताकि वह परम तत्त्व अपने अनुभव से जाना जाए—जिससे सरब प्रकार की मानसिक अशान्ति नाश होवे और जीवन आनन्दमयी हो जावे, और सब संसार का पूर्ण रूप अपने अनुभव से ही समझ में आ जावे। ऐसा पुरुषार्थ धारण करना ही सत् जिज्ञासु का परम धर्म है।

वचन—5. जन्म से जीव प्रकतमयी होकर तमाम

1. मात्र, केवल

शारीरिक विकारों को समझता है, ख़्वाहे किसी देश या किसी मज़हब में उसकी पैदाइश हुई हो या जंगल में ही हुई हो। मगर वह तमाम शरीर की कामना और कल्पना को समझता हुआ ही संसार में विचरता है। यह ही अश्चर्ज माया का खेल है।

वचन—6. कर्म द्वन्द्व यानी दुःख व सुख, लाभ व हानि, खुशी व ग़मी, मित्र व शत्रु, ज़िन्दगी व मौत, आपा व पर का, ग्रहण व त्याग, मान व अपमान, प्राप्ति व अप्राप्ति, शोक, मोह, कामना, क्रोध, लज्या, भय, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि तमाम कर्म के जाल को हर एक जीव अपनी-अपनी बुद्धि के मुताबिक समझता है और उसके सुखदाई-दुःखदाई पहलू को विचार करके हर वक्त जीवन मार्ग में चतुर होकर विचरता है। यह ही संसार की लीला है। यानी हर एक जीव अपनी मज़बूरी को मद्देनज़र[1] रखकर असली आज़ादी यानी निर्भय शाँति को चाहता हुआ नाना प्रकार के कर्म करता है। मगर बग़ैर सत अनुभव के उलटा यतन करते-करते बजाय शान्ति के अशान्ति को प्राप्त होता है। यह ही भ्रम माया है।

वचन—7. तमाम जीव प्रक त यानी कर्त्तापन की गिरफ़्तारी में मज़बूर होकर असली शान्ति को तो चाहते हैं और पुरुषार्थ भी अधिक करते हैं, मगर स्वभाव के मुताबिक

1. द ष्टिगोचर

अपने-अपने मनोरथ को ही सत् शान्ति समझकर प्राप्ति का यत्न करते हैं। आख़िर मनोरथ के पूर्ण होने पर भी चित्त को अचल शान्ति प्राप्त नहीं होती, बल्कि और के और ही मनोरथ आन्तरिक में उत्पन्न होते जाते हैं। और इसी तरह मनोरथ पूर्ण करते-करते ही तमाम शरीर की यात्रा खत्म हो जाती है, मगर जीव को सत् शान्ति प्राप्त नहीं होती है, जो आन्तरिक से उसकी चाहना है। यह ही भव-दुस्तर मार्ग है। यानी सब जन्म शान्ति प्राप्ति की ख़ातिर नाना प्रकार के यत्न द्वारा व्यतीत किया, मगर अन्त को इस संसार से निरासा ही जाना पड़ा। हर एक मानुष मात्र को ऐसा तो पता ही है, मगर न तो कल्याण का यथार्थ बोध है और न ही सत् यत्न है। इस वास्ते अपने मलीन संस्कारों का बाँधा हुआ इस तरह अनेक प्रकार की मिथ्या कामनाओं को पूर्ण करते-करते आख़िर संसार से दुःखी होकर ही जाता है। यह ही अद्‌भुत माया का कौतुक है। तमाम जीव इसी संकट में ही शान्ति खोजते-खोजते कई सरूप को धारण करते हैं और आवागवन के चक्र में फिरते हैं—यह ही संसार की लीला है।

वचन—8. इस संसार में तमाम जीव अपनी अनंत प्रकार की कामनाओं और कल्पनाओं के बाँधे हुये, और इन्द्रियों के भोगों में अति आसक्त होते हुए उसी विचरत हालत में ही

असली खुशी या आनन्द समझते हैं, और रात-दिवस इन्द्रियों के भोगों में ही अचल शान्ति चाहते हुए तमाम जीवन को व्यतीत कर देते हैं। मगर इन्द्रियों के भोग छिन-भंगुर होने के कारण जीव को असली शाँति इनमें प्राप्त नहीं होती है, बल्कि उल्टे मोह में गिरफ़्तार होकर अति दुखित होकर इस संसार से जाना पड़ता है। ऐसा विचार हर एक मानुष मात्र को होना चाहिए। यानी जन्म से लेकर मरण तक जितना भी पुरुषार्थ किया, मगर जीवन की आशा पूर्ण न हुई। निरासा ही संसार में आया और निरासा ही संसार से चला। ख़्वाहे कोई भिखारी होकर विचरा या चक्रवर्ती होकर—सबको आद व अन्त की दशा एक ही जैसी है—ऐसा यथार्थ समझना ही उन्नति के देने वाला है।

वचन—9. इस भयंकर माया के जाल को समझना फिर सत् यत्न द्वारा अपना कल्याण करना ही मानुष जन्म का सही कर्त्तव्य है। वास्तव निर्णय यह है कि तमाम जीव अपनी-अपनी अनानियत यानी हंग भाव के बाँधे हुए अपनी कामना या कल्पना का सरूप संसार देखते हैं और भोगते हैं। न कर्त्तापन अभिमान का नाश होता है और न ही कामना नाश होती है। इस वास्ते शरीर की तबदीली दर तबदीली में जीव विचरते हुए अति दुःखी यानी प्यासे रहते हैं, यानी एक लमह भर भी

निर्भय शांति प्राप्त नहीं होती है। हर एक मानुष को ऐसा अनुभव होना चाहिये।

वचन–10. इस जीवन यात्रा में हर एक जीव अपनी-अपनी कामना द्वारा ही विचरता है। ख़्वाहे मलीन कामनाओं से दुःख प्राप्त कर लेवे या शुभ कामनाओं से सुख प्राप्त कर लेवे। यह ही कामनाओं की गिरफ़्तारी ही सबको नाना प्रकार के चक्र में फिराती है, और अचल शान्ति जो सम सरूप परम तत्त्व है, आन्तरिक में बोध नहीं होने देती।

वचन–11. सार निर्णय यह है कि जब तक अन्तर में कर्म वासना है, तब तक दुःख व सुख के जाल से अबूर पाना अति कठिन है। जब तक अन्तर में कर्त्तापन मौजूद है तब तक कर्म वासना का नाश नहीं होता। इस वास्ते इस तमाम अशान्ति का कारण कर्त्तापन ही है और संसार का मूल सरूप भी यह ही कल्पना है। यानी कर्त्तापन की गिरफ़्तारी में आकर कर्म और उसके फल में जीव आसक्त होकर नाना प्रकार के कर्म और कर्म के फल को भोगता हुआ नित अधीर रहता है। यानी कर्म फल द्वन्द्व दुःख व सुख से एक लमह भी शान्त नहीं होता। यह ही सबका संसार है।

वचन–12. जन्म से हर एक जीव को अपनी-अपनी फ़ायलियत यानी कर्त्तापन का बोध है और उसके मुताबिक ही संसार में विचरता है।

यह कर्त्तापन ही स्वभाव का सरूप है। यानी इस मूल माया की शक्ति में गिरफ़्तार होकर जीव शरीर यात्रा में विचरता है। जब तक कर्त्तापन अभिमान का नाश नहीं होता तब तक जीव का संसार खत्म नहीं होता, यानी कर्म वासना लीन नहीं होती, और न ही अचल शान्ति–जो परम प्रकाश सरूप निर्वाण तत्त्व है, उसका बोध होता है।

वचन–13. इस संसार में कल्याणकारी मार्ग जीव के वास्ते यह ही है जिससे मूल अंधकार कर्त्तापन का अन्तर से नाश होवे और अकर्त सरूप परम तत्त्व का प्रकाश अन्तर में अनुभव होवे, जो अवस्था सम सरूप यानी ग़ैर तबदील और नित आनन्द है।

वचन–14. इसके उलट जो साधन यानी कर्त्तापन के अन्धकार को बढ़ाने वाला है, वह जीव के वास्ते अति कष्ट के देने वाला है। वास्तव में हर एक जीव इस संसार में अपनी त प्ति की ख़ातिर आया है और त प्ति की ख़ातिर यत्न करता है। मगर त प्ति यानि मुकम्मिल शान्ति कर्त्तापन के नाश होने से प्राप्त होती है। यह ही सार सिद्धान्त तमाम सिद्धों का है।

वचन–15. जीव की मूल अशान्ति का कारण अहं भाव यानी कर्त्तापन का अभिमान ही है। जब तक कर्त्तापन में गिरफ़्तार है तब तक कर्म की वासना से मुक्त नहीं हो सकता, और जब तक कर्म की वासना है तब तक निर्भय

शान्ति प्राप्त नहीं होती—यह ही जीवन विज्ञान है। हर एक मानुष को ऐसा बोध होना चाहिये।

वचन—16. जीव चूँकि जन्म से कर्त्तापन के अभिमान में आसक्त है, इस वास्ते इस मूल भ्रम अंधकार से निर्मल होना अति कठिन है, यानी जीवन में ही म तक होकर फिर नई ज़िन्दगी अकर्त सरूप चेतन प्रकाश को अन्तर में बोध करके निर्भय शाँति प्राप्त करनी है, जो इस जीव की वास्तविक चाहना है और पूर्ण सरूप की प्राप्ति है।

वचन—17. कर्त्तापन यानी त्रैगुणी माया का जो स्वरूप है उसको अबूर[1] करने के बग़ैर जीव को कभी भी शाँति प्राप्त नहीं होती, ख़्वाहे लाखों वर्ष दिव्य शारीरिक भोग प्राप्त करता रहे, अंत को फिर निरासे का निरासा ही होकर शरीर को छोड़ना पड़ता है। इस अद्‌भुत मार्ग संसार को अच्छी तरह से बोध करना ही कल्याणकारी यत्न के देने वाला है।

वचन—18. कर्त्तापन ही माया का सरूप है, यानी काल चक्र है और अकर्त सरूप चेतन प्रकाश ही सत् तत्त्व है। जब तक बुद्धि अकर्त सरूप को अनुभव न कर लेवे और कर्त्तापन के अंधकार से निर्मल न होवे तब तक अचल शाँति को प्राप्त नहीं हो सकती। इस वास्ते सत् यत्न द्वारा अपनी अनानियत से छुटकारा हासिल करना ही असली संसार में विजय है, और यह ही सत्पुरुषों का सत् पुरुषार्थ और सत् अनुभव है।

1. समाप्त

वचन—19. हर एक मानुष कल्याण की चाहना करता है, मगर जब तक कर्त्तापन से मुखलसी[1] हासिल नहीं होती तब तक निर्मल और निर्भय शाँति प्राप्ति नहीं होती—यह निश्चय कर लेना चाहिये। इस वास्ते प्रथम सत् सरूप यानी अकर्त शक्ति का प्रधान निश्चय होना चाहिये। फिर उसके परायण होते-होते अपने तमाम विकारों को मिटाकर अंतर में उस परम तत्त्व जीवन सरूप अविनाशी शब्द को अनुभव कर सकता है—यह ही निर्मल उपासना है।

वचन—20. जीव स्वभाव से कर्म अभिमानी है, इस वास्ते इस घोर जाल से छूटना अधिक कठिन है। यानी कर्म अभिमान से वासना प्रगट होती है और वासना से कर्म प्रगट होते हैं। इसी दुस्तर जाल में हर वक्त जीव मजबूर रहता है—यानी एक लमह भर भी सत् शान्ति का विचार या विश्वास नहीं कर सकता है, यह ही स्वार्थ अन्धकार है। इस घोर जाल से छूटने के वास्ते प्रथम परम तत्त्व की परायणता द ढ़ करनी चाहिए। यानी प्रभु परायण होकर तमाम कर्मों के फल उसकी आज्ञा में निश्चित करने चाहिये और द ढ़ निश्चय से निर्मल उपासना धारण करनी चाहिये। यह ही साधन वासना के निरोध करने का है और निर्मल भगति है। ऐसे निष्काम कर्म के मार्ग पर चलते-चलते

1. छुटकारा

तमाम वासना लीन हो जाती है, और अन्तर में अखण्ड अविनाशी सरूप का अनुभव होता है, जो अचल शान्ति है।

वचन—21. जीव कर्त्तापन के अभिमान में आसक्त होने के कारण हर वक्त कर्म के दोषों को कल्पता है और राग-द्वेष की अग्नि में जलता रहता है। इस वास्ते अपनी कर्त्तापन की अनानियत को त्यागने के वास्ते सहज साधन यह ही है कि सम सरूप नारायण के परायण होकर तमाम कर्मों के फल को प्रभु अर्पण करता जावे और दुःख-सुख की महसूसात से अपने आपको निर्मल करे। तब परम तत्त्व का अन्तर में बोध होता है, जो अभय और अखण्ड शान्ति है।

वचन—22. अकर्त सरूप अविनाशी तत्त्व का अन्तर में जानना ही कर्त्तापन के अंधकार से छूटना है। इस वास्ते निर्मल अभ्यास द्वारा उस परम तत्त्व का सिमरण, ध्यान करना ही सत् शाँति के देने वाला है। सब संसार जो द श्य में आ रहा है, वह सूक्ष्म सरूप से कर्म का ही जाल है। निहकर्म सरूप एक आत्मा ही है। इस वास्ते जब तक बुद्धि निहकर्म सरूप आत्मा को न जाने, तब तक कर्म के जाल से छुटकारा हासिल नहीं कर सकती है। यानी कर्म की पूर्णता आत्म-अनुभव से ही है। इस वास्ते एक जीवन तत्त्व का जानना ही सरब कल्याण के देने वाला है।

वचन—23. कर्म के जाल में तो जन्म से हर एक जीव मजबूर है। इस वास्ते अकर्म शक्ति का

जानना ही कर्म जाल से कल्याण हासिल करना है। अकर्म शक्ति केवल एक परम तत्त्व अविनाशी शब्द आत्मा ही है, जो अन्तर-बाहिर पूर्ण सरूप में प्रकाश कर रहा है। अपने निर्मल अन्तःकरण के होने से उसका बोध होता है। इस वास्ते सत् यत्न द्वारा निर्मल भगति को धारण करके अन्तःकरण की शुद्धि करके, यानी कर्त्तापन के अन्धकार से निर्मल करके उस परम तत्त्व का बोध करना ही अखण्ड शान्ति की प्राप्ति है। यह ही साधन असली कल्याणकारी है।

वचन—24. कर्त्तापन अन्धकार संसार का सरूप है और अकर्त सरूप चेतन प्रकाश असली मूल है। जब तक बुद्धि अकर्त सरूप को अनुभव न कर लेवे तब तक संसार का आवागवन यानी कर्म वासना का चक्र नाश नहीं होता। इस वास्ते अकर्त सरूप चेतन प्रकाश को जानना ही परम सिद्धि और शान्ति है।

वचन—25. कर्त्तापन से तमाम संसार सूक्ष्म-स्थूल प्रगट होता है और इसी में स्थिर है। कर्त्तापन ही प्रभु की माया है। जब प्रभु सरूप का अन्तर में बोध हो जाता है तब कर्त्तापन माया का अभाव हो जाता है, और सरब सरूप एक परम तत्त्व आत्मा ही जान पड़ता है। यह ही अवस्था अचल शाँति की है। अपने अनुभव करके जानने योग्य है।

वचन—26. इन ही दो शक्तियों यानी दो हालतों को सिद्ध पुरुषों ने कई भावों से बयान किया है। यानी एक जीवन शक्ति जो नित-आनन्द सम-सरूप है, दूसरी कर्त्तापन अभिमान जो माया का सरूप है, और आद अन्त का चक्र है। जब तक बुद्धि कर्त्तापन में मजबूर है तब तक आद और अन्त के चक्र में फँसकर नित ही दुःखी रहती है। और जिस वक्त अकर्त-सरूप का अन्तर में बोध प्राप्त कर लेती है, उस वक्त एक परम तत्त्व अखण्ड-सरूप ही सरब अनुभव करके उसमें लीन हो जाती है। यह ही हालत निर्वाण और अचल-शाँति की है।

वचन—27. कर्त्तापन में ही संसार की उत्पत्ति और प्रलय है। अकर्त-सरूप आत्मा में संसार का अभाव है। इस वास्ते वह केवल तत्त्व जानना ही परम शाँति और सिद्धि है। कर्त्तापन के अभिमान को निव त्त करने के वास्ते ही उस परम-तत्त्व जीवन-सरूप आत्मा का यथार्थ सरूप से सिमरण, ध्यान करना ही सरब कल्याण के देने वाला है।

वचन—28. कर्त्तापन त्रैगुणी माया से ही कर्म यन्त्र प्रगट होता है और कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति से ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि महा-अवगुण अशाँति का समुद्र प्रगट होते हैं, जिनमें जीव सदा अशान्त और दुःखी रहता है। इस वास्ते तमाम दुःखों से छूटने के

वास्ते एक परम तत्त्व आत्म-सरूप अकर्तम शक्ति का जानना ही कल्याणकारी है, और सत्पुरुषों के सत् उपदेश की यह ही सार है। निर्मल बुद्धि द्वारा धारण करना ही मानुष जन्म की उच्चता है।

वचन–29. सत्पुरुषों ने इन दो हालतों को यानी बन्धन और मुक्त के भेद को कई सरूप में बयान किया है। मगर वास्तव में निर्मल भाव एक ही है। सो विचार करके अपना उद्धार करना हर एक मानुष के वास्ते सही जीवन कर्त्तव्य है। इन ही दो हालतों को अनेक भाव से जो विचार किया गया है उनको सही अनुभव करके द ढ़ निश्चय से एक आत्म-परायण होना ही परम सिद्धि के देने वाला है।

निर्णय जीवन

निर्भय शान्ति और अशान्ति

	निर्भय शान्ति	*अशान्ति*
1.	समता शक्ति	ममता शक्ति
2.	आत्म-शक्ति	अनात्म शक्ति
3.	निहकर्म शक्ति	कर्म शक्ति
4.	दयाल या अकाल शक्ति	काल शक्ति

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

	निर्भय शान्ति	अशान्ति
5.	ब्रह्म शक्ति	माया शक्ति
6.	सत्-प्रकाश	मोह अन्धकार
7.	गुरुमुखता	मनमुखता
8.	आनन्द सरूप	द्वन्द्व सरूप
9.	निर्वाण गति	आवागवन
10.	शून्यता	काल और कल्पना
11.	ईश्वर शक्ति	प्रक ति शक्ति
12.	गुण अतीत यानी निर्गुण	त्रैगुणी माया यानी सगुण
13.	चेतन प्रकाश	जड़ अन्धकार
14.	सुर शक्ति	असुर शक्ति
15.	निहसंग शक्ति/निहसंग	अहंग विकार शक्ति
16.	प्रबोध अवस्था	खेद अवस्था
17.	विज्ञान सरूप	भ्रम सरूप
18.	सहज पद	दुस्तर मार्ग
19.	ज्योति सरूप	वासना जाल अन्धकार
20.	अपना आप भाव	दुर्मत भाव

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

	निर्भय शान्ति	अशान्ति
21.	निरस्वभाव	स्वभाव सहित
22.	केवल सरूप	भ्रम सरूप
23.	समसरूप	आदि अन्त सरूप
24.	अखण्ड और अनाम	असत् नाम रूप
25.	निराकार अद्वैत सरूप	साकार द्वैत सरूप
26.	नाद सरूप	बिन्दु सरूप
27.	अखय, अक्षय, अभय	नित नाश सरूप व दु:ख सरूप
28.	सर्वज्ञ व सरब शक्तिमान	अल्पज्ञ नित आसक्त
29.	अनादि व अजन्मा	आदि अन्त सहित
30.	परिपूर्ण सर्वाधार	नित पर आधार
31.	एक सरूप	छिनभंगुर व अनेक सरूप
32.	अचिन्त और अछेद	नित अशान्त और नाश सरूप
33.	क़ादिर	कुदरत
34.	शुद्ध प्रकाश निर्वास निर्द्वन्द्व	अनन्त वासना और कल्पना का सरूप
35.	सत्	असत्

	निर्भय शान्ति	अशान्ति
36.	परमानन्द प्रकाश सरूप	विषयानन्द दुःख सरूप
37.	सुमति	दुर्मति
38.	अनुभव सरूप	द ष्यमान
39.	सत्नाम	मिथ्याकार
40.	योग आरूढ़ स्थिति	भोगमयी द ढ़ता
41.	चरण कंवल यानी आत्म-ध्वनि	मन, बानी आदि कल्पना खेद सरूप
42.	अहिंसा	हिंसा
43.	अकर्तम् शक्ति	कर्तम शक्ति
44.	असंग सरूप	संग सरूप
45.	निर्देह	देह
46.	सत् बोध	असत् बोध

और भी कई भावों से इन दो हालतों का बयान किया हुआ है। मगर यथार्थ निर्णय यह ही है कि कर्त्तापन अभिमान जो मूल तमाम दुर्मत के जाल का है—उससे निर्मल होकर तत्त्व सरूप जो सरब उपमा योग्य है, उसको जान लेना चाहिये। वह ही असली

शान्ति और आनन्द स्थान है। उसको प्राप्त करके जीव परम शान्त हो जाता है।

वचन—30 जिसके जानने से सब कुछ जाना जाता है, जिसकी प्राप्ति से परम संतोख प्राप्त हो जाता है, वह ही निर्भय पद अविनाशी शब्द सरब अंतर में प्रकाश कर रहा है। एकाग्र चित्त होकर उसका सिमरण, ध्यान करना ही सरब आनन्द के देने वाला है—यह ही साधन परम धन है।

वचन—31. अनात्म पदार्थों से बुद्धि को निर्मल करके एक आत्म-परायण होना ही मानसिक शान्ति के देने वाला है। इस वास्ते तमाम तोहमात को छोड़कर एक जीवन शक्ति का विश्वासी और अभ्यासी होना ही परम गति के देने वाला है। नित ही सत्पुरुषों की संगत से आत्म-निश्चय को प्राप्त करना चाहिये, जिससे अनन्त सरूप संसार की रचना से विलग होकर अपने अन्तर विखे सत् सरूप को प्राप्त करके जीव निर्भय हो जावे।

वचन—32. जब तक आन्तरिक में कर्म अभिमान है, तब तक एक आत्मा को कर्त्ता-हर्ता सरब ईश्वर जानना ही कल्याण के देने वाला निश्चय है। ऐसी भावना को धारण करके नित ही अनन चेता करके अन्तर में सत्नाम का

सिमरण करना और ध्यान करना ही शब्द सरूप आत्मसिद्धि के देने वाला यत्न है। यह ही निर्मल भक्ति और उपासना है, यानी सब कुछ—हुआ और न हुआ—एक प्रभु से ही जानना और अपने आपको तुच्छ जानना, यह निश्चय ही कर्त्तापन अभिमान से मुक्ति के देने वाला है, और अकर्त सरूप आत्मा का अन्तर में बोध करने वाला है। इस वास्ते इस निर्मल प्रेम भगति की भावना से अन्तःकरण को शुद्ध करके तत्त्व सरूप को प्राप्त कर लेना ही गुरमुखों का परम धर्म है।

वचन—33. जब निर्मल भगति से कर्म वासना नाश हो जाती है और अकर्त सरूप अविनाशी शब्द अन्तर में बोध हो जाता है, उस वक्त बुद्धि तमाम कल्पना से निर्मल होकर परम तत्त्व में लीन हो जाती है, और तमाम प्रकृत जाल से अपने आपको भिन्न करके देखती है। यह ही अवस्था परम सिद्धि है, और तमाम संसार का मूल धाम है। जिस गुणी पुरुष को यह अवस्था प्राप्त हुई है, वह ही पूजने योग्य है। उसने ही तमाम संसार के भेद को जाना है, और सम पद को प्राप्त हुआ है।

वचन—34. कर्त्तापन के अभिमान से मुख़लिसी हासिल करने की ख़ातिर एक ईश्वर को ही कर्त्ता-हर्ता जानना चाहिये और परम प्रीत से उस

सच्चिदानन्द का अखण्ड सिमरण करना चाहिये। ईश्वर भक्ति के योग से तमाम वासना का जाल छीन हो जाता है और बुद्धि निर्वास होकर पूर्ण सरूप को अन्तर में अनुभव कर लेती है, और शाँत हो जाती है। यानी कर्तम् भावना से मुक्त होकर अकर्तम् सरूप जो शुद्ध प्रकाश सम सरूप है, उसमें लीन हो जाती है। यह ही अवस्था जानने योग है। जिसने जानी है, वह ही जगत गुरु और सरब पूज्य है। उसका दर्शन दुर्लभ है।

वचन—35. ज्ञानी अकर्तम सरूप यानी सम पद चेतन प्रकाश को अनुभव करके हर वक्त उसमें आनन्दित रहता है और अज्ञानी कर्तम् सरूप अभिमान के वश होकर कर्म वासना के जाल में नित ही भरमता रहता है, यानी शारीरिक भोगों में नित आसक्त होकर दुःख व सुख में चलायमान होता रहता है। इस वास्ते इन दो अवस्थाओं को विचार करके मलीन अवस्था कर्त्तापन अभिमान जो ममता का घोर जाल है—इसको त्यागने का यत्न करना और शब्द सरूप अकर्तम् जोत का अन्तर में सिमरण, ध्यान करना ही परम शान्ति के देने वाला मार्ग है। तमाम गुणी पुरुषों का धर्म है कि पवित्र आत्म-निश्चय को धारण करके अनात्म जड़ अन्धकार से निर्मल होकर सत् सरूप का बोध कर लेना ही मानुष जन्म की सफलता जानें।

वचन–36. सार विचार निर्णय यह है कि एक आत्म-विश्वास को धारण करके तमाम संसार का प्रकाशक तथा रख्यक (रक्षक) और सरब जीवन रूप उसी परम तत्त्व को जानकर नित ही सत् श्रद्धायुक्त होकर अन्तर में अचल व त्ति करके सिमरण, ध्यान करना ही परम सिद्धि यानी सम पद के देने वाला योग है, और कर्म अभिमान के नाश करने का निर्मल साधन है। इसी सरब कल्याणकारी विचार को अनुभव करके फिर सत् साधन को धारण करना ही सरब सिद्धि समता आनन्द के देने वाला यत्न है।

वचन–37. हर एक जीव के अन्तर में ही आनन्द सरूप प्रकाश कर रहा है, मगर ममता के कल्पित सरूप के अन्धकार से उस परम तत्त्व का अन्तर में बोध नहीं होता। इस वास्ते सत् यत्न द्वारा अपने अन्तर से कर्म अभिमान का त्याग करना और निर्मल भगति को अन्तर में धारण करना ही सरब सिद्धि और शाँति के देने वाला भाव है, और सत्पुरुषों का निर्मल पुरुषार्थ भी यह ही है कि इस मिथ्या संसार में आकर सत् परायण होकर तमाम दुःखों से रिहाई हासिल कर ली जावे।

वचन–38. नित ही अन्तर में एक नाम का आराधन करना, और तमाम कर्म प्रभु इच्छया में समर्पण करने, तमाम कल्पना और कामना को अन्तर से निरोध करना, केवल एक प्रभु के परायण होना ही निर्मल ''भक्ति'' है।

ऐसे सत् अनुराग के बल से बुद्धि कर्म वासना को त्याग करके अपने आप में निहचल होकर अन्तरमुख हो जाती है। यानी तमाम शारीरिक कर्मों के बन्धन से निर्मल होकर अपने अन्तर में एक शब्द सरूप अविनाशी तत्त्व में अडोल हो जाती है। ऐसी स्थिति परम कल्याण का सरूप है और समता आनन्द है।

वचन—39. जब तमाम शारीरिक कर्मों से निर्बन्ध हालत प्राप्त हुई, यानी दुःख व सुख की कल्पना को प्रभु इच्छया में द ढ़ निश्चय से त्याग करके बुद्धि केवल एक नाम परायण हुई, तब सत् सरूप को अन्तर में अनुभव करके उसी में लीन हो जाती है, और तमाम वासना जो दुःख का मूल है, उससे पवित्र हो जाती है। यह हालत ही परम आनन्द और सहज पद समता है।

वचन—40. शारीरिक भोग वासना ही हर वक्त अशाँति के देने वाले हैं, और बुद्धि को बारम्बार कर्म चक्र में ग्रासते हैं। इस वास्ते तमाम शारीरिक भोगों में मुनास्बत धारण करते हुए एक आत्म-परायण होना, और निर्मल नाम का निदिध्यासन करना ही कल्याण के देने वाला है, यानी अनर्थ कल्पना का त्याग करके अखण्ड प्रीति से उठते-बैठते एक नाम का ही सिमरण करना और परम पिता परमेश्वर की आज्ञा में तमाम शारीरिक दुःख

व सुख को समझना, ऐसी धारणा से बुद्धि कर्म अभिमान जो मूल अंधकार है, उससे निर्मल होकर निहकर्म सरूप आत्मा को अंतर में अनुभव कर लेती है और अपने आप में नित ही संतोष को प्राप्त होती है। यानी नित ही चेतन प्रकाश को अनुभव करके अंतर में निहचल होकर तमाम शारीरिक दुःख व सुख से छूट पाती है। और हर वक्त निहकर्म, निर्वास होकर अंतर में ही स्थिर होती है, और परम रस आत्म शब्द का पान करती है। यह ही हालत असली जाग ति की है—यानी कर्म वासना के जाल से निर्मल होकर बुद्धि नित ही अकर्म सरूप अविनाशी तत्त्व में अपने आपको लीन कर देती है, और वह ही रूप हो जाती है। ऐसी अवस्था को जिसने जाना है, उसी ने जाना है—वह पुरुष धन्य है, और धन्य उसकी कीर्ति है। उसका उपदेश सरब कल्याण के देने वाला है।

वचन—41. इन्द्रियों के भोगों से असंग होना ही ईश्वर परायणता है। जिस वक्त बुद्धि एक नाम परायण हो जाती है, उस वक्त तमाम विकारों से निर्मल होकर अंतर में ही शुद्ध सरूप आत्मा में लीन रहती है। यह ही अकर्त अवस्था है, यानी शारीरिक कर्मों से निराभिमान हो निहकर्म सरूप शब्द में स्थिति हासिल करनी, और यह ही योग-आरूढ़ हालत है। यानी इन्द्रियों के भोगों से

असंग होकर द ढ़ निश्चय से नाम परायण होना, और अनन (अनन्य) प्रतीत से नाम सिमरण के बल से देह अभिमान का त्याग करना—ऐसे निर्मल त्याग से ही परम शान्त सरूप आत्म-भान[1] का अन्तर में प्रकाश होता है।

वचन—42. इन्द्रियों के भोग ही दुःख का सरूप हैं। इन्द्रियों के भोग ही संसार का सरूप हैं। इन्द्रियों के भोग ही आवागवन के देने वाले हैं। इन्द्रियों के भोग ही आत्म-आनन्द से विलग करते हैं। जब तक कर्त्तापन का अभिमान मौजूद रहता है, तब तक इन्द्रियों के भोगों से असंग होना कठिन है। ख़्वाहे सब कुछ छोड़कर जंगल में विश्राम क्यों न करे, मगर अन्तर से भोग वासना का नाश नहीं होता।

वचन—43. निर्णय यह है कि जब तक अपने आपको कर्त्ता मानता है, तब तक भोगता भी निश्चय से होता है। जब भोगता है, तब दुःख व सुख भी जरूरी है। जब दुःख व सुख की महसूसात मौजूद है, तब इच्छया, चिन्ता, भय, मोह आदि तमाम विकार अन्तर में ग्रासते हैं— ''यह ही माया का चक्र है।''

वचन—44. इन्द्रियों के इस कठिन जाल से असंग होना अधिक शूरवीरता है। इस वास्ते पहले तमाम भोगों की मुनास्बत हासिल करे, यानी जीवन निर्वाह की ख़ातिर सत् और जायज़ क्रिया

1. सूर्य

को धारण करे, और बुद्धि को हर वक्त नाम चिंतन में लगाये रखे। अधिक प्रेम और श्रद्धा प्रभु सरूप और गुरु में होवे, और छिनभंगुर भोगों से चित्त में वैराग को द ढ़ करे, और निर्मल भक्ति के बल से अपनी तमाम कामनाओं का त्याग करके एक प्रभु इच्छया में अपने आप को द ढ़ करे। तब तमाम कल्पनाओं से विलग होकर बुद्धि अन्तर नाम रस को खाये के त प्त होती है, यह ही परम ''भगति'' है।

वचन—45. अनन्य भावना से एक अविनाशी शब्द का चिंतन करना ही इन्द्रियों के भोगों से असंग और त प्त करने वाला यत्न है। इस वास्ते नित ही सत् श्रद्धायुक्त होकर एक प्रभु परायण होना और तमाम विकारों से शुद्धि हासिल करनी ही उच्च जीवन कर्त्तव्य है। इन्द्रियों के भोगों से विलग होकर नाम रस को जब बुद्धि पान करती है, तब निर्वास आनन्द अखण्ड शाँति शब्द सरूप को प्राप्त होकर कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाती है, यानी नाम सिमरण से कर्म अभिमान का नाश करके नित ही निहकर्म जोत आत्मा में लीन रहती है। ऐसी स्थिति को जो प्राप्त हुआ है, वह ही ''इन्द्रीअतीत, संसार-अतीत, गुणातीत, काल-अतीत, अप्रमाण, नित शुद्ध और निर्विकार आत्म-सरूप को प्राप्त हुआ है। ऐसी परमानन्द अवस्था जो तमाम खेद

से शुद्ध है, और परिपूर्ण आनन्द सरूप है, उसको प्राप्त करके परम शाँत सरूप हो गया है, और जानने योग सम पद निर्वाण को जान लिया है। सार भाव यह है कि जो प्रकृति के भोगों से निर्बन्ध होकर आत्म-आनन्द में पूर्ण हुआ है, उसका जीवन दुर्लभ और कीर्ति योग है। उसने संसार की यात्रा को पूर्ण किया है और निर्भय शाँति को प्राप्त करके निर्वास सरूप हो गया है। ऐसे महापुरुष का दर्शन और वचन तमाम जीवों के वास्ते कल्याणकारी है। सब प्रेमी सत् जिज्ञासु होकर इस परम पवित्र समता विवेक के लेख का विचार करें, और कर्म अभिमान जो परम दुःख का मूल है, उसका त्याग प्राप्त करके निर्मल भगति जो परम सुख का सरूप है, उसको धारण करके सत् सरूप सम पद अविनाशी शब्द का अन्तर में बोध हासिल करें। यह ही मानुष जीवन का परम उत्तम कर्त्तव्य है। ईश्वर सत् प्राप्ति का सत् पुरुषार्थ देवे।

पवित्र प्रसंग श्री समता विवेक समाप्त हुआ।

श्री सत्गुरु गुह्य उपदेश

पहला उपदेश—मन की खुशी को त्यागकर असली ज़िन्दगी की तहक़ीक़ात[1] कर, जिससे मुकम्मिल[2] शाँति प्राप्त हो। मन की खुशियाँ दुःख का पूर्ण सरूप हैं। इनमें मुस्तग़र्क[3] होने से अंजामे ज़िन्दगी[4] का पता नहीं लगता। ज़िन्दगी की तहक़ीक़ात असली तहक़ीक़ात है, जो मन, देह, इन्द्रियाँ, प्राण की ममता के त्याग करने से प्राप्त होती है। ज़िन्दगी यानी जीवन शक्ति अपने आप में पूर्ण और आनन्द है। उसी परम तत्त के अनुराग से तमाम मन के विकारों पर जीत पाई जा सकती है। ऐसी साधना ही असली जीवन का पुरुषार्थ है।

दूसरा उपदेश—मन, देह, इन्द्रियाँ और प्राण की तबदीली से जीवन शक्ति की तबदीली नहीं होती। वह तीन काल सम सरूप है। इस वास्ते जब तक बुद्धि मन, देह, इन्द्रियों और प्राण के परायण है, तब तक भय और भ्रम से शान्त नहीं होती। जिस वक्त जीवन शक्ति को अपने अन्तर में अनुभव करती है, मन, देह, इन्द्रियाँ और प्राण की ममता को त्याग कर अति निर्मल वैराग को धारण करके, उस वक्त तमाम दुःखों से छूटकर परम शान्त हो जाती है। यह ही हालत असली जीवन का मेराज़[5] है।

1. खोज 2. पूर्ण 3. लीन, खो जाना 4. जीवन के परिणाम 5. लक्ष्य, मंजिल

तीसरा उपदेश—मन, देह, इन्द्रियाँ और प्राण तमाम कर्म का जाल है। बुद्धि इनमें बाबस्ता होकर (जुड़ कर) कर्म फल को प्राप्त करके दुःख व सुख की महसूसात[1] में नित ही चलायमान रहती है। इस वास्ते द ढ़ निश्चय से एक परम तत्त्व शब्द स्वरूप आत्मा के परायण होने से मन, देह, इन्द्रियों और प्राण की ममता का नाश होता है, और अन्तर में अचल अविनाशी निहकर्म सरूप शब्द को अनुभव करके बुद्धि परम शाँति को प्राप्त हो जाती है। यह ही परम ''पुरुषार्थ'' और परम ''सिद्धि'' है।

चौथा उपदेश—इन्द्रियों की चलायमानता में शरीर की ममता क़ायम है। मन की चलायमानता से इन्द्रियों की ममता क़ायम रहती है। प्राण की चलायमानता से मन चलायमान रहता है। जब तक बुद्धि प्राणों की गर्दिश[2] को पूर्ण निहचलता करके हर घड़ी, हर लमह अनुभव नहीं करती है, तब तक प्राणों की ममता का नाश नहीं होता। इस वास्ते सत्गुरु सिख्या द्वारा नित ही एक नाम के परायण होकर इस तमाम माया के जन्तर से विजय हासिल करनी ही परम ''योग'', परम ''भक्ति'' और परम ''तप'' है।

पाँचवां उपदेश—जिस वक्त सत् उपदेश द्वारा द ढ़ अनुराग से बुद्धि अन्तर-बाहर हर घड़ी, हर लमह एक नाम के परायण हो जाती है, उस वक्त अन्तर विखे परमानन्द अखण्ड सरूप शब्द को अनुभव कर लेती है—जो तमाम संसार का जीवन और प्रकाश सरूप है।

1. अनुभूति 2. गति

ऐसे अनुभव को प्राप्त करके ज्ञान-विज्ञान के परम बल से तमाम प्रक ति के विकारों से यानी ममता के अन्धकार से निर्मल होकर उसमें लीन हो जाती है। यह ही अवस्था परम शान्ति निर्वाण है। इस विचार को अच्छी तरह अनुभव करके अपने जीवन की उन्नति करनी चाहिये, जिससे परम धाम, निहसंग, निर्वास, परम तत्त अविनाशी शब्द आत्मा में समता प्राप्त हो।

निर्मल जीवन कर्त्तव्य

वचन—1. सब जीवों की अन्दरूनी चाहना निर्मल शान्ति की प्राप्ति है, जो तमाम ज़रूरतों यानी कामनाओं के त्याग करने से प्राप्त होती है। कामनाओं का त्याग देह परायणता के त्याग करने से और ईश्वर के परायण होने से प्राप्त होता है। देह परायणता का त्याग सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत् सिमरण आदि नियमों की धारणा के बल से प्राप्त होता है। यानी तमाम सुखों की मुनास्बत हासिल करके ग़ैर-जरूरी ज़रूरतों का त्याग करना, और अपने आपको ईश्वर आज्ञा में निश्चित करना—यह भावना देह अभिमान और स्वार्थ, यानी खुदग़र्जी से निज़ात[1] के देने वाली है, और असली कल्याण का सरूप है।

----

1. मुक्ति, छुटकारा

देह-परायणता का पूर्ण निर्णय

वचन—2. (क) महज़[1] अपने शारीरक सुखों में अति मुस्तग़र्क[2] रहना।

(ख) ख़ानदान की परायणता, यानी अपने ख़ानदान के सुखों की ख़ातिर दिन-रात पुरुषार्थ करना।

(ग) मज़हब, पन्थ या समाज की परायणता, यानी हर वक्त अपनी समाज, या मज़हब या पन्थ की उन्नति की ख़ातिर यत्न-प्रयत्न करते रहना।

(घ) देश परायणता, यानी हर वक्त देश सुधार के विचारों में अपने आपको बलिदान करना।

मगर खुदग़र्ज़ी[3] को अन्तर में धारण करते हुये अगर कोई गुणी अपनी उन्नति, ख़ानदान[4] की उन्नति, समाज की उन्नति, देश की उन्नति करना चाहता है, तो वह सही उन्नति को प्राप्त नहीं कर सकता है, जब तक कि वह पहले एक ईश्वर परायणता में अपने आपको द ढ़ न करे। ईश्वर परायणता से ही सब मानसिक दोषों का नाश होता है, और सरब विजय और सरब शान्ति प्राप्त होती है।

ईश्वर-परायणता का निर्णय

वचन—3. एक ईश्वर के परायण होकर अपने जीवन का पूर्ण सुधार करना, यानी अपनी तमाम

1. केवल, सिर्फ 2. लीन 3. स्वार्थ 4. कुल

खुदग़र्ज़ी और स्वार्थ का त्याग कर देना और केवल प्रभु आज्ञा में निश्चित होकर तमाम जीवों की कल्याण करनी और कल्याण चाहनी, अपनी शक्ति के मुताबिक—यह भावना ईश्वर परायणता है। यानी एक ईश्वर के द ढ़ परायण होने से देह की शुद्धि, ख़ानदान यानी कुल की शुद्धि, समाज की शुद्धि या उन्नति और देश की उन्नति या पवित्रता गुणी पुरुष कर सकता है, और उसी ईश्वरी नियम के अनुकूल चलकर अपने आप का भी सुधार कर सकता है। यानी तमाम खुदग़र्ज़ी को त्याग करके अपने फर्ज़ को समझते हुए निराभिमान होकर यथाशक्त तमाम जीवों की कल्याण करनी ही असली शान्ति प्राप्ति का साधन है। इसके बग़ैर यानी ईश्वर के परायण होने के बग़ैर निर्मल रूप में किसी किस्म की भी उन्नति जीव नहीं कर सकता है। क्योंकि अपने मानसिक दोष उसको सत् मार्ग यानी निर्मल परउपकार में द ढ़ निश्चित होने नहीं देते हैं। इस वास्ते तमाम उन्नति का मरकज़ और निर्मल शान्ति की प्राप्ति ईश्वर-परायण होने से ही प्राप्त होती है। ईश्वर ही परम सुख, सत् सरूप और घट-घट व्यापक है। जब तक जीव अन्तरमुख होकर उस प्रभु की प्रार्थना, उपासना या आज्ञा को धारण नहीं करता है, तब तक ज़िन्दगी के सही मक़सद, यानी निर्भय-शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता है, और न ही देह-परायणता यानी खुदग़र्जी के

अन्धकार से छूट सकता है। सार निर्णय यह है कि गुणी पुरुष ज्यों-ज्यों प्रभु परायणता को प्राप्त होता है, त्यों-त्यों मिथ्या संसार की कामना से निर्मल होकर प्रभु के सरूप में ही लीन हो जाता है। वह ही अवस्था सम-सरूप निर्वाण-पद परम-शान्ति है।

आत्मिक व सामाजिक उन्नति के निर्मल नियम

वचन–1. पाँच मुख्य नियमों का पूर्ण तरीका से पाबन्द होना यानि सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत् सिमरण में अधिक द ढ़ता धारण करनी सरब उन्नति और कल्याण के देने वाली धारणा है।

वचन–2. संगत में छोटे से छोटा सेवा का कारज और बड़े से बड़ा सेवा का कारज हर एक प्रेमी को सर-अंजाम देने[1] में यत्न करना प्रेम और उन्नति के देने वाला नियम है।

वचन–3. अपने सत्संगियों तथा तमाम मानुष मात्र से दिली प्रेम करना और भलाई चाहनी अधिक उन्नति का नियम है। समता तमाम विश्व की सेवा का सरूप है।

वचन–4. संगत के तमाम प्रेमी अपनी ज़रूरतों को काफ़ी त्याग करके दूसरों की उन्नति की खातिर अपना तन, मन और धन निष्काम

1. सम्पूर्ण करने

भाव से अर्पण करना परम उन्नति का साधन है, और अधिक शाँति के देने वाला यत्न है।

वचन—5. हर एक सत्संगी अपनी शक्ति के मुताबिक़ बढ़-चढ़ कर हर एक किस्म की सेवा करने में जो द ढ़ रहते हैं; उनका गौरव तमाम दुनिया में फैल जाता है, ख़्वाह थोड़ी तादाद में क्यों न हों?

वचन—6. अपनी जाति और खानदान में भी पवित्र आचरण को फैलाना अपने अमली जीवन करके—अधिक उन्नति और शाँति के देने वाला नियम है। हर एक सत्संगी को ऐसी धारणा धारण करनी चाहिये।

वचन—7. संसार में कई रंग के जीव होते हैं। कोई आलातरीं[1] बुद्धि वाले, कोई अदना बुद्धि वाले। मौका के मुताबिक़ सब ही अपना-अपना फ़र्ज़ समझकर सत् धर्म में अपने आप को बलिदान देने में जो द ढ़ निश्चय वाले हैं, ऐसी संगत के प्रेमी हर समय में अपना उच्च आदर्श पेश करके संसारी जीवों के वास्ते अधिक कल्याणकारी हैं, और धर्म के सरूप के प्रकाशक हैं।

1. श्रेष्ठ, उत्तम

वचन–8. संगत में जो प्रेमी सत् नियमों का पाबन्द होवे, उसकी हर तरीका से श्रद्धा को बढ़ाना हर एक प्रेमी का फ़र्ज़ है। ''अगर कोई प्रेमी किसी नियम से पतित हो जावे तो उसके साथ इन्तहा दर्जे का प्रेम करके उसका सुधार करना चाहिए। क्योंकि अधिक से अधिक मलीन बुद्धि प्रेम के जल से एक छिन में शुद्ध हो जाती है। यह परम साधन है। इसके उलट उसके साथ नफ़रत करनी या तौहीन[1] करनी हानिकारक है। जब वह पतित जीव अपनी ग़लती को समझेगा, वह खुद संगत के प्रेम के वश में आकर हर तरीके का दण्ड स्वीकार करेगा, और आइन्दा[2] के वास्ते वह संगत के वास्ते बड़ी से बड़ी कुर्बानी पेश करेगा।'' ''यह प्रेम ही सब त्रुटियों की औषधि है''–ऐसी धारणा निहायत[3] ही उन्नति के देने वाली है।

वचन–9. संगत का हर एक प्रेमी अपने सत् नियमों का पालन करने में जो अधिक से अधिक कोशिश करता है, वह सब ही प्रेम सरूप होकर देश व जाति के वास्ते एक जीवन रूप हो जाते हैं। ऐसा निश्चय द ढ़ होना चाहिये।

वचन–10. संगत का हर एक प्रेमी बाद-मुबाद को त्याग करके अपना जीवन अमली सरूप में पेश करे। इससे अधिक भलाई होती है, और वह नीति फैलती है। इसके उलट जो ज़बानी ही

1. अपमान 2. भविष्य में, आगे से 3. अति

रट लगाये रखते हैं, वे कभी भी किसी सिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। यह निश्चय कर लेना चाहिये।

वचन—11. संगत का हर एक प्रेमी सत्संग द्वारा सत् उपदेश को श्रवण करके उस पर ग़ौर करे, फिर उसको अमल में लावे। ऐसा निश्चय जिस संगत का होवे, वह हर एक पवित्र आदर्श को धारण करके परम उन्नति को प्राप्त होती है, और दुनिया में एक लामिसाल[1] शक्ति और शान्ति की सूरत में पेश होती है।

वचन—12. किसी को सुधारने के वास्ते अपना पवित्र आचरण पेश करना सिद्धि के देने वाला है। इस वास्ते जो संगत दूसरों की भलाई के वास्ते अपना यथार्थ अ़मली[2] सरूप पेश करती है वह संगत ज़रूरी परम उन्नति को प्राप्त होती है।

वचन—13. देश और जाति के ग़लत रिवाज़ों का सुधार करने की खातिर बहुत तेज़ी नहीं करनी चाहिये, बल्कि आहिस्ता-आहिस्ता कोशिश करना और अपना पवित्र आदर्श पेश करना निहायत ही सिद्धि के देने वाला है। इस साधना से सरब जीव शान्ति से एक निर्मल नीति के पाबन्द हो जाते हैं।

वचन—14. अपनी संगत के बग़ैर जो दूसरी संगत होवे, ख़्वाह किसी भी असूल की पाबन्द होवे, उसके साथ मुतलक[3] बाद-मुबाद नहीं करना चाहिए।

1. अनुपम 2. क्रियात्मिक 3. बिल्कुल, पूर्णतः

बल्कि उसकी अन्दरूनी तकलीफ को विचार करके उसके रफ़ा[1] करने का यत्न करना अधिक कल्याणकारी है। इस साधन से वह खुदबखुद तुम्हारे असूलों का पाबन्द हो जायेगा और हम-जीवन बनेगा।

वचन–15. दुनिया में तमाम उच्च आदर्श वाले पुरुषों की नीति को सुनने में प्रेम रखना चाहिये और उनकी कुर्बानी के जज़बात[2] को अपनी मानसिक खुराक बनाकर जो संगत विचरती है वह तमाम विश्व में अपनी नीति को फैला सकती है। यानी सब जीवों के अन्दर मानसिक दु:ख एक ही जैसा है, और उसकी असलाह[3] के वास्ते रूहानी खुराक भी तकरीबन एक ही जैसी है। समझने के वास्ते सिर्फ बुद्धि की ज़रूरत है। इस वास्ते किसी की बुद्धि को जाग्रत करने के वास्ते अपना अमली जीवन होना चाहिये।

वचन–16. हर एक जीव अपने अनुभव के मुताबिक दुनिया को देखता है, और विचरता है। इस वास्ते सबसे पहिले अपना जीवन कल्याणकारी बनाया जावे तो दूसरों का भी कल्याण हो सकता है। यह ईश्वरी नियम है।

वचन–17. जो जीव अपना निज सुख दूसरों की सेवा में प्रेम से अर्पण करता है, वह संगत के वास्ते और देश के वास्ते अधिक शिरोमणि है। ऐसा प्रभाव जब संगत के हर एक प्रेमी का होवे तो सरब कल्याणकारी और उन्नति के देने वाला यत्न है।

1. दूर 2. भावना, संकल्प 3. सुधार

वचन—18. वास्तविक जीवन निर्णय यह है कि हर एक जीव स्वार्थ की क़ैद में आकर नित ही अपनी ज़रूरतों और कामनाओं को फैलाकर दूसरे जीवों का बधक हो जाता है। उसकी स्वार्थी ज़िन्दगी उसके अपने वास्ते और तमाम जीवों के वास्ते दुःखदाई बन जाती है। ऐसे भाव जिस संगत और जिस देश की जनता में हो जाएँ वह एक दिन तमाम कीर्ति से हीन होकर दुनिया से मिट जाती है। यह निश्चय ही अधर्म और अशान्ति का समुन्द्र है। इससे हर वक्त अपने आपको बचाना ही मानुष जन्म की सार है।

वचन—19. जो जीव संसार की नापायदारी[1] को निश्चय करके अपने जीवन को पवित्र आचरण में ग़र्क करता है वह ही संगत के और देश के वास्ते शिक्षक है। उसका जीवन शान्ति के देने वाला है और आयन्दा की जनता के वास्ते आदर्श सरूप है।

वचन—20. जो जीव तमाम जरूरतों की मुनास्बत[2] को धारण करने वाला है, यानी सादगी का अनुयायी है, और जो कपट और छल को त्याग करके सत्यवादी होने का यत्न करता है, और तमाम सत्पुरुषों के जीवन आदर्श को जो हृदय में द ढ़ करता है, यानी सत्संग के सही सरूप को जो धारण करता है, और तन, मन, धन से जो अपना फ़र्ज़ समझकर दूसरे की कल्याण चाहने वाला है, यानी सत् सेवा को धारण करके सेवक रूप होने का

1. असारता 2. मर्यादा

यत्न करता है, और एक प्रभु का पूर्ण विश्वासी होकर सत् उपदेश द्वारा प्रभु चिन्तन में बुद्धि को स्थिर करता है, ऐसा सदाचारी पुरुष अपने जीवन की उन्नति करने वाला संगत और देश के वास्ते एक अधिक भूषण है। इस वास्ते अपने आचरण को पवित्र करते हुए तमाम संगत दूसरों की उन्नति में अपना जीवन पेश करे। ऐसी साधना ही सर्व काल आनन्द के देने वाली है, और जीवन की सार है। क्योंकि सरब सरूप एक आत्मा ही है, और सरब जीव शान्ति के चाहने वाले हैं, इस वास्ते सही समता के भाव को समझकर अपने जीवन को पूर्ण निश्चय से ईश्वर परायण बनाकर दूसरों की सेवा करनी चाहिये। इस साधन से सामाजिक उन्नति, देश की जाग ति और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। जब ऐसा निर्विकारी और पर-उपकारी जीवन द ढ़ हो जावे, तब जगत से वैराग को प्राप्त करके बुद्धि सत् सिमरण द्वारा परम पद आत्मा में लीन हो जाती है—जो अवस्था परम धाम है।

वचन—21. सार निर्णय यह है कि जितना भी जो जीव आत्म-निश्चय को प्राप्त होता है, उतना ही वह निर्मल त्याग कर सकता है, और त्याग से ही सरब उन्नति का सूरज प्रकाश करता है। इस वास्ते निर्मल समता के मार्ग को अनुभव करके देह परायणता का त्याग करते-करते आत्म-निश्चय को द ढ़ करना

चाहिये। यानी संसार में तुच्छ जीवन विचार करके अपनी जीवन यात्रा को निष्काम-कर्म द्वारा शुद्ध करके अपनी कल्याण और तमाम जीवों की कल्याण का आधारी बनना चाहिये। यह ही मार्ग सत्पुरुषों का है, जो तमाम जीवों के वास्ते प्रकाश सरूप है।

वचन—22. जीवन में स्वार्थ की अधिकता ही अशान्ति का कारण है, इसलिए मानुष जीवन के वास्ते लाज़मी है कि पहले निर्मल स्वार्थ धारण करे और साथ ही परमार्थ का यत्न रखे। ऐसी धारणा जिस संगत में द ढ़ हो जावे वह परम उन्नति को प्राप्त होती है। यह ही निश्चय देवताओं का जीवन है।

वचन—23. हर वक्त पवित्र विचार द्वारा जो संगत अपने संस्कारों को उच्च बनाने का यत्न करती है—यानी सर्व कल्याण के देने वाले भाव धारण करती है, उसको तमाम ज़माने की गर्दिश[1] भी नाश नहीं कर सकती है। बल्कि हर तरीका की मुसीबत को बर्दाश्त करके एक दिन सूरज से भी अधिक प्रकाश को प्राप्त होती है। यह ही ईश्वरीय नियम है।

वचन—24. जो गुणी लोग पवित्र विचार द्वारा मानुष जन्म की यात्रा में महाकारज करने का प्रेम द ढ़ करते हैं, उनका निश्चय खुद-ब-खुद[2] ही कई कल्याण के रास्ते प्रगट करके उनका रहनुमा[3] होता है। सो महा-कारज का मूल सरूप पर-उपकार ही है। पर-उपकार

1. कालीन चलायमानता अथवा काल चक्र 2. स्वयम् 3. पथ प्रदर्शक, गुरु

वह ही कर सकता है, जो पहले अपना स्वार्थ त्याग करके अपने आपके वास्ते उपकारी होवे। यह परम पवित्र निश्चय सरब उन्नति के देने वाला है। जो मानुष या संगत अपनी मुकम्मिल उन्नति चाहे, वह ऐसी धारणा में द ढ़ होवे, तब ही सरब जीवों की कल्याण का यत्न करते-करते अपनी कल्याण भी हो जाती है, यानी परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

वचन—25. मानसिक शान्ति ही परम लाभ है—जो इस जीव की वास्तव में चाहना है। मानसिक शान्ति शरीर के सुखों को मुनास्बत[1] में त्याग करने से प्राप्त होती है। इस वास्ते सत्पुरुषों का जीवन सार यह ही है कि अपने सुखों को दूसरों के दुःखों में त्याग करना, और नित आत्म-चिन्तन जो परम सुख है—उसमें द ढ़ रहना। ऐसी पवित्र भावना वाला एक भी मानुष दुर्लभ है, और देश व धर्म के वास्ते सूरज है। तमाम गुणी लोगों को ऐसा ही द ढ़ निश्चय करना चाहिये। यह ही मानुष जन्म का परम लाभ है। सब प्रेमी इस कल्याणकारी विचार को धारण करके अपने आपको नित ही पवित्र करें, और मानुष जन्म की यात्रा में नित ही उत्तम कर्त्तव्य को पालन करते हुए इस जीवन को व्यतीत करें, जिससे सरब सिद्धि यानी निर्भय शाँति प्राप्त होवे, और दूसरे जीवों के वास्ते भी एक कल्याणकारी शिक्षा

1. मर्यादा

प्रकाश करे—यह ही मानुष जन्म की कीर्ति है। ईश्वर सत् भाव प्रकाश करे।

आत्मिक व सामाजिक उन्नति के नियम का प्रसंग समाप्त हुआ।

शक्ति तत्त्व का निर्णय

वचन—1. शक्ति का पूर्ण निर्णय दो भेद में है, यानी संग शक्ति और असंग शक्ति में।

वचन—2. कर्त्ता, कर्म, कर्मफल, यानी पाँच तत्त्वों के मेल-जोल से जो नाना प्रकार की स ष्टि प्रगट हो रही है—इसको संग शक्ति, यानी माया कहते हैं। और इन सब विकारों से निर्मल और सदैव काल एक रस रहने वाला परम तत्त्व अविनाशी सरूप जो आत्मा है, उसी को असंग शक्ति यानी सर्व न्यारा और निराधार कहते हैं।

वचन—3. बुद्धि जब तक इन दोनों शक्तियों को पूर्ण अनुभव नहीं कर सकती है, तब तक निर्भय शान्ति अखण्ड विजय को प्राप्त नहीं हो सकती है। इस वास्ते संग और असंग के भेद को समझने की ख़ातिर नित ही यथार्थ पुरुषार्थ धारण करना चाहिये।

वचन—4. असंग तत्त्व के अनुभव के बग़ैर संग शक्ति को सही सरूप में स्थापित करना अति कठिन है। इस वास्ते परम सिद्धि असंग शक्ति आत्मा की पहचान ही परम कल्याण का सरूप है।

वचन—5. संग शक्ति यानी तत्त्वों के विकारों से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि महा-अवगुणों को बुद्धि स्वीकार करके नित ही संकट में भयभीत रहती है। और तुच्छ समय के अन्दर ही शरीर की नाश को प्राप्त होती है, और इस संसार से निराश ही जाती है। यह ही जीवन अन्धकारमयी पशु समान है।

वचन—6. असंग शक्ति यानी एक आत्मा को अनुभव करने से बुद्धि निष्कामता, सत्वाद, निर्मानता, उदासीनता, निहचलता और पर-उपकार आदि महागुणों को प्राप्त होती है। तब ही संग शक्ति को यथार्थ सरूप में धारण करके जीवन में परम शान्ति को प्राप्त होती है, और दूसरों की भी सही कल्याण कर सकती है यह ही स्थिति सत्पुरुषों की है।

वचन—7. शारीरिक उन्नति, सामाजिक उन्नति, देश उन्नति—यह सब संग शक्ति की ही अवस्था हैं। जब तक असंग तत्त्व परमेश्वर का परम विश्वास द ढ़ न होवे, तब तक निर्मल सरूप में इन तीनों अवस्थाओं की शुद्धि और उन्नति प्राप्त नहीं हो सकती है। इस वास्ते सरब सिद्धि और सरब शाँति सरूप उस परम तत्त्व आत्मा का अनुरागी होना ही मानुष जीवन के वास्ते परम साधन है।

वचन—8. असंग तत्त्व के परायण होने से संग शक्ति पर बुद्धि ग़ालिब[1] आ जाती है, तब समय के अनुकूल सही नीति को प्रगट करके अपने आप में और तमाम मानुषों में निर्मल शान्ति को प्रकाश करती है। यह ही निर्मल कर्त्तव्य आत्मदर्शी या रोशन ज़मीर लोगों का है।

वचन—9. संग शक्ति को पूर्ण सरूप में एकत्र करना, असंग तत्त्व की परायणता के बग़ैर ऐसा ही जानना चाहिये जैसे कि जड़ के बग़ैर व क्ष को खड़ा कर देना। तमाम प्रक ति, यानी मादे की ताक़तों को आत्म-परायणता के बल से ही बुद्धि सही अमल में ला सकती है। इस निश्चय के बग़ैर, यानी विरोध सरूप को धारण करके नित ही हानि और भय को प्राप्त होती है। ''यह ही माया का चक्र है।''

वचन—10. जिस मानुष में, जिस समाज में, या जिस देश में आत्म-परायणता के नियम अनुकूल मानुष विचरते हैं, यानी सही निष्कामता, निर्मानता, सत्वाद और पर-उपकार को धारण किये हुए परस्पर प्रेम से जीवन व्यतीत करते हैं—वह ही संग शक्ति के असली प्रकाशक सरूप है, और मानुषों के आस्तिकपन यानी असंग-शक्ति-परायणता का सही सबूत देते हैं। उसके विरुद्ध दुराचारी, छलबाज़ी, अति मानी, खुदग़र्ज़ी और वैर, ईर्खा सहित जो

1. छा जाना

मानुष या जो समाज या जिस देश के आम मानुष इन अवगुणों को धारण किये हुए हैं, वे ही असली नास्तिक और अपने आपके नाशक और नित ही संगहीन होकर दूसरे शुद्ध आचारी मानुषों के सरब काल अधीन रहते हैं। ''यह ही राजनैतिक चक्र है।''

वचन—11. इस वास्ते जो मानुष या जो समाज अपनी सही उन्नति करनी चाहे, उसके वास्ते लाज़मी यह ही है कि अपने जीवन को सत् असूलों में द ढ़ करे—जो आत्म-परायणता के अनुकूल हैं। तब ही संग शक्ति के अनुकूल बल से सरब शाँति और सरब सिद्धि सरूप एकता, प्रेम, धीरज को प्राप्त करके जीवन निर्भय हो सकता है।

वचन—12. जिस समय असंग शक्ति की अधिक परायणता अन्तर में द ढ़ हो जावे, और संग शक्ति के गुण और दोषों से नित ही निर्बन्ध अवस्था प्राप्त होवे, उस समय वह परम पुरुष त ष्णा की अग्नि से ठण्डा होकर समता आनन्द निर्वाण पद को प्राप्त होता है। उसी का जीवन पुरुषार्थ पूर्ण हुआ है।

वचन—13. सार निर्णय यह है कि सरब सिद्धि, सर्व शक्ति, पूर्ण शुद्धि और परम पुरुषार्थ मानुष जीवन के वास्ते यह ही है कि एक परम शक्ति जीवन सरूप आत्मा के विश्वास को धारण करके और नित ही मलीन वासनाओं को त्याग करके शुद्ध आचरण, शुद्ध विचार

और परम अनुराग ईश्वर परायणता का दृढ़ करके सत् नियमों में अपने जीवन को लीन करे—यानी अपने अधिक स्वार्थ को त्याग करके नित ही निर्मल ईश्वर विश्वास और पर हित, पर-उपकार में निष्काम भाव से विचरे। ऐसा जीवन ही सरब कल्याणकारी है।

वचन—14. ज्यों-ज्यों बुद्धि असंग तत्त्व आत्मा के परायण होती है, त्यों-त्यों संग शक्ति यानी कर्म फल द्वन्द्व से निर्मल होकर अपने आप में पूर्ण हो जाती है, और शरीर के होते-होते सब ख़्वाहिशों पर काबू पा लेती है। और सरब आनन्द सरूप आत्मा में लीन हो जाती है। यह ही अवस्था परम सिद्धि है।

वचन—15. इस साधन के उलट बुद्धि ज्यों-ज्यों संग शक्ति, यानी कर्मफल द्वन्द्व में आसक्त होती है त्यों-त्यों अति मलीन वासनाओं को धारण करके अपने आपकी नाशक और दूसरों की भी नाशक हो जाती है—यह ही हालत असली जड़ता की है। इस वास्ते जीवन को मुनास्बत और मर्यादा में दृढ़ करना ही मानुषपन है। यानी आचार-विचार और मनोरथ नित ही आत्म-परायणता अनुकूल शुद्ध होने चाहिये, जिससे जीवन शाँति से व्यतीत होवे और आईन्दा सत् पद प्राप्त होवे। सब प्रेमी विचार करें और अपनी सही उन्नति करें। ईश्वर सत्-विश्वास देवे।

प्रसंग शक्ति तत्त्व निर्णय समाप्त हुआ।

समता परम स्वराज

वचन—1. पूर्ण शान्ति, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण स्थिति, पूर्ण खोज, पूर्ण पुरुषार्थ, पूर्ण शुद्धि और मानुष जन्म की पूर्ण अनुभवता परम आनन्द केवल समता ही है।

वचन—2. जिस परम प्रकाशमयी अवस्था को अनुभव करके फिर किसी वस्तु की ज़रूरत नहीं रहती है, और किसी तहक़ीक़ात की भी ज़रूरत नहीं रहती है, ऐसी वासना रहित परम शुद्ध जीवन तत्त्व सर्वमयी एकता अचल अनादि सरूप शब्द की पहचान ही सरब पहचान, जीवन की सार और परम स्वराज है, जो तमाम ख़्वाहिशों के बन्धन से निर्मल और आनन्द सरूप है।

वचन—3. हर एक मानुष को ऐसा निश्चय होना चाहिये कि अपनी शुद्धि से सरब की शुद्धि होती है, अपने त्याग से दूसरों का उद्धार होता है। यानी अपने सुख को त्यागने से दूसरों को सुख मिलता है। अपने बन्धन को त्यागने से दूसरों को भी त्याग हासिल होता है। अपने निर्मल अनुभव से दूसरों को श्रद्धा और पवित्रता प्राप्त होती है। सार निर्णय यह है कि तमाम प्रकृति जाल एक ही सरूप में विचर रहा है। सबकी इन्द्रियाँ, सबका मन ख़्वाहिशात की अग्नि में जल रहा है, और अधिक से अधिक कोशिश करके ख़्वाहिशों को बढ़ा करके ज़्यादा से ज़्यादा

हर एक जीव दुःखी होता है, और समता आनन्द को इस ममता के घोर अंधकार में पहचान नहीं सकता है, और आखिर इस संसार से निरासा होकर के ही शरीर को छोड़ता है। यह ही हालत असली जड़ता और मूर्खताई की है।

वचन—4. इस ममता के अन्धकार को दूर करने के वास्ते ही मानुष जन्म की केवल उच्चता है, ताकि इस जन्म में आकर समता स्वराज परम शान्ति को प्राप्त करके अपना जीवन कदारथ[1] करे, और दूसरों के वास्ते भी परम उन्नति का आदर्श सरूप हो जावे।

वचन—5. जब तक आप पूर्ण आमिल नहीं होता तब तक न अपनी सही कल्याण हो सकती है, और न ही दूसरों की। इस वास्ते अपने आपको पहले सुधारना ही सर्व कल्याण के देने वाला है। हर एक जीव अपने मानसिक दोषों को जानता है—मगर छुटकारा हासिल नहीं कर सकता है। ऐसी ही सबकी हालत है। जिस गुणी पुरुष ने अपने दोषों को समझकर निव त्ति हासिल की है, वह ही सरब का शिक्षक और सरब का उद्धारक हो सकता है।

वचन—6. जब तक बुद्धि मन और इन्द्रियों पर पूर्ण ज़ब्त हासिल नहीं कर सकती है, तब तक समता आनन्द को प्राप्त नहीं हो सकती है।

1. क तार्थ

यानी इन्द्रियों और मन का ज़ब्त[1] ही परम आज़ादी और परम शान्ति है। इसके उलट परम दुःख और बन्धन-दर-बन्धन है।

वचन–7. जब तक बुद्धि अहंकार सहित है, तब तक अनेक प्रकार की वासना में गिरफ़्तार होकर मन और इन्द्रियों के भयानक विकारों में चलायमान रहती है, और अनेक प्रकार के यत्न करने पर भी निर्भय शान्ति को प्राप्त नहीं होती है—यह ही हालत परम दुःख का सरूप है।

वचन–8. इस भयानक दुःख से छूटने के वास्ते केवल एक उपाय यह ही है कि सही कोशिश करके, सही भावना करके मन और इन्द्रियों के विकारों से बुद्धि को जब असंगता प्राप्त हो जावे तब ही समता आनन्द निर्द्वन्द अकर्म पद अविनाशी शब्द को पहचान करके परम आनन्द सरूप हो जाती है। ''यह ही हालत असली स्वराज है।''

वचन–9. बुद्धि को अहंकार की मलिन से शुद्ध करना ही परम शुद्धि और शान्ति के देने वाला पुरुषार्थ है। इस वास्ते सत्पुरुषों की सीख द्वारा अपने आप की उन्नति करनी ही मानुष का परम कर्त्तव्य है।

वचन–10. इन्द्रियों के भोगों में मुनास्बत धारण करनी, यानी शुद्धाचारी होना और मन को अनर्थक कल्पना से रोकना, और श्रद्धावान होकर प्रभु आज्ञा में अपने आपको निहचल करना ही परम शुद्धि के देने वाला निश्चय है।

1. नियन्त्रण

ग्रन्थ

वचन—11. सार निर्णय यह है कि एक आत्मतत्त्व जीवन सरूप का पूर्ण विश्वासी होना और उसकी आज्ञा में सरब कर्म के फल को त्यागना, और सत् सिख्या द्वारा द ढ़ निश्चय से उस परम तत्त्व का अन्तर में चिन्तन करना, और इस संसार की नाशवान हालत को द ढ़ प्रतीत करके एक अविनाशी पुरुष का ही परम आसरा रखना, और तमाम जीवों की सेवा में अपना तन-मन-धन तक निष्काम भाव से त्याग करना, नित ही निर्मान और निष्काम भाव अन्तर में द ढ़ करना—ऐसी अनन भगति को जब बुद्धि प्राप्त होती है, तब ही कर्त्तापन अंधकार मूल संसार से निर्मल होकर निहकर्म सरूप समता प्रकाश में लीन हो जाती है। यह ही असली सार धाम है। यानी बुद्धि तमाम पाँच भूत प्रक ति के जाल से विलग परम तत्त्व को अनुभव करके नित ही त प्त को प्राप्त होती है।

वचन—12. जब बुद्धि कर्त्तापन से निर्मल हो जाती है, तब मन और इन्द्रियों की क्रीड़ा से नित ही असंग रहती है। और अपने आप में सरब काल अकल्प और सावधान रहती है। यह ही परम जीवन है। जिसको ऐसी स्थिति प्राप्त हुई है, वह ही परम स्वराज के जानने वाला है। यानी इस माया के महा-अंधकार सरूप बन्धन से निर्मल होकर सरब काल के वास्ते निर्भय पद को प्राप्त हुआ है। उसका निर्मल यत्न दूसरों को असली जीवन देने वाला है।

वचन–13. ऐसी समता स्वराज की अवस्था को हासिल करने के वास्ते नित ही अपने मानसिक दोषों की निवृत्ति करनी चाहिये। नित ही दूसरों का उपकार करना चाहिये। नित ही अभिमान सरूप परम शत्रु से छुटकारा हासिल करना चाहिये और अपने जीवन को सरब काल ईश्वर परायण बनाना चाहिये। दुःख व सुख में निहचल रहना चाहिये। सर्व-सिद्धि और सर्व-शान्ति के देने वाली प्रभु भगति को धारण करके इस तृष्णा रूपी परम दुःख से छूट करके सरब आधारी तत्त्व आत्म-सरूप समता को बोध कर लेना चाहिये।

वचन–14. ऐसा परम यत्न जिस गुणी पुरुष ने धारण किया है, उसके पवित्र आचरण, पवित्र स्थिति, पवित्र अनुभवता और सत् अनुराग के बल से अनन्त जीवों की कल्याण होती है। वह ही सत्पुरुष है, और सरब ज्ञात अवस्था को प्राप्त हुआ है। उसका वचन और संगत कल्याण के देने वाले हैं। ऐसा निश्चय होना चाहिए।

वचन–15. अपने जीवन की सही उन्नति का सबको बोध होना चाहिये जिससे इस तुच्छ जीवन में सत्-पद की प्राप्ति का यत्न धारण करके महा-अन्धकार भरम रूप अधिक तृष्णा से छुटकारा हासिल होवे, और अपने-अपने निर्मल आचरण में स्थित होकर परस्पर प्रेम-सरूप से जीवन व्यतीत करें। यही मानुष जन्म की कीर्ति और मानुषपन है।

प्रसंग समता परम स्वराज समाप्त हुआ।

अनमोल सत्सन्देश अनुभवी वाक्: नित का जीवन, नित की शान्ति नित का स्वराज, केवल समता ही है।

वचन—1. ख़्वाहे राजा हो ख़्वाहे भिखारी, ख़्वाहे धनी हो ख़्वाहे दलिद्री, ख़्वाहे हकूमत शखसी[1] हो ख़्वाहे जम्हूरी[2] सब हालत में ममता यानी खुदग़र्ज़ी की मजबूरी से अपनी उन्नति और दूसरे की हानि को ज़रूरी जीव विचार करता है—जिससे असली शान्ति या इतमीनान हासिल नहीं कर सकता है। आखिर इस दुनिया से प्यासा और निरासा ही जाता है। यानी सब कोशिश करते हुए भी असली ज़िन्दगी की तसल्ली हासिल नहीं हो सकती है।

वचन—2. मादे यानी तत्त्वों की तहक़ीक़ात अगर गहरी से गहरी भी की जाये तो असली तसल्ली नहीं होती, जब तक रूहानी ज़िन्दगी यानी जीवन शक्ति की तहक़ीक़ात न की जावे—जो असली सरूप समता का है।

वचन—3. किसी क़ौम और मुल्क की दायमी तरक्की[3] महज़ मानसिक ख़्वाहिशात यानी ज़रूरियाते ज़िन्दगी को निहायत बढ़ाने से क़ायम नहीं

1. राज्य भोगी, राजा 2. लोकतन्त्र 3. किसी जाति और देश की स्थाई उन्नति केवल मानसिक इच्छाओं अथवा आवश्यकताओं को ज़्यादा बढ़ाने से स्थित नहीं

रहती है—जब तक कि त्याग सरूप रूहानी ज़िन्दगी की साथ-साथ तहक़ीक़ात न की जावे। ज़रूरियाते ज़िन्दगी की ज़्यादती अक्सर तबाही ही कर देती है। यह द ढ़ निश्चय होना चाहिये।

वचन—4. जीव की असली ख्वाहिश समता यानी हर हालत में एकता की प्राप्ति की ही है। मगर ख़्वाहिशात की गुलामी से शारीरिक-मद, सामाजिक-मद, देश-मद में गिरफ़्तार होकर, यानी अति मोह वश होकर अन्दरूनी भाव से अपना भी नाशक और दूसरों का भी नाशक हो जाता है, और आखिर अशाँति ही अशाँति को अनुभव करके शरीर को छोड़ता है, और पूर्ण तसल्ली को प्राप्त नहीं होता है। यह तमाम कोशिश जीवन यात्रा को नामुक़म्मिल[1] ही कर देने वाली होती है। इस वास्ते ज़िन्दगी के सही मक़सद को विचार करके हर वक्त समता प्राप्ति का यत्न करना चाहिए, जो कि हर हालत में जीव को शाँति और सही शारीरिक, सामाजिक और देश उन्नति के देने वाली है।

वचन—5. समता का पूर्ण बोध बड़े शुद्ध आचरण और निहायत एकाग्र बुद्धि से होता है। इस वास्ते हर वक्त ख़्वाहिशात की अग्नि को दुनिया की नापायदारी[2] के समझते हुए, सत् सरूप की प्राप्ति के अनुराग से बुझाना चाहिए। तब ही अज्ञान अन्धकार की निव त्ति होकर अन्तर में समता ज्ञान आत्म-प्रकाश होता है—जो इसका वास्तविक सरूप है।

1. अपूर्ण, अधूरी 2. असारता

वचन—6. कर्म में अकर्मता, संग में असंगता, अल्पज्ञ में सर्वज्ञता, आकार में निराकार, काल में अकाल, कल्पना में अकल्पित, भय में निर्भयपन, अनेक में एक, स्वार्थ में परमार्थ, द्वन्द्व में समभाव, वासना में निर्वास और पाँच तत्त्वों के शरीर में जीवन शक्ति को जब बुद्धि अनुभव कर लेती है, तब पूर्ण निर्भय शाँति को प्राप्त होती है, यानी अहंकार की मलिन को त्याग करके सरब कल्याण सरूप को प्राप्त होती है। ऐसी सरब प्रिय, सरब उदारता, सरब अनुभवता और सरब अलेपता जीवन सरूप योग आरूढ़ अवस्था को पहचान करके समता आनन्द में लीन हो जाती है। यह ही तहक़ीक़ात (खोज) इस नाशवान् संसार में हर एक जीव को करनी चाहिए—जिससे मानुष जन्म की इन्तहाई[1] उच्चता का बोध प्राप्त होवे।

वचन—7. इस जीवन मार्ग में समता व ममता दो अवस्थाएँ बुद्धि की हैं, यानी अधिक शारीरिक मद से ममता का जाल बढ़ता है, और आत्म-परायण होने से समता की रोशनी बढ़ती है। ममता के जाल को ही अज्ञान और काल सरूप माना गया है। जब बुद्धि में शारीरिक मोह की अधिक जड़ता आ जाती है, तब बड़े-बड़े अनर्थक तमोगुणी कर्म करके अति दुःख को प्राप्त होती है। ऐसे ही प्रक ति के चक्र में तमाम जीव भरमते हैं।

1. गहन

वचन—8. जब शारीरिक ममता अधिक बढ़ जाती है तब तमाम जीव अधिक वासना की गिरफ़्तारी में आकर एक दूसरे के नाशक हो जाते हैं। यह ही दशा भयानक तबदीली के प्रगट करने वाली होती है। मानुष जन्म में आकर इन ही जीवन के भेदों को जानना, और फिर सत् यत्न करना ही सरब कल्याणकारी है।

वचन—9. स्वभाव से बुद्धि शारीरिक ममता में गिरफ़्तार है, और शारीरिक भोगों की अति आसक्ति में आकर नित ही प्रतिकूल कर्म करती है। तब अपने आपके वास्ते और दूसरों के वास्ते अति खेद रूप हो जाती है। यह ही अज्ञानमयी जीवन सरब काल संकट के देने वाला है। ऐसा विचार करके जिसने नित ही सत् परायणता हासिल करने का यत्न धारण किया है, वह ही समता रूपी सरब शान्ति को प्राप्त होता है।

वचन—10. तमाम शरीरधारी अपने-अपने मानसिक दोषों के बाँधे हुए संसार में अनुकूल और प्रतिकूल विचरते हैं। यानी जब सत् परायण होकर विचरना होता है, तब सरब शान्ति का मार्ग त्याग, वैराग, एकता, प्रेम, सेवा, सत्, सील, सन्तोष आदि देव गुण बुद्धि धारण करके नित कल्याण के प्राप्त करने का यत्न करती है—ऐसा बोध और यत्न ही निर्बन्धन सरूप समता स्वराज है। जिस गुणी पुरुष को ऐसा प्रयत्न प्राप्त हुआ है, वह ही त्रैगुणी माया से छूटकर नित निर्वाण शान्ति को प्राप्त होता है।

वचन—11. इसके उलट जब देह मद में अति आसक्त होकर जीव विचरते हैं, तब निहायत अन्धकार के मार्ग को प्राप्त होते हैं। यानी शरीर भोगों में अति लीन

होकर झूठ, चोरी, कपट, छल, ईर्खा, द्वेष, अति लोभ, अति मोह, अति काम, अति क्रोध और अति अहंकार में लवलीन होकर तमाम जीवन शान्ति को नाश कर देते हैं, यानी शारीरिक और मानसिक दोषों में हर वक्त जलते रहते हैं। यह असुर गुण ही काल रूप हैं और जीवों को अधिक भय के देने वाले हैं। इस वास्ते जीवन यात्रा को सत अनुकूल चलाना ही मानुष जन्म की सार है।

वचन—12. इस अद्भुत प्रक ति के बन्धन में तमाम जीव मज़बूरी से अपनी नाश और दुःख की तरफ दौड़ रहे हैं। इसके उलट और दुःख रूप यत्न से छूटने का मार्ग केवल सत्य परायणता ही है। यानी यथार्थ सरूप से जीवन का भाव समझ कर नित ही मानसिक और शारीरिक विकारों को त्याग करके केवल सत् परायण होकर निष्काम भाव से पर-उपकार में विचरना ही परम स्वराज समता अखण्ड शान्ति के देने वाला पुरुषार्थ है। तमाम मानुषों के वास्ते यह ही अधिकार है कि अपनी-अपनी यथार्थ कल्याण सत्य, त्याग और सेवा के मार्ग में द ढ़ होकर करनी चाहिये। तब ही सरब शान्ति निर्बन्धन और निर्भय-पद स्वराज को प्राप्त होना हो सकता है। जो मानुष ममता के अन्धकार और बन्धन से न्यारा होकर नित ही सत्-परायण धारणा से निष्काम-कर्म में विचरता है, वह ही परम शूरवीर सरब-विजय समता को धारण करने वाला महाज्ञानी परम स्वराज के भेद को जानने वाला है।

वचन—13. जो मानुष इस समता के निर्मल धाम यानी मुसावाते-रूहानी[1] की प्राप्ति की ख़ातिर

1. समत्व

ज्यों-ज्यों अपने आपका सुधार और निर्मल त्याग हासिल करता है, त्यों-त्यों शारीरिक उन्नति, सामाजिक उन्नति और देश की उन्नति उसके पवित्र आचरण और निर्मल पर-उपकार से खुद-ब-खुद[1] ही होती जाती है। उस ही महापुरुष ने अपने आप पर और तमाम दुनिया पर जीत पाई है, और इस नाशवान् संसार से पूर्ण आशावादी होकर आनन्द सरूप समता को प्राप्त करके चला है—उसका आदर्श जीवन सबको शान्ति के देने वाला है। और यह ही उच्च कर्त्तव्य सब सत्पुरुषों का है। हर एक प्रेमी को विचार करना चाहिये और इस निर्मल धाम की प्राप्ति का निश्चय रखते हुए अपनी उन्नति और दूसरों की उन्नति निष्काम भाव से करनी चाहिये। यह ही मानुष ज़िन्दगी का परम उत्तम कर्त्तव्य है। ईश्वर सबको सत् बोध, नित का जीवन और एकता, प्रेम बख़्शे।

समाप्तम्

निर्मल जीवन रक्षा

वचन—1. यह जीव असली शाँति की ख़ातिर शरीर की अन्दरूनी और बैरूनी रक्षा करने की ख़ातिर बड़े-बड़े तरीके और सामान एकत्र करता है, और बड़ी जद्दोजहद[2] में दिन-रात रहता है। ऐसा करने के बावजूद भी एक लमह भर निर्भय नहीं हो सकता है—यह ही दौड़ संसार का रूप है। शरीर जो समय पर नाश होने वाली चीज़ है—इसकी जितनी भी अन्दरूनी[3] या बैरूनी[4] रक्षा की जाए—आख़िर यह समय

1. स्वयम् 2. जूझना, कठिन परिश्रम 3. आन्तरिक 4. बाहिरी

पर नाश हो ही जाता है। शरीर की अन्दरूनी रक्षा का सार यह है कि नाना प्रकार के पुष्टि पदार्थ स्वीकार करने। और बैरूनी रक्षा—हर एक तरीके की बैरूनी तकलीफ़ात से जो शरीर को बचाना है—यह बैरूनी रक्षा है। ऐसे यत्न-प्रयत्न में सब जीव ही दिन-रात लगे रहते हैं। यह ही काल-चक्र का बन्धन है।

वचन—2. सत्पुरुषों ने इस निरर्थक यत्न का विचार करते हुए कि जीव अशाँति में हर वक्त भयभीत रहता है, इस संकट से निर्बन्धन होना कैसे हो सकता है, सार निर्णय निर्भय पद का यह अनुभव किया कि शरीर की रक्षा से ज़्यादा बुद्धि और मन की रक्षा करनी शाँति के देने वाला यत्न है। शरीर की रक्षा तो सहज स्वभाव अन्दरूनी व बैरूनी हो ही रही है—जितनी कि लाज़मी है, यानि कि अन्न, पानी, वस्त्र, सर्दी, गर्मी वग़ैरा का सही इस्तेमाल। ऐसा भी रक्षा का यत्न करते-करते शरीर एक दिन नाश को प्राप्त हो जाएगा—यह शारीरिक जीवन है।

वचन—3. मन, बुद्धि की रक्षा का जो सार साधन सत् पुरुषों ने अनुभव किया, वह यह है कि बुद्धि किसी तरह वासना की अग्नि से ठण्डी हो जाये। सो ऐसा निर्मल भाव विचार करके नित ही बुद्धि की निहचलता सत् सरूप आत्मा में द ढ़ करते रहते हैं। यानी आत्मा जो जीवन रूप है, वह ही निर्वास है, नित है, आनन्द है, परिपूर्ण है, और सरब व्यापक है—ऐसे उस परम प्रकाशमयी अविनाशी शब्द में ज्यों-ज्यों

बुद्धि स्थिर होती है, त्यों-त्यों शरीर की अन्दरूनी और बैरूनी रक्षा के बन्धन से निर्बन्ध होती जाती है। यानी सहज स्वभाव ही शरीर में विचरती हुई दुःख-सुख में समान रूप धारण करके हर वक्त अविनाशी तत्त्व में लीन रहती है। यह ही हालत असली रक्षा और निर्भयपन है। यानी बुद्धि शरीर की रक्षा में निर्लोभ, निर्मोह, निर्मान होकर नित ही अन्तर विखे सत् सरूप अखण्ड नाद में निहचलता धारण करती है। यह ही स्थिति निर्भय पद निर्वाण है—जहाँ काल-कर्म के भय का अभाव हो जाता है।

वचन—4. इसके उलट जितना भी यत्न सत्-सरूप आत्मा के आधारक निश्चय के बग़ैर, यानी महज़ (केवल) अभिमान-वश होकर शरीर की अन्दरूनी या बैरूनी रक्षा का अधिक से अधिक किया जावे, और नाना प्रकार के शारीरिक भोग द्रव्य प्राप्त करके भोगे जाएँ, और बैरूनी रक्षा के भी कई किस्म के ऐसे सामान बनाए जाएँ जिनसे सब मुतीह[1] हो जाएँ, या सबका नाश हो जाये और एक अपना ही शरीर काँतिमय बना रहे—यहाँ तक अगर रक्षा का प्रबन्ध कर भी लेवे, तो भी समय पर इतने समान होते हुए भी शरीर नाश को प्राप्त हो जाता है और जीव को अत्यन्त पश्चाताप होता है। ऐसी संसार की यात्रा का विचार करना परम जिज्ञासु का धर्म है।

वचन—5. मर्यादा के बग़ैर जितनी भी शारीरिक रक्षा की जाए उतना ही जल्दी शरीर नाश को प्राप्त हो

1. आधीन, आज्ञाकारी

जाता है, ऐसे ही एक शरीर या अनेक शरीर। सामाजिक बल या राजबल में जितनी भी सत्ता को छोड़कर महज़[1] लोभ और मान में गिरफ़्तार होकर रक्षा का प्रबन्ध किया जावे—उतना ही वह अनीति अनुकूल यत्न जल्दी नाश के करने वाला होता है। इस वास्ते सत् नियम अनुकूल यत्न शारीरिक उन्नति, सामाजिक उन्नति और देश की उन्नति के वास्ते चिरकाल तक कल्याणकारी है। गो[2] समय पर जाकर यह भी उन्नति अपना-अपना सरूप तब्दील कर देती है, क्योंकि ईश्वर की माया का यह नियम है। केवल सत् सरूप एक आत्मा ही है—यह निश्चय होना चाहिये।

वचन—6. ऐसा निर्मल विचार धारण करके सत् जिज्ञासु का यह परम धर्म है कि मानुष जन्म में आकर केवल आत्म-सरूप में निहचलता हासिल करते हुए अपने शरीर तथा दूसरे जीवों के सम्बन्ध में सहज स्वभाव से विचरे। यह ही असली निर्भय और परम शान्ति के देने वाला मार्ग है। असली निर्भय होना तो तब ही हो सकता है कि जब जीव को किसी किस्म की भी वासना खेद के देने वाली न हो। ऐसी परम उच्च अवस्था बड़े अनुकूल यत्न-प्रयत्न से प्राप्त होती है। यह ही स्थिति परम पद निर्वाण है।

वचन—7. सार यह है कि जितना-जितना वासना का त्याग अन्तर में प्राप्त होता है, उतना ही उतना

1. केवल 2. यद्यपि

अन्दरूनी और बैरूनी रूप में आनन्द प्राप्त होता जाता है। यानी वासना की अधिकता असली नाश और भय के देने वाली है और परम पाप रूप है। वासना की निव त्ति असली शान्ति और निर्भयपन के देने वाली है और परम धर्म है। जितना भी जीव आत्म-परायणता को द ढ़ करता है, उतना ही वासना के विकार से निर्मल होकर सन्तोषवान हो जाता है। इस वास्ते मानुष जीवन में परम धर्म यह ही है कि एक परम पुरुष आत्म-सरूप परमेश्वर में द ढ़-निश्चय, द ढ़-अनुराग और प्राप्ति का द ढ़-यत्न होना चाहिये, जिससे निर्वास सरूप निर्भयपद प्राप्त होवे। यह ही असली आस्तिकपन है।

वचन–8. इसके उलट जो जीव मोह और मान वश होकर महज़ शरीर के भोगों के परायण होकर नाना प्रकार के दिन-रात यत्न करते हैं, और अति मलीन से मलीन शरीर द्वारा कर्म करते हैं, वे अति भयानक त ष्णा के वेग में लमह-ब-लमह[1] जलते रहते हैं और किसी हालत में भी उनको सत् शान्ति प्राप्त नहीं होती है। यह ही जीवन परम नरक सरूप है।

वचन–9. सार निर्णय यह है कि वासना का अधिक बढ़ाना असली परम दुःख है, और वासना से निव त्त होना ही असली शान्ति और धर्म है। निर्वास सरूप केवल एक आत्मा है और तमाम संसार वासना का ही जाल है। ऐसा निर्णय विचार करके अपने जीवन के जो

1. प्रति छण

सही रक्षक बनना चाहते हैं, वे इस वासना की निव त्ति का यत्न करें, और आत्म-परायणता में द ढ़ता धारण करें। यह ही निश्चय असली कल्याण के देने वाला है।

वचन—10. बुद्धि जब निर्मल भावना से आत्म-परायणता को प्राप्त होती है, तब जितना मन और इन्द्रियों का कल्पित संसार है, इससे उपरस हो जाती है। क्योंकि सब नाश होने वाला उस वक्त उसको प्रतीत होता है, और एक साखी भूत आत्मा अविनाशी और निर्भय जानकर अनन्य भगति करके उसी में लीन हो जाती है। यह ही मानुष जन्म में भगति, ज्ञान का सार साधन है। सत्पुरुषों की संगत द्वारा सत्-ज़िज्ञासु नित ही आत्म-परायणता को द ढ़ करे, और देह के मद को त्याग करे। ऐसे निर्मल भगति और प्रेम के योग से बुद्धि वासना अन्धकार से निर्मल होकर चेतन प्रकाश आत्मा में लीन हो जाती है। यह ही यत्न परम रक्षा और परम आनन्द सरूप है, जो बार-बार जीव को जन्म-मरण और वासना के अन्धकार से छुटकारा देता है। ऐसी निर्मल साधना मानुष जीवन के वास्ते परम धर्म है। नहीं तो वैसे सब जूनियों में जीव वासना की अग्नि में तप रहे हैं। इससे छुटकारा केवल मानुष शरीर में अनुकूल यत्न से ही प्राप्त हो सकता है। यह ही मानुष जन्म की और योनियों से उच्चता है।

वचन–11. सबसे पहले अति मलीन वासना का सत्संग द्वारा त्याग करना चाहिये और सत् जीवन विचार को द ढ़ करके धारण करना चाहिये। इससे बुद्धि बलवान होकर आत्म-परायणता में द ढ़ होती है, और देह मद का राग त्याग करती जाती है। जितनी वासना निर्मल होती है, उतना ही शारीरिक कर्म निर्मल होता है; जितना कर्म निर्मल होता है, उतना ही सन्तोष प्राप्त होता है। ऐसा विचार समझकर नित ही इस वासना की निव त्ति करनी चाहिये, और सत् सरूप का निर्मल अभ्यासी और निदिध्यासी होना चाहिये। यह ही यत्न परम पद, निर्वास, निर्वाण शाँति के देने वाला है, और तमाम सत्पुरुषों का यह ही जीवन आदर्श है।

वचन–12. सब गुणी इस सत् विचार को पूर्ण अनुभव करके अपने सही रक्षक बनें, जिसका फल शरीर के नाश होने पर भी अखण्ड शान्ति सरूप बना रहे। चूँकि शरीर का विनाश होना निश्चय है, और जीव को सत् शान्ति प्राप्ति के बग़ैर परम दुःख यानी नित तबदीली से छुटकारा भी मुश्किल है, इस वास्ते सत् विचार, सत् विश्वास और सत् निदिध्यास द्वारा अपने आपको नित ही पवित्र करना चाहिये। यह ही मानुष जीवन का परम उच्च

कर्त्तव्य है। ईश्वर नित कल्याणकारी भावना बख़्शे।

प्रसंग निर्मल जीवन रक्षा समाप्त हुआ।

निहकर्म सिद्धि यानी अहिंसावाद

वचन–1. जीवन यात्रा में हर एक जीव कुछ-न-कुछ मनोरथ धारण करके सूक्ष्म व त्ति द्वारा और प्रत्यक्ष रूप में यत्न करता ही रहता है, मगर निर्मल शान्ति को प्राप्त नहीं होता है। ऐसे ही तमाम शारीरिक अवस्था को भोग करके अन्त को अशाँत ही इस संसार से जाता है। यह ही संसार का खेदयुक्त जीवन है। बग़ैर सत् यत्न और सत् निदिध्यासन के कोई भी इस खेद से निर्बन्धन होकर निहकर्म सिद्धि यानी अहिंसकवाद स्थिति को प्राप्त नहीं हो सकता है।

वचन–2. ज्ञान इन्द्रियाँ और कर्म इन्द्रियाँ संजुगत जो आकार सरूप शरीर बना हुआ है, इसमें बुद्धि हर वक्त सूक्ष्म भाव से और स्थूल भाव से कर्मों के भोग में आसक्त रहती है। यानी ग्रहण और त्याग के चक्र में निमख-निमख में अधिक राग और द्वेष जो कर्म फल द्वन्द्व सरूप है—उसको धारण करती रहती है और अन्तर से अधिक अशाँत रहती है। यह ही अद्भुत माया का बन्धन है, जिससे एक पलक भी छूट पाना अति दुर्लभ है।

वचन—3. कर्म सागर रूप देह का आकार है, और पलक-पलक विखे कर्म तबदीली में रहते हुए नाना प्रकार के कर्मफल द्वन्द्व सरूप को प्रगट और लीन करते हैं। यह ही सूख्म (सूक्ष्म) सरूप में उत्पत्ति और प्रलय का खेल है। बुद्धि हर वक्त अति मोह वश होकर इस कर्मफल द्वन्द्व में आसक्त होकर ग्रहण और त्याग के बन्धन में रक्षक भाव और नाशक भाव को विचार करती हुई नाशक भाव के उलट और रक्षक भाव के अनुकूल यत्न में प्रवीण रहती है। यह ही जीवन का यत्न-प्रयत्न है, जिसमें तमाम देहधारी मजबूर होकर विचर रहे हैं। मगर समय पर रक्षा का यत्न करते-करते भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं। यह ही काल-चक्र है।

वचन—4. ऐसे कर्मफल द्वन्द्व के अद्‌भुत चक्र से छुटकारा हासिल करना ही निहकर्म सिद्धि अहिंसावाद यानी निहखेद स्थिति है, जो परम वैराग और सत्याग्रह के बल से प्राप्त होती है। वह ही सत्‌पुरुष है, जो आन्तरिक खेद को निवारण करने की ख़ातिर नित सत् परायण होने का यत्न करता है।

वचन—5. जो कर्म संजुगत देह आकार है, वह तबदील होने वाला है। इस वास्ते इसको असत् और भरम सरूप कहते हैं। इसके उलट जो सत् प्रकाश निहकर्म सरूप अनादि शब्द अखण्ड आत्मा है वह ही सत् है, और

तमाम विश्व का आधार है। इस वास्ते उस परम तत्त्व के परायण होना ही मानुष जीवन की कल्याण और उच्चता है।

वचन—6. सत्याग्रह को धारण करना यानी एक उस परम तत्त्व के द ढ़ परायण होना और शारीरिक कर्मफल द्वन्द्व के मोह से बुद्धि को पलक-पलक विखे निर्मल करना, तमाम शारीरिक सुखों को दूसरे जीवों के निमित्त निष्काम भाव से समर्पण करना ही परम सत्याग्रह है। जिसके बल से बुद्धि कर्म फल द्वन्द्व हिंसावाद से मुक्त होकर निहकर्म सरूप अहिंसा आनन्द निर्वाण को प्राप्त होती है। यह ही अवस्था परम धाम है।

वचन—7. जब तक बुद्धि कर्मफल द्वन्द्व के खेद में प्रिय और अप्रिय पदार्थों के संयोग से चलायमान होती रहती है, तब-तक अहिंसक सरूप अविनाशी आत्मा को अनुभव नहीं कर सकती है, और न ही पूर्ण निर्भय अवस्था को प्राप्त होती है। यानी नित ही द्वन्द्व के बन्धन में आसक्त होकर कर्म के ग्रहण और त्याग के चक्र में चलायमान होती रहती है, और इस परम दुःख से छुटकारा हासिल नहीं कर सकती है।

वचन—8. ऐसे खेद-युक्त जीवन का विचार करके नित ही सत् परायण होना चाहिये। यानी शारीरिक कर्म का बन्धन तो जीव को जन्म से ही है, इसमें शाँति तो रंचक मात्र नहीं

है। सिर्फ भ्रम से ही कर्मफल द्वन्द्व में शाँति प्रतीत हो रही है। ऐसे मन्द निश्चय से ही अन्धकार दर अन्धकार की तरफ तमाम जीव दौड़ रहे हैं, यानी वासना के अधिक जाल को फैलाकर अति दुखित हो रहे हैं।

वचन–9. कर्मफल द्वन्द्व रूपी आसक्ति से वासना का जाल बढ़ता है, और वासना के जाल से जीव अपना बधिक और दूसरों का भी बधिक होता जाता है, और ऐसे अनर्थक भयानक कर्म करता है जिससे अधिक दुखित और अशाँत रहता है। यह ही अज्ञानमयी जीवन असुर-सरूप है।

वचन–10. कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति से छुटकारा हासिल करना ही परम शूरवीरता है। मगर शरीर जो कर्म का ही सागर है—इसके परायण होने से बुद्धि कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति से जो हिंसा रूपी महाताप का मूल है, कभी भी निर्बन्धन नहीं हो सकती है, जब तक कि निहकर्म सरूप अहिंसक अचल अविनाशी सरूप की परायण न होवे।

वचन–11. जब बुद्धि शरीर की परायणता को छोड़कर एक आत्म-सरूप के परायण होती है और तमाम शरीर के भोगों से वैरागवान होकर नित ही अपने आपको आत्म-शब्द में निहचल करती है, और शारीरिक सुख दूसरे

जीवों के परम हित में नित ही त्याग करती है, तब ही हिंसा मद से निर्बन्धन होकर अहिंसा शुद्ध सरूप आत्म-शाँति को प्राप्त होती है। यह ही अवस्था परम-सुख है।

वचन–12. सत्याग्रह के द ढ़ करने से यानी एक आत्मा के परायण होने से देह परायणता जो भयानक दुःख द्वन्द्व सरूप है, इससे बुद्धि को छुटकारा हासिल होता है। तब निहकर्म सरूप निष्पाप अवस्था अविनाशी शब्द को सरब में प्रकाशक हुआ सरब अन्तर अनुभव करती है। ऐसे प्रेममयी सरब-सरूप निहकर्म शब्द में जब बुद्धि अन्तर में निहचल होती है तब ही पूर्ण अहिंसा के पद को प्राप्त होती है, यानी निहखेद, निर्वास अवस्था में लीन हो जाती है।

वचन–13. शरीर की द ढ़ परायणता से ही अधिक वासना के जाल में बुद्धि चंचल होकर नित ही कर्म इन्द्रियों और ज्ञान इन्द्रियों द्वारा अपनी शाँति और दूसरे जीवों की शान्ति को हरण करती है। यानी पूर्ण हिंसक रूप को धारण करती है, और सदैव काल भयभीत रहती है। यह ही जीवन पशु समान है।

वचन–14. शरीर की अधिक ममता ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि वासना के भयानक जाल को फैलाती है, और इन्द्रियों द्वारा वासना को पूर्ण करने की खातिर बुद्धि

हर वक्त इन्द्रियों के भोगों में आसक्त रहती है, यानी ममता को धारण करके अपनी शान्ति और दूसरे जीवों की शान्ति की बधिक हो जाती है। यह ही भयानक दुःख सरूप संसार है।

वचन—15. शरीर की ममता को त्याग करके जब बुद्धि केवल सत् सरूप के द ढ़ परायण होती है, और अनन भाव से सत्नाम का चिन्तन करती है, तब वासना रूपी महाअन्धकार से पवित्र होकर इन्द्रियों के भोगों की द्वन्द्व सरूप आसक्ति से निर्बन्धन हो जाती है। यानी नित ही निहकर्म सरूप आत्मा में निहचल होकर अपनी रक्षक और तमाम जीवों की पूर्ण रक्षक होती है। ऐसी स्थिति को जो पुरुष प्राप्त होवे, वह ही पूर्ण अहिंसावादी है। यानी निहखेद होकर सरब जीवों के खेद हरण करता है, और निर्मल सरूप से सरब जीवों का रक्षक होता है। वह ही शान्ति का सागर तत्त्व-ज्ञानी जगत-गुरु है।

वचन—16. शरीर की ममता जो हिंसक भाव में बुद्धि को गिरफ़्तार करती है और नाना प्रकार के खेद-युक्त कर्म इन्द्रियों द्वारा कराती है, और नित ही तीन तापों को प्रगट करके परम अशान्ति को प्रकाशती है, ऐसी महा-अविद्या की जड़ को त्यागना ही मानुष जीवन का परम कर्त्तव्य है। यानी सत्पुरुषों की संगत द्वारा शरीर की ममता को त्याग करके निर्मल भाव से सत् परायण होना ही जीवन

की सही रक्षा है। जो गुणी पुरुष ऐसी साधना में विचरता है, वह ही अहिंसावादी है।

वचन—17. सत्याग्रह यानी एक आत्मा के परायण होकर नित ही तमाम शरीर के स्वार्थ से निर्बन्धन होना और सत् चिन्तन में मन और बुद्धि को एकाग्र करना, इन्द्रियों के भोगों से निरासक्त होना—यह ही परम तप और अहिंसावाद है, यानी निर्मल जीवन रक्षक सरूप है।

वचन—18. शारीरिक कामना ही तमाम प्रकार के हिंसकपन को प्रगट करती है और पूर्ण नाश सरूप है। इस वास्ते शारीरिक कामना की शुद्धि को धारण करके नित ही सत् सरूप के परायण होना और नित सत् चिन्तन करना ही परम पवित्रता निहकर्म अहिंसक पद अविनाशी शब्द की प्राप्ति के देने वाला यत्न है।

वचन—19. नित ही सत् परायण होकर अपने मानसिक खेद को दूर करना, और सत् निदिध्यासन में मन, बुद्धि और शरीर की तमाम शक्ति को त्याग करना ही परम कल्याणकारी योग है। ऐसे नित के साधन से बुद्धि शारीरिक कामना से पवित्र होकर सत्-सरूप शब्द में अन्तर द ढ़ होती है और सरब रक्षा के धाम को प्राप्त होती है।

वचन—20. कर्म सरूप शरीर आकार से निर्बन्धन होकर

निहकर्म सरूप अखण्ड शब्द में जब बुद्धि निहचल हो जाती है, तब ही निर्वास आनन्द को प्राप्त करके निहखेद हो जाती है—वह ही धाम पूर्ण अहिंसा का सरूप है। ऐसी स्थिति को जो प्राप्त हुआ है, वह ही सरब कल्याण सरूप है, यानी तमाम आसक्ति से निर्मल होकर निज आनन्द को उसने प्राप्त किया है।

वचन—21. जिसकी बुद्धि जब हर वक्त आत्म-शब्द में निहचल होकर शरीर के कर्मों से असंग होती है, यानी कर्मफल द्वन्द्व से निर्बन्धन होती है, तब तमाम वासनाओं से पवित्र होकर नित ही सत् तत्त्व निर्वाण शब्द में द ढ़ होती है। ऐसी अकल्प और निर्द्वन्द्व स्थिति जिसको प्राप्त हुई है, वह ही पुरुष पूर्ण अहिंसावादी है, यानी तमाम कामनाओं से पवित्र होकर नित सरूप में विश्राम उसने पाया है। कामना का बन्धन ही हिंसक भाव को प्रगट करता है, और हर वक्त ग्रहण व त्याग के कर्म में बुद्धि को जकड़ता है। जिस वक्त तमाम कामनाओं से बुद्धि निर्मल हो जाती है, उस वक्त शरीर के तमाम कर्मों में निरासक्त होकर सत् तत्त्व अविनाशी शब्द में स्थिर होती है, और शरीर से अपने आपको भिन्न अनुभव करती है। ऐसी द ढ़ स्थिति में जो विचरता है, वह ही अहिंसा का अवतार है। यानी नित ही निर्वास, निर्विकल्प, निर्द्वन्द्व, सरब असंग,

सरब-प्रकाश सरूप आत्म-आनन्द में मग्न होकर सदैव काल निहखेद भाव को प्राप्त होता है, और वह ही शुद्ध सरूप है। ऐसी निर्मल और निहखेद अवस्था को अनुभव करने के वास्ते सत् परायणता की द ढ़ता, यानी आन्तरिक अभ्यास और शारीरिक भोगों से वैराग को द ढ़ करना ही कल्याणकारी यत्न और सिद्धि के देने वाला मार्ग है।

वचन—22. सब मानुषों का पूर्ण कर्त्तव्य यह ही है कि इस संसार की छिन-भंगुर यात्रा को समझ कर अपने जीवन के सही रक्षक होकर सब जीवों के वास्ते कल्याणकारी सरूप बनें, यानी अपने तमाम स्वार्थ से निर्बन्धन होकर दूसरे जीवों की कल्याण करें। यह ही निर्मल अहिंसा धर्म और सत् नीति है। ऐसी शुद्ध धारणा से ही निहकर्म सिद्धि अहिंसा शान्ति को मानुष प्राप्त कर सकता है। इस वास्ते नित ही सत बोध प्राप्त करें।

प्रसंग निहकर्म सिद्धि यानि अहिंसावाद समाप्त हुआ

सत्संग निर्णय और सत्-जीवन-नियम

(1) सत्संग निर्णय

वचन—1. ईश्वर भगति का निर्मल विचार—यानी सत् सरूप का पूर्ण निर्णय समझना और पूर्ण श्रद्धायुक्त अपने आपको बनाना।

वचन—2. सादगी पर विचार—यानी खुराक, लिबास को सादा करना, फ़ज़ूल खर्ची को छोड़ना।

ग्रन्थ

ॐ श्री समता विलास ॐ

वचन—3. सत्-सेवा पर विचार—यानी मानुष सेवा में अधिक प्रण रखना और दूसरे जीवों की रक्षा करनी भी लाज़मी समझना।

वचन—4. सत्पुरुषों के सत्-नियमों पर विचार—यानी सत्पुरुषों के पवित्र आदर्श को अपनाने[1] का यत्न करना।

वचन—5. सत् कर्म पर विचार—यानी धर्म अनुकूल और प्रतिकूल कर्मों को समझ कर अनुकूल कर्म की धारणा करनी।

वचन—6. सत्-धर्म के सत्-प्रचार का विचार—यानी अपने पवित्र आचरण की द ढ़ता द्वारा दूसरे जीवों की कल्याण करनी।

वचन—7. निर्पख-भावना पर विचार—यानी बा-असूल[2] जीवन बनाना। बादमुबाद और कथनी-ज्ञान से बिलकुल परहेज़ रखना।

वचन—8. सब मज़हबों के रहनुमाओं के असली असूलों पर विचार—यानी तमाम सत्पुरुषों के जीवन आदर्श को विचार करके मज़हबी तास्सुब[3] और बादमुबाद[4] का त्याग करना।

वचन—9. अपनी जीवन अवस्था के मुताबिक समय और सत्-पुरुषार्थ का विचार—यानी पूर्ण समय की पाबन्दी में अपनी मानसिक पवित्रता हासिल करने का पूर्ण यत्न करना।

वचन—10. अपने खानदान[5] और जाति में बुरी रसूमात[6] छोड़ने का विचार—यानी निरर्थक जो रिवाज़ जाति व खानदान में जारी हों उनसे अपने आपको पवित्र करना।

ॐ समता अपार शक्ति ॐ

1. धारण करने 2. नियमानुसार 3. कट्टरपना, ईर्ष्या-द्वेष 4. वाद-विवाद 5. कुल 6. रिवाजों

वचन—11. कुल जाति के प्रचलित गुरुओं के आचरण पर विचार—यानी बुरे आचार वाले गुरु को त्यागना और निर्मल आचरण वाले सत्पुरुष की संगत से अपने आपको पवित्र करना।

वचन—12. अपने मन में पवित्र मनोरथ धारण करने का विचार—यानी सच्चे धर्म में अधिक से अधिक अपने तन, मन, धन से सेवा करनी।

वचन—13. सत्संग में प्रेम बढ़ाने का विचार—यानी सत्संग को अधिक कल्याणकारी समझना और एकत्र होकर अपने जीवन की निर्मल उन्नति करनी।

वचन—14. एकता व संगठन पर विचार—यानी सब जीवों में एकता भाव रखने की द ढ़ता और संगठित होकर सरब जीवों की उन्नति का विचार करना।

----

(2) सत्-जीवन नियम निर्णय

वचन—1. पवित्र और सादा ग़िज़ा (खुराक)—यानी मुनश्शी (नशे वाली) चीज़, माँस और सेहत के विरुद्ध किसी भी अनयुक्त वस्तु के ग्रहण करने का परहेज़ रखना।

वचन—2. सादा लिबास—यानी बहुत क़ीमती और चमकीले वस्त्रों का त्याग करना।

वचन—3. सत्संग—यानी सत्पुरुषों और बुजुर्गों की सही आज्ञा माननी अपना जीवन कर्त्तव्य समझना।

वचन–4. पर-उपकार सेवन–यानी जीवों पर दया करनी और अपने शुद्ध आचरण में द ढ़ता धारण करनी।

वचन–5. नित नियम–यानी सुबह-शाम सत्गुरु आज्ञा अनुसार कुछ समय ईश्वर चिन्तवन अधिक प्रेम से करना।

वचन–6. समय की द ढ़ता–यानी हर एक काम अनुकूल समय पर स्वतन्त्र रूप से करना।

वचन–7. किसी किस्म की नुमायश को न देखना–यानी नुमायश नकल होती है, और असली रोशन ज़मीरी को प्रागन्दा करती है।

वचन–8. सच्चाई का मुतलाशी होना–यानी अन्दरूनी विकारों को अपने पूरे यत्न से त्याग करना और सत् आचरण का पूर्ण विश्वासी होना।

वचन–9. हर एक से प्रेम रखना–यानी द ढ़ निश्चय से दूसरे की कल्याण चाहनी पूर्ण निष्काम भावना से।

वचन–10. पूरी अक्ल से, पूरी ताक़त से, पूरे इल्म से और पूरी कोशिश से अपने जीवन को अति निर्मल करने का यत्न धारण रखना और शरीर के अन्त समय के होने से पहले निर्भय अवस्था आत्मानन्द को प्राप्त कर लेना ही मानुष जीवन की परम सफलता है।

वचन—11. नित ही सत्संग द्वारा पवित्र विचारों को धारण करके अपनी निर्मल उन्नति का यत्न द ढ़ करना ही मानुष जन्म की उच्चता है और इस नाशवान संसार में आकर नित ही सत् अनुराग की प्राप्ति हासिल करनी ही परम कल्याणकारी है। ऐसा यत्न और कर्त्तव्य जो हृदय में अशाँति प्रगट करे, उसका त्याग करके नित ही शाँतमयी गुरुमुख-मार्ग समता में विचरना ही गुरुमुखों का परम धर्म है। क्योंकि यह छिनभंगुर शरीर एक दिन विनाश को प्राप्त हो जायेगा और इस संसार से बग़ैर सत् यत्न और सत् अनुराग की द ढ़ता के जीव अशाँत ही जाएगा। इस वास्ते इस छिनकारी जीवन की सही उन्नति करनी चाहिए जो तमाम मानसिक अशाँति का नाश करे और निर्भय पद अविनाशी शब्द पारब्रह्म परमेश्वर में निवास देवे।

वचन—12. हर वक्त अपने आपको मलीन वासनाओं से सत् परायणता के बल से पवित्र करना चाहिये, क्योंकि पवित्र हृदय से ही परम शाँति सत् प्रकाश का बोध होता है। वह ही महागुणी, महाधनी, महाउपकारी और महा-पराक्रमी है जिसने अपने मानसिक दोषों से पूर्ण पवित्रता हासिल की है, और सत्याग्रह की अति द ढ़ता से नित ही सत् परायण होकर विचरता है। उसका जीवन आचरण दूसरे जीवों के वास्ते आदर्श सरूप है। और

वह खुद परम शाँति निर्वाण पद में स्थिति हासिल करके इस भ्रम रूप संसार को जीत चला है। दुर्लभ उसका जीवन यत्न है। सब मानुषों को ऐसा ही जीवन यत्न धारण करना चाहिये, क्योंकि मानुष जन्म की परम उच्चता इस यत्न के धारण करने से ही है। ईश्वर सत् परायण भावना द ढ़ करे।

जिज्ञासु का निर्मल प्रण

वचन—1. जिस जिज्ञासु ने इन्द्रियों के भोगों को ज़हर समान जान करके त्याग कर दिया है, और जीवन निर्वाह मुताबक साधारण पदार्थ स्वीकार करता है, और द ढ़ निश्चय से आत्म-परायण होकर एक नाम का निदिध्यासन करता है, वह ही गुणी पुरुष आत्म-सिद्धि को प्राप्त होता है।

वचन—2. तमाम कर्मों के फल को प्रभु इच्छया में जो समर्पण करता है, और तमाम कामना, कल्पना का जो नाम के द ढ़ चिन्तन के बल से अन्तर से त्याग करता है, और सरब-काल एक प्रभु ही के परायण रहता है, वह ही परम भगत आत्म-सिद्धि को प्राप्त होता है, यानी अन्तर में सत् अविनाशी नाद को अनुभव करता है।

वचन—3. जिस पुरुष ने तमाम मन, देह, इन्द्रियों के विकारों से उपरामता प्राप्त की है, और एक आत्म-निदिध्यासन में द ढ़ हुआ है, वह ही आत्म-साख्यातकार अन्तर में कर सकता है और परम कल्याण योग को प्राप्त होता है।

वचन—4. एक आत्मा का अनुराग जिसको प्राप्त हुआ है, और मन, देह और इन्द्रियों के भोगों से वैराग्यवान जो रहता है, परम गुरु भगत और साध सेवक जो है, और नित ही अन्तर में एक ही नाम का द ढ़ चित्त से निदिध्यासन करता है, और मर्यादा मुताबिक सांसारिक कर्म भी प्रभु इच्छया में समर्पण करते हुए करता है, यानी पर-उपकार और निर्मल स्वार्थ में निर्मान भाव से जो विचरता है, मगर अन्तर से अधिक प्रभु परायणता को प्राप्त हुआ है, वह ही परम विवेकी सत् प्रकाश आत्म-आनन्द को अन्तर में अनुभव करके नित ही परम शान्ति में स्थित होता है, और दुःख-सुख के बन्धन से मुक्त होता है। उसका जीवन दुर्लभ है।

वचन—5. जिसने अन्तर में आत्म-तत्त्व को अनुभव किया है, उसने ही तीन तापों से छूट पाई है, और असंग, अकर्म, निर्वास, निर्द्वन्द्व अवस्था में हर वक्त निहचल रहता है,

उसने इस महादुःख रूप प्रक ति से छूट पाई है और नित आनन्द को प्राप्त हुआ है। वह ही जिज्ञासु तत्त्व ज्ञान परम योग सिद्धि को प्राप्त हुआ है। उसका पुरुषार्थ परम सफल हुआ है, और उसने ही दुर्लभ कीर्ति को हासिल किया है।

वचन–6. हर वक्त एक नाम का आधार द ढ़ धारण करके कर्म इन्द्रियों और ज्ञान इन्द्रियों से मन को जो एकाग्र करता है–सत् सरूप में, वह ही परम अभ्यासी जिज्ञासु आत्म-सिद्धि निर्वास स्थिति को प्राप्त होता है।

वचन–7. शरीर के मद से बुद्धि को जिसने निर्मल किया है, और एक तत्त्व सरूप अविनाशी शब्द के जो परायण हुआ है, और कर्मफल द्वन्द्व से नित ही जो निर्लेप रहता है–ऐसी द ढ़ उपासना को जो प्राप्त हुआ है, वह ही जिज्ञासु परम सिद्धि आत्म-आनन्द में लीन हो जाता है।

वचन–8. शरीर की विनाश जो निश्चय में देखता है, और इन्द्रियों के भागों से नित ही वैरागवान जो रहता है, ऐसा परम विवेकी जिज्ञासु आत्म-परायणता में द ढ़ होकर तीन गुणों के खेद से निर्बन्धन हो जाता है, यानी साक्षी सरूप परमानन्द सिद्धि को प्राप्त होता है।

वचन—9. इन्द्रियों के भोग ही परम बंधन का सरूप हैं। जिसने तमाम इन्द्रियों के भोगों से असंगता प्राप्त की है, यानी अनन्य प्रीत करके गुरु उपदेश में मन को जिसने निहचल किया है, और कर्म अभिमान को त्याग करके नित ही साक्षी सरूप परम तत्त्व में तमाम कर्म फल जो समर्पण करता है, और दुःख-सुख में द ढ़ निश्चय से समता धारण करता है, वह ही महातपीशर जिज्ञासु आत्म-सिद्धि को पा लेता है।

वचन—10. तमाम शरीर आकार जो कर्म संजुगत और नाशवान देखता है, और आत्म-सरूप को जो अकर्म और असंग करके अनुभव करता है—ऐसी प्रकाशमयी अनुभव गति को जो अन्तर में जान लेता है, वह ही जिज्ञासु स्थिर बुद्धि योग को प्राप्त होता है। वह अवस्था ही परम धाम है।

वचन—11. तमाम शारीरिक स्वार्थ जो अग्नि समान देखता है, और हर वक्त परमार्थ बोध में जो द ढ़ रहता है, यानी तमाम संसार से अति निर्मल और अविनाशी एक परम तत्त्व आत्मा को जानकर नित ही इन्द्रियों के भोगों से असंग होकर जो तीन काल अन्तर में सावधान रहता है, वह ही जिज्ञासु परम योग निर्वाण को प्राप्त होता है, और उसका तमाम पुरुषार्थ तब ही कल्याणकारी हुआ है।

वचन—12. इन्द्रियों के भोगों से ही त ष्णा रूपी अग्नि अति प्रचण्ड होती है और जीव को इससे कई जन्म तक परम दुःख प्राप्त होता है। जिस जिज्ञासु ने ऐसा निर्मल विवेक धारण किया है, वह ही इस मिथ्या भोग विकार की अग्नि से छूटने के वास्ते गुरु परायण होकर परम तत्त्व की खोज में अपने जीवन को द ढ़ करता है, और नित ही सत् अनुराग और निर्मल वैराग्य से एक गुरु उपदेश में मन को निहचल करता है। ऐसे यत्न से ज्यों-ज्यों सत् परायणता को प्राप्त होता है, त्यों ही त्यों अन्तर में नित आनन्द सत् शब्द को अनुभव करता हुआ परम शाँति निर्वास पद को प्राप्त हो जाता है। यह ही गति परम सिद्धि है। यानी कि जिज्ञासु अपने सत् प्रण से तमाम बंधनों से निर्बन्धन होकर एक अविनाशी सरूप को प्राप्त करके निर्भय हुआ है, और नित जीवन शुद्ध सरूप अखण्ड शब्द को अपने आप में बोध किया है, और जानने योग पद को जाना है। ऐसे महागुणी की दुर्लभ कीर्ति है।

वचन—13. चूँकि बुद्धि त्रैगुणों में अति आरूढ़ हुई-हुई हर वक्त असत् नाम, रूप, गुण और कर्म में भरमती रहती है, एक लमह भी निश्चयात्मिक भाव को प्राप्त नहीं होती है, यह ही भ्रम अधिक दुस्तर है। जिस जिज्ञासु ने ऐसी मानसिक अशाँति को पहचान किया है, वह ही गुरु संगत से आत्मिक निश्चय को प्राप्त

करके त्रैगुण अभिमान से निर्बन्धन होकर सहज-पद अविनाशी निज रूप में निवास पाता है।

वचन—14. यह दुर्मत अंधकार अधिक यत्न से ही नाश होता है, यानी शुद्ध विवेक, शुद्ध वैराग्य और शुद्ध अभ्यास की द ढ़ता से ही अनात्म देह अभिमान से निर्बन्धन होकर बुद्धि अन्तर में सत् पद को अनुभव करती है, और तमाम वासना के जाल से मुक्त होकर सत् सरूप में निहचल होती है। ऐसा यत्न ही परम सिद्धि के देने वाला है।

वचन—15. शुद्ध विवेक की सार यह है कि तमाम प्रक ति को विनाश और दुःख रूप समझकर एक अविनाशी सरूप के परायण होना, और बार-बार अनात्म पदार्थों के मोह का त्याग करना, और सत् सरूप के अनुभव करने का अधिक यत्न करना। ऐसा अनुराग ही शुद्ध विवेक की द ढ़ता के देने वाला परम कल्याण सरूप है।

वचन—16. शुद्ध वैराग्य की सार यह है कि तमाम प्रक ति के भोग दुःख सरूप समझना और नाश होने वाले भी निश्चय करके जानना—ऐसा पवित्र अनुभव धारण करके तमाम शारीरिक सुख भोगों से उपरस हो जाना और केवल एक परमेश्वर के चमत्कार में अपने आपको द ढ़ करना। ऐसी स्थिति ही परम शाँति के देने वाली है, और जिज्ञासु का परम जीवन सरूप है।

वचन—17. शुद्ध अभ्यास की सार यह है कि सत् विश्वास से एक अखय (अक्षय) शब्द का अनन भाव से चिंतन करना अन्तर में और तमाम मानसिक मिथ्या कल्पना का निरोध करना, यानी केवल नाम के आधार ही रहना और तमाम शारीरिक दुःख व सुख में अचल होकर विचरना ही सत् अभ्यास है। ऐसा पवित्र पुरुषार्थ जो धारण करता है, वह ही आत्मसिद्धि को प्राप्त होता है—यानी अन्तर में आत्म-साख्यातकार पद को अनुभव करता है। और ज्ञान-विज्ञान के द ढ़ आचरण से सरब काल आनन्दित रहता है। यह स्थिति ही परम योग है।

वचन—18. शुद्ध विवेक, शुद्ध वैराग्य और शुद्ध अभ्यास की पहचान और द ढ़ता केवल तत्त्वज्ञानी सत्-गुरु की प्राप्ति से ही हो सकती है। इस वास्ते जिज्ञासु का परम आधार, परम शिक्षक, परम ठौर और परम जीवन केवल आत्मदर्शी सत्गुरु की संगत और सेवा ही है—पूर्ण भाग्य से जिसको प्राप्त होवे। यानी इस अद्भुत माया के दुर्मत जाल से जिज्ञासु गुरु शिक्षा को धारण करके नित ही अपने आप अभिमान का निरोध करके गुरु क पा का पात्र होकर के ही छुटकारा हासिल कर सकता है—यानी निज सरूप को बोध करता है, और खुद अपने आप का गुरु हो जाता है। तब ही तमाम जीवों के वास्ते उसका जीवन परम कल्याणकारी होता है।

वचन—19. शुद्ध विवेक, शुद्ध वैराग और शुद्ध अभ्यास में द ढ़ निश्चय वाला ज्ञानी ही इस कर्म द्वन्द्व अंधकार से निर्बन्धन हो करके केवल आत्मसरूप में निहचल होता है। वह ही जिज्ञासु अपने आपके जानने वाला और सरब के जानने वाला गुरु रूप हो जाता है।

वचन—20. बुद्धि जब तक देह अभिमान से ग्रसी हुई है, तब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की अग्नि में हर वक्त जलती रहती है, और नाना प्रकार के शरीर द्वारा कर्म करके इस भयानक अग्नि को ठण्डा करने का यत्न करती है, मगर सब अकार्थ। शरीर ही तो तमाम विकारों का सागर है, इसमें सत् निश्चय रखने से कैसे शाँति प्राप्त हो सकती है ? यह ही भ्रम अज्ञान है।

वचन—21. जिज्ञासु गुरु सिखया (शिक्षा) से शरीर अभिमान का छेदन करके शुद्ध विवेक, वैराग और अभ्यास के द ढ़ अनुराग से इस त ष्णा रूपी अग्नि से शीतल होकर सत् सरूप अविनाशी शब्द को प्राप्त होता है। यानी काल-चक्र शरीर की यात्रा को मुकम्मिल करके सत् ठौर, निज सरूप आत्मा को अनुभव कर लेता है और नित शाँति को प्राप्त होता है। दुर्लभ उसका यह प्रयत्न है।

वचन—22. अधिक यत्न से इस देह अभिमान से असंग होना ही परम भगति और परम वैराग्य है। जो जिज्ञासु ऐसे अनुराग को प्राप्त हुआ है, उसने ही निर्मल विजय हासिल की है।

वचन—23. देह से जीवन में असंग होना ही परम सिद्धि और शाँति है। जिसको ऐसी निर्मल द ढ़ता प्राप्त हुई है, यानी देह ममता से असंग होकर नित सरूप आत्मा में जो हर वक्त विश्राम पाता है, वह ही परम ज्ञानी है और सरब हितकारी है।

वचन—24. देह आकार जो तमाम कर्मों का ही सागर है, और बुद्धि निमख-निमख (निमष-निमष) में इन कर्मों की भुक्ता होकर दुःख व सुख में चलायमान होती रहती है, जिस जिज्ञासु ने इस अशाँतमयी अवस्था को पूर्ण जाना है, और सत्गुरु सिखया अनुकूल सरब साक्षी सरूप आत्मा के परायण होने का जो यत्न करता है, और नित द ढ़ अनुराग से अपने तमाम मानसिक दोषों की निव त्ति करके एक अखण्ड नाम ध्यान में जो अन्तर में द ढ़ हुआ है, यानी तमाम इन्द्रियों के कर्मों से असंग होकर जो एक नाम में एकाग्र हुआ है, वह ही परम तपीशर सत् तत्त्व को अनुभव करके सरब शाँति को प्राप्त होता है। उसका जिज्ञासुपन अति श्रेष्ठ होने के कारण अपने आप में प्रबोधित होकर परम प्रसन्नता तत्त्व ज्ञान में वह प्रवीण हुआ है। इस वास्ते अति-पवित्र जिज्ञासुपन की द ढ़ता

होने से ही ऐसी निराधार सरब शाँति प्राप्त हो सकती है। जिज्ञासु वह ही श्रेष्ठ है, जिसने तमाम शारीरिक भोगों से उपरसता प्राप्त की है और सत्नाम में नित ही जो निहचलता हासिल करता है, वह एक दिन परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है और मानुष-जन्म की परम सफलता को पा लेता है। ऐसे सत् यत्न करने वाले गुरुमुख इस भ्रमरूपी संसार में अधिक दुर्लभ हैं। उनकी पवित्र करनी अनंत जीवों को शाँति के देने वाली है और वह ही सत् चेतावनी के प्रकाशक हैं। उनका वचन व कर्म सरब आनन्द के देने वाला है। पूर्ण भाग्य से ही ऐसे परमहंस गुरुमुखों का संजोग हो सकता है। सत्-जिज्ञासु हो करके नित ही सत्-शाँति की खोज करनी चाहिए। इस छिन-भंगुर शरीर का यह ही परम लाभ है।

सत् जिज्ञासु होये के,
तत्त्व निर्नय ज्ञान विचारी।
अपने आप में आप को बोधे,
सब भरम करम होए छारी।।
अन्तर अनुभव गति परकाशे,
सत् शब्द अखण्ड निर्वाना।
गुर के वचन में मर जीवित होए,
सो परसे सार ज्ञाना।।
निर्मल चित्त इक नाम कमावे,
सब आपा मति गँवाए।

तीन ताप की तपन विनासे,
जन निर्भय धाम समाए।।
सत् ही सिमरे, सत् ही बोधे,
सत् में जीवन त्यागे।
झूट देही का गरब विनासे,
घट आतम रसना जागे।।
आतम रस सत् शबद अविनाशी,
जो अन्तर कीजे पाना।
सो जिज्ञासु सिद्ध भयो,
पद परसयो निर्वाना।।
साजन मारग निर्बन्ध खोजो,
सत्गुर सीख चितारो।
मानुष जनम जग दुर्लभ पायो,
नित धरम का खाट व्योहारो।।
जीवन-रूप सो पारगरामी,
नित अन्तर मन में ध्याओ।
''मंगत'' यतन यह सार है,
तत्त्व पूज परम पद पाओ।।

अनुभवी वाक्

समता विलास समाप्तम्

सत्-आज्ञा निरंकार

ब्रह्म सत्यं सर्वाधार

ग्रन्थ

श्री समता विलास

परिशिष्ट

खण्ड

(1) समता-जीवन विज्ञान

(2) समता-ज्ञान मार्ग

ग्रन्थ

श्री समता विलास

ब्रह्म सत्यम् सर्वाधार

समता अपार शक्ति

महामन्त्र

ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा
अद्वैत पुरखा सर्व-व्यापक
कल्याण-मूरत परमेश्वराय
नमस्तं

(1) समता—जीवन विज्ञान

जीवन सफलता बोध

वचन—1. इस संसार में हर एक देहधारी जीव अपनी जीवन सफलता प्राप्ति की ख़ातिर दिन-रात कोशिश करता रहता है। मगर तमाम शारीरिक अवस्था व्यतीत करके आख़िर पश्चाताप ही लेकर जाता है, यानी सही सफलता जीवन को प्राप्त नहीं हो सकता है। यह ही माया का अधिक जाल है।

वचन—2. वास्तव में जीव पाँच भौतक शरीर[1] को धारण करके पाँच ज्ञान इन्द्रियों और पाँच कर्म इन्द्रियों के प्रिय रस भोगों में अधिक आसक्त होकर अपनी सही सफलता यानी निर्भय शाँति को चाहता है। मगर तमाम इन्द्रियों के भोग छिन-भंगुर होने के कारण

1. पाँच तात्विक शरीर

बजाय शाँति के अधिक दुःख के देने वाले होते हैं। ऐसा समझना ही निर्मल विवेक है।

वचन—3. सार निर्णय यह है कि जब तक इन्द्रियों के भोगों से अधिक आसक्ता का नाश नहीं होता, यानी शुद्ध नियम अनुकूल भोगों की त्याग व ति प्राप्त नहीं होती, तब तक मानुष अपने जीवन का घातक बना रहता है। ऐसा विचार अनुभव करने से असली जिज्ञासु बुद्धि प्राप्त होती है।

वचन—4. असली जीवन सफलता की प्राप्ति इन्द्रियों के भोगों से निर्बन्ध होने से ही प्राप्त हो सकती है। मगर इन्द्रियों के भोगों में जब तक अधिक राग-द्वेष की महसूसात द ढ़ हो रही है, तब तक निर्मल कल्याण को प्राप्त होना अधिक कठिन है। यह ही अंधकारमयी द ढ़ता यानी इन्द्रियों के भोगों की अधिक लालसा ही भव-सागर रूप है, जिससे पार होना किसी ही शूरवीर महागुणी का काम है।

वचन—5. हर एक जीव अपनी-अपनी इन्द्रियों के भोगों की आसक्ति में द ढ़ होकर जीवन यात्रा को व्यतीत कर रहा है और अधिक भोगों की लालसा के वश होकर नाना प्रकार की कामनाओं के सागर में पल-पल विखे गोते खाता रहता है। यह ही जीवन परम दुःख है। हर एक जीव ऐसी गिरफ़्तारी में मजबूर है।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

वचन—6. जब तक सही खेद का बोध न हो सके, तब तक उस दुःख से निव त्ति होनी मुश्किल है। सो इस जीव को परम खेद महज़[1] इन्द्रियों के भोगों की अधिक आसक्ति ही है। ऐसा जानने से ही कल्याण और बंधन के विचार को द ढ़ करके हर एक जीव सत् शांति जो परम सफलता है, उसको प्राप्त हो सकता है।

वचन—7. ऐसे जीवन भेद को अनुभव करके उससे सही कल्याण हासिल करनी ही मानुष जन्म की उच्चता है। और जिन-जिन नियमों और साधनों से यह जीव असत् इन्द्रियों के भोगों से निर्बन्ध होकर सत् तत्त्व की द ढ़ परायणता को प्राप्त होता है, उन ही मार्गों को सत् मार्ग कहा गया है। यानी असत् मार्ग साधनों के भोगों की अधिक चेष्टा से निव त्त होकर सत् सरूप अविनाशी आत्मा में निर्मल द ढ़ता हासिल करनी ही सत् मार्ग का परम सरूप है और मानुष जीवन की निर्मल खोज है। ऐसा अनुभव करना चाहिए।

वचन—8. सार निर्णय यह है कि जीव इन्द्रियों के भोगों की आसक्ति में ही शुभ-अशुभ कर्म करके अपने आपको बन्धन दर बन्धन में

1. मात्र, केवल

डालता है और निर्भय शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता है। यह ही कर्म-चक्र की गहरी फाँसी है। इससे छुटकारा हासिल करना ही मानुष का परम धर्म है।

वचन—9. जब तक जीव को देह अभिमान है, तब तक इन्द्रियों के भोगों से निव त्ति होनी अति कठिन है। इस वास्ते इस देह मद भ्रम से निर्बन्ध होना ही सत् बोध है और सत् बोध की प्राप्ति ही परम जिज्ञासा है।

वचन—10. जब तक सरब साक्षी सरूप आत्मा का विश्वास न होवे, तब तक देह मद का अभाव नहीं होता। जब तक देह मद से निर्बन्ध नहीं होता, तब तक इन्द्रियों के भोगों की वासना से छुटकारा मिलना मुश्किल है। इस वास्ते केवल एक सत् सरूप जीवन प्रकाश परम तत्त्व परमेश्वर का द ढ़ विश्वासी होना ही परम कल्याण के देने वाला है। ऐसा अनुभव द ढ़ होना चाहिए।

वचन—11. जितनी-जितनी सत् तत्त्व में द ढ़ता जिसको प्राप्त होती है, उतना ही वह पुरुष इन्द्रियों के भोगों की आसक्ति से निर्बन्ध होकर श्रेष्ठ आचारी और निर्मल विचार वाला होता है,

और निर्मल त्याग के मार्ग में द ढ़ होकर नित ही पर-उपकार में विचरता है। ऐसा जीवन ही सत् धर्म का आचरण सरूप जानना चाहिये।

वचन—12. सत् तत्त्व में जब अधिक द ढ़ता प्राप्त होती है, यानी इन्द्रियों के भोगों से वैरागवान होकर केवल अजर अविनाशी आनन्द की प्राप्ति की खातिर द ढ़ अनुराग धारण करता है, उस वक्त निर्मल जिज्ञासु होकर अपने बंधन को सत् तत्त बोध प्राप्ति के प्रेम से खण्डन करता है, यानी तमाम इन्द्रियों के भोगों से विलग होकर केवल आत्म-चिंतन में द ढ़ होता है। ऐसी स्थिति ही निर्मल भग्ति का सरूप है।

वचन—13. ज्यों-ज्यों सत् तत्त्व में अनुराग होता जाता है, त्यों-त्यों तमाम कर्म वासनाओं से निव त्ति हासिल होती जाती है और बुद्धि तमाम इन्द्रियों के भोगों से अचेष्ट होकर सत्नाम में निहचल होती है। तब ही निर्मल सफलता को अनुभव करती है, यानी निर्वास होकर स्थित होती है। इसी अवस्था को योगारूढ़ कहा गया है।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

वचन—14. तमाम शरीर कर्म सरूप है और आत्मा निहकर्म सरूप है। जीव यानी बुद्धि जब तक शरीर परायण होकर विचरती है तब तक इन्द्रियों के भोगों की वासना में अधिक आसक्त होकर दुःख व सुख में नित ही चलायमान होती रहती है। इसी अवस्था को कर्म बन्धन या आवागवन कहा गया है।

वचन—15. आत्म-विश्वास यानी सत विश्वास, आत्म-अनुराग यानी सत् अनुराग, आत्म-स्थिति यानी सत् स्थिति की द ढ़ता से ही बुद्धि कर्म बन्धन से निर्बन्ध होकर निहकर्म सरूप शाँति को प्राप्त होकर नित आनन्द को हासिल करती है। यह ही हालत परम सफलता है, जिसको प्राप्त करके फिर कुछ जानने योग और प्राप्त करने योग नहीं रहता, यानी निर्वास शान्ति तत्त्व सरूप में परम स्थिति प्राप्त करके आनन्द सरूप हो जाती है।

वचन—16. सार विवेक यह है कि इस संसार मार्ग में केवल सत् विश्वासी और सत् अनुरागी होना ही तमाम विकारों से निर्बन्ध होना है। इस वास्ते परम यत्न से अपने आपको सत् परायण बनाना चाहिये, यानी अपनी ममता

को त्याग करके प्रभु आज्ञा में अपनी तमाम जीवन क्रिया के नतीजे को समर्पण करने का निश्चय प्राप्त करना चाहिये। यह भावना ही गुरुमुख मार्ग है और परम कल्याण सरूप है।

वचन–17. सत् परायणता के द ढ़ होने से ही असत् भोग वासना से निव त्ति प्राप्त होती है। तब ही सो गुणी पुरुष निर्मल कर्म आचारी होकर अपने आप के वास्ते और दूसरे मानुषों के वास्ते परम कल्याणकारी हो सकता है। इस वास्ते केवल एक सत् के आधार में निश्चय रखकर अपने तमाम दोषों को त्यागना चाहिए। इसी में सरब की कल्याण है और मानुष जन्म की निर्मल सफलता प्राप्ति है। सब गुणियों को सत् परायणता का द ढ़ अनुराग होना चाहिए, जिससे इस अग्नि रूप विकारों से सत् शान्ति प्राप्त होवे।

सार निर्णय जीवन

वचन–1. संसार की और शरीर की तबदीली निश्चय करके जाननी चाहिए।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

वचन—2. अपना जीवन निर्मल कर्म में व्यतीत करना ही मानुष जन्म का परम कर्त्तव्य जानना चाहिये।

वचन—3. तमाम मानुषों के साथ निर्वैर भाव से वर्ताव करना चाहिए, क्योंकि समय पर सब ही तबदीली को प्राप्त हो जावेंगे। इस वास्ते प्रेम संजुगत जीवन ही परम शिरोमणी जानना चाहिये।

वचन—4. मन और इन्द्रियों का दमन और सत् सरूप में द ढ़ निश्चय ही इस भयानक अंधकार से कल्याण के देने वाला है, यानी सत् स्थिति का सरूप है।

वचन—5. जीवन का सही मक़सद निर्बन्धन होना है। यानी वासना के वेग को परित्याग करने से निर्बन्धन होना हो सकता है। इस वास्ते मन, वचन और कर्म से सत् परायण होकर निष्काम सेवा संजुगत विचरना ही असली जीवन की निर्मल यात्रा है।

वचन—6. अपने निर्मल प्रण में जो द ढ़ रहता है, वह ही तमाम प्रकार की परम सिद्धि को प्राप्त होता है, यानी तत्त्व सरूप निर्खेद आनन्द को हासिल कर लेता है।

वचन—7. इस संसार का द श्य एक गहरी आँधी के समान जानना चाहिए, यानी सिवाय गर्दो-

गुबार और बेचैनी के और कुछ निश्चय हासिल नहीं हो सकता है। इस वास्ते इस आँधी के वेग से अपनी मनोव त्ति को शाँतमयी करना केवल एक परम पुरुष परमेश्वर के सत् विश्वास से ही हो सकता है। यह निश्चय तमाम गुणी पुरुषों ने हासिल करके अपनी कल्याण की है।

वचन—8. मानुष जन्म की उत्तम कीर्ति यह ही है कि अपने यथार्थ बल अनुकूल दूसरे के वास्ते कल्याणकारी बने। यह ही निर्मल कर्त्तव्य इस नाशवान संसार में सत् शान्ति के देने वाला है।

वचन—9. ऐसा निर्मल पुरुषार्थ धारण करना चाहिए जिससे मन और इन्द्रियों को सत् शाँति यानी निर्वास आनन्द प्राप्त हो सके। यह ही खोज परम गुणकारी है।

वचन—10. संसार की विनाश व निर्मल कर्त्तव्य का पालन व चित्तव ति का निष्काम भाव में द ढ़ करना, यानी परम तत्त्व में निहचल करने की धारणा जो धारण करता है, वह ही सही उन्नति को प्राप्त हो सकता है।

(यह सार निर्णय जीवन का है। सब गुणी पुरुषों को ऐसी धारणा द ढ़ करके अपनी कल्याण करनी चाहिये।)

जीवन यात्रा

वचन—1. बुद्धि सत् सरूप अविनाशी तत्त्व को भूलकर के पाँच तत्त्वों के शरीर में अति मोहित होकर ज्ञान इन्द्रियों और कर्म इन्द्रियों के भोगों में लवलीन रहती हुई नित ही दुःख व सुख में चलायमान होती रहती है, और एक खिन मात्र भी धीरज को प्राप्त नहीं हो सकती है। यह ही हालत परमखेद का सरूप है।

वचन—2. चूँकि बुद्धि शरीर के भोगों के आधार पर ही खड़ी है और भोगों से ही शरीर का बनना-बिगड़ना प्रतीत हुआ जानती है, इस वास्ते एक लमह भर भी शारीरिक भोगों की आसक्ति से निर्बन्धन नहीं हो सकती है और शरीर विनाश को प्राप्त हो जाता है। बुद्धि शारीरिक भोगों की इच्छया लेकर फिर दूसरे शरीर को प्राप्त होती है, यह ही संसार का अद्‌भुत चक्र है।

वचन—3. मानुष जन्म की उच्चता यह ही है कि इस

जीवन यात्रा यानी शारीरिक भोग वासना के भेद को समझना और विनाश होने वाले शरीर के अधिक मोह से पवित्र होकर शरीर का प्रकाशक सरूप जो जीवन शक्ति है— उसका द ढ़ विश्वास और निदिध्यास धारण करना।

वचन—4. ऐसे सत् परायणता के द ढ़ विश्वास से बुद्धि शारीरिक भोगों से वैराग्य को प्राप्त होती है। यानी तमाम भोगों में संजम को द ढ़ करती है और सत्नाम के निर्मल निदिध्यास में अपने आपको निहचल करती है। ऐसे पवित्र निश्चय को ही त्याग और भगति कहा जाता है।

वचन—5. जब बुद्धि अधिक द ढ़ विश्वास से सत्याग्रह में द ढ़ होती है, यानी शरीर को भोगों की खातिर नहीं समझती है, बल्कि शरीर को सत् पद प्राप्ति का साधन समझती है, ऐसे पवित्र भाव को प्राप्त करके तमाम मलीन वासनाओं से निर्मल हो जाती है और अनन्य प्रेम से आत्म-चिन्तन में मग्न होती है। यह साधन ही निर्मल अभ्यास है।

वचन—6. जब बुद्धि शरीर के सुख व दुःख के चिन्तन को छोड़कर केवल एक नाम के चिंतन में निश्चल होती है, तब अन्तर में आत्म-

साख्यातकार अविनाशी शब्द को अनुभव करके शारीरिक कर्म भोग की आसक्ति को त्याग करके एक अखण्ड अविनाशी शब्द जो निहकर्म और निर्वास सरूप है, इसमें अपने आपको सावधान करती है। ऐसी स्थिति को ही योग आरूढ़ अवस्था कहा गया है।

वचन—7. सार विवेक जीवन का यह ही है कि शरीर मद की आसक्ति में शारीरिक भोग वासना का जाल फैलता है और बुद्धि नित ही विकराल कर्म करके परम दुःख में नित ही भयभीत रहती है। और जब शरीर मद की आसक्ति को त्याग करके केवल सत् सरूप के परायण होती है, तब तमाम भोग वासना का अन्तर से अभाव हो जाता है और बुद्धि एकाग्र होकर निहकर्म सरूप अविनाशी शब्द में अन्तर विखे स्थिर हो जाती है। यह ही हालत परम धाम निर्वाण पद समता शाँति का सरूप है।

वचन—8. सार निर्णय यह ही है कि सत् के विश्वास और सत् के निदिध्यास से ही बुद्धि तमाम विकारों से निर्बन्धन होकर निर्भय शाँति को प्राप्त हो सकती है। इस वास्ते अपने सही जीवन के रखयक होकर नित ही अपने निर्मल निश्चय को सत् की खोज में द ढ़

करना चाहिए। यह ही मार्ग असली कल्याण का है। सब सज्जनों को अपनी सही कल्याण का सही यत्न करना चाहिए, जो इस जीवन यात्रा का उच्च कर्त्तव्य है। ईश्वर सुमति देवे।

जीवन सुधार

वचन—1. जन्म से लेकर हर एक जीव अपने-अपने शरीर के बन्धन में आसक्त होकर विचरता है, यानी शारीरिक कर्म जिसका फल द्वन्द्व सरूप दुःख व सुख है, उसमें बंधायमान होकर दुःख से छूटने की ख़ातिर और सत् शाँति प्राप्ति की ख़ातिर लमह ब लमह[1] अनेक प्रकार की कामनाओं को धारण करके यत्न करता है। मगर द्वन्द्व सरूप कर्म चक्र में रंचक मात्र भी सत् शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता है। यह ही जीवन सरूप माया का अद्‌भुत जाल है।

वचन—2. ऐसे जीवन यात्रा के भेद को जब तक यथार्थ सरूप से न जाना जाये, तब तक निर्मल उन्नति का सत् यत्न प्राप्त होना

1. प्रति क्षण

अति कठिन है। इस वास्ते गुणी पुरुष का परम धर्म है कि इस खेदयुक्त जीवन यात्रा के सही भेद को समझ करके सत् मार्ग, जो सत् शाँति के देने वाला है, उसमें अपने आपको द ढ़ करे। यह ही यथार्थ यत्न मानुष जीवन का परम लाभ है।

वचन—3. चूँकि शारीरिक कर्म छिन-छिन में तब्दील होने वाले हैं और साथ ही शरीर भी तब्दीली-युक्त है, इस वास्ते महज़ शारीरिक भोगों की प्राप्ति कर लेने से कभी भी सत् शाँति प्राप्त नहीं हो सकती है। ऐसी मूढ़ मति को धारण करके ही शरीर विनाश के समय सबको परम दुःख प्राप्त होता है। ऐसा जीवन का भेद समझना ही असली विवेक है, जिसके जानने से बुद्धि हर वक्त मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करके सत् अनुराग में द ढ़ होती है।

वचन—4. शरीर और शारीरिक कर्म तब्दीली-युक्त हैं। इस वास्ते इसमें सत् शाँति का प्राप्त होना जानना महज़ अधिक मूढ़ता है, जो कि हर वक्त परम अशाँति और परम दुःख के देने वाली है।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

वचन—5. ऐसी शारीरिक यात्रा को समझ करके नित ही अपने पवित्र निश्चय को शरीर की प्रकाशक शक्ति जिसको आत्मा, सत्, आनन्द, अकाल, ईश्वर और जीवन शक्ति आदि अनन्त नामों से सत्पुरुषों ने गायन किया है, द ढ़ करना चाहिए। ऐसा निश्चय ही सत्वाद या आस्तिकवाद है।

वचन—6. सार विचार यह है कि शरीर और शारीरिक कर्म-भोग अति बन्धन इस जीव को है, जिससे अधिक त ष्णा की अग्नि में जलता रहता है और सत् शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता है। ऐसे परम क्लेश से छूटने के वास्ते एक परमेश्वर का पूर्ण निश्चय से विश्वासी हो करके तमाम शारीरिक कर्म के फल को उसकी आज्ञा में छिन-छिन विखे समर्पण करना ही द्वन्द्व खेद से छुटकारा देने वाला यत्न है। इसी परम पवित्र निश्चय को भगति कहते हैं।

वचन—7. निर्मल भावना से प्रभु परायण होकर तमाम शारीरिक कर्म उसकी आज्ञा में समर्पण करने और छिन-छिन विखे प्रभु नाम को हृदय में चिन्तन करना, और तमाम शारीरिक

सुखों में समान हालत से विचरना—ऐसा सत् विश्वास ही सत् शान्ति आत्म-साख्यातकार के देने वाला है।

वचन—8. जिस गुणी पुरुष को ऐसा पवित्र भाव प्राप्त हुआ है, यानी अपने आपको सत् परायण करने के यत्न में जो द ढ़ हो रहा है, वह ही आन्तरिक आत्म-साख्यातकार यानी ब्रह्म शब्द को अनुभव करके निहकर्म सरूप अखण्ड शान्ति को प्राप्त होता है। यह ही अवस्था परम त प्ति और परम शान्ति है। यानी तमाम शारीरिक विकारों से निर्मल हो करके बुद्धि सत् सरूप अविनाशी शब्द में निहचलता को प्राप्त होती है। यह ही द ढ़ता परम तप और अभ्यास है।

वचन—9. जीवन यत्न की सार यह ही है कि एक प्रभु परायण हो करके तमाम शारीरिक कर्म निष्काम भाव से धारण करते हुए इस जीवन यात्रा को व्यतीत करना। ऐसे सत् यत्न से ही परम सिद्धि निर्वाण शाँति प्राप्त होती है और यह ही आन्तरिक यत्न तमाम सत्-पुरुषों का है।

वचन—10. हर वक्त सत् विश्वास और सत् निदिध्यास

को धारण करके अपनी अनर्थक कामनाओं का त्याग करके अपने आन्तरिक में सत् सरूप अविनाशी तत्त्व का सिमरण, ध्यान करते हुए सत् मर्यादा यानी पवित्र कर्म निष्काम सरूप में धारण करके अपने जीवन को व्यतीत करना ही जीवन का परम सुधार है। इसी से सरब की कल्याण है। सब प्रेमी पूर्ण निश्चय से विचार करके अपने जीवन की निर्मल सफलता प्राप्त करें।

कल्याणकारी निर्मल जीवन

वचन—1. ऐसे भयानक समय में जिसमें तकरीबन तमाम ब्रह्माण्ड में अशाँति ही अशाँति छाई हुई है और नित ही विशाल रूप में एक दूसरे की विनाश के उपद्रव प्रगट हो रहे हैं, उसका कारण महज़ वासना का अधिक फैलाव ही है, और वासना की अधिकता केवल भोगमयी जीवन से ही प्रगट होती है। और भोगमयी जीवन सत् विवेक के हीन होने से ही जकड़ता है। सो सार निर्णय यह है कि इस अन्धकार के समय में आम

मानुषों ने अपना जीवन कर्त्तव्य केवल भोग परायण बनाना ही द ढ़ किया हुआ है, जिस कारण हर एक मानुष की त प्ति किसी हालत में नहीं हो रही है। यह ही दुर्गम चक्र प्रभु माया का अद्‌भुत सरूप है। ऐसे अग्नि सरूप भयानक चक्र से छूटने के वास्ते केवल द ढ़ निश्चय से सत् परायण होना और मानसिक वासना की अधिकता को त्याग करके सहज जीवन को धारण करना, यानी सादगी, सत्य, सेवा आदि महागुणों को ग्रहण करना और जीवन यात्रा का परम कर्त्तव्य केवल सत् और त्याग के निर्मल अर्थ का पालन करना, निश्चय करके ऐसा जानना और धारणा करनी ही परम शाँति और यथार्थ प्रेम के देने वाला साधन है। यह ही द ढ़ता परम गुणी पुरुषों ने धारण करके अपने आपको सत् शाँत किया और दूसरे जीवों के वास्ते भी एक कल्याण का आदर्श सरूप बने। ऐसे ही तमाम सज्जन पुरुषों का कर्त्तव्य यह ही है कि अपने आप को कल्याण के मार्ग में द ढ़ करते हुए जीवन यात्रा को व्यतीत करें। तब ही इस अन्धकारमयी वासना के झंझट से छुटकारा प्राप्त हो सकता है। और आम मानुषों में

निष्काम भावना से परस्पर प्रेम प्रगट होकर सरब शान्ति प्रकाशती है। और यह ही धारणा निर्मल स्वराज्य और अहिंसावाद की सार को प्राप्त करती है। ऐसी यथार्थ जीवन की क्रिया को द ढ़ करके अपने आपको निर्मल अहिंसावादी बनाना हर एक मानुष का परम कर्त्तव्य है और यह ही कल्याणकारी निर्मल जीवन है।

सत्-जीवन स्थिति

वचन—1. इस संसार की जीवन यात्रा में तो सब प्राणी मात्र वैसे जीवित ही हैं, और शारीरिक वासना में अति आसक्त होकर अपनी जीवन क्रिया को अधिक विस्तार-पूर्वक फैलाकर आरज़ी[1] खुशी और दायमी रंज[2] को प्राप्त करके अपने आप में हर वक्त दुखित रहते हैं। यह ही अद्‌भुत माया का चक्र और काल संकट है।

वचन—2. सो ऐसे ही इस मानसिक दुःख की निव त्ति न होने के कारण जीव को शारीरिक जीवन इच्छा का अधिक मोह बना रहता है और शरीर के अन्त समय अधिक पश्चाताप को प्राप्त होता है, यानी अपूर्ण स ष्टि से त खावन्त ही जाता है। ऐसी जीवन यात्रा को

1. क्षणिक 2. दीर्घ ग़म

विचार करके गुणी पुरुष नित ही सत् परायण हुए हैं। यानी निष्काम कर्म द्वारा प्रभु इच्छा को द ढ़ करके निर्मान होकर जो सत् जीवन का पालन करते हैं, और अन्तर विखे निर्मल विश्वास करके एक प्रभु नाम के सिमरण को द ढ़ करते हैं, वे ही परम तपस्वी और द ढ़ अनुरागी पूर्ण पद की प्राप्ति करके यानी सत् सरूप को अनुभव करके सत् सन्तोष को प्राप्त होते हैं। उनका ही जीवन दुर्लभ है जो इस संसार की यात्रा में त प्त हुए हैं।

वचन–3. इस वास्ते सब गुणियों को इस जीवन यात्रा के सही अंजाम[1] को समझकर नित ही अपने आपको निर्द्वन्द्व सरूप अविनाशी तत्त्व में स्थित करना चाहिए और द ढ़ निश्चय से अन्तरमुख में एक परम पुरुष का ही सिमरण, ध्यान करना चाहिये। इस परिपक्व निर्मल सिमरत को प्राप्त करके ही जीव निर्वास आनन्द अविनाशी शब्द में विश्राम पाता है, यानी कर्म वासना से निर्बन्धन होकर शाँति निर्वाण को प्राप्त होता है। यह ही यत्न परम कल्याणकारी और गुरुमुख जीवन है, जिससे जीवन में सत् स्थिति

1. परिणाम

प्राप्त होती है। सब प्रेमियों को सत् अनुराग और जीवन उज्ज्वलता का प्रयत्न प्राप्त होवे।

जीवन सार सिद्धान्त

मनुष्य की ज़िन्दगी दुरुस्त विचार को हासिल करने की ख़ातिर है, न कि लकीर की फ़कीरी में फँसे रहने की ख़ातिर। ब्राह्मण जाति का वह आदर्श जो कि आसमान पर चमक रहा था आज पाताल की तरफ़ जा रहा है। इसका कारण क्या है ? इसको अच्छी तरह विचार करें। इस कमज़ोरी का कारण यह है कि आत्मिक उन्नति जो कि असली धर्म का सरूप है, लोप हो गई और ब्राह्मण कई तरह के तोहमात[1] में मुस्तग़र्क[2] होकर अपनी सामाजिक शक्ति और बुद्धि बल को खो बैठे। ज़माने की हालत को देखकर असलियत की तरफ़ करवट बदलनी चाहिये जिससे कमज़ोरी का कतई नाश हो जावे। सबसे पहले इन विचारों की तहक़ीक़ात करनी चाहिए।

1. पैदाइश का कारण क्या है, यानी जीव को देह क्यों कर मिली ?

2. यह तहक़ीक़ात करनी चाहिए कि देह और जीव का क्या सम्बन्ध है।

1. वहमों में 2. डूबना, मग्न होना, तल्लीन होना

ग्रन्थ

श्री समता विलास

3. देह के नष्ट होने पर जीव की क्या हालत होती है?

4. देह की क़ैद से मुखलिसी (छुटकारा) कैसे मिलती है?

5. देह और संसार का क्या भेद है ?

6. देह का असली सरूप क्या है और जीव का असली सरूप क्या है ?

7. जितने भी महापुरुष दुनिया में हैं उनके उपदेश को सुनकर धारण करने से कल्याण होता है या महज़ उनके दर्शन, भेंट से ?

8. क्या जीव का कल्याण करने वाला उसका अपना कर्म है जो श्रवण, मनन और निदिध्यासन में लाया जावे या दूसरे का साधन, जिसका अनुभव ही न हो ?

9. गति किसको कहते हैं ? गति देह की होती है या जीव की ?

10. जीव के कल्याण का यथार्थ साधन क्या है ?

11. धर्म नीति और रिवाज़ के भेद का विचार और रिवाज़ के सुधार का यत्न करना।

12. ईश्वर की परस्तिश[1] और भगति किस लिये की जाती है? जो ईश्वर से मुनकिर[2] हैं उनको क्या कमी है?

13. सत्पुरुषों का उपदेश क्या है ? और सत्-

1. पूजा 2. ईश्वर को न मानने वाला

पुरुष बनाने वाले कौन-कौन से असूल हैं, और सत्-पुरुषों की पूजा का क्या सिद्धान्त है?

अब मन्दरजा[1] बाला सवालात के जवाब का मुतालया[2] करें और विचार करें कि हमारा रवैया[3] (तरज़, अमल) क्या है और हमारा धर्म क्या कहता है? अपनी बुद्धि को विचार में ग़र्क करो तब असलियत को पाओगे।

1. जीव के देह धारण करने का कारण कामना यानी ख़्वाहिश है। जिस वक्त कामना अन्तःकरण में प्रगट हुई उसी वक्त देह की क़ैद में जीव आ गया, यानी देह सरूप को धारण करके अपनी कामना पूर्ण करने की कोशिश करने लगा। इस कामना का नाम ही माया भ्रम है।

2. जीव और देह का सम्बन्ध मालिक और मकान के मुताबिक है, यानी शरीर रूप मकान में जीव रूप मालिक है। गीता के आठवें अध्याय में अधिभूत, अधिदेव, अध्यात्म स्वरूप प्रक ति का मालिक अधियज्ञ सरूप जीवन शक्ति का बयान है। इसका विचार करें।

3. देह के नाश होने से जीव दूसरी देह को धारण करता है—उसी क्षण में अपनी ख़्वाहिश के मुताबिक। यह उपदेश अर्जुन को श्रीक ष्ण जी ने समझाया है कि जैसे मानुष पुराने कपड़े उतार कर नये धारण कर लेता है, उसी तरह एक देह से दूसरे देह में जीव प्रवेश करता है। नग्न हालत यानी बग़ैर जूनी प्रवेश के एक लमह (क्षण) भी अलग नहीं रह सकता।

1. निम्नलिखित 2. अध्ययन 3. रुख

4. देह की क़ैद से जीव को मुक्ति निष्काम कर्म से मिलती है। गीता का सारा लुबे-लुबाब[1] यह ही है और तमाम ऋषियों और पैग़म्बरों का सिद्धान्त भी यही है। यानी कामना युक्त कर्म देह के भोगों में आसक्त करते हैं, निष्काम कर्म देह की कामना से आज़ाद करते हैं, जैसे तमाम सत्पुरुषों का जीवन।

5. देह और संसार का भेद कोई नहीं है, यानी देह धारण करने से संसार का निर्वाह चलता दिखाई देता है। देह के नाश होने से ज़ाहिरी संसार अलोप हो जाता है। देह और संसार का एक ही रूप है। देह करके संसार है। असलियत में संसार कोई चीज़ नहीं है। जैसी जिसकी देह है वैसा ही उसका संसार है। इस लिए देह पर काबू पाने से संसार पर काबू पाया जाता है। यह निश्चय करें।

6. देह का असली सरूप मजमुआ[2] कर्म है। जीव का असली सरूप कर्मों का भोगता होना है। जब तक कर्मों का कर्त्ता अपने आप को मानता है तब तक जीव रूप होकर सुख और दुःख पाता है। जिस वक्त कर्त्ता भाव से आज़ाद हो गया उस वक्त समता सरूप ब्रह्म-शक्ति में लीन हो गया। (जैसे बर्फ और पानी का भेद)

7. जितने भी सत्-पुरुष संसार में आये हैं उनका सत् उपदेश ग्रहण करने से कल्याण होता है, महज़ दर्शन से कुछ नहीं होता। दुर्योधन, कैकेयी और भी

1. सार तत्त्व 2. समूह, इकट्ठा

लाखों मिसालें मौजूद हैं। अगर महज़ दर्शन से ही कल्याण होता तो अर्जुन में कायरता पैदा न होती, और श्रीक ष्ण को उपदेश न देना पड़ता। इसलिए सत् उपदेश को धारण करने की कोशिश करें। यही उसकी पूजा है और इसी में कल्याण है, विचार करें।

8. जीव के कल्याण करने वाला उसका अपना कर्म है। दूसरे (महापुरुष वगैरह) उसे ईश्वरीय कानून से छुड़ा नहीं सकते। जो इस सहारे पर हैं कि हम खुद नेक न बनें और पुत्र वगैरह या कोई पण्डित निज़ात[1] दिलायेगा, वे महज़ मूर्ख हैं। अपनी करनी से कल्याण है और अपनी करनी ही बन्धन रूप है। यह मसला कर्म है। अगर दूसरा कोई गति दे सकता होता तो ज़िन्दगी में नेक कर्म करने की कोई ज़रूरत न थी और श्रीक ष्ण को कर्मयोग के समझाने की अर्जुन को ज़रूरत न पड़ती। तमाम सत्पुरुषों का सिद्धान्त है कि जीव को अपनी करनी से सुख-दुःख होता है और कर्म फल को कोई मिटा नहीं सकता। यही मसला आवागवन है। अपनी करनी करके असलियत की पहचान करो, अपने सत् बुज़ुर्गों की हिदायत के मुताबिक[2]।

9. गति के मायने कल्याण के हैं। देह की गति यही है कि आग में जला दी जावे, मिट्टी में दबा दी जावे या पानी में बहा दी जावे। हिन्दू फ़िलास्फ़ी में जलाना श्रेष्ठ माना गया है। जीव की गति अपने कर्म अनुसार है, दूसरा कोई शक्ति नहीं रखता।

1. मुक्ति 2. शिक्षा के अनुसार

ग्रन्थ

10. जीव के कल्याण के वास्ते सत् कर्म की धारणा है यानी खुराक, लिबास, विचार, संगत और कोशिश नेक होवे जिससे जीव असली सरूप को प्राप्त हो जावे, यही असली गति है।

11. धर्मनीति यानी ज़िन्दगी और मौत का कानून अटल है और हर एक मुल्क और मज़हब के वास्ते बराबर है, यानी जीव मात्र का देह धारण करना और भोगों में गिरफ़्तार होना और इससे निज़ात हासिल करना एक ही धार पर है। दूसरा पहलू रिवाज़ का है। यानी वक्त के मुताबिक सोसायटी के लिए नियम, रिवाज़, हमेशा बदलता रहता है, जिस तरह वक्त बदलता है उसी तरह रिवाज़ भी बदलता रहता है। मगर धर्म नीति अटल है।

12. ईश्वर की भगति जन्म-मरण संसारी दुःखों से छूटने के लिए है, जिससे जीव ख़्वाहिश के अज़ाब[1] से छूटकर असली खुशी को हासिल कर लेवे जो हमेशा कायम है और निज आनन्द है। जो आदमी संसार की कामना की ख़ातिर भगति करता है, वह भगति असली खुशी नहीं दे सकती। यह अच्छी तरह विचार करें। जो ईश्वर को नहीं मानते वे भी दुनियावी खुशी व ग़मी में घिरे रहते हैं। ईश्वर का मानना महज़ निज़ात (मुक्ति) की ख़ातिर है।

13. सत्पुरुषों का सत् उपदेश अपनी आत्मिक उन्नति के लिए है, यानी पाप कर्मों से छूटकर सत् कर्म

1. इच्छा के फलस्वरूप दुख

की साधना करनी। उनका उपदेश मानना ही असली पूजा है। नेक कर्म करके वे खुद सत्पुरुष बने। निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निहचलता और उपकार यह गुण साधन करने और धारण करने सत्-पुरुषों का जीवन है। यह ही उनकी हिदायत (शिक्षा) है और इस पर अमल करना उनकी सच्ची पूजा है।

सत् शिक्षा

वचन—1. संसार की गर्दिश[1] को सही विचार करके हर वक्त अपने आपको निर्मल शाँति के मार्ग पर द ढ़ करना चाहिये और इस नाशवान् शरीर की यात्रा में निहायत उच्च कर्त्तव्य को पालन करके अपने जीवन को प्रकाशमयी बनाना चाहिये। यह ही मानुष जन्म का परम लाभ है। ईश्वर नित सत् परायणता में द ढ़ विश्वास देवे। जीवन की निर्मल सार यह है कि समता के सही अनुयायी बनकर अपने आपकी पहिले रहनुमाई[2] करनी फिर दूसरों की कल्याण में यत्न करना। यह ही परम कर्त्तव्य है। ईश्वर ऐसा ही द ढ़ पुरुषार्थ देवे।

वचन—2. सत् परायणता को छोड़कर केवल असत् परायण होना यानी पूर्ण निश्चय से भोगमयी

1. चक्र, चलायमानता 2. पथ-प्रदर्शन

जीवन की ही स्थिति धारण करनी, उसका नतीजा यह ही होता है कि अधिक वासना के जाल को फैलाकर नाना प्रकार के सुख भोग प्राप्त करके भी मानसिक शाँति प्रतीत नहीं होती—जैसा कि आजकल के समय का चक्र चल रहा है। न राजा को शान्ति है, न प्रजा को। बल्कि दिन-ब-दिन अपने अधिक लालच के फैलाव में आकर तकरीबन हर एक मानुष एक दूसरे का बाधक हो रहा है। ऐसे भयानक समय को विचार करके गुणी पुरुषों का फर्ज़ है कि अपने मानसिक भाव को सत् परायणता में पूर्ण द ढ़ करने का यत्न करे, यानी अपने बढ़ते हुए लालच को त्याग करके जीवन धारा की मुनास्बत[1] को धारण करे। मन, वचन और कर्म द्वारा सब जीवों की कल्याण का निश्चय द ढ़ करे। तब ही सत् भावना की द ढ़ता से मानसिक शाँति प्राप्त हो सकती है, जो कि हर एक जीव की अन्दरूनी चाहना है और ऐसा यत्न ही मानुष जन्म का परम कर्त्तव्य है।

वचन—3. भय से ही मन सत् परायण होता है। इस वास्ते मौत का भय या ईश्वर का भय मानुष के वास्ते होना लाज़मी है। ऐसे भय की द ढ़ता से ही भाव पैदा होता है, यानी अपनी जीवन उन्नति का विचार प्रगट होता है। और भाव से भगति और भगति से निर्मल प्रेम प्राप्त होता है। यह ही द ढ़ता मानसिक

1. अनुकूलता, मर्यादा

शाँति के देने वाली है। ऐसा निश्चय होना चाहिये। इसके उलट जिसका मन अति मद को धारण किये हुए रहता है, और विकारों से डरता बिल्कुल नहीं है, उतना ही वह मानुष दुराचारी और पतित कर्मों में अपने आप को नित ही जलाता रहता है और परम दुःखी रहता है। ऐसा विचार हर वक्त हृदय में धारण करना चाहिए और एक प्रभु का भय चित्त में रखकर नित ही सत् धर्म परायण होना चाहिये। यह ही पुरुषार्थ सत् शाँति को देने वाला है। ईश्वर सत् बुद्धि देवे।

....

मार्ग-धर्म में गुरु शिष्य सम्बन्ध

मारग धरम का कठिन है,
सहजे नहीं नर पाई।
मत कोई चालो धरम के मारग,
यहाँ दखना सीस लगाई।।
गुरु तो पाया प्रेम आहारी,
नित ही प्रेम को खाये।
अन्न पानी की सेवा करके,

शिष गुरु को पतियाये।।
कह बिद्ध सांझ बने दोनों की,
नहीं मोल तोल चुकाये।
वस्त कहीं ढूंढे कहीं,
यतन अकारथ जाये।।
सीस लिये बिन नहीं गुर पतियाये,
कठिन सांझ यह भारी।
गुरमुख हो के रमज़ पछाने,
तब लेखा सुखकारी।।
सन्मुख दर्शन नहीं जन कीजे,
पाछे प्रेम लगाये।
जब खेले तब हार को पावे,
मनुआं नित पछताये।।
समझ सोच के सांझ बनाओ,
दोहां धिरां दी मीता।
लेखा पूरन पूर होवे,
तब जीवन हो सुख रीता।।
सिर सिर बाजी उठके खेलो,
ओढ़क जंगल बासा।
सत्‌गुरु सेवा नाम की पूजा,
कीजे बन्ध खुलासा।।

गुरमुख जीवन जग में पाओ,
सांझ को तोड़ निभाओ।
'मंगत' कीरत निर्मल जग में,
लख लख त पत समाओ।।

स्त्री पुरुष जीवन सम्बन्ध
पतिव्रत धर्म

पतिव्रत के धरम को,
जो तिरिया पाले नीत।
पूर मनोरथ तिसके,
जो धारे सत परतीत।।
प्रभु सरूप सम जान के,
निज पति पूजे जो नार।
सत आज्ञा नित पालन करे,
नित राखे सत आधार।।
पति कुटुम्ब की दासी होवे,
प्रेम से सेव विचारे।।
शरम पत पूरन चित राखे,
नित निर्मल वचन उचारे।।
ग ह धरम का पालन करे,
अति प्रीती को धार।
सत संगत से प्रीत करे,
नित राखे चित उपकार।।

सत् धरम का जीवन पावे,
सो सतवन्ती नार।
अधिक सुख परापत होवे,
देव पाये परिवार।।
नित सत्वादी, नित परउपकारी,
नित सादा रहनी धारी।
पति आज्ञा में मन तन अरपे,
पावे पति व्रत सो नारी।।
जग जीवन होये देव समाना,
यश कीरत बहु पाई।
'मंगत' माता जगत की,
सो नारी नाम धराई।।

पुरुष धर्म

सदाचारी मन सुशील,
गुरु भगत नित होये।
एक प्रभु का राखे विश्वासा,
नित निर्मल करम परोये।
ग हस्थ धरम का पालन करे,
नित साची नीति धार।
गुरु वचन में प्रीत रक्खे,
निर्मल सुने विचार।।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

अपनी देह का अंग नित,
निज नारी को जाने।
धरम युक्त होए सेवा करे,
यह नीति सार पछाने।।
पर नारी सम मात पछाने,
नित संगत साची धारे।
आहार पवितर विचार नित निर्मल,
नित साचा करे व्यौहारे।।
मात पिता की आज्ञा माने,
नित चित्त से सेवा कीजे।
पर उपकारी जीवन राखे,
सरब जियाँ सुख दीजे।।
सादा जीवन नित ही राखे,
प्रभु चरनी प्रीत विचारे।
आज्ञा प्रभु में सब कुछ देखे,
द ढ़ निश्चा यह धारे।
धरमयुक्त परिवार बनावे,
नित साची रहनी रहाये।
दीन दुःखी की सेवा कीजे,
जग जीवन सार लखाये।।
कठिन मारग यह ग हस्थ का मीता,
जो धरम सहित नित धाई।
'मंगत' देव सरूप सो जग में,
नित पावे सुख अधिकाई।।

भूत प्रेत पर विचार

वचन—1. बीमारियाँ तीन प्रकार की होती हैं :—

(क) आधि—जो मन की कल्पना से उत्पन्न हुई हो।

(ख) व्याधि—जो शरीर के तत्वों के बिगड़ने से प्रगट हो। जिनको आम बीमारियाँ कहते हैं।

(ग) उपाधि—जो बाहिर से शरीर पर कष्ट प्राप्त होवें, कोई ज़ख्म आ जावे या गिर पड़े या किसी बैरूनी ताल्लुक[1] से खेद प्राप्त होवे।

आधि रोग यानी मन की कल्पित जो बीमारियाँ हैं; बहुत ग़म, बहुत भय, बहुत गुस्सा और बहुत खुशी से मन, बुद्धि अपने असल उसूल को छोड़कर ग़शी में चली जाती है और हालते ग़शी[2] में तरह-तरह के वाक्यात बयान करती है। उस बेहोशी हालत को जिन्न, भूत, पिशाच, देव, परी आदि नामों से लोग पुकारते हैं। दरअसल[3] अति पाप कर्मों का जब अन्दर ज़ोर हो जाता है उस वक्त वे पाप कर्म ही भय देने वाले हो जाते हैं। ज़्यादा ग़म से ज़्यादा भय, ज़्यादा गुस्सा, ज़्यादा खुशी से ये हालतें होती हैं। उनका इलाज भी यह ही है कि जिस तकलीफ़ से यह हालत हुई हो वह दूर होवे। बाकी जो जिन्न वग़ैरा निकालना है, वह भी एक ढंग है, जिससे

1. बाहिरी सम्बन्ध 2. बेहोशी की हालत 3. वास्तव में

बीमार की बुद्धि पर अच्छा असर पड़े और उस भय से निर्भय हो जावे। ये कई एक तरीके हैं। मगर ये सब मन के तोहमात[1] हैं, और पाप कर्मों की हालत है। इन सबका बड़ा इलाज सत्कर्म और ईश्वर नाम सिमरण है। इन तोहमात पर मोतकिद[2] होने से बुद्धि ज़्यादा कमज़ोर हो जाती है और उल्टी भ्रमों में फँसकर ईश्वर हस्ती से मुनकिर हो जाती है और ज़्यादा ऐसे अज़ाबों[3] में गिरफ़्तार हो जाती है[4]। इस वास्ते बिलकुल इन वहमों को दिल में जगह न देनी चाहिए, जिससे कभी भी ऐसी हालत तारी न होवे[5]। महापुरुषों ने इस मन के आधि रोगों की खातिर केवल उपाय शुद्ध आचार बतलाया है, और कभी भी इन तोहमात की कथा-प्रसंग श्रवण न करे। जिससे बुद्धि बलवान रहे। ऐसी बीमारियाँ मन के भ्रम से होती हैं। अपनी अनर्थक कल्पना जिन्न, भूत के सरूप में दिखलाई देती है। कोई खास सरूप नहीं है। जो इन तोहमात को ज़्यादा तसव्वुर[6] में लायेगा ज़्यादा तकलीफ़ पायेगा। इस वास्ते हर घड़ी ईश्वर विश्वास और नेक कर्म धारण करने चाहिये। जब ऐसी हालत किसी पर तारी हो जावे उस वक्त सत्पुरुषों के नाम की दोहाई के मन्त्र वगैरह भूत के निकालने वाले पढ़ते हैं और कुछ धूप वगैरह देते हैं, जिससे बुद्धि फिर निर्भय हो जाती है। यह निश्चय करें कि सत्पुरुषों के नाम की इतनी बरक़त है, जिससे बुद्धि फिर अपने असली सरूप में आ जाती है। आखिरी फैसला यह है कि पाप कर्मों से बुद्धि कमज़ोर होकर ऐसे रोग में मुब्तिला[7] हो

1. वहम 2. विश्वासी 3. दुःखों 4. घिर जाती है 5. छा न जाएं 6. ध्यान 7. ग्रस्त

जाती है। कई नामों से लोग इन बीमारियों को पुकारते हैं। तमाम शारीरिक, मानसिक बीमारियों का इलाज ईश्वर विश्वास और नेक कर्म हैं। हर वक्त धर्म परायण होना चाहिए जिससे मन में कभी भी खौफ़ पैदा न होवे और न ही बुद्धि ऐसी हालत में मुब्तिला होवे। यह निश्चय कर लेवें। जिन्न, भूत वास्तव में कोई चीज़ नहीं हैं। यह अपने मन की विपरीत कल्पना का सरूप है। गाह-बगाह कोई जीव ऐसी हालत में मुब्तिला होता है। शारीरिक रोग जो इस किस्म के होते हैं, वे सत्पुरुषों के नाम की दवाई और धूप, दीप-सत्संग से जाते हैं। यह कोई अहम मसला[1] नहीं है। अपनी बुद्धि के मुताबिक कुछ न कुछ लोग समझते हैं। मगर यथार्थ निर्णय यह ही है कि मन का भयभीत हालत में हो जाना। हर वक्त धर्म परायण जीवन जो रखने वाले हैं और इन तोहमात को दिल में जगह नहीं देते हैं, वे कभी भी इस भयंकर हालत को प्राप्त नहीं हो सकते हैं।

नवधा भगति का निर्णय

नौ प्रकार की जो भगति है वह सब अन्तर्मुखी मन की भावना अनुकूल आत्मदेव की पूजा है। सिर्फ अज्ञानी लोग बाहिर्मुखी उन उसूलों को अपना कर ही भगति मान बैठे हैं। मगर बग़ैर सत् विचार के मानसिक दोष नाश नहीं होते हैं और न ही निष्कामता चित्त को प्राप्त होती है, ख़्वाहे बाहिर्मुखी कितने ही ठाठ क्यों न

1. बड़ी समस्या

बना लेवे। जितने भी गुणी पुरुष सत् शान्ति को प्राप्त हुए हैं, वे सब अन्तर्मुखी निर्मल भगति को प्राप्त करके ही निर्भय हुए हैं। अन्तर्मुखी नवधा भगति को धारण करना असली पूजा है, बाहिर्मुखी सब नकल है। इससे निर्मल शाँति प्राप्त नहीं होती। इस वास्ते अन्तर्मुखी नवधा भगति का सार निर्णय यह है—

वचन—1. **श्रवण**—यानी शरीर और संसार को निश्चय करके नाशवान् देखना और आत्म-तत्त्व को सरब व्यापक और अविनाशी जानकर नित ही सत्संग द्वारा महिमा श्रवण करनी और अन्तर विखे शब्द को सत् यत्न करके श्रवण करना, जिस करके मन सब कर्म विकारों से निर्मल होकर स्थिरता को प्राप्त हो जावे।

वचन—2. **कीर्तन**—जब अन्तर्मुख सत् शब्द को श्रवण किया, तब बुद्धि सब संसार को तुच्छ जान कर उस परिपूर्ण तत्त्व को अनुभव करके अत ही महिमा विचार करती है और प्रेम में आकर मन, वचन, कर्म द्वारा उस निर्भय आनन्द को प्रगट करती है। सत्पुरुषों के जीवन से अकसर ऐसी लीला का पता लग ही जाता है। मन करके निर्मानता और उदासी, वचन करके अत उस्तत का विचार प्रगट करना, ख़्वाहे साधारण भाव से कर्म

करके सब जीवों को सुख देना और अन्तर से निर्लेप रहना, यही असली प्रभु कीर्तन है जो कि तत्त्व ज्ञानी के जीवन से ही अनुभव हो सकता है। वैसे कई डूम और भाँड नाच-नाच कर अद्भुत लीला प्रभु की प्रगट करते हैं मगर बाहिर्मुखी होने से थोड़े ही समय के अन्दर सब रस जाता रहता है। कई बड़े-बड़े प्रसिद्ध महात्माओं ने प्रभु लीला को राग द्वारा गायन किया। वह तब ही हुआ जब उनके अन्दर प्रभु का राग अखण्ड शब्द अद्भुत सरूप से प्रगट हुआ और हृदय में समाई न जाने के कारण उन सत्पुरुषों ने राग तथा विचार के सरूप में बाहिर लीला को प्रगट किया। उसके आनन्द को वे खुद ही जानते हैं। मगर संसारी जीव अन्तर्मुखी भेद को न जानते हुए बाहिर से नकल बनाकर अपना समय गंवा देते हैं। असली कीर्तन को प्राप्त नहीं होते कि जिस को प्राप्त करके फिर दूसरी वस्तु का मोह नहीं रहता। अन्तर्मुखी कीर्तन जिनको प्राप्त

हुआ है वे ही निर्मल कीर्तन के भेद को जानने वाले हैं। बाकी सब दिखलावा और मन परचावा है। न ही नकल से प्रभु प्रसन्न होते हैं, और न आन्तरिक शाँति प्राप्त होती है। सिद्ध पुरुषों का राग और प्रेम में आकर बेसुध हो जाना—इस गति को वे खुद ही जानते हैं। जो उनकी नकल उतारने वाले होते हैं और आँतरिक भेद को यानी शब्द कीर्तन को नहीं जानते वे अकसर दम्भ करके लोगों को गुमराह करने वाले और ठगने वाले होते हैं। उनका प्रभाव प्रभु भगति को नाश करने वाला होता है। आजकल इस नकली कीर्तन का बड़ा प्रभाव फैल रहा है। बताओ कितने एक जीव निर्मोह होकर प्रभु अनुराग में सत् शाँति को प्राप्त हुये हैं? कई पाखण्डी नकली कीर्तन करके लोगों को भरमा कर कुछ न कुछ आखिर दम्भ ही करते पाये गये हैं। सार विचार यह है कि पहले अन्तर्मुखी शब्द को अनुभव करें; फिर उसका कीर्तन यथार्थ रूप से प्राप्त होगा, जिसको प्राप्त करके हर समय राग-अनुराग

में लीन रहकर दुनिया को भूल जाओगे। वह ही हालत निर्भय शाँति की है। कोई ही गुरमुख इस निर्मल भेद को जानता है और निर्मल कीर्ति रूपी भगति को प्राप्त होता है—ग़ौर करके यह विचार करें।

वचन—3. **सिमरण**—यानी अन्तर्मुखी होकर सरब महिमा को हृदय में स्थित करके उस अखण्ड आत्म-तत्त्व का सिमरण करना। इसका विस्तार आगे बहुत दफा हो चुका है। सिमरण का सार निर्णय यह है कि जिसको सिमरते हुए उसी का सरूप हो जावे। ऐसा सिमरण प्रभु का करने से सब पाप नाश हो जाते हैं। कोई ही परम सन्त इस सिमरण भगति को जानता है या प्राप्त हुआ है।

वचन—4. **पादसेवन**—का निर्णय यह है कि तमाम जीवों को प्रभु का सरूप जानना और हृदय से सबके चरणों की सेवा करनी, यानी सबको प्रसन्न करना। ऐसी निष्काम प्रीति से जो जीवों को सुख देता है और प्रेम करता है, वह ही प्रभु के पाद-सेवन करने वाला है। यानी सरब-व्यापक एक अखण्ड सरूप को अनुभव करके तब ही तन, मन, धन से सब जीवों को सुख देता है, वह ही समदर्शी पुरुष प्रभु पाद-सेवन भगति को प्राप्त करके प्रभु रूप हो जाता है।

वचन–5. **अर्चन**—का निर्णय यह है कि खिमा, दया रूपी धूप से सब जीवों के हृदय को प्रसन्न करना और चित्त में अधिक निर्मानता को धारण करना। ऐसी अर्चन रूपी भगति को जो प्राप्त हुआ है, वह ही ईश्वर की लीला को जानने वाला है और परम भगत है। यानी आन्तरिक में आत्म-सरूप में सदैवकाल अचल रहता है। संसारी मोह, माया का जाल उसको लेप नहीं कर सकता। कोई ही निर्मान और निष्काम अर्चन रूपी भगति को पाता है।

वचन–6. **बंदन**—का निर्णय यह है कि सब संसार को विनाश समझकर एक अविनाशी तत्त्व को अविनाशी जानकर बन्दन करना और सब जीवों में उसका प्रकाश समझकर सबके चरणों की धूल को दुर्लभ जानना ही असली बन्दना है। कोई ही परम योगी इस बन्दना रूपी भगति को प्राप्त होता है। ऐसी निर्मान गति को जो प्राप्त हुआ है वह ही त्रैगुण माया के जाल से निकलकर आत्म-सरूप में लीन हो जाता है।

वचन–7. **दास्यभाव**—का निर्णय यह है कि जो कर्त्ता-हर्ता प्रभु को जानकर हृदय में नित ही निर्मान भाव से प्रभु का ध्यान करता है, वह ही अखण्ड शब्द को अनुभव कर सकता है;

यानी दास भाव में द ढ़ होकर सरबनाथ को प्राप्त होता है।

वचन—8. **सखा भाव**—का निर्णय यह है कि शरीर का साखी नित प्राप्त एक आत्मा को जानना, वह ही परम मित्र तीन काल रखयक समझना। यह ही भाव सखा भगति है।

वचन—9. **आत्म-निवेदन**—का निर्णय यह है कि अन्तर-बाहिर सरब सरूप एक आत्मा को अनुभव करना। आपा, पर के भरम को हिरदे से नाश कर देना। यह अवस्था आत्म-निवेदन की है, यानी केवल सरूप एक आत्मतत्त्व को ही जानना।

ये सब अंग भगति के हैं। जो भी अन्तर्मुखी साधन करने वाला है, वही इन तमाम भावों सहित होकर आत्म-सरूप में लीन हो जाता है। निर्मल चित्त से विचार करें। बाहिर्मुखी भगति के अंग धारण करने से निर्भय सरूप नारायण प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक कि भगति रूपी सूरज हृदय में प्रकाश न करे। जो भी आत्मदर्शी पुरुष हुआ है, या होगा, उन सब में यह भगति के अंग मौजूद होते हैं। दुर्मत को नाश करने के वास्ते यह भगति रूपी सार साधन है। जो भी निर्मल चित्त से अन्तर्मुख होकर प्रभु परायण होता है, वही भगति के निर्मल भेद को जान सकता है—इस निर्णय के

अलावा सब दिखलावा है और अंधकार है। निर्मल चित्त से विचार करें। निर्मल भगति का सार सरूप यह है कि निष्काम भाव से सब कर्म आत्म-समर्पण करके और निमख-निमख करके एक नाम का सिमरण करना, दुःख-सुख प्रभु इच्छया में देखना। ऐसी द ढ़ भावना से देह मद का नाश हो जाता है, जो परिपूर्ण अविनाशी पद है। जो खोज करता है वह पाता है, वैसे कथनी से कुछ हासिल नहीं होता। प्रभु अमली जीवन देवे।

समर्पण कर्म

वचन—1. समर्पण कर्म का निर्णय यह है कि बुद्धि कर्त्तापन को धारण करके शारीरिक कर्मों में आसक्त होकर के नित ही शुभ-अशुभ कामनाओं के ज़ेरे असर[1] होकर कर्म फल द्वन्द्व में अपने आपको बंधायमान करती है। यानी प्रिय और अप्रिय कर्म के फल में नित ही चलायमान होती रहती है। यह ही अवस्था अज्ञानमयी खेदयुक्त स्थिति है।

वचन—2. ऐसी स्थिति में अनन्त प्रकार की वासनाओं को धारण करके बुद्धि कर्म फल द्वन्द्व के भोग में अपने आपको अति आसक्त करके नित ही दुःख व सुख के भयानक जाल में अधीर रहती है। यह ही अवस्था संसार का पूर्ण रूप और अति अज्ञानमयी परम दुःख

1. अधीन, बन्धन में

है। इस अज्ञान के विनाश करने के वास्ते कर्मयोग यानी समर्पण कर्म का मार्ग सहज और परम पद निज सरूप की स्थिति के देने वाला है। यानी कर्त्तापन जो मूल अशाँति का कारण है, इसको द ढ़ निश्चय से ज्यों-ज्यों बुद्धि त्याग करके आत्म-सरूप को कर्त्ता जानती है, त्यों-त्यों कर्मफल द्वन्द्व के खेद से धीरज को प्राप्त होती है, और मलीन वासनाओं से निर्मल होकर के सत् श्रद्धा, सेवा, अनुराग को प्राप्त करके सत्-नाम के चिन्तन में द ढ़ होती है।

वचन—3. जब सत्नाम परायणता में बुद्धि निहचलता धारण करती है, यानी लमह-ब-लमह[1] सत् नाम के चिन्तन में प्रवीण होती है और तमाम शारीरिक कर्मों का फल प्रभु आज्ञा में समर्पण करती हुई केवल निमित्त मात्र कर्म करती है, तब ऐसी द ढ़ अनुराग सहित उपासना को प्राप्त करके अपने आप में परम एकाग्र और शुद्ध हो जाती है, और अपने अन्तर में परम तत्त्व अविनाशी सरूप अखण्ड शब्द को अनुभव करके परम शान्त और त प्त होती है। यानी आत्म-सरूप जो अखण्ड, अखेद, अद्वैत, सर्वज्ञ, समसरूप, निराकार, निर्वास, निहकर्म और निर्वाण सरूप है, उसमें अपने आपको लीन करती

1. प्रति क्षण, पल पल

है और शारीरिक कर्मों के फल से बिलकुल निर्बन्ध होकर अन्तर से पूर्ण शरीर से विलग हो जाती है। यह ही अवस्था निहचल बुद्धि और समपद स्थिति का पूर्ण सरूप है। ऐसी सत् स्थिति को जब बुद्धि प्राप्त होती है तब जन्म-मरण के चक्र से छूटकर अपने आप में पूर्ण सरूप हो जाती है, जो अकथ और अलेख पद है। जिसने इस परम पवित्र अखण्ड शाँतमयी अवस्था को प्राप्त किया है, यानी अपने निज सरूप को अखण्ड निश्चय से जान लिया है, वह ही पुरुष धन्न है और उसका आनन्दमयी जीवन दूसरों के वास्ते परम कल्याणकारी और दुर्लभ शिक्षक है। इस अति गुह्य विचार को बार-बार विचार करके अपने अंतर समर्पण भावना को द ढ़ करें। ऐसी द ढ़ता से ही बुद्धि निर्वास और निष्पाप होकर के सत् सरूप को अनुभव कर सकती है। ईश्वर सत् परायणता बख्शे।

विश्व शान्ति संदेश

वचन—1. जब तक जीवन-यात्रा की सही तहक़ीक़ात न की जावे, तब तक सही यत्न की प्राप्ति होनी अति कठिन है, और सही यत्न के

बग़ैर परम शान्ति का प्राप्त होना नामुमकिन[1] है। इस वास्ते मानुष-जीवन की उच्चता इसी में है कि इस जीवन-रूप संसार को अच्छी तरह से समझकर अपने आपको सही उन्नत करने का यत्न किया जावे, जिससे जीवन का अंजाम[2] मुकम्मिल[3] शान्ति का सरूप हो जावे।

वचन—2. सार निर्णय यह है कि हर एक मानुष तथा पशु तथा जड़ जूनी के जीव भी अपनी-अपनी सही शान्ति की खोज में अपनी-अपनी जीवन-यात्रा में यत्न-प्रयत्न कर रहे हैं, मगर गहरी ग़ौर करके देखा जावे तो अंजाम में सब यत्न नामुकम्मिल[4] ही प्रतीत हो रहा है। बल्कि कई गुना ज़्यादा अशान्ति का ही सामना करना पड़ता है—यह ही परम खेद सरूप संसार का अद्‌भुत चक्र है। इसमें सही तहक़ीक़ात[5] जो परम शान्ति, परम त प्ति और परम निर्भयता के देने वाली है, वह तहक़ीक़ात असली है। नहीं तो तमाम यत्न-प्रयत्न जो कि शान्ति के वास्ते दिन-रात सब कर रहे हैं, अकार्थ ही जायेगा—यह निश्चय होना चाहिए।

वचन—3. जीवन निर्णय—बुद्धि अहंकार की मलीनता सहित शरीर रूपी संसार को धारण करके

1. असम्भव 2. परिणाम 3. पूर्ण, अखण्ड 4. अपूर्ण 5. खोज

सत् की सत्ता यानी जीवन-शक्ति की सत्ता को भूल करके असत् को सत् बनाने के यत्न में और असत् में सत् शान्ति की प्रतीत रखती हुई प्रत्यक्ष ब्रह्माण्ड में शरीर द्वारा विचर रही है, यानी जीवन-शक्ति को भूल करके अहंकार की मलिनताई में गिरफ़्तार होकर के शरीर और शरीर के सुख भोगों की तबदीली से इन्कारी करती हुई अति मोह-वश हो करके शारीरिक भोगों में आसक्त हो करके, सत् शान्ति की तलाश कर रही है। यह ही अवस्था अज्ञानवाद, नास्तिकवाद, प्राक तवाद और भोगवाद की है।

वचन—4. बुद्धि ऐसे ही अधिक शारीरिक ममतावाद में गिरफ़्तार हो करके नाना प्रकार के शारीरिक भोगों को एकत्र करने के यत्न में दिन-रात लगी रहती है। और सत् शान्ति न प्राप्त होने के कारण अति से अति विस्तार रूप में भोगों को एकत्र करती रहती है, यानी चक्रवर्ती राज तक को भी प्राप्त कर लेती है। मगर सत् शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है—यह ही आश्चर्य जीवन का चक्र है।

बुद्धि इन्द्रियों के भोगों की अति चेष्टा में गिरफ़्तार हो करके ऐसे विलखन कर्म करती है, यानी चोरी, क़त्ल, जुआ, मुनश्यात सेवन, दुराचार, कपट-छल

आदि महा-विकराल कर्मों को धारण करके हर वक्त परम क्लेश-युक्त रहती है। यह ही नरक सरूप जीवन संसार है। ऐसे ही विकराल कर्मों के करने से अति अहंकार की जड़ता को प्राप्त हो करके शरीर को विनाश कर देती है, और अधिक क्लेश से ही शरीर से जुदा होती है। यह ही भोगवाद जीवन का नतीजा है।

वचन—5. जिस शान्ति की तलाश में शरीर को धारण किया और अधिक-से-अधिक जद्दोजहद[1] की गई, मगर अञ्जाम में सब नतीजा नादुरुस्त[2] निकला—ऐसा समझना ही गुणी पुरुषों का धर्म है।

वचन—6. बुद्धि जितनी भी शारीरिक भोगों की आसक्ति में आकर के बाहिर तत्त्वों की खोज में द ढ़ होती है, उतने ही नये-से-नये अजायबातों (आश्चर्यों) को अनुभव करके अति मोहित होती है और अपने-आप में नित ही अधीर रहती है। यानी तत्त्वों की खोज से अधिक-से-अधिक अश्चर्ज (अनोखे) मुतालया[3] प्रगट होते हैं, जोकि अंजाम[4] में परम दुःख और नाश के देने वाले होते हैं। उनमें सत् शाँति की प्रतीत रखनी अति मूढ़ता है। ऐसे अहंकार-वाद जीवन के भेद को समझना चाहिये। अगर अहंकारवाद को इस क़दर[5] धारण कर भी लिया जावे, जिससे सूरज, चन्द्रमा, पवन, पानी आदि

1. भरसक प्रयत्न, दौड़धूप 2. सही नहीं, ग़लत 3. समीक्षा, निरीक्षण 4. परिणाम 5. इस ढंग से

ताक़तों पर पूरा-पूरा कन्ट्रोल हो जावे तो भी अन्तर की बेचैनी और अधीरता से छुटकारा हासिल करना नामुमकिन है। इस वास्ते इन्द्रियों के भोगों के वश हो करके बाहर के तत्त्वों की तहक़ीक़ात करके नए-से-नए सुख-पदार्थ प्राप्त करने में बजाय शाँति के अधिक-से-अधिक अशाँति और भय ही प्राप्त होता है—यह निश्चय होना चाहिये। जैसा कि आजकल की साइंस का असर हर एक के अन्तःकरण में हो रहा है, हर एक मानुष बजाय ज़िन्दगी की क़ायमी[1] के ज़िन्दगी को नाश की तरफ़ ले जा रहा है। इस वास्ते इस बैरूनी तहक़ीक़ात[2] यानी अधिक मादा-परस्ती[3] जिसका नतीजा भयानक अशाँति, भ्रष्टाचार, अति छल-कपट और अति नाश के देने वाला है, इससे जाग्रत हो करके, यानी मादा-परस्ती की तहक़ीक़ात को छोड़ करके, जीवन-शक्ति की तहक़ीक़ात करनी चाहिये, जिससे असली मुद्दा (ध्येय, उद्देश्य) जो परम शान्ति निर्भय पद का है, वह पूरा हो जावे और यह मानुष-जीवन-यात्रा सफल होवे।

वचन—7. मादा-परस्ती यानी इन्द्रियों के भोगों में अधिक आसक्ति ही परम नाश के देने वाली है। जिस वक्त आम मानुष ऐसे भोगमयी

1. जीवन की स्थिरता 2. बाहिरी खोज, भौतिक विज्ञान 3. मायावाद/इन्द्रिय भोगों में आसक्ति

जीवन में अन्धे हो जाते हैं, उस वक्त अपने अन्तर में बढ़ती हुई त ष्णा की अग्नि अधिक उपद्रव की तरफ राग़िब[1] करती है, यानी दूसरे के नाश के यत्न को धारण करती है। तब साथ ही अपनी भी नाश हो जाती है। यह भयानक भ्रष्टाचार का नतीजा है।

वचन—8. बुद्धि अहंकारवाद में मलीन हुई हुई पाँच तत्त्वक शरीर में अति जड़ हो जाती है और पाँच तत्त्वों का स्वभाव जो पाँच विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार हैं, उनमें असली शान्ति को प्राप्त करने का यत्न इख़्तयार[2] करती है। जितनी-जितनी इन विकारों में आसक्त होती है, उतनी ही अधिक मलीनताई और क्लेश को प्राप्त होती है। एक लमह भर भी निर्भय नहीं हो सकती है। यह ही महान कष्ट रूप जीवन-संसार है। इस मादापरस्ती से विकारों की अग्नि अधिक प्रचण्ड हो जाती है और किसी किस्म का भी परहेज़ और संजम अन्तर में नहीं रहता है। तब मानुष एक पशु से भी बदतर हो जाता है और सरबनाश को प्राप्त होता है। जितनी-जितनी मादा-परस्ती में बुद्धि आसक्त होती है, उतनी ही अधिक जरूरतों को फैला करके अपनी अशान्ति को दूर करने की ख़ातिर दूसरों के सुख को

1. लगाना, प्रव त करना 2. धारण

हरण करने का यत्न करती है। मगर शान्ति की बजाय अधिक-से-अधिक अशान्ति को ही प्राप्त होती है। यह असुरवाद जीवन सरब-संकट का सरूप है।

वचन—9. ऐसा भोगवाद, प्राक तवाद और नास्तिकवाद जीवन के नतीजे को समझ करके अपनी गलत तहक़ीक़ात[2] से बाहोश होकर के जीवन-शक्ति की तहक़ीक़ात में यत्न करना चाहिए। जिससे अन्तर में सत्-शान्ति प्राप्त होवे और बाहर भी सत् शाँति अनुभव होवे। इस मादा परस्ती और भोगवाद जीवन को धारण करके जो चौबीस घण्टे अन्तर त ष्णा की अग्नि जलाती रहती है और अधिक बेकरार करती है, ऐसी बेचैनी में ग़रक हुए-हुए मनुष्य जो बाहर अमन का ढिंढोरा पीटते हैं, वे खुद धोखे में हैं और दूसरों को धोखा दे रहे हैं। यानी अमन का सरूप अपने ताईं तो अनुभव नहीं है, फिर दूसरों के वास्ते अमन का कौन-सा रास्ता हो सकता है? इस वास्ते हर एक मानुष का

प्रथम धर्म यह है कि अपने अन्तर की बेचैनी को दूर करे और निर्भय शान्ति को प्राप्त होवे। तब दूसरों के वास्ते उसका जीवन और वचन कल्याणकारी है।

वचन—10. मानुष जब तक मादा-परस्ती की द ढ़ता में द ढ़ है, तब तक पाँच विकार जो असली बदअमनी[1] और बेचैनी का सरूप हैं, इनसे छुटकारा हासिल नहीं कर सकता है। बल्कि इन विकारों का बेतरीका इस्तेमाल करके अपनी नाश और दूसरों का भी नाश कर देता है। यह ही असुर मार्ग है जो कि सरब कीर्ति और उन्नति के नाश के देने वाला है।

वचन—11. जब बुद्धि मादा परस्ती का नतीजा नाश रूप और खेद रूप अनुभव करती है, यानी शारीरिक तबदीली और शारीरिक भोगों की तबदीली को निश्चय से समझती है, जैसा कि प्रकृति का असली स्वभाव है, तब इस भोगवाद की आसक्ति से छूटने का यत्न इख़्तियार करती है। ऐसी बुद्धि वाला बाहोश मानुष है।

1. अशान्ति

जब बुद्धि को द ढ़ निश्चय से शारीरिक तबदीली प्रतीत होती है, तब शारीरिक दोषों से असंग होने का यत्न करती है—यह ही निश्चय सत् की तहक़ीक़ात है।

वचन—12. ज्यों-ज्यों असत् शरीर का मोह नाश होता है, त्यों-त्यों बुद्धि से अहंकार की मलिन उतरती जाती है और परम विवेक प्रवीण हो करके असलियत की खोज में लग जाती है। यानी नाशवान् शरीर जिस शक्ति से जीवित है, उसकी अनुभवता का यत्न करती है। जब जीवन शक्ति का निश्चय अधिक बढ़ता जाता है, तब भोगवाद, मादा-परस्ती से असंगता प्राप्त होती है, जो परम शान्ति का ज़हूर[1] है।

वचन—13. आख़िर जब बुद्धि अधिक द ढ़ निदिध्यासन से जीवन शक्ति का अनुभव करने का यत्न करती है, तब तमाम इन्द्रियों के भोगों से वैराग्य को प्राप्त होती है। उस वक्त त ष्णा की अग्नि से ठण्डक प्रतीत करती है, और अपने आप में प्रसन्नता को अनुभव करती है। ऐसे ही जब अधिक प्रेम से अपने आपको सत् सरूप में अन्तर में निहचल करती है, तब तमाम अहंकार की मलिन नाश हो जाती है और शुद्ध सरूप परम

1. प्रकट रूप

ग्रन्थ

श्री समता विलास

शान्त जीवन शक्ति आत्मा का बोध होता है। यह ही हालत मुकम्मिल बोध, मुकम्मिल सूझ और मुकम्मिल त प्ति की है। ऐसी अवस्था को प्राप्त करके पूर्ण आशावादी सन्तुष्ट पद को प्राप्त होता है, जो कि वास्तव में हर एक जीव की चाहना है। यह थोड़ा सा विचार नतीजा मादा-परस्ती की तहक़ीक़ात और जीवन शक्ति की तहक़ीक़ात का लिखा जाता है। इस वास्ते सब गुणी सुचेत होकर के असली कल्याण का मार्ग जो जीवन-शक्ति की तलाश का है—उसके परायण होने का यत्न करें, और मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करें, जिससे सरब का कल्याण होवे। अधिक मादा-परस्ती[1] से अधिक बेचैनी बढ़ती है और इन्द्रियों के भोगों की त ष्णा अधिक प्रचंड होती है, जो कि सरब अशाँति का सरूप है। इसके उलट जो जीवन शक्ति की तहक़ीक़ात है वह सही त्याग, सही उपकार और परम पवित्रता को सब विकारों से छुटकारा देने वाली है। इस वास्ते सही कल्याण का मार्ग सत् परायणता को धारण करना ही अपनी कल्याण और सरब की कल्याण है।

1. भौतिकता

वचन—14. एक मानुष का जीवन तथा सब मानुषों का जीवन आन्तरिक अशाँति में एक ही जैसा है। इस वास्ते जब तक सत्वाद का बुनियादी असूल पूर्ण निश्चय से धारण न किया जावे, तब तक निजी जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, तथा राजनैतिक जीवन कभी भी शान्तमयी नहीं हो सकता है। इस वास्ते इस मादावाद के ज़माने से बाहोश हो करके सत्वाद के मार्ग पर चल करके निर्मल त्याग को प्राप्त करके अपनी बढ़ती हुई जरूरतों को मर्यादा में लाने की कोशिश करनी चाहिये, क्योंकि जरूरतों की अधिकता ही परम अशाँति और भ्रष्टाचार के फैलाने वाली है और तमाम विश्व में अशान्ति का कारण बनी हुई है।

वचन—15. मादा-परस्ती से कभी भी ज़रूरतों की अधिकता कम नहीं होती बल्कि दिन-ब-दिन बढ़ती जाती है और तमाम मानुषों में शत्रुपन का भाव प्रगट करती है, और नित ही खेद के देने वाली है। इस वास्ते इस खेद-युक्त नामुकम्मिल जीवन के निश्चय को त्याग करके जीवन शक्ति जो सत् का सरूप है, उसके परायण होना और अपनी जरूरतों को बिल्कुल कम करने की

कोशिश करना ही परम कल्याण और परम पवित्रता के देने वाला यत्न है। चूँकि यह जीवन-निर्णय का प्रसंग अति गुह्य है और इसका बयान करते-करते तो कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं, इस वास्ते थोड़ा-सा विचार तमाम गुणी पुरुषों की भेंट किया जाता है, जिससे वह इस बढ़ते हुए मादा-परस्ती, खुद-परस्ती और भोग-परस्ती के सैलाब को रोकने की कोशिश करें अपने-अपने पवित्र आचरण और सत्‌ग्रही निश्चय से। अगर यह सैलाब रोका न गया तो इसका नतीजा एक निहायत विनाश की शक्ल इख़्त्यार कर लेगा, और इस मादीयत की चमक-दमक के ज़माने को एक तारीक़ी की[1] सही शक्ल में तब्दील कर देगा, क्योंकि मादा-परस्ती का नतीजा अक्सर ऐसा ही होता है। सब गुणी पुरुषों को जीवन की सही तहक़ीक़ात में कोशिश करनी चाहिए, जिससे निर्मल त्याग, परहित, निर्भयपन, अखण्ड शाँति निर्वास पद प्राप्त होवे, जो इस जीवन का असली मिशन है।

वचन—16. केवल सदाचार की द ढ़ता से, यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों पर काबू पाने से ही अपने आपको शान्ति प्राप्त होती है। ऐसे ही दूसरों को भी पवित्र

1. अन्धेरे की

आचरण की ठण्डक से सत् शान्ति प्रतीत होने लगती है। यह ही रास्ता अमन और शान्ति का है। इसके विरुद्ध जितना भी जीवन विकारमयी होता जावेगा, उतनी ही अशान्ति बढ़ती जावेगी और मानुष पशुओं से भी बुरे स्वभाव वाले बन कर एक-दूसरे के नाशक हो जावेंगे।

वचन—17. सदाचार की द ढ़ता केवल सत् परायणता की द ढ़ता से ही प्राप्त होती है। इस वास्ते जो राजा सदाचार का रख्यक होता है और खुद भी परम उच्च आचरण वाला होता है, उसके निर्मल त्याग से सब मानुषों के अन्दर शुभ भावनाएँ पैदा होती हैं और पूर्ण शान्ति का सब में प्रकाश होता है। हर एक एक-दूसरे की कल्याण का चाहक बनता है। ऐसा समय ही देवताओं का समय होता है।

वचन—18. जो सदाचार की उच्चता को नहीं समझते और ऐसा कहते हैं कि लोक सेवा में अपने ज़ाती[1] आचरण की कोई ज़रूरत नहीं है बल्कि लोक सेवा का प्रोग्राम मुकम्मिल निभाना चाहिए, ऐसे सज्जन प्राकृत मार्ग में बिल्कुल अनजान हैं, क्योंकि सबसे पहले एक दूसरे पर असर आचरण का ही होता है। शुद्ध आचरण वाला पुरुष सब जनता के

1. निजी, व्यक्तिगत

हृदय में निवास करता है और भ्रष्टाचारी चतुर, सब कुछ पब्लिक सेवा करते हुए भी, लोगों के दिलों में उसके जीवन का कोई असर नहीं रहता है। बल्कि जिनकी सेवा की जाती है वे ही दुश्मन बन जाते हैं। इस वास्ते इस निर्णय को अच्छी तरह से समझना चाहिये।

वचन–19. अगर कोई सही उन्नति करना चाहता है तो पहले अपने आपको सत् परायण बना करके अपने आचरण को अधिक से अधिक शुद्ध करने का यत्न करे। तब उसका उच्च जीवन उसकी अपनी कल्याण और दूसरों के कल्याण के वास्ते परम शिरोमणी हो सकता है। यह ही सत्पुरुषों का मार्ग है। अपने त्याग से और अपनी सतग्रही भावना से दूसरों के अन्दर सत् त्याग और सत् भावनाएँ पैदा होती हैं जो कि असली शाँति का सरूप हैं। हर एक मानुष अपनी सही मानसिक पवित्रता को प्राप्त करने का यत्न करे, क्योंकि परम सुख और सरब विजय इसी में है और यह ही अमन और शाँति का रास्ता है। सब गुणी पुरुषों को यह प्रसंग

गौर करके पढ़ना चाहिए और फिर इस पर अमल करने की कोशिश करनी चाहिए। तब ही सही जीवन उन्नति के भेद को समझ में पा सकेंगे।

वचन—20. गो इस अति गुह्य विचार को हर एक सज्जन समझने की कोशिश न करेगा, मगर फिर भी बार-बार इन विचारों को अपनी आन्तरिक हालत में घटा करके देखें, तो जीवन का सही निर्णय पाएँगे और इस मादा-परस्ती की विचारधारा को रोकने की चेतावनी दी गई है, जिससे इस भयानक भ्रष्टाचार का नाश होवे और सदाचारी जीवन की द ढ़ता सबको प्राप्त होवे, और सरब मानुष मात्र में एकता प्रेम प्रकट होवे, जिस करके निर्मल शाँति से सब गुणी अपनी-अपनी जीवन यात्रा को मुकम्मिल कर सकें और इस समय को देवताओं का समय बना देवें।

राम राज्य का सरूप

वचन—1. ज़रूरतों की मुनास्बित[1] यानी ज़्यादा नुमायशी, अय्याशी, ज़िन्दगी से परहेज़।

1. मर्यादा

ग्रन्थ

श्री समता विलास

वचन—2. तमाम जनता को आत्म-निश्चय की द ढ़ता यानी तोहमात से छुटकारा प्राप्त हो।

वचन—3. राज सेवक तथा जनता में परस्पर प्रेम हो।

वचन—4. राज सेवक निर्पक्ष, निर्लोभ और शुद्ध आचारी हों।

वचन—5. विद्या का आचरण सदाचारी यानी ब्रह्मचर्य और सादगी सहित हो।

वचन—6. स्त्री जाति की आज़ादी एक मर्यादा तक होनी चाहिए। आध्यात्मिक विद्या में स्त्रियों को अधिक द ढ़ता होनी चाहिये।

वचन—7. तमाम नशे और नाक़िस ग़िज़ाओं[1] पर पाबन्दी होनी चाहिए।

वचन—8. कारोबार के तमाम सिलसिले मर्यादा में और समय की पाबन्दी सहित होने चाहिएँ।

वचन—9. विद्या निदिध्यासन में लड़के-लड़कियों के स्कूल अलहदा-अलहदा होने चाहिएँ। एवं सदाचारी जीवन अनुकूल विद्या का प्रबोधन होना चाहिये।

वचन—10. हर एक किस्म की विद्या का जो-जो मुस्तहिक[2] होवे उसको वैसी ही सिखलानी चाहिये।

समता अपार शक्ति

1. घटिया खुराक 2. अधिकारी, पात्र

वचन–11. राज का बढ़ता हुआ धन ज़्यादा से ज़्यादा विद्या निदिध्यासन में खर्च करना चाहिये।

वचन–12. सब जीवों को अपनी सही उन्नति की आज़ादी और सहायता होनी चाहिए।

वचन–13. सत् असूलों का ज़्यादा से ज़्यादा प्रचार होना चाहिये, यानी सादगी, सत्, सेवा, समानता और प्रेम आदि महागुणों का।

वचन–14. राज-सेवक निहायत उच्च और पवित्र कर्त्तव्य आचारी हों।

वचन–15. अधिक त्याग, अधिक आध्यात्मिक निश्चय, पूर्ण शुद्धाचार, ईश्वर-भगति और देश भगति में अधिक विश्वास, सब जीवों में समानता भाव, राजसेवक और जनता में इन गुणों का होना ही असली राम-राज्य है।

ब्रह्म सत्यम् सर्वाधार

समता अपार शक्ति

महामन्त्र

ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा
अद्वैत पुरखा सर्व-व्यापक
कल्याण-मूरत परमेश्वराय
नमस्तं

(2) समता—ज्ञान मार्ग, योग मार्ग बोध

(क) भोगवाद स्थिति

वचन—1. द श्यमान संसार में हर-एक शरीरधारी जीव ख़्वाहे किसी ही शरीर में मौजूद है अपनी-अपनी तसल्ली की खातिर दिन-रात यत्न-प्रयत्न कर रहा है, ऐसे ही मानुष का जीवन भी है। गहरी ग़ौर करके विचार किया जावे तो जीवन निर्णय मालूम हो सकता है, नहीं तो स्वभाववश हो करके हर एक जीव अपनी तसल्ली की ख़ातिर जीवन यात्रा के अधिक से अधिक प्रोग्राम बनाता हुआ इस भयानक संग्राम रूप संसार में

दौड़ रहा है। न ही अपनी असली शाँति के मरकज़[1] को समझ सकता है और न ही अशान्ति के कारण सरूप को समझ सकता है। ऐसी हालत को ही अज्ञानवाद और जड़वाद करके कहा गया है।

वचन–2. ऐसे अज्ञानवाद जीवन के भेद को समझना ही मानुषपन है। जिससे अपने सही कल्याण के मार्ग को समझ करके अपने आपको सत्-मार्ग में निहचल करके सत्-शान्ति प्राप्त कर ली जावे। यही मानुष जन्म की उच्चता है। अगर जीवन निर्णय का ऐसा भेद नहीं समझा है और अज्ञानवाद की द ढ़ता में ही असली कल्याण चाहता हुआ जो जीवन यात्रा को व्यतीत कर रहा है, वह महज़[2] एक पशु से भी नीच है। क्योंकि इस कठिन संसार संग्राम में जीवन-यात्रा के परम उच्च ध्येय को समझना और फिर अनुकूल यत्न-प्रयत्न करना ही परम कल्याण के देने वाला सत् साधन है, और मानुष जन्म की निर्मल कीर्ति है।

वचन–3. वास्तव में हर-एक जीव ख़्वाहे किसी भी शरीर में मौजूद है अपने शारीरिक भोगों की पूर्णता को चाहता हुआ नाना प्रकार के यत्न-प्रयत्न करता हुआ अपनी-अपनी

1. केन्द्र 2. मात्र, केवल

शारीरिक यात्रा को पूर्ण कर रहा है। ख़्वाहे ऐसे यत्न से पूर्णताई हासिल होवे या न होवे, मगर सबकी आन्तरिक त खा ऐसी ही बनी रहती है। यही संसार की असली दौड़ का सरूप है।

वचन—4. हर एक जीव पाँच तात्त्विक शरीर को धारण करके पाँच विकारों की आसक्ति में आकर पाँच ज्ञान इन्द्रियों और पाँच कर्म इन्द्रियों के भोगों में अति आसक्त हो करके विचर रहा है। यानी इन्द्रियों के भोगों में अविनाशी शान्ति की प्राप्ति की ख़ातिर दिन-रात हर एक जीव यत्न-प्रयत्न कर रहा है, मगर छिनभंगुर यह भोग क्रीड़ा होने के कारण बजाय शान्ति के अधिक अशांति ही अशांति प्राप्त होती है। यह ही खेद सरूप संसार है।

वचन—5. पाँच तात्त्विक शरीर रूपी संसार को धारण करके हर एक जीव निर्भय सुख की प्राप्ति की ख़ातिर दौड़ रहा है। मगर छिनभंगुर इस देह की यात्रा में नाना प्रकार के शारीरिक भोग भोगता हुआ नित निरासा और प्यासा ही रहता है। यानी शारीरिक भोगों को पूर्ण करने की ख़ातिर राजा राज कायम करता है, धनी धन को संचित करता है, परिवारी परिवार में चिन्तावान रहता

है, और भी जैसी-जैसी कोई सामग्री सुख भोगों की एकत्र करता है उसका मुद्दा[1] सिर्फ सत् शाँति ही है। मगर ऐसे अपूर्ण शारीरिक सुखों में बजाय शाँति के अशाँति को ही प्राप्त होता है। यह ही अद्भुत माया का जाल है। ऐसी जीवन यात्रा को सही समझना ही मानुष जन्म की सार है, और सत् शाँति प्राप्त करने का प्रथम प्रयत्न है।

वचन–6. शरीर रूपी संसार को धारण करके हर एक जीव शारीरिक भोगों की आसक्ति में ही विचर रहा है। जैसे-जैसे भी भोग प्राप्त किये जाते हैं, उतनी ही अशान्ति बढ़ती जा रही है। इन्हीं हालात के मुताबिक जैसे एक चक्रवर्ती निरासा और प्यासा है, ऐसे ही एक दलिद्री भी अपनी अशाँति में विचर रहा है। यानी जो भी शरीरधारी देखने में आ रहा है, वह अपने आप में नित ही अधीर और अशांत है, ऐसे अन्धकारमयी जीवन के पूर्ण भेद को समझ करके सत्-शांति प्राप्ति का निर्मल प्रयत्न धारण करना ही मानुष देह का परम लाभ है।

वचन–7. इस अद्भुत माया के चक्र का निर्णय यह है कि जीव यानी बुद्धि अहंभाव को धारण

1. उद्देश्य

करके यानी ''मैं कर्त्ता'' को धारण करके त्रैगुणरूपी त ष्णा के जाल को कलपती है और कर्मफल द्वन्द्व रूपी पाँच तात्त्विक स्थूल स ष्टि रूपी देह को धारण करती है, और नित सरूप अविनाशी आत्मा को भूल करके अनित सरूप देह आकार में सत्शाँति की तलाश करती हुई नित ही भयभीत रहती है। यह ही जीवन सरूप विचरत संसार है। अज्ञानवाद, प्राक तवाद और नास्तिकवाद का पूर्ण रूप है।

वचन—8. अपनी-अपनी हंगता को धारण करके हर एक शरीर रूपी स ष्टि में बुद्धि नित आसक्त और अधीर रहती है। यानी पाँच तात्त्विक शरीर के संजोग से पाँच विकार रूपी त ष्णा की अग्नि में नित ही जलती रहती है। और ऐसे ही पलक-पलक विखे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि पाँच विकारों में अपनी सन्तुष्टि चाहती हुई प्रत्यक्ष ब्रह्माण्ड में शरीर द्वारा भरमती है। न ही इन विकारों की अग्नि ठण्डी होती है, और न ही सत्शान्ति अभय पद को प्राप्त हो सकती है। ऐसा जीवन निर्णय जानना ही असली जानना है।

वचन—9. पाँच तात्त्विक शरीर को धारण करके पाँच विकारों की वासना को पूर्ण करने की ख़ातिर हर वक्त बुद्धि शारीरिक कर्मों में आसक्त रहती है। न ही इन विकारों पर विजय हासिल कर सकती है, और न ही सत्शान्ति को अपने आप में अनुभव करती है, यह ही परम दुःख सरूप संसार है। जब लोभ की अधिकता में बुद्धि गिरफ़्तार होती है, तब अपने में अति अधीरता को धारण करके अनुकूल और प्रतिकूल कर्म करके अति धन माल को एकत्र करती है। ऐसे ही जब बुद्धि अति मोह में गिरफ़्तार होती है तब अपनी शारीरिक और परिवारिक ममता में फैलती है और दूसरों की नाश का यत्न करती है। ऐसे ही जब काम के वेग में आसक्त होती है, तब अति भोग क्रीड़ा में अपने आप को नाश करती है, और भ्रष्टाचार में लवलीन रहती है। ऐसे ही जब क्रोध के वेग में बुद्धि आ फंसती है, तब अपनी नाश और दूसरों की नाश करने में द ढ़ हो जाती है। ऐसे ही जब अहंकार के वेग में बुद्धि अन्धी होती है, तब अपने समान कोई दूसरा दिखलाई ही नहीं देता है, और अन्तर से दूसरों के साथ ईर्खा-वाद को धारण कर लेती है। यह ही हालत परम

खेद और सर्वनाश की है।

वचन–10. इन्हीं पाँच विकारों की अग्नि में तमाम देहधारी जल रहे हैं और जितना भी खेद संसार में प्रतीत हो रहा है, वह इन विकारों का ही वास्तविक रूप है। यानी बुद्धि अहंग भाव के वश हुई हुई पाँच तात्त्विक शरीर को धारण करके इन पाँच विकारों की वासना में नित ही जलती रहती है। न ही अहंग भाव से पवित्र हो सकती है और न ही इन विकारों से छुटकारा हासिल कर सकती है। यह ही भयानक दुःख सरूप संसार है। और जितना भी प्राक तिक चक्र चल रहा है, वह तमाम का तमाम ही इन विकारों के आधार पर ही चल रहा है।

वचन–11. बुद्धि अज्ञानवश हुई हुई अविनाशी सरूप आत्मा जो निर्विकार है, उसको भूल करके पाँच तात्त्विक शरीर में पाँच विकारों की जड़ता को धारण करके इन विकारों की भोग क्रीड़ा को ही जीवन सरूप मान रही है और नित ही इन विकारों में पूर्ण त प्ति चाहती हुई शरीर द्वारा संसार यात्रा में फैलती है। चूँकि यह तमाम विकार त ष्णा की अग्नि को बढ़ाने वाले हैं, इस वास्ते इनमें सत्शान्ति प्रतीत रखनी ही मूल भोगवाद और महामूढ़ता है।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

वचन–12. बुद्धि अहंग भाव के वश हो करके पाँच विकारों की वासना को प्रगट करती है और इन विकारों में ही असली त प्ति चाहती है। यानी जिस बदपरहेज़ी[1] से रोग बढ़ता है उस बदपरहेज़ी से रोग की शांत को चाहती है। मगर ऐसी मूढ़ता में कहाँ रोग से निव त्ति हो सकती है ? अच्छी तरह से इस आन्तरिक रोग को समझना चाहिये जिससे रोग निव त्ति का सत् यत्न प्राप्त हो सके।

वचन–13. जितने भी पाँच तात्त्विक आकारमयी जीव हैं, वे इन विकारों की कोशिश में ही नित नई तबदीली को धारण कर रहे हैं—और सत् शाँति की प्राप्ति के बजाय काल-कर्म के खेद में विचर रहे हैं। न ही इन विकारों की पूर्णताई हासिल होती है और न ही जीव को सत् शाँति प्राप्त हो सकती है। यह ही म ग-त ष्णा[2] रूपी संसार है यानी इन विकारों का कारण त ष्णा है और त ष्णा का कारण अहंभाव है। जब तक बुद्धि अहंभाव से पवित्र नहीं होती है, तब तक इन विकारों पर विजय हासिल नहीं कर सकती है, जो परम संकट का सरूप है।

समता अपार शक्ति

1. अप्रतिबंध 2. जल अथवा जल की लहरों की वह मिथ्या प्रतीत जो कभी-कभी मरूस्थल में कड़ी घूप पड़ने के समय होती है।

वचन–14. इन महा-विकारों के भोगने की आसक्ति यानी बन्धन ही बड़ा खेद है, जो हर वक्त बुद्धि को भरमाता रहता है, किसी हालत में भी निर्भय होने नहीं देता है। इन विकारों में मुनास्बत और मर्यादा धारण करनी ही पवित्र आचरण और उच्च जीवन है। जिस विद्या से, जिस संगत से, जिस प्रभाव से बुद्धि इन विकारों पर विजय हासिल कर सकती है, वे तमाम के तमाम साधन ही परम कल्याणकारी हैं। ऐसे साधनों से ही बुद्धि बलवान हो करके सत् सरूप जो निर्विकार है, उसको अनुभव कर सकती है और परम शाँति को प्राप्त होती है।

वचन–15. इन विकारों की आसक्ति ही परम दुःख और अधिक बन्धन है, जिसमें हर एक देहधारी अशाँत हो रहा है। और इन विकारों की भोग क्रीड़ा का पूर्ण बोध हर एक जीव को है और बग़ैर किसी के सिखलाये और समझाये सबके सब पूर्ण निश्चय से इन विकारों की भोग क्रीड़ा में अति चतुर हो कर विचर रहे हैं। ये ही अद्भुत माया का जाल है। मानुष जन्म की केवल उच्चता यही है कि इस संकटरूप भोगमयी जीवन से निर्बन्ध हो करके सत्

पद अविनाशी सरूप का बोध हासिल कर लिया जावे।

वचन—16. अज्ञानवश हुए हुए तमाम के तमाम जीव इन महा-विकारों की भोग क्रीड़ा को ही जीवन समझ रहे हैं और नित ही इनमें पूर्ण निश्चय से विचर रहे हैं। ऐसे भोगवाद संकट से निर्बन्ध होना अति कठिन कमाई है और परम शूरवीरता है—जिसको ऐसी परम स्थिति प्राप्त होवे। इसी भोगवाद रूपी भयानक आसक्ति के सागर से अबूर पाने[1] की ख़ातिर ही मानुष जीवन में शुद्ध विवेक की धारणा, शुद्ध वैराग्य की धारणा और शुद्ध अनुराग की धारणा है; जिसको धारण करके सत्सरूप अविनाशी आत्मा के बोध को प्राप्त करके निर्विकार, निर्विखाद स्थिति में लीनताई हासिल कर ली जावे, जो परम शान्ति सरूप है।

वचन—17. जब तक बुद्धि इन शारीरिक भोग विकारों को खेद रूप नहीं जानती है तब तक बिलकुल जड़ सरूप है और किसी सूरत में

1. पार पाने

भी इन विकारों से छुटकारा हासिल नहीं कर सकती है। ऐसी असुरवाद स्थिति से निर्मल होने की ख़ातिर ही शुद्ध विवेक की धारणा है, जिससे सही सूक्ष्म, स्थूल प्रक ति के गुण व कर्म के खेद को समझ करके अपने आपको निर्बन्ध करने का सत् यत्न प्राप्त कर लिया जावे, जो परम कल्याण सरूप है।

(ख) शुद्ध विवेक

वचन—18. बुद्धि अहंभाव को धारण करके त्रैगुण वासना के जाल में बन्धायमान हो जाती है और इन गुणों के ज़ेर असर[1] होकर के शुभ-अशुभ कर्म इन्द्रियों द्वारा करके अपने आपको नित ही चलायमान करती है। यह ही अवस्था खेद सरूप है, यानी बुद्धि कर्त्तापन को धारण करके सात्विकी, राजसी और तामसी कामनाओं द्वारा अनन्त प्रकार के कर्म कल्पित करके इन्द्रियों द्वारा भोग क्रीड़ा में लवलीन रहती है और कर्मफल द्वन्द्व को धारण करके राग-द्वेष की अग्नि में तप्त रहती है। एक लम्हा भी सत् शान्ति

1. आधीन

नहीं हो सकती है। ऐसे जीवन के खेद को जानना ही सत् विवेक है।

वचन–19. कर्त्तापन से कर्म भोग वासना प्रगट होती है और कर्म भोग से कर्मफल द्वन्द्व के ग्रहण व त्याग का बन्धन प्राप्त होता है। यानी सत् शाँति की खातिर बुद्धि कर्त्तापन को धारण करके कर्मफल भोग वासना के द्वन्द्व में नित ही गिरफ़्तार रहती है और नाना प्रकार के कर्म सूक्ष्म व स्थूल रूप में धारण करती है। मगर इस भयानक झंझट से एक पलक भी छुटकारा नहीं हासिल कर सकती है। यह ही बन्धन परम खेद सरूप है।

वचन–20. कर्त्तापन ही कल्पित संसार की जड़ है, और वासना रूपी तुरंग संसार का फैलाव है, और कर्मफल द्वन्द्व रूपी शाखें और कोपलें हैं, जो नित ही कल्पित संसार को फैलाती हैं और बुद्धि सत् शान्ति की खातिर नित ही इस कल्पित संसार की रचना में लवलीन रहती है। यानी कर्त्तापन से वासना और वासना से कर्मफल द्वन्द्व को प्राप्त करके अधिक अशाँत रहती है। ऐसी खेद सरूप जीवन यात्रा का बोध करना ही परम विवेक है।

ग्रन्थ

वचन–21. बुद्धि कर्त्तापन की अधिक गिरफ़्तारी में जकड़ी हुई कर्मफल द्वन्द्व की भोग क्रीड़ा में ही सत् शांति प्रतीत करती हुई नाना प्रकार के शरीरों को धारण करती है, मगर सत् शाँति के बजाय अशाँति दर अशाँति को ही प्राप्त होती है। यह ही आवागवन का चक्र है। यानी कर्त्तापन भी कल्पित और भ्रम रूप है, और कर्मफल द्वन्द्व भी तबदीली-युक्त है। इस वास्ते ऐसे कल्पित संसार के चक्र में कहाँ से शांति प्राप्त हो सकती है; महज़ खेद ही खेद है।

वचन–22. चूँकि कर्मफल द्वन्द्व की तबदीली लाज़मी है और इस तबदीली को रोकने की खातिर बुद्धि हर वक्त नये से नये कर्म करती है, यानी कर्मफल द्वन्द्व जो सुख व दुःख का सरूप है और तबदीली-युक्त है, इनमें बुद्धि सुख की स्थिरता और दुःख की निव त्ति का यत्न करती है। मगर सुख का अभाव होना लाज़मी है और दुःख की प्राप्ति भी लाज़मी है। इस वास्ते तमाम का तमाम यत्न ही अकार्थ जाता है। आखिर दुःखमयी हालत में ही एक शरीर से दूसरे शरीर को धारण करती है और नये सुख प्राप्ति की खातिर अधिक यत्न करती है। मगर नाशवान सुख में कहाँ शांति प्राप्त हो सकती है, ऐसा समझना ही यथार्थ बोध है।

वचन–23. कर्मफल द्वन्द्व जो सुख और दुःख का सरूप है, इनमें केवल सुख की प्रतीत रखनी ही असली मूढ़ता है, क्योंकि सुख का अन्त दुःख सरूप ही होता है। और बुद्धि दुःख से छूटने की ख़ातिर नए से नए जो सुख के सामान रचती हुई अनेक प्रकार के शरीरों को धारण करती है, मगर सुख की बजाय दुःख को ही प्राप्त होती है। यही कालचक्र रूप संसार है।

वचन–24. बुद्धि कर्त्तापन की जड़ता को धारण करके कर्मफल द्वन्द्व जो पाँच तत्त्वों के विकार सरूप हैं, इनमें सत् शाँति तलाश करती हुई अनेक प्रकार के पलक-पलक विखे करम करती है। मगर द्वन्द्व खेद में सत्शाँति को प्राप्त नहीं हो सकती है। इस वास्ते हर वक्त नये सुख की चाहना बनी रहती है, और दुःख का भय अन्तर में मौजूद[1] रहता है। यानी पाँच तत्त्वों से पाँच कर्म इन्द्रियाँ और पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ सहित जो प्रगट शरीर भासता है, और इन इन्द्रियों के कर्मों का फल ही द्वन्द्व स्वरूप है यानी अनुकूल व प्रतिकूल है। अनुकूल फल को प्राप्त करके बुद्धि राग को प्राप्त होती है, और प्रतिकूल फल से द्वेष को प्राप्त होती है। ऐसे ही द्वन्द्व रूप संसार में नित ही चलायमान होती

1. उपलब्ध

रहती है, एक पलक भी धीरज को प्राप्त नहीं हो सकती है। यह ही वास्तविक खेद रूप संसार है।

वचन–25. बुद्धि कर्त्तापन की जड़ता को धारण करके इन्द्रियों के भोगों द्वारा सत् शाँति को प्राप्त करने का यत्न करती है, मगर चूँकि इन्द्रियों के भोग द्वन्द्व सरूप तबदीली युक्त हैं, इस वास्ते इस भोग क्रीड़ा में अधिक क्लेशवान ही रहती है। यानी वासना पूर्ति की खातिर इन्द्रियों के भोगों की लालसा में अधिक से अधिक यत्न करती है, मगर बजाय वासना पूर्ति के वासना बढ़ती जाती है, और जो नये से नये कर्म धारण किये जाते हैं, वे ज़्यादा से ज़्यादा खेद देने वाले हो जाते हैं। यह ही अति भयानक रूप संसार है।

वचन–26. कर्त्तापन से वासना और वासना से कर्मफल द्वन्द्व प्रगट होता है, और कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति में आ करके फिर जो नये से नये कर्म किये जाते हैं, वे वासना रूपी अग्नि को अधिक प्रचण्ड करते हैं। इस वास्ते ही कोई भी देहधारी अपने आप में एक पलक के वास्ते भी धीरजवान नहीं है। बल्कि अधिक से अधिक क्लेशों को प्राप्त हो करके

वासना की भयानक अग्नि में तमाम जल रहे हैं। ऐसे वास्तविक संसार के सरूप को बोध करना ही निर्मल विवेक है।

वचन–27. वासना की गिरफ़्तारी ही परम दुःख है और वासना की पूर्ति यानी निव त्ति ही परम सुख है। तमाम जीव वासना की पूर्ति की खातिर नये से नये कर्म करके अपने आपको जकड़ रहे हैं। परन्तु वासना की निव त्ति नहीं हो सकती है। यह ही माया भ्रमजाल असगाह है। जो मानुष कर्मफल द्वन्द्व भोग में वासना की पूर्ति चाहते हैं, वे महज़ एक मूढ़ से भी मूढ़ हैं, क्योंकि कर्मफल द्वन्द्व की तबदीली ही वासना को फैलाती है। इस आसक्ति में पूर्ण आशावादी होना समझना अधिक अज्ञान जड़वाद का निश्चय है।

वचन–28. कर्त्तापन से वासना प्रगट होती है और कर्मफल द्वन्द्व से वासना फैलती है। ऐसे भयानक जाल में पूर्ण आशावादी होने का निश्चय रखना अधिक मूढ़ता है और ऐसे ही मूढ़पने में बड़े से बड़े गुणी संसार चक्र में भरम रहे हैं। मगर सत् शान्ति रूप पूर्ण आशावादी पद को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। जब तक बुद्धि कर्त्तापन में गिरफ़्तार है, तब तक कर्मफल की वासना से पूर्णताई होनी

अति कठिन है, और जब तक कर्मफल की वासना मौजूद है तब तक नई से नई इच्छया और नये से नया संसार और नये से नये खेद को प्राप्त होना ही पड़ेगा। यह ही प्रक ति का चक्र है।

वचन–29. ऐसे अद्‌भुत जीवन चक्र को निर्मल भाव से समझ करके ही अपनी निर्मल उन्नति का यत्न करना चाहिए, जिससे पूर्ण आशावादी पद प्राप्त होवे, जो कि वास्तविक हर एक जीव की चाहना है। इच्छया रहित होना ही परम सुख है और इच्छया सहित होना ही परम दुःख है। जब तक इच्छा का कारण कर्त्तापन अभाव नहीं होता है तब तक कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति जो इच्छया का विस्तार रूप है, इससे असंग होना अति कठिन है।

वचन–30. अति मूढ़पने में आकर के जड़ बुद्धि ऐसा चतुर भाव धारण कर लेती है कि कर्मफल द्वन्द्व की भोग क्रीड़ा ही पूरन आशावादी करने वाली है, और ऐसे निश्चय को लेकर अधिक से अधिक इन्द्रियों के भोगों को प्राप्त

करने का यत्न करती है, जैसा कि आजकल के साइंसदानों और मादावादी विद्वानों का निश्चय है। मगर ज्यों-ज्यों इन्द्रियों के भोगों का फैलाव बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों वासना की अग्नि अधिक प्रचण्ड होती जाती है, जो परम खेद का सरूप है। इस वास्ते इस जीवन रूप संसार में पहले खेदमयी जीवन के भेद को समझना ही परम उच्चता है।

वचन–31. बुद्धि अति अहंकार की जड़ता को धारण करके वास्तविक आन्तरिक खेद को न समझती हुई इन्द्रियों के नाना प्रकार के भोगों में आसक्त होकर के नित ही अपने आप में अधीर रहती है। और इसी काल चक्र संसार में सत् शाँति की तलाश करती हुई अपनी मूढ़ता के कारण नित अशाँति को ही प्राप्त होती है। ऐसे इस महा-संकट रूप जीवन से जाग्रत हासिल करनी ही मानुष जन्म की सार है।

वचन–32. बुद्धि कर्त्तापन की जड़ता को प्राप्त होकर के कर्मफल द्वन्द्व की भोग क्रीड़ा में नित ही चलायमान रहती है। जब तक कर्त्तापन से

पवित्रता प्राप्त नहीं होती है, तब तक कर्म फल भोग की आसक्ति से निर्बन्धन होना अति कठिन है। विचरत संसार की हालत में कर्त्तापन से कर्मवासना और कर्मवासना से द्वन्द्व खेद नित ही बढ़ता है, और इसी खेद से छूटने की ख़ातिर बुद्धि अधिक से अधिक यत्न करती है और नाना प्रकार के शरीरों को धारण करती है। मगर कर्त्तापन अभिमान की मलीनताई को धारण किये हुए सत्-शांति अकर्तपद आत्मा को बोध नहीं कर सकती है, जो निर्वास और अचल स्थिति है।

वचन—33. कर्त्तापन, कर्म वासना और कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति ही परम अशाँति का कारण है। जब तक इस मूल भरम अन्धकार से पवित्रता प्राप्त न होवे, तब तक सत् शाँति नित सरूप आत्मा का बोध नहीं हो सकता है— जो परम शाँत पद है।

वचन—34. सार विवेक यह है कि कर्त्तापन मूल भरम जड़वाद की आसक्ति से जब तक बुद्धि शुद्ध न होवे, तब तक कर्म वासना और कर्मफल द्वन्द्व के खेद से छुटकारा हासिल करना अति कठिन है, क्योंकि कर्त्तापन ही कारण इच्छया और कारण संसार है। इस

वास्ते इस भवदुस्तर जाल से छूटने का केवल उपाय यही है कि तमाम खेद का जो कारण सरूप अहंग भाव है उससे निव त्ति प्राप्त होवे, और सत् तत्त्व अविनाशी नित अकर्म सरूप आत्मा में लीनताई हासिल होवे, जो परम शांत और कल्याण सरूप है।

वचन–35. बुद्धि भरम अन्धकार के वश हुई हुई शारीरिक भोगों में ही सत् शाँति प्रतीत करती हुई शारीरिक यात्रा में विचर रही है, यानी नाशवान शरीर में सत् शान्ति की प्राप्ति की चाहना रख कर के अधिक से अधिक शारीरिक भोग प्राप्त करने के यत्न में लगी रहती है, न ही शारीरिक भोगों में सन्तुष्टि प्राप्त होती है, चूँकि भोग क्रीड़ा छिनभंगुर है, और न ही शारीरिक जीवन सदैव काल रह सकता है। मगर अभिमान-वश होने के कारण कभी भी सही सोचने और समझने का यत्न नहीं करती है, बल्कि अपने स्वभाव के मुताबिक ही शरीर और शारीरिक सुख हमेशा के वास्ते कायम करना चाहती है। मगर ऐसा हो नहीं सकता है। इस वास्ते ही इस अनर्थ भ्रम अंधकार में

तमाम का तमाम जीवन समय व्यतीत हो जाता है। न ही शारीरिक सुखों की चाहना पूर्ण होती है और न ही शरीर हमेशा रह सकता है।

(ग) शुद्ध वैराग्य

वचन—36. बुद्धि अति अभिमान के वश होकर के किसी समय भी शारीरिक यात्रा और शारीरिक नतीजा को समझ नहीं सकती है। ऐसे ही मिथ्या भरवास में शरीर और शारीरिक भोगों की कायमी के यत्न में दिन-रात लगी रहती है, जिसका नतीजा अन्त को सिवाय पछताने के और कुछ नहीं निकल सकता है। यह ही अश्चर्ज माया का चक्कर है कि नाश में सत् को प्रतीत करना और दुःख में सुख की कामना रखनी। इस भ्रम जाल में तमाम के तमाम देहधारी विचर रहे हैं। कोई ही परम विवेकी इस प्रक ति के सही चक्र नाशवान को समझ करके सत्पद प्राप्ति की खोज में द ढ़ होता है।

वचन—37. मानुष जन्म की उच्चता यही है कि अति निर्मल भाव से इस जीवन यात्रा को समझा जावे। ज़ाहिरी चमक-दमक और दौड़-धूप तमाम जीवों की देह करके है। अगर सार विचार न की जावे तो देखा-देखी भ्रम जाल

में सब जीवन समय नष्ट हो जाता है। आखिर निराशावादी हो करके ही इस नाशवान संसार से जाना होता है, जैसा कि तमाम जीवों की अन्तिम समय की दशा होती है।

वचन–38. बुद्धि अहंभाव सहित हो करके शरीर रूपी संसार को धारण करती है और शारीरिक भोगों में ही सत् शाँति प्रतीत रखती हुई तमाम शारीरिक जीवन यात्रा को ख़त्म कर देती है। मगर नाशवान इस देह क्रीड़ा में कहाँ सत् शाँति प्राप्त हो सकती है। बजाय परम संकट के और इस अंधकारमयी जीवन यात्रा में कुछ प्राप्त नहीं हो सकता है। अच्छी तरह से इस जीवन यात्रा को समझ करके अपनी निर्मल कल्याण का यत्न करना ही मानुष जन्म की श्रेष्ठ सफलता है।

वचन–39. वास्तव में शरीर रूपी संसार को धारण करके बुद्धि अज्ञानवश हो करके शारीरिक भोग क्रीड़ा में निर्भय सुख प्रतीत करने लगती है और इस ही भ्रम चक्र में तमाम शारीरिक अवस्था को व्यतीत कर देती है। ऐसा समझने में ही नहीं आ सकता है कि जो वस्तु आद-अन्त होने वाली है और छिन में प्राप्त और छिन में वंजोग होने वाली है,

इसमें सत् शाँति कहाँ से मिल सकती है। ऐसे मंद भाव का जब तक पूर्ण निश्चय से त्याग न किया जावे तब तक तमाम यत्न निहफल ही जाता है।

वचन—40. बुद्धि अति द ढ़ अभिमान को धारण करके नाशवान शरीर और नाशवान शारीरिक भोगों में सत् शाँति प्राप्त करने का यत्न करती है, जिसका नतीजा महज़ परम क्लेश ही निकलता है। नाशवान् कालचक्र में सत् शाँति कहाँ और कैसे मिल सकती है? निर्मल विवेक द्वारा इस जीवन यात्रा को समझना ही असली मानुषपन है। न तो शरीर हमेशा के वास्ते रह सकता है और न ही शारीरिक सुख कुछ तसल्ली दे सकते हैं, बल्कि तमाम सुखों का अंत दुःख रूप ही हो जाता है, जैसा कि प्रक ति का असली नियम है।

वचन—41. पाँच तात्त्विक शरीर को धारण करके पाँच महाविकारों की अग्नि में जलती हुई बुद्धि नित ही नये से नये प्रयत्न को धारण करती है, मगर इन विकारों की अग्नि को बढ़ा करके ही सत् शान्ति की ठण्डक चाहती है। ज्यों-ज्यों इन विकारों में लवलीन होती जाती है, त्यों ही त्यों अधिक से अधिक

तपिश को प्राप्त होती है, जैसा कि तमाम देहधारी इन विकारों की अग्नि में जल रहे हैं। इस वास्ते इस अंधकारमय जीवन से जाग्रत हो करके सत् शाँति निर्विकार अवस्था की खोज करनी चाहिये।

वचन—42. शरीर रूपी संसार को धारण करके बुद्धि इन पाँच विकारों को ही फैलाने का यत्न करती है और इन विकारों को ही जीवन का सही सार समझती है। जितना भी यत्न-प्रयत्न जीवन यात्रा में करना पड़ता है, वह तमाम का तमाम ही इन पाँच विकारों का फैलाव है। अच्छी तरह से समझना चाहिये, यानी पाँच विकार पूर्ण रूप में तमाम शरीरधारियों के अन्दर होते हैं, मगर एक अधिक विकार सबमें प्रधान रूप में मौजूद रहता है, जो कि तमाम जीवन यात्रा पर छाया हुआ होता है। किसी के अन्दर मोह अधिक होता है, किसी के अन्दर क्रोध अधिक होता है, और किसी के अन्दर लोभ अधिक होता है, किसी के अन्दर काम अधिक होता है और किसी के अन्दर अभिमान की चेष्टा ज़्यादा होती है। जो-जो प्रधान विकार जिसमें मौजूद होता है, वह उसी विकार के नतीजे को पूर्ण करने के यत्न में लगा रहता है। यह ही जीवन यात्रा

की असली दौड़ है, जिसमें तमाम देहधारी विचर रहे हैं।

वचन–43. बुद्धि जड़ प्रक ति को धारण करके असली जड़ता को ही प्राप्त हो जाती है और खेद सरूप विकारों को ही सत् शान्ति प्रतीत करने लग पड़ती है। मगर ज्यों-ज्यों विकारों की अग्नि में दौड़ती है, त्यों-त्यों ही अधिक तपिश और क्लेश को प्राप्त होती है। यह ही अवस्था जड़वाद, नास्तिकवाद और भोगवाद स्थिति की है। इस संसार यात्रा में अगर कोई बेचैनी है तो यही विकार हैं, अगर कोई अज्ञान है तो इन ही विकारों की गिरफ़्तारी है। और तुच्छ सा सुख जो जीवन यात्रा में प्रतीत हो रहा है, वह इन ही विकारों का नतीजा है, जिसका अन्तिम परम दुःख सरूप ही हो जाता है। जितना भी संसार में उथल-पुथल दिखलाई देता है, वह तमाम का तमाम ही इन प्राक त विकारों का ही नतीजा है। अच्छी तरह से बाहोश हो करके समझना चाहिये।

वचन—44. जितनी-जितनी बुद्धि अभिमान की जड़ता को प्राप्त होती है, उतनी ही उतनी इन विकारों की अग्नि में अधिक जलती है और इन विकारों को फैला करके अपना एक परम संकट रूप संसार रच देती है। जिससे तड़प-तड़प करके आखिर शरीर की अन्तिम दशा को प्राप्त होती है। कोई राजा है या भिखारी, कोई गुणी है या मूढ़, कोई परिवारी है या विरक्ति, जैसा-तैसा भी जो कोई जिस शरीर को धारण किये हुए है, वह ही इन विकारों की अग्नि में जल रहा है। वाह-वाह यह संसार की अद्‌भुत लीला है।

वचन—45. ऐसे अंधकारमयी जीवन या विकारमयी जीवन को जब तक बुद्धि निर्मल विवेक द्वारा समझ नहीं सकती है, तब तक इन विकारों की अग्नि में ठण्डक को प्राप्त नहीं हो सकती है। बल्कि इन विकारों के अति ज़ेर - असर[1] हो करके तमाम देहधारी एक-दूसरे के नाशक बनते हैं और ये ही विकार तमाम संसारी रचना को तबदीली के देने वाले हैं। यानी जिस वक्त बुद्धि पर ये विकार ग़ालिब[2] आ जाते हैं, उस वक्त विचारहीन, धीरजहीन हो करके इन विकारों

1. आधीन 2. छा जाते हैं

का अति प्रतिकूल इस्तेमाल करती है। तब परम संकट और नाश को प्राप्त होती है।

वचन—46. तमाम के तमाम देहधारी जन्म से ही इन विकारों की गति को समझते हैं, ख्वाहे कोई जंगल निवासी है, ख्वाहे बड़े गंधर्व शहर का रहने वाला है। मानुष क्या बल्कि पशु-पक्षी जड़ जूनियों के जीव भी इन विकारों की महसूसात[1] में अपनी-अपनी शारीरिक यात्रा को व्यतीत कर रहे हैं। इस प्रक तक विज्ञान का सबको जन्म से ही बोध है, और प्रक ति का पूर्ण रूप भी यह ही है।

वचन—47. मानुष जन्म की उच्चता अगर है तो यह ही है कि इन विकारों की गिरफ़्तारी से असली आज़ादी को प्राप्त किया जावे। विद्या का निदिध्यासन, सत्पुरुषों की संगत, और ईश्वर का विज्ञान महज़ इन विकारों से ही छूटने के उपाय हैं, जो परम खेद और नित निराशावादी जीवन से निर्खेद और पूर्ण आशावादी पद के देने वाले हैं। यह ही उच्च कर्त्तव्य मानुष जन्म की सार है। इस जन्म में आकर के ही इन विकारों की अग्नि से सत् शाँति प्राप्त हो सकती है। अगर मानुष जन्म में आ करके भी इन

1. अनुभूतियों

विकारों की अग्नि को शुद्ध विवेक के जल से ठण्डा नहीं किया गया तो वह मानुष क्या पशु से भी नीच है। क्योंकि अपने कल्याण के बजाय वह अपनी नाश की तरफ दौड़ रहा है।

वचन—48. परम खेद, अति अविद्या, परम अन्धकार अगर कोई है तो यह ही पाँच विकार हैं। मानुष जन्म में आकर के सत् विचार के बल से इन विकारों पर विजय प्राप्त कर लेनी ही असली विजय है। सत्पुरुषों का सत् उपदेश और धर्म का सही सरूप और राजा का सही न्याय यह ही है कि इन विकारों की बढ़ती हुई अग्नि को सत् विचार के बल से, राज-बल से तथा तपोबल से रोका जावे, जिससे तमाम मानुष सत् आचारी हो करके शाँति पूर्वक जीवन यात्रा को निर्विकार अवस्था तक ले जाने की कोशिश कर सकें।

वचन—49. ये विकार ही परम खेद सरूप हैं। इनमें अधिक से अधिक मर्यादा धारण करनी ही मानुष जीवन का परम लक्ष्य है। और यह ही जीवन सदाचारी है, और यह ही मानुष जीवन की असली नीति है। इन विकारों की

अति प्रधानता जब सबके अन्दर छा जाती है, तब बुद्धि नास्तिक हो करके परम नाश, परम संकट को प्राप्त होती है। ऐसा निश्चय करके जानना चाहिये।

वचन—50. ये विकार ही परम हिंसक रूप हैं और ये विकार ही नित अशाँति का सरूप हैं। इनसे सत् विवेक के बल से जितनी भी पवित्रता प्राप्त की जावे उतना ही जीवन अपने ताईं और दूसरों के ताईं कल्याणकारी हो सकता है। इसलिए सत् विचार की धारणा ही मानुष जीवन के वास्ते कल्याणकारी है, जो कि इन तमाम विकारों से पवित्रता के देने वाली है। इन विकारों की प्रधानता से ही चोरी, कपट, छल, कत्ल, झूठ और भ्रष्टाचार फैलता है, जो कि तमाम का तमाम ही अशाँति और नाश के देने वाला है।

वचन—51. मानुष जन्म में उत्तम कर्त्तव्य, उत्तम बोध, उत्तम सूझ यह ही है कि बुद्धि को सत् विचारों की ठण्डक में ठण्डा करके सत् अनुराग के मार्ग में द ढ़ किया जावे, जिससे तमाम विकार शाँत हो करके निर्विकार सरूप अविनाशी आत्मा के बोध को प्राप्त

होवे, जो नित मंगल सरूप है। विकार-मयी जीवन से निर्विकार होना ही असली उन्नति है, असली कल्याण, असली पुरुषार्थ है। जिसने अपने मानसिक विकारों से विजय हासिल नहीं की है, वह मानुष जन्म में आ करके भी कुछ जीवन की सार को प्राप्त न कर सका और उल्टा पतित मार्ग को धारण करके अति नीच गति को प्राप्त हुआ। ऐसे जीवन के भेद को जानना चाहिये।

वचन—52. निर्मल बोध को प्राप्त करके अपने आन्तरिक शत्रुओं पर नित विजय हासिल करने का यत्न करना ही उत्तम यत्न है, क्योंकि ये विकार ही मूल सन्ताप हैं। इनके बन्धन में आकर बुद्धि सत् पद नित शाँत सरूप आत्मा को भूल गई है और नये से नये खेद को धारण करके इन विकारों की अग्नि में अधिक भयभीत रहती है। इस विकारमयी नित नाश सरूप जीवन से असली नित का जीवन निर्विकारमयी धारण करना ही सरब विजय और सरब शाँति के देने वाला यत्न है।

वचन—53. निर्मल विवेक द्वारा जब बुद्धि इन विकारों का नतीजा परम दुःख रूप जानती है, तब ही विकारों के राग से पवित्र होने का यत्न करती है और सत् सरूप आत्मा जो नित निर्विकार और निर्विखाद है, उसकी खोज में द ढ़ होती है। वह ही परम कल्याण सरूप है। पाँच तत्त्वों की खोज से पाँच विकारों की भोग क्रीड़ा बढ़ती है और जीवन शक्ति आत्मा की खोज से इन विकारों से निर्बन्ध अवस्था प्राप्त होती है। जितनी बुद्धि सत् परायण होती जाती है, उतनी ही इन विकारों की अग्नि से ठण्डक को प्राप्त होती है। इस वास्ते मानुष जीवन का उत्तम कर्त्तव्य सत् की खोज ही है। सत् वह ही वस्तु है जिससे असत् जड़ संसार प्रकाशवान हो रहा है, जिसके जानने से सब कुछ जाना जाता है और सब कुछ प्राप्त हो जाता है। यानी वासना ही जो इन सब विकारों का मूल है, शान्त हो जाती है और बुद्धि परम प्रसन्नता निर्भय पद को प्राप्त होती है। ऐसी यथार्थ खोज और यथार्थ धारणा ही निर्विकारमयी जीवन के देने वाली है।

वचन—54. जब बुद्धि निश्चय करके तमाम शारीरिक भोग और शारीरिक यात्रा को छिनभंगुर प्रतीत करती है, तब ही तमाम शारीरिक विकारों से निर्बन्ध होने का यत्न करती है, और साखी सरूप के सत् अनुराग की झलक अन्तर में अनुभव करती है। ज्यों-ज्यों सत् अनुराग में द ढ़ होने का यत्न करती है, त्यों ही त्यों आन्तरिक सत् शान्ति निर्वास अवस्था को प्राप्त होती जाती है। असली मूल विकारों की आसक्ति का निर्णय यह है कि बुद्धि शारीरिक भोग विकारों में अधिक सत् शाँति का निश्चय द ढ़ किये हुए भोगों के संग्रह में दिन-रात यत्न करती रहती है। भोग प्राप्ति तथा अप्राप्ति में अधिक त खावंत रहती है। यह अवस्था ही अति जड़ता की है।

वचन—55. बुद्धि अभिमान के मल से पवित्र हो करके यथार्थ सरूप में जब प्रक ति के चक्र को अनुभव करती है, यानी तमाम स्थूल आकार और अपना शरीर भी आद-अन्त सहित, वासना सहित, खेद सहित, कर्म सहित, तबदीली युक्त और नित ही भयदायक प्रतीत करती है और किसी वस्तु में भी सत् शाँति को अनुभव नहीं करती है, बल्कि हर एक वस्तु परस्पर नाश के चक्र में अपनी-अपनी

शक्ल को तबदील करती हुई यथार्थ रूप में दिखलाई देती है, ऐसी पवित्र अनुभवता को ही वैराग्य कहा गया है।

वचन—56. शुद्ध वैराग्य की प्राप्ति से बुद्धि तमाम शारीरिक विकारों से निर्मोह हो करके सत् तत्त्व अविनाशी, निर्खेद सरूप के द ढ़ अनुराग को प्राप्त होती है यानी शारीरिक आधार में नित ही अशाँति और संकट प्रतीत करती हुई शरीर का साक्षी तत्त्व जो आत्म सरूप है, उसके आधार को प्राप्त करने का यत्न करती है। ऐसा निश्चय ही सतवाद आस्तिकवाद का सरूप है।

वचन—57. बुद्धि जब तमाम का तमाम संसार चक्र तबदीली युक्त और खेद सहित प्रतीत करती है, तब तमाम शारीरिक भोग वासना के बन्धन से निर्बन्धन होने का यत्न करती है। और परम सुख की असली चाहना उस वक्त अन्तर में प्रगट होती है जो नाश से रहित है। क्योंकि जो नाशवान् सुख भोग प्रतीत होते हैं, उनका अन्जाम अति संकट रूप दिखलाई देता है। ऐसा निर्मल विवेक और निर्मल वैराग्य जब अन्तःकरण में जाग्रत

होता है, तब यथार्थ रूप में संसार की गति को अनुभव करके बुद्धि तमाम मिथ्याकार वासनाओं से पवित्र होने के सत् यत्न को प्राप्त होती है। ऐसी स्थिति ही कल्याण का सरूप है।

वचन—58. जब तक बुद्धि ऐसे निर्मल वैराग्य और अनुराग को प्राप्त नहीं होती है, तब तक सत् सरूप जो परम शाँति का सागर है, उसको अनुभव नहीं कर सकती है। इस वास्ते यथार्थ रूप में तमाम संसार की गर्दिश को समझ करके असत् भोगवाद संकट रूप जीवन से उपरसता प्राप्त करके सत् परायण होने का यत्न करना चाहिए। ऐसा यथार्थ यत्न ही सरब कल्याण सरूप है।

वचन—59. प्रथम जीवन यात्रा को यथार्थ रूप में बोध करना चाहिये फिर यथार्थ सत् यत्न में प्रवीण होकर के अपने तमाम जीवन खेदों से छुटकारा हासिल करना चाहिये। ऐसे निर्मल कर्त्तव्य से जब अपने आप में परम पवित्रता, परम त्याग, परम धीरज प्राप्त होता है, तब वह मानुष सरब जगत की कल्याण करने वाला हो सकता है। यानी अपनी सत्-स्थिति के बल से तमाम जीवों

के मानसिक दोष हरण करता है और सत् शाँति को प्रकाशता है।

वचन–60. तमाम प्रक ति जाल विकारमयी, खेदमयी और अज्ञानमयी सरूप है। इसके उलट सत् सरूप आत्मा आनन्दमयी, ज्ञानमयी और अखण्ड शाँतमयी सरूप है। ऐसा यथार्थ निर्णय समझ करके अपने आपको प्रक तमयी विकारों से पवित्र करके एक सत् सरूप के परायण बनाना चाहिए। यानी जब तक बुद्धि नाशवान शरीर के परायण हुई हुई है, तब तक शारीरिक विकारों से किसी पलक भी पवित्र और निर्बन्ध नहीं हो सकती है। यह ही प्रक ति जाल अति कठिन है।

वचन–61. तमाम प्रक ति जाल खेदमयी और नाशवान् समझ करके सत् सरूप की खोज में द ढ़ होना चाहिए। असत् शरीर जिस शक्ति करके सत् प्रतीत हो रहा है, काल सरूप संसार जिसकी सत्ता से प्रकाशवान हो रहा है, सरब निरन्तर जो व्याप रहा है, ऐसे नित सरूप के निर्मल अनुराग को प्राप्त करके तमाम मानसिक विकारों से पवित्र होना ही परम निर्मल यत्न है।

वचन–62. जो आद-अन्त से न्यारा है, नित समसरूप है, जिसमें काल, कर्म और वासना का खेद नहीं है, जो अपने आप में आधार सरूप है, जो पूर्ण बोध, पूर्ण आनन्द और नित परिपूर्ण है, ऐसे सत् तत्त्व के परायण होना ही परम कल्याण सरूप है।

वचन–63. जो तमाम मानसिक विकारों के नाश करने वाला है, और निर्भय शाँति के प्रकाशने वाला है, ऐसे अविनाशी सरूप की खोज में द ढ़ होना ही कल्याणमयी यत्न है। जन्म से लेकर प्रक तिमयी विकारों में नित अधीर रहता हुआ और नाना प्रकार के यत्न करके फिर निराशावादी रहता हुआ, जीवन इच्छया और म तक काल से भय रखता हुआ, और सरब सुख प्राप्त करके फिर दुःख में भयभीत रहता हुआ, नित कल्याण के यत्न करता हुआ, फिर बन्धन दर बन्धन को प्राप्त होता हुआ जो जीवन चरित्र काल सरूप है, इसको अच्छी तरह से समझ करके सत् परायण होने का यत्न करना चाहिए। जिस से ये तमाम के तमाम दोष नाश को प्राप्त होवें, और बुद्धि निर्भय नित सुख आत्मा के

सरूप में स्थिति प्राप्त करे, जो ठौर परमधाम निर्वाण शाँति है।

वचन—64. जिस सरूप के बोध से तमाम वासनाओं की निव त्ति प्राप्त होवे और तमाम काल-कर्म का खेद अभाव हो जावे, जिसकी प्राप्ति से परम त प्ति निर्द्वन्द्व स्थिति का बोध होवे, ऐसे समरस विज्ञान सरूप आत्मा की खोज में द ढ़ होना चाहिए। ऐसी खोज, ऐसा यत्न, ऐसी सूझ और ऐसा द ढ़ अनुराग धारण करके तमाम मिथ्याकार वासनाओं से निर्बन्ध हो करके जो सत् सरूप में निहचल हुआ है, वह ही सरब का मानी सरब कल्याण जीवन का दाता है।

वचन—65. जिस परम तत्त्व के बोध से सरब ज्ञाता बुद्धि हो जाती है, और तमाम संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा नाश को पूर्ण भेद से जान लेती है, ऐसे नित सरूप की खोज में द ढ़ होना चाहिए। सबका जो आद सरूप है और अपने आप में जो नित अनादि है, तमाम विद्याओं का जो अनुभव बोध सरूप है, ऐसे विज्ञान सरूप परम प्रकाश आत्मा में सत् स्थिति प्राप्ति का सत् यत्न धारण करना ही परम कल्याण सरूप है।

वचन—66. तमाम संकटों का नाशक, सरबकाल रक्षक, नित प्राप्त, सरब समीप, नित जीवन-दाता, सत् प्रकाश आत्म सरूप के परायण होने का यत्न धारण करना ही परम यथार्थ उद्दम है। ऐसे नित निरन्तर वासी परम पुरुष के सत् अनुराग को प्राप्त करके तमाम भरम अन्धकार द्वन्द्व सरूप से असंग होने का यत्न धारण करना चाहिए, जिससे शरीर की विचरत हालत में तथा नाश की हालत में निर्वास स्थिति प्राप्त होवे।

वचन—67. परम अन्धकारमयी भोग क्रीड़ा और नित असन्तुष्टी सरूप कर्म चक्र से छूटने के वास्ते केवल सत् सरूप जीवन शक्ति एक आत्मा के सिमरण, ध्यान में द ढ़ होना ही यथार्थ योग है। ऐसे योग को प्राप्त करके मिथ्या भोगवाद की अग्नि से सत् शाँत होना चाहिए, जो वास्तविक जीवन है।

वचन—68. असत् विश्वास यानी शरीर और शारीरिक भोगों में सत् शाँति प्रतीत करने की जो मिथ्या भावना अन्तःकरण में द ढ़ की हुई है, उससे जाग्रत हो करके सत् विश्वास यानी नित सरूप आत्मा के परायण होने का यत्न धारण करना चाहिये। ऐसे सत् विश्वास के बल से ही बुद्धि तमाम मानसिक विकारों

से निर्मल हो करके अविनाशी सुख को प्राप्त हो सकती है। यह ही सत् यत्न भोगवाद आसक्ति से निर्मल करने वाला है, और आत्म-सरूप में निहचलता के देने वाला योग है। नित ही स्वतन्त्र हो करके सत् मार्ग में स्थिर होना चाहिये।

वचन—69. सत् विश्वास की द ढ़ता से असत्वाद की आसक्ति से असंग हो करके सत् सरूप में निहचलता धारण करनी ही कल्याणकारी साधन है। ऐसे सत्पुरुषों की संगत में नित-प्रति प्रव त्त हो करके सत् विश्वास और सत् अनुराग की द ढ़ता हासिल करनी चाहिये, क्योंकि ऐसे कामिल लोगों ने खुद अपने जीवन का सुधार किया है, और निर्वास-स्थिति परमत प्ति को प्राप्त हुए हैं।

वचन—70. जब तमाम शरीर का आधार एक आत्मा ही निश्चय में आता है, और उसकी शक्ति से ही तमाम विश्व क्रीड़ायुक्त भासता है, तब जड़वाद की मलिन से परम पवित्रता प्राप्त होती है और मिथ्या आधार वासना रूप को त्याग करके सत् आधार एक आत्म-सरूप निश्चय में द ढ़ होता है। ऐसा निर्मल

विश्वास ही परम कल्याण सरूप है। अधिक से अधिक निर्मल विवेक द्वारा ऐसे सत् विश्वास में द ढ़ होना चाहिये।

वचन—71. जब तमाम आकार मण्डल संसार जड़ सरूप प्रतीत होता है, और एक आत्मा चेतन सरूप सरब का आधार जान पड़ता है, तब बुद्धि निर्मल विवेक को प्राप्त होती है और तमाम कामना, कल्पना के जाल को छेदन करके एक सरब आधार कल्याण सरूप आत्मा के चिन्तन में निहचल होती है। ज्यों-ज्यों आत्म-परायणता को प्राप्त होती है त्यों-त्यों तमाम कर्म-द्वन्द्व की आसक्ति का अभाव होता जाता है और बुद्धि अन्तर आत्म-सरूप के आनन्द में मग्न होती है।

वचन—72. सरब जगत का प्रकाशक-तत्त्व एक आत्मा को जान करके उसके आधार में तमाम शारीरिक क्रिया को देखना और अधिक निर्मल-प्रेम से सत्-तत्त्व के सिमरण में बुद्धि को निहचल करना ही निर्मल विश्वास है। ऐसे विश्वास के बल से तमाम जन्म-जन्म के

मिथ्याकार संस्कार नाश को प्राप्त होते हैं और बुद्धि सत् तत्त्व के परायण हो करके अपने आपको निर्बन्ध करने का यत्न करती है।

वचन—73. इस भोगवाद की जड़ता से जाग्रत हो करके अपने तमाम विकारों से छुटकारा हासिल करने का यत्न धारण करना चाहिए, क्योंकि शारीरिक भोग ही तमाम खेदों के देने वाले हैं और मानुष जन्म की उच्चता यह ही है कि इस भोग क्रीड़ा के संग्राम से अधिक से अधिक पवित्रता प्राप्त की जावे। यानी आहार, व्यवहार, आचार और संगत की अधिक से अधिक पवित्रता धारण की जावे। तमाम मुनश्यात से, माँस आदि से परहेज़ रखना आहार की शुद्धि है। अपनी हक़ की कमाई में सन्तोषवान रहना व्यौहार की शुद्धि है। अपने वचन और कर्म को सत् के आधार पर कायम करना, यह आचार की शुद्धि है। नित ही श्रेष्ठ आचारी और सत्-ग्रही पुरुषों की संगत करनी, यह संगत की पवित्रता है। ऐसी नित की पवित्रता जब प्राप्त होती है, तब बुद्धि परम आसक्ति से जाग्रत होकर के सत्मार्ग कल्याण सरूप में

निहचल होती है। प्रथम जीवन उन्नति का साधन सार यही है।

वचन—74. जिस वक्त नित का जीवन परम श्रेष्ठ आचारी हो जाता है यानी सादगी, सत्, सेवा, सत्संग और सत् सिमरण आदि महा-गुणों को धारण करके बुद्धि तमाम भ्रष्टाचार से पवित्र हो जाती है, उस वक्त सत् विश्वास, सत् अनुराग और सत् निदिध्यासन एक आत्म-सरूप का प्राप्त होता है, जो परम कल्याणकारी सरूप है।

वचन—75. अधिक निर्मल बुद्धि द्वारा सत् आचरण में द ढ़ होकर के तमाम अशुद्ध वासनाओं का त्याग करना चाहिये। यानी चोरी, जुआ, कपट, ईर्खा, द्वेष, परहान की भावना को त्याग करके सत्, शील, संतोख, दया, खिमा आदि श्रेष्ठ गुणों को धारण करना चाहिए। ऐसी देव भावनाओं को धारण करके जब बुद्धि आत्म-निदिध्यास में द ढ़ होती है, तब थोड़े समय में ही परम सिद्धि को प्राप्त हो जाती है।

वचन—76. जीवन यात्रा में समय की अधिक पाबन्दी को धारण करके हर एक कल्याणकारी कर्म समय पर करना चाहिए। यानी स्वार्थ कामों से समय को निकाल करके परमार्थ सम्बन्धी

कर्मों में द ढ़ होना चाहिए। सिमरण, सेवा, सत्संग आदि महासाधनों में अधिक से अधिक प्रेम और अधिक समय देना चाहिए, जिससे जल्दी ही मानसिक दोषों का अभाव होवे और बुद्धि सत्-परायणता में पूर्ण रूप से निहचल होवे।

(घ) शुद्ध निदिध्यास

वचन—77. जब बुद्धि तमाम शारीरिक भोगों का नतीजा परम दुःख रूप जानती है, तब पूर्ण निश्चय से सत् परायण होने का यत्न करती है। सत् सरूप आत्मा पूर्ण रूप से शरीर के अन्तर व्याप रहा है, जैसे दूध में घ त और फूल में सुगन्धि का निवास है। यथार्थ यत्न से, यथार्थ प्रेम से, यथार्थ विधि से जब पूरण निश्चय से निदिध्यास में द ढ़ता प्राप्त होती है तब सत् सरूप का अन्तर में बोध होता है, जो परम कल्याण सरूप है।

वचन—78. सत् सरूप आत्मा आकार शरीर में निराकार हो करके व्याप रहा है। द्वन्द्व में निर्द्वन्द्व, कर्मयुक्त और वासना युक्त शरीर में निर्वास और निहकर्म होकर व्याप रहा है। आदि-अन्त सहित, खेद सहित, अल्पज्ञ, अनन्त, प्रकार के परमाणु सहित जो शरीर है इसमें

अनादि, अखेद, सर्वज्ञ और निराकार हो करके प्रकाशता है। तमाम के तमाम शारीरिक दोषों से भिन्न, अपने आप में परिपूर्ण, नित आनन्द चेतन सरूप हो करके व्याप रहा है।

वचन—79. अनन्त प्रकार की उपमा सहित जिसका कोई प्रमाण नहीं है, ऐसे अवगत शब्द सरूप आत्मा की खोज, आत्मा का सिमरण, आत्मा का ध्यान और आत्मा का साख्यातकार ही योग का सरूप है। अधिक से अधिक सत् यत्न से ऐसे योग में द ढ़ होना तमाम प्राक त दोषों के निर्बन्ध करने वाला यत्न है और परम विजय सरूप है।

वचन—80. शरीर रूपी संसार में बुद्धि जकड़ी हुई अनन्त प्रकार के कर्म पलक-पलक विखे धारण करती है और ऐसी आसक्ति में नित ही खेद युक्त रहती है। इस भयानक संकट से छूटने के वास्ते केवल सत् सरूप आत्मा की खोज में द ढ़ होना ही परम कल्याण है। ऐसे परम तत्त निर्भय पद की खोज के वास्ते आत्म-नेष्ठी सत्गुरु की रहनुमाई अधिक लाज़मी है। ऐसी परम स्थिति में प्राप्त हुए

हुए महापुरुषों का निर्बन्ध जीवन यानी निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निहचलता और परउपकार सहित परम शुद्धता को धारण किए हुए जो नित ही अन्तर विज्ञान सरूप में निहचल रहते हैं, ऐसे सत्पुरुषों की सत् सिखया से मन्दबुद्धि वाला पुरुष भी सत् पद को प्राप्त हो सकता है।

वचन–81. जिस सत्पुरुष के अन्तर आत्म-साख्यातकार हुआ है और तमाम शारीरिक दोषों से जो पवित्र हुआ है, यानी तमाम इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा से जो निर्द्वन्द्व हुआ है, ऐसे महान तपीशर संत की संगत और सिखया से सत् मार्ग में सफलता प्राप्त होती है। अहंकार सहित बुद्धि तमाम शारीरिक विकारों में ही विचरती है और शारीरिक विकारों का ही चिन्तन करती है। एक लमह भर भी निर्विकार निहकर्म नहीं हो सकती है। ऐसे परम अन्धकारमयी जीवन से जिसने निरअहंगभाव में स्थिति प्राप्त की है, और आत्मा निहकर्म सरूप के चिंतन में जो जाग्रत हुआ है, ऐसे तत्त्वदर्शी सत्पुरुष की संगत से निर्मल योग प्राप्त होता है।

ग्रन्थ

वचन–82. कथनी और करनी को मुकम्मिल करके जो केवल अखण्ड अविनाशी शब्द आत्मा में स्थित हुआ है और स्थूल प्रक ति से असंगता और अचेष्टा को जो प्राप्त हुआ है, और तमाम शारीरिक विकारों से जो तीन काल निर्बन्ध रहता है, ऐसे निर्वास शाँत गति के बोधक सन्त की शरणागत होने से निर्मल भगति और योग प्राप्त होता है।

वचन–83. जब बुद्धि परम शुद्धता को धारण किए हुए तमाम मानसिक विकारों के खेद से निर्बन्ध होने का यत्न करती है, तब ही ऐसे परम तत्त्ववेत्ता पुरुष की संगत से त प्त को प्राप्त होती है, क्योंकि उस महापुरुष ने खुद अहंकार की मलिन से पवित्रता प्राप्त की है और परम शुद्ध सरूप आत्मरस को पान करके निर्वास और निहकर्म स्थिति को प्राप्त हुआ है। ऐसे सत्पुरुषों के निर्मल विचारों को बार-बार निदिध्यासन करने से बुद्धि सत्मार्ग में द ढ़ होती है।

वचन–84. शरीर रूपी संसार को धारण करके बुद्धि मन की अनन्त प्रकार की मनन भावनाओं में आसक्त हो करके मिथ्या नाम, रूप, गुण व

कर्म के खेद को धारण करती रहती है। जब तक सत् सरूप आत्मा के चिंतन को प्राप्त न किया जावे, तब तक मिथ्या नाम-रूप के खेद से निर्बन्ध होना अति कठिन है जो संसार का सूक्ष्म मूल सरूप है, और नित जन्म-मरण के चक्र में फिराने वाला दोष है, और कर्त्तापन त्रैगुणी माया का जो फैलाव है।

वचन—85. बुद्धि जब मनन रूप को धारण करती है, तब उसको मन कहते हैं। यानी नित ही इन्द्रियों के अनुकूल और प्रतिकूल भोगों की चेष्टा को पलक-पलक विखे मनन करना ही मन का सरूप है। ऐसे मन अनंत प्रकार की चेष्टाओं को मनन करता हुआ नित असत् नाम, रूप, गुण व कर्म रूपी सूक्ष्म-स्थूल संसार को धारण करता रहता है। जब तक बुद्धि ऐसे अनर्थक मनन भाव के त्याग को प्राप्त नहीं होती है, तब तक मन के वश हो करके नित ही प्रतिकूल कर्म करती है।

वचन—86. असत् नाम, रूप, गुण व कर्म जो मिथ्याकार वाणी हर वक्त अन्तर में प्रगट होती रहती है, जब तक बुद्धि इस मन-वाणी के खेद से

निर्बन्ध नहीं होती है तब तक निर्वाण सरूप आत्मा का बोध नहीं हो सकता है। इस वास्ते इस असत् नाम-रूप की कल्पना से निर्मल होने का सार यत्न यह ही है कि सत् सरूप आत्मा के चिन्तन में द ढ़ता धारण की जावे। यानी सत् सरूप के चिन्तन से असत् नाम-रूप के चिन्तन की जड़ता नाश को प्राप्त होती है और सत् सरूप अविनाशी शब्द के बोध को प्राप्त करके बुद्धि निहखेद हो जाती है।

वचन—87. जिस तरह परिपक्व निश्चय करके बुद्धि असत् नाम, रूप, गुण व कर्म के खेद को धारण करती रहती है और अपने आपको कर्त्ता भोगता मानती हुई नित ही कर्म द्वन्द्व में चलायमान होती रहती है—ऐसे अज्ञानमयी निश्चय से जब बुद्धि सत्नाम का द ढ़ निश्चय से चिंतन करती है और कर्त्ता-हर्ता एक चेतन सरूप प्रभु को ही जानती है, तब असत् नाम-रूप की कल्पना को त्याग करके अपने आप में एकाग्र होती है। केवल सत् सरूप अनुभव करके परम प्रसन्नता को प्राप्त होती है।

वचन—88. ऐसी यथार्थ विधि से सत्नाम का जब अन्तर-बाहर पूर्ण निश्चय से बुद्धि चिन्तन

करती है, तब असत् कल्पना का अभाव होता जाता है और सत् सरूप की अनुभवता को प्राप्त होती है, जो परम शुद्ध और शाँत तत्त है। तमाम इन्द्रियों की चेष्टाओं से असंग हो करके केवल एक नाम परायण जब बुद्धि होती है, तब निर्विकार पद को प्राप्त होती है, जो अति अश्चर्ज है।

वचन–89. इस तमाम द्वन्द्व रूपी संसार का मूल असत् नाम-रूप की कल्पना ही है, जो मिथ्या भ्रम बुद्धि में द ढ़ हुआ हुआ है। इस मूल भ्रम का नाश केवल सत्नाम का चिन्तन है, जो यथार्थ विधि और निर्मल प्रेम से धारण किया जावे। ज्यों-ज्यों बुद्धि असत् नाम-रूप को त्याग करके सत्नाम को ग्रहण करती है, त्यों-त्यों ही तमाम संकल्पत संसार के अभाव को प्राप्त होती है और आत्म सरूप की अनुभवता में एकाग्र हो करके निर्मल योग गति में प्रवीण होती है।

वचन–90. तमाम मानसिक विकारों को शुद्ध विवेक की तलवार से काट कर निर्मल वैराग्य को धारण करके एक आत्म-चिन्तन को प्राप्त करना ही परम कल्याण के देने वाला

निदिध्यासन है। इस वास्ते अधिक से अधिक यत्न सत्‌नाम के चिन्तन में करना चाहिये, क्योंकि असत् नाम-रूप की कल्पना सत्‌नाम के चिन्तन से ही नाश को प्राप्त होती है, जो तमाम विकारों की जड़ है।

वचन—91. तमाम शारीरिक बल और सुख एक आत्मा ही के आधार जान करके अनन प्रेम से आत्म-चिन्तन में द ढ़ होना ही परम कल्याणकारी निश्चय है, क्योंकि बुद्धि शारीरिक आसक्ति से तब ही छूट सकती है, जब शरीर का प्रकाशक तत्त्व निश्चय में द ढ़ होवे।

वचन—92. एक आत्मा को ही मूल जीवन रूप जान कर तमाम शारीरिक मद, मान त्याग करके जब बुद्धि निर्मल नाम चिन्तन में द ढ़ होती है, तब ही सरब शुद्धि आत्म-अनुभवता को प्राप्त होती है। यानी तमाम संसार और शरीर का कर्त्ता-हर्ता एक आत्म-सरूप महाप्रभु को जान करके जब बुद्धि नाम चिन्तन में द ढ़ होती है, तब निहसंकल्प आनन्द को प्राप्त होती है।

वचन—93. अधिक यत्न से, अधिक प्रेम से और अधिक विवेक के बल से अपने मानसिक दोषों से पवित्र होने की ख़ातिर नित ही सत्‌नाम के

चिन्तन को द ढ़ करना चाहिये, क्योंकि नाम परायणता से बुद्धि देह परायणता जो मूल विकार सरूप है, उससे निर्बन्ध होती है और शुद्ध सरूप आत्म-तत्त्व को बोध करती है।

वचन—94. नाम का असली निर्णय यह है कि जो खास बीज मन्त्र किसी सिद्ध पुरुष से प्राप्त हुआ होवे और अन्तर्गति व बाहिर्गति में पूर्ण रूप से चिन्तन किया जा सके, और पल-पल विखे सत्गुरु शरणागत धारण करके एक नाम के आधार पर ही अपनी तमाम की तमाम मनोव त्तियों को निहचल करके बुद्धि को एकाग्र किया जावे। ऐसे साधन को ही नाम चिंतन और योग कहा गया है।

वचन—95. जो नामुकम्मिल साधु के उपदेश को धारण किया होवे, जिसने खुद अपने अन्धकार को दूर नहीं किया हो, तो उस उपदेश में सफलता होनी कठिन है। क्योंकि इस योग मार्ग में गुरु करनी वाले के बग़ैर सत् पद की प्राप्ति होनी अति कठिन है, जैसा कि आम बनावटी गुरु घर-घर उपदेश देते फिरते हैं। उसका नतीजा महज़ एक व्यौहार है, न कि कल्याण है। नामुकम्मिल साधु का

उपदेश न यथार्थ कल्याण दे सकता है और न ही बुद्धि उस पर पूर्ण निश्चयगत हो सकती है। ऐसा अच्छी तरह से समझना चाहिये।

वचन–96. शिष्य ने गुरु की कुर्बानी को देख करके ही कुर्बानी करनी है। गुरु की पवित्रता को देख करके ही पवित्रता प्राप्त करनी है। गुरु के वैराग्य, अनुराग और निदिध्यास को देख करके ही शिष्य सरबमयी गुण को धारण करके अपने तमाम अवगुणों से छूट सकता है। जब गुरु औगुणवादी और महज़ कथनी ही है, तो शिष्य भी ऐसी ही गति को प्राप्त कर सकेगा। यह यथार्थ निर्णय समझना चाहिये कि गुरु की सत् स्थिति से ही शिष्य निर्मल हो सकता है।

वचन–97. जब कामिल सत्पुरुष की शिक्षा प्राप्त होवे, तब बुद्धि गुरु के श्रेष्ठ गुणों को धारण करके सहज ही निर्मल भगति नाम चिन्तन को प्राप्त हो जाती है, और अपने तमाम अवगुणों को त्यागने में समर्थ होकर के

निर्मल स्थिति को प्राप्त होती है, यानी गुरु जिससे निर्मल निर्वास पद को प्राप्त हुआ है सत् यत्न करके, उसी परम स्थिति की प्राप्ति में शिष्य द ढ़ होता है।

वचन—98. ऐसे वीतराग सत्पुरुष के सत् उपदेश को ग्रहण करके नित ही एक नाम परायण होने का जब यत्न बुद्धि करती है, तब सहज ही निर्मल योग को प्राप्त होती है, जो निहखेद पद है। इस वास्ते पूर्ण निश्चय से, पूर्ण यत्न से, सत्पुरुषों की संगत और सत्नाम का चिन्तन द ढ़ करना चाहिये, जिससे मानसिक शुद्धि निर्भय सुख प्राप्त होवे।

वचन—99. जब आहार सूक्ष्म व शुद्ध और व्यौहार शुद्ध मर्यादायुक्त और संगत केवल सत्पुरुषों की और स्वाध्याय केवल सत्पुरुषों के जीवन का धारण किया जाता है, तब एक नाम चिन्तन में द ढ़ता प्राप्त होती है। यानी तमाम भरोसे त्याग करके एक नाम के आधार बुद्धि निहचल होती है। यह ही अवस्था निर्मल भगति की है।

वचन—100. अधिक से अधिक समय जब नाम चिन्तन में ही दिया जाता है और तमाम लौकिक व्यौहार सूक्ष्म मर्यादा का धारण किया जाता

है, तब बुद्धि नाम परायण हो करके तमाम शारीरिक विकारों की आसक्ति से निर्बन्ध हो जाती है और अन्तर में सत् सरूप के बोध को प्राप्त होती है। ऐसी द ढ़ता को ही परम तपस्या कहा गया है।

वचन–101. जब बुद्धि नाम चिन्तन में द ढ़ हो करके तमाम कर्मफल द्वन्द्व प्रभु आज्ञा में समर्पण करती है और अनन प्रेम करके एक नाम को स्वांस-स्वांस में चिन्तन करती है, तब कर्म दोषों से पवित्रता को प्राप्त होती है। यानी मिथ्याकार वासना का अन्तःकरण से अभाव हो जाता है और निर्वास अवस्था आत्म-शब्द को अन्तर में अनुभव करती है। कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति से ज्यों-ज्यों धीरज प्राप्त होता जाता है, त्यों-त्यों कर्त्तापन की मलिन भी नाश को प्राप्त होती है, जो मूल अंधकार सरूप है।

वचन–102. एक नाम के द ढ़ चिंतन से कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति को त्यागना और प्रभु इच्छया में तमाम कर्मों को देखना ही निर्मल भगति है। ऐसे निर्मल त्याग को प्राप्त करके तमाम शारीरिक दोषों से बुद्धि असंगता को प्राप्त

होती है, जो परम कल्याण स्थिति है। द्वन्द्व आसक्ति से नई से नई त ष्णा बढ़ती है और त ष्णा के बढ़ने से कर्त्तापन की आसक्ति प्राप्त होती है, यानी मजबूरी से भोग वासना को पूर्ण करने की ख़ातिर कर्म करना पड़ता है। यह ही कठिन संसार का संग्राम है।

वचन–103. अधिक यत्न से नाम चिन्तन में बुद्धि को एकाग्र करके होना और न होना जो कर्मफल द्वन्द्व है, उसको प्रभु आज्ञा में समर्पण करते हुए जो निमित्त मात्र सत्कर्म करते हुये योगीजन विचरते हैं, वे ही कर्म जाल से विलग हो करके सत् सरूप निहकर्म गति को प्राप्त होते हैं।

वचन–104. शरीर द्वारा जो कर्म करने होते हैं उनका कर्त्ता और भोगता अभिमान त्याग करके जो गुणी निमित्त मात्र कर्म में विचरते हैं, और ईश्वर को ही कर्त्ता, भोगता द ढ़ निश्चय से जानते हैं, और निमिख-निमिख विखे एक नाम चिन्तन में निहचल होते हैं, वे ही परम तपीशर निहकर्म गति आत्म-साख्यातकार (साक्षात्कार) सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

वचन–105. हर हालत में एक नाम का चिन्तन जो द ढ़ निश्चय से मन और पवन से करते हैं, और मानसिक दोष पलक-पलक विखे सत्

अनुराग के बल से अन्तर से त्यागते हैं, वे ही परम विवेकी सहज ही परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं। यानी नाम के द ढ़ चिन्तन से मिथ्याकार चिन्तन का अभाव हो जाता है और बुद्धि एकाग्र हो करके केवल सत् सरूप में निहचल होती है।

वचन–106. नाम ही जिनका आधार है, नाम ही जिनका परम भोजन है, नाम ही जिनका परम व्यौहार है, वे ही सत्‌ग्रही पुरुष तमाम विकारों से निर्मल हो करके आन्तरिक सत् शान्त पद आत्म-सरूप में स्थित होते हैं। यानी एक लमह भी जब बुद्धि नाम का आधार नहीं छोड़ती है, तब तमाम कामनाओं और कल्पनाओं से पवित्र हो करके सत् सरूप अविनाशी शब्द में जाग्रत को प्राप्त होती है, जो अनन्त महिमा का सागर है।

वचन–107. नाम सिमरण से कर्त्तापन और कर्मफल द्वन्द्व महा-विकराल रूप संसार जब नाश को प्राप्त होता है, तब अकर्त सरूप अविनाशी शब्द का बोध होता है, जो नित निर्वास और निर्खेद है। इस वास्ते एक नाम के सिमरण को अधिक से अधिक यत्न करके द ढ़ करना

चाहिये, जिससे तमाम मिथ्याकार संस्कारों का अभाव होवे, और परम शुद्ध सरूप निर्विखाद शब्द का बोध होवे, जो परम स्थिति है।

वचन—108. कर्त्तापन और कर्म वासना के जाल को केवल प्रभु समर्पण भाव से जो त्यागते हैं और एक नाम के पूर्ण आधार को प्राप्त करने का यत्न करते हैं, वे ही परम योगी आत्म-सिद्धि को प्राप्त होते हैं। स्वांस की अन्तरगति और बाहिरगति में लगातार नाम का चिन्तन करना परम सिमरण है और तमाम कर्मों का फल साथ-साथ त्याग करके अपने कर्त्तापन से निर्बन्धन होना ही परम भगति है। ऐसी द ढ़ उपासना जब अन्तर में निहचल होती है, तब बुद्धि अधिक निर्मल हो करके सत् सरूप अविनाशी शब्द आत्मा के बोध को प्राप्त होती है, जो केवल सरूप है।

वचन—109. एक नाम के आधार को प्राप्त करके तमाम मिथ्याकार वासनाओं से विजय प्राप्त करनी और आसक्ति रहित हो करके शारीरिक कर्मों में अचेष्ठ रूप में विचरना ही निर्मल

योग है। यानी बुद्धि तमाम शारीरिक कर्मों की वासना से शुद्ध हो करके परम एकाग्रता को प्राप्त होती है और अन्तर में अविनाशी शब्द अखंड को अनुभव करती है, जो निर्भय पद है।

वचन—110. जब तक कर्त्तापन और कर्म वासना अन्तःकरण में मौजूद रहती है, तब तक नाम चिंतन में प्रभु को कर्त्ता-हर्ता, सुखदाता, सर्वाधार और रखयक करके चिन्तन करना चाहिए। ऐसे निर्मल प्रेम के बल से ही बुद्धि असत्वाद जड़ता को त्याग करके केवल सत्परायण हो सकती है और परम शुद्धि को अन्तर में अनुभव करती है।

वचन—111. जब बुद्धि ऐसे द ढ़ निश्चय से नाम परायण होती है, जिस तरह से जल को मीन चिन्तन करती है, तब शारीरिक भोगों के राग से निर्बन्ध हो करके वीतराग अवस्था आत्म-सिद्धि को प्राप्त होती है, यानी तमाम शारीरिक आसक्ति एक नाम के द ढ़ चिन्तन के बल से त्याग करके नौ द्वारों से अन्तरमुख हो करके एक अखण्ड अविनाशी शब्द को अनुभव करती है, जो नित

निर्विकार और निर्खेद है। यानी ऐसे निर्मल अभ्यास से जब बुद्धि नौ द्वारों की चेष्टाओं से असंग होती है, तब अविनाशी शब्द को अन्तर में अनुभव करके परम प्रसन्नता को प्राप्त होती है।

वचन–112. महाविकारों की अग्नि शुद्ध चिन्तन के बल से ही नाश को प्राप्त होती है। इस वास्ते तमाम का तमाम यत्न एक नाम के चिन्तन में द ढ़ करना चाहिए, यह ही तपस्या, भगति और योग है। अधिक विवेक सहित, अधिक श्रद्धा सहित होकर के जो नाम परायण होने का यत्न करते हैं, वे अधिक जड़ बुद्धि वाले भी सहज में ही परम सिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं।

वचन–113. परम तप, परम जप, परम त्याग और परम स्थिति केवल एक नाम के चिन्तन से ही प्राप्त होती है, जो निर्मल भावना और निर्मल जुगति करके धारण किया जावे। यानी जो नाम प्राण सन्धि को द ढ़ करके अन्तर-बाहर पूर्ण रूप से उच्चारण किया जावे, वह ही नाम अन्तःकरण में निहचल होता है, और तमाम असत् नाम-रूप कामनाओं को नाश करके अविनाशी शब्द का साख्यातकार करता है। इस वास्ते ऐसे

नाम में निहचल हो करके अपने जीवन का उद्धार करना ही परम उच्च कर्त्तव्य है।

वचन—114. जो द ढ़ निश्चय से एक नाम के परायण हुये हैं, और कर्मफल की आसक्ति प्रभु आज्ञा में नित समर्पण करते हैं, और तमाम जीवों की जो कल्याण चाहते हैं, ऐसे परम विवेकी ही निर्भय स्थिति आत्म-पद को बोध कर सकते हैं। निर्मल विवेक और निर्मल अनुराग के बग़ैर ऐसी नाम की अखण्ड स्म ति प्राप्त होनी अति कठिन है। इस वास्ते ही इस विज्ञान मार्ग में चलते तो बहुत हैं, मगर परम स्थिति को प्राप्त कोई विरला ही होता है।

वचन—115. जिसने निश्चय करके तमाम शारीरिक भोगों से उपरसता प्राप्त की है और अधिक विश्वास जो गुरु वचनों में रखता है, और सत् साधन में जो अधिक चतुर है, यानी एक पलक भी नाम साधन के बग़ैर जो नहीं त्यागता है, ऐसा द ढ़ अनुरागी ही परम सिद्धि आत्म-साख्यातकार पद को प्राप्त होता है, जो अकथ और अलेख है।

वचन—116. द ढ़ निदिध्यासन जब नाम का धारण किया जाता है, तब तमाम संकल्प-विकल्प अभाव हो जाते हैं और बुद्धि एक ध्यान में निहचल

होती है और द्वन्द्व की आसक्ति से निर्बन्धन होती जाती है। ऐसे द ढ़ अभ्यास की प्राप्ति से अन्तर में सत् शब्द आत्म-जोत अनुभव होती है। प्रथमे शब्द की अनुभवता नाभि स्थान में प्रतीत होती है। बाद में वह अखण्ड धार ऊपर मस्तक के दरम्यान अनुभव होने लगती है। ऐसी स्थिति जब अन्तर में बोध होवे, तब बुद्धि शारीरिक कामनाओं से पवित्र हो करके आत्म-सरूप में एक ध्यान होती है। जब ऐसी ध्यान की अवस्था अधिक परिपक्व हो जाती है तो मस्तक से ऊपर सुन्न शिखर में अखण्ड नाद अनुभव होता है। तब बुद्धि दुर्मत छाया से पवित्र हो करके अपने निज सरूप में विश्राम पाती है और तमाम शारीरिक दोषों से विलग हो जाती है। भूख, प्यास, निद्रा, पर विजय हासिल कर लेती है। द्वन्द्व खेद सरूप राग-द्वेष की अग्नि से बिल्कुल शीतल हो जाती है और तमाम इन्द्रियों के भोगों में अचेष्ट रूप होकर विचरती है। ऐसी अवस्था ही परम सिद्धि योग आरूढ़ता का सरूप है।

वचन–117. मानसिक विकार अधिक प्रबल हैं। अधिक यत्न करने से भी बुद्धि की पवित्रता को नाश कर देते हैं। इस वास्ते इस योग कल्याण मार्ग में परम धीर पुरुष ही पूर्ण

कामयाब (सफल) हो सकता है। यानी कर्त्तापन अभिमान अधिक से अधिक सत् यत्न करने से ही अभाव होता है, जो आत्म-सरूप की अनुभवता पर छाया हुआ है।

वचन—118. नाम के दढ़ निदिध्यासन से और तमाम कर्मफल प्रभु आज्ञा में समर्पण करने से कर्त्तापन अभिमान का सहज ही अभाव हो जाता है। ऐसे निश्चय को ही भगति योग, कर्म योग कहा गया है। बग़ैर समर्पण बुद्धि के नाम के निदिध्यासन में परिपक्व होना अति कठिन है। क्योंकि द्वन्द्व खेद एक लमह भी अचिन्त और अडोल होने नहीं देता है और ऐसी चंचल हालत में आत्म-रस का अनुभव करना महज़ नासमझ लोगों का विचार है।

वचन—119. बुद्धि की चंचल हालत ही संसार का सरूप है, और बुद्धि का निश्चल होना ही सरूप का बोध होना है। और कर्त्तापन अभिमान जब तक बुद्धि में छाया हुआ है, तब तक कर्मफल द्वन्द्व की भयानक वासना बुद्धि को एक लमह भी अकर्म होने नहीं देती है। इस

वास्ते अधिक यत्न-प्रयत्न से अपने कर्त्तापन को त्याग करना और साक्षी सरूप को कर्त्ता-हर्ता जानना, और द्वन्द्व खेद की आसक्ति से असंग होना समर्पण बुद्धि करके, यह ही कल्याणकारी योग है।

वचन—120. आत्मा नित अकर्त्ता और निहकर्म सरूप है और बुद्धि कर्त्तापन सहित और कर्म वासना संजुगत है। इस वास्ते जब तक इस कर्त्तापन मूल अन्धकार का अभाव न हो जावे तब तक आत्मा का बोध नहीं हो सकता है। भगति योग, कर्म योग और ज्ञान योग की सार यही है कि बुद्धि कर्त्तापन को त्याग करके अकर्त सरूप आत्मा का बोध प्राप्त करे, जो नित निहखेद और परम प्रकाश सरूप है।

वचन—121. ज्यों-ज्यों बुद्धि कर्त्तापन में द ढ़ होती है, त्यों-त्यों कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति को धारण करके अनन्त प्रकार की वासना और अनन्त प्रकार के कर्म चक्कर में चलायमान होती रहती है। एक पलक भी निहकर्म और निर्वास नहीं हो सकती है। यह ही अवस्था मिथ्यावाद और नास्तिकवाद की है।

ग्रन्थ

वचन–122. ऐसे कर्त्तापन अद्भुत भरम जाल से छुटकारा प्राप्त करने का केवल यह ही मार्ग है कि सरब साक्षी सरूप आत्मा की परायणता और अनुभवता प्राप्त की जावे, जो सरब शाँति सरूप है। जब तक प्रथम देह परायणता को त्याग करके आत्म-परायणता को प्राप्त न किया जावे, तब तक आत्म-अनुभवता को प्राप्त होना अति कठिन है। इस वास्ते अधिक सत् विश्वास और सत् अनुराग के बल से तमाम शारीरिक भोग क्रीड़ा से निर्बन्ध हो करके केवल आत्म-परायणता में अपने आपको निश्चल करना ही सरब दोषों के नाश करने वाला साधन है।

वचन–123. ऐसे परम तत्त्व सरूप आत्मा को नित ही जानने की कोशिश करनी परम कल्याण सरूप है। यानी निहकर्म, निर्वास, अचल, अडोल, अकर्त्ता, अभोगता, अछेद, अभेद, सर्वज्ञ और नित सरूप होने के कारण सरब प्रक ति के दोषों से भिन्न है और बुद्धि ऐसे अविगत सरूप के सिमरण, ध्यान के बल से तमाम प्रक ति के दोषों से निर्बन्ध हो जाती है। मानुष जन्म का यह ही यथार्थ साधन है।

वचन–124. परम तत्त्व आत्मा की परायणता को छोड़

करके महज़ कर्त्तापन अभिमान के वश हो करके कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति में जड़ हो करके विचरना पशु से भी नीच जीवन है, क्योंकि अधिक कर्त्तापन की जड़ता और अधिक कर्मफल द्वन्द्व की जड़ता से भयानक वासना का जाल प्रगट होता है, जो कि अपनी भी नाश और दूसरों की भी नाश करने वाला होता है। यह ही जीवन असुरवाद का सरूप है। यानी कर्त्तापन की जड़ता से कभी भी कर्मफल भोग की वासना पूर्ण नहीं होती है, बल्कि कर्म फल भोग की अति आसक्ति में आ करके ऐसे-ऐसे क्रूर कर्म बुद्धि धारण करती है, जिससे अपनी भी घातक और दूसरों की भी घातक हो जाती है।

वचन–125. मानुष जन्म की उच्चता यह ही है कि इस घोर खेद सरूप प्रक त जाल से असंगता प्राप्त की जावे, जो परम शाँति का सरूप है। उस शाँति की चाहना हर एक के अन्दर मौजूद है, मगर कर्त्तापन प्रक तक जाल की असंगता की बजाय उसमें जड़ हो करके अविनाशी शाँति की तलाश सब कर रहे हैं। यह ही अवस्था अति मूढ़ता की है।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

वचन–126. तमाम वेद-शास्त्रों और सिद्धों की सार यह ही है कि अपने भरम अन्धकार कर्त्तापन को त्याग करके अकर्त सरूप अविनाशी तत्त्व के बोध को प्राप्त किया जावे, जो अचल शाँति है। अधिक यत्न से, अधिक विवेक से, अधिक प्रेम से, और अधिक अपनी निर्मल कल्याण की चाहना रखते हुए एक आत्मा सरब जीवन शक्ति के विश्वास और निदिध्यास को द ढ़ करते हुए निर्मल बोध को प्राप्त कर लेवे–जो निज धाम है।

वचन–127. जब निश्चय करके बुद्धि तमाम शारीरिक विकारों को विकार सरूप करके देखती है और इनमें अधिक अशाँति प्रतीत करती है, तब सत् सरूप के परायण होने का यत्न करती है। आगे ज्यों-ज्यों सत् आधार को प्राप्त होती है, त्यों-त्यों कर्त्तापन की मलिन से शुद्ध होती जाती है। आखिर अधिक निर्मल प्रेम के बल से सत् सरूप की अनुभवता को प्राप्त होती है, जो सरब सरूप और निर्भय धाम है।

ग्रन्थ

वचन–128. ऐसे साक्षी सरूप के परायण हो करके विचरना ही सरब दोषों से पवित्रता के देने वाला निश्चय है। ज्यों-ज्यों बुद्धि सत् आधार को प्राप्त होती है, त्यों-त्यों अशुद्ध वासना के त्याग से अशुद्ध कर्म का त्याग प्राप्त होता है, और अशुद्ध कर्म के त्यागने से बुद्धि बलवान हो करके अपने आपको केवल सत् परायण बनाने का यत्न करती है। यह निश्चय ही ईश्वर भगति का सरूप है।

वचन–129. जिसने मानसिक दोषों से पवित्रता प्राप्त नहीं की है और जो निश्चय करके अन्तर से सत् परायण नहीं हुआ है, और बाहर से दिखलावे मात्र बड़े धर्म-कर्म को धारण किये हुए है, वह तुच्छ बुद्धि वाला अपने जीवन में कुछ हासिल नहीं कर पाया है, बल्कि दम्भ को धारण करके अपने आपकी नाश की है।

वचन–130. जन्म से ही हर एक शरीरधारी अपनी कल्याण की खातिर यत्न-प्रयत्न कर रहा है, मगर अन्ध-बुद्धि होने के कारण अपनी कल्याण महज़ शारीरिक भोगों में ही देखता है। इस वास्ते अपने-अपने शारीरिक भोगों

की प्राप्ति में हर एक जीव चतुर हो करके दौड़ रहा है। मगर प्राक तिक स्वभाव के मुताबिक तमाम प्राक त जाल तबदीली युक्त और खेद सरूप है। इसमें सत् शाँति की चाहना रखनी महज़ एक अधिक मूढ़ता है। न ही शरीर पूर्ण है और न ही शरीर के भोग पूर्ण हो सकते हैं। इस वास्ते पूर्ण तत्त्व की खोज करनी ही जीवन का पूर्ण आशावादी होना है। सो पूर्ण तत्त्व एक आत्म-सरूप है, जो तमाम जड़ और काल सरूप संसार को प्रकाश कर रहा है।

वचन–131. ऐसे नित परिपूर्ण अविनाशी तत्त्व की खोज करनी ही परम कल्याण सरूप है। इस वास्ते परम यत्न से एक आत्मा के परायण हो करके अपनी मिथ्याकार वासनाओं से पवित्र होना चाहिए, जो परम खेद सरूप है। वासना की पूर्ति शारीरिक भोगों से नहीं हो सकती है, बल्कि आत्मा के अनुभव से होती है। यह यथार्थ ज्ञान हर समय निश्चय में द ढ़ करना चाहिये।

वचन—132. तमाम प्रक ति वासना का ही सरूप है और वासना से ही हर एक की तबदीली हो रही है, और वासना के खेद को पूर्ण करने की ख़ातिर तमाम देहधारी दौड़ रहे हैं, मगर वासना युक्त पदार्थों को धारण करके बजाय वासना की पूर्ति के उल्टे वासना के जाल को फैला करके नित अधीरता को प्राप्त हो रहे हैं। ऐसे संसार के सही भेद को जान करके परिपूर्ण तत्त्व आत्म-सरूप की खोज करनी चाहिये, जो तीन काल निर्वास और निर्दोख है।

वचन—133. वासना की पूर्ति की ख़ातिर, कर्म के खेद से छूटने की ख़ातिर और नित नए से नए जन्म-मरण के चक्कर को समाप्त करने की ख़ातिर, नित त प्त, नित निहकर्म और नित सम सरूप अविनाशी आत्मा की खोज में द ढ़ होना चाहिये। वह ही परम पद कल्याण सरूप है।

वचन—134. ऐसे परम तत्त्व के निश्चय को प्राप्त करके अपनी कल्याण और दूसरों की कल्याण करनी चाहिये। यह ही देवताओं का मार्ग है।

अपने बन्धन को, अपने भ्रम को, अपनी अशाँति को दूर करने की ख़ातिर खुद सत् यत्न धारण करना चाहिये, क्योंकि अपने सत् यत्न से ही सरब कल्याण है। जो सत् यत्न को छोड़ करके कल्पित इष्ट देवों का आसरा बना लेते हैं, वे इस भयानक प्रकृतिक चक्र में हर प्रकार दुखित रहते हैं।

वचन—135. इस अधिक भरम चक्कर संसार से जाग्रत हो करके अपने कल्याण के मार्ग को प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि शरीर की विनाश निकट आ रही है। जिस गुणी पुरुष ने शरीर की अन्तिम दशा का विचार किया है और शारीरिक भोगों की अशाँति को भी अनुभव किया है, वह ही निर्मल विवेकी सत्वाद के मार्ग को धारण करके परम सिद्धि को प्राप्त होता है।

वचन—136. अपने निर्मल विवेक से और सत्पुरुषों की संगत से जब बुद्धि निर्मल निदिध्यास को प्राप्त होती है, तब तमाम जन्म-जन्म के संस्कारों को सहज ही भस्म करके अपने निज सरूप में निहचल हो जाती है।

वचन—137. जब बुद्धि तमाम प्राकृत विकारों से पवित्रता को प्राप्त होती है, और एक नाम के

निदिध्यास में अधिक द ढ़ होती है, तब निहकर्म सरूप आत्मा को अन्तर में अनुभव करके परम शाँति को प्राप्त होती है, और शारीरिक कर्मों में नित निरासक्त हो करके विचरती है। यह अवस्था ही सहज है। जो ऐसी स्थिति को प्राप्त हुआ है, वह ही पूर्ण संसार की गति को जानने वाला पुरुष है। उसका आदर्श जीवन दूसरे जीवों के वास्ते परम कल्याणकारी है।

वचन—138. जब बुद्धि शरीर से भिन्न हो करके आत्म-सरूप को अनुभव करती है, तब तमाम शारीरिक कर्म दोषों से निर्बन्ध हो जाती है, क्योंकि आत्मा तीन काल अकर्म और अखेद सरूप है। मगर शरीर से भिन्न करके आत्मा को तब ही जान सकती है, जब तमाम शारीरिक विकारों की आसक्ति को त्याग करके द ढ़ निश्चय से अपने आपको एक आत्मा के समर्पण करती है। जो ऐसे सत् यत्न को प्राप्त नहीं हुए हैं और न ही प्रक तिक दोषों से उपरामता प्राप्त की है, वे कथनी ज्ञानी ऐसे ही जानने चाहियें जैसे

सागर व दरियाओं का नक़्शा देख करके कोई अपनी प्यास बुझा लेवे।

वचन–139. अधिक निर्मल यत्न से अपने भ्रम की फाँसी को काट करके एक आत्म-सरूप के द ढ़ निश्चय को प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि आत्म-निश्चय ही सरब तोहमात[1] और सरब आसक्ति से निर्बन्धन करने वाला है। जिसने आत्म-निश्चय को छोड़ कर अनात्म पदार्थों में सत् शाँति तलाश की है, वह इस संसार सागर से परम दुखित और निराशावादी ही होकर के चला है।

वचन–140. तमाम संसार तबदीली युक्त है, ऐसे ही हर एक का शरीर। ऐसे तबदील होने वाले चक्र से जाग्रत हो करके नित सरूप आत्मा की खोज करनी चाहिये, जो तीन काल अनादि है। इस प्रक ति की दौड़ में सब अधिक से अधिक जानते हुए भी अनजान हैं, अधिक पदार्थ प्राप्त किए हुए भी त खावंत हैं, अधिक जिये हुए भी जीवन आशा मौजूद है। इस भ्रम जाल से स्वतन्त्र हो करके ऐसी खोज करनी चाहिए कि जिसके जानने से सब कुछ जाना जाए और जिसकी प्राप्ति से सरब प्राप्ति हो जावे, यानी तमाम आशा

1. वहमों, शंकाओं

पूर्ण हो जावे। वह एक केवल सत् सरूप आत्मा ही है। जिसने ऐसा निश्चय किया है वह ही परम प्रवीण पुरुष है।

वचन—141. ऐसे परम तत्त्व आत्मा के परायण हो करके ही तमाम खेदों से कल्याण प्राप्त होती है, क्योंकि आत्म-निश्चय से अनात्म भावना नाश होती है, आत्म-चिन्तन से अनात्म चिन्तन नाश होता है, आत्म-अनुभवता से संसार की सत्ता का नाश हो जाता है, जो बार-बार बुद्धि को भरमाता है।

वचन—142. जब द ढ़ निश्चय से बुद्धि अपने आप में एकाग्र हो करके सत् सरूप आत्मा को अनुभव करती है, तब ऐसी केवल शाँति को प्राप्त होती है, जो अगोचर और अलेख है। यानी शरीर रूपी संसार की अधिक त ष्णा जो नाना प्रकार के कर्म चक्रों में जकड़ती है, वह नाश को प्राप्त होती है और बुद्धि निर्वास और निहकर्म हो करके स्थिर होती है।

वचन—143. जब बुद्धि अधिक विश्वास से जीवन शक्ति आत्मा को ही तमाम जड़ प्रक ति का आधार जानती है, तब तमाम प्रकृतिक विकारों से निर्बन्ध हो करके आत्म-चिन्तन में आरूढ़ होती है, और अधिक प्रेम की प्रबलता से

तमाम कर्त्तापन अन्धकार से निर्मल हो करके निहकर्म सरूप आत्मा में स्थित होती है।

वचन—144. जब बुद्धि अधिक निर्मल प्रेम से एक आत्म-चिन्तन में द ढ़ होती है, तब तमाम कामना और कल्पना को छेदन करके नौ द्वार शरीर के अन्तर अडोल हो जाती है। तब सत् सरूप अविनाशी शब्द में रस का पान करके जन्म-जन्म की तपन से शीलता को प्राप्त होती है। उस वक्त और कोई पदार्थ दुर्लभ इस संसार में उस गुणी के वास्ते नहीं रहा है। धन्न वह पुरुष है, जिसको ऐसी स्थिति प्राप्त होती है।

वचन—145. जब बुद्धि केवल आत्म-प्रेम को द ढ़ करती है, तब तमाम शारीरिक सम्बन्धियों से निर्मोह हो करके विचरती है। यानी तमाम आकारमयी शरीर नाश सरूप दिखलाई देते हैं, और एक आत्मा निराकार ही अविनाशी सरूप प्रतीत होता है। इस वास्ते नाश सरूप से क्या प्रेम किया जावे! वह तो केवल अविनाशी के प्रेम में ही मगन हो रहा है, और अपने आप में निर्मल प्रसन्नता को प्राप्त किया है।

वचन–146. जब बुद्धि द ढ़ निश्चय से एक आत्म-सरूप के परायण होती है, तब तमाम शारीरिक दुःख व सुख की आसक्ति से निर्बन्ध हो जाती है और अधिक निर्मल ध्यान में निहचल हो करके आत्म-आनन्द को अनुभव करती है। जैसा कि आत्मा को शरीर में व्यापा हुआ भी और न्यारा भी करके देखती है। ऐसे अश्चर्ज को अनुभव करके परम शून्न अवस्था को प्राप्त होती है, जो नित शाँति है।

वचन–147. जब बुद्धि आत्म-चिन्तन के द ढ़ निदिध्यास को प्राप्त होती है, तब अन्तर में एक आत्म-सरूप को अनुभव करती है, जो काल में अकाल, वासना में निर्वास, आकार में निराकार, द्वन्द्व में निर्द्वन्द्व, कर्म में अकर्म, द्वैत में अद्वैत, माया में ब्रह्म सरूप हो करके व्याप रहा है। जब ऐसी महिमा को अन्तर में जानती है, तब अपने आप में परम स्वतन्त्र हो करके शारीरिक कर्मों से निर्शोक, निर्मोह हो करके स्थिर होती है। यह स्थिति ही परम कल्याण सरूप निर्वाण है।

वचन—148. जब बुद्धि आत्मा का अन्तर में साख्यातकार कर लेती है, तब शारीरिक क्रिया में निर्मान, निर्मोह, निष्काम, निर्द्वन्द्व हो करके विचरती है। यानी नित ही अपने में असंग और अलेप हो करके स्थित होती है, और तमाम शारीरिक वासना के जाल से विलग हो जाती है। यह ही परम निहचलता है। जिसको प्राप्त हुई है, वह सरब कीर्ति योग पुरुष है।

वचन—149. ऐसे अद्‌भुत माया के चक्र से उसी पुरुष ने विश्राम पाया है और नित शाँति को प्राप्त हुआ है, जिसने शारीरिक यात्रा के होते-होते एक परम तत्त्व आत्मा में स्थिति प्राप्त की है और तमाम शारीरिक विकारों से निर्बन्ध हो करके निर्भय हुआ है। उस पुरुष का यत्न और कर्म तमाम मानुषों के वास्ते एक आदर्श सरूप है।

वचन—150. जिस मानुष ने अति मद को धारण करके महज़ भोग क्रीड़ा में ही जन्म व्यतीत किया है या जिसने एक आत्म-चिन्तन को छोड़ करके शारीरिक भोगों की ख़ातिर अनन्त प्रकार के इष्टदेव बनाकर पूजे हैं, और भी

कई तरह के अनर्थक साधन धारण किये हैं—सबका नतीजा और सबका यत्न बजाये कल्याण के उल्टा अकल्याण सरूप ही जानना चाहिये।

वचन—151. जिसने अति मद को धारण करके परमार्थक ग्रन्थों का अधिक निदिध्यास किया है और अपने दोषों से पवित्रता हासिल नहीं की है, उस विद्वान ने हाथ में रोशनी लेकर कुएं में छलाँग लगाई है और अपने जीवन को निरर्थक ही खो दिया है।

वचन—152. जिस पुरुष ने अहंकार की मलिन से शुद्धता प्राप्त नहीं की है, और सत्श्रद्धा युक्त हो करके एक आत्म-सरूप के परायण नहीं हुआ है, वह बड़े से बड़ा विद्वान और बड़े से बड़ा ज़ाहरी धर्मवान होते हुए भी नीच पुरुष ही जानना चाहिए, क्योंकि अन्तःकरण के दोष सत् परायण होने के बग़ैर छूट नहीं सकते हैं। कपट, झूठ और बनावट सत् स्थिति के बाधक हैं।

वचन—153. अति स्वतन्त्र बुद्धि को धारण करके अपनी निर्मल कल्याण की ख़ातिर जिस पुरुष ने सत् धर्म का आसरा लिया है और नित मानसिक दोषों को पवित्र करने के यत्न में

जो द ढ़ हुआ है, वह सहज ही निर्मल भगति को प्राप्त हो करके अपनी पूर्ण कल्याण को प्राप्त कर लेवेगा। यानी निर्मल भावना से निर्मल यत्न प्राप्त होता है, और निर्मल यत्न से निर्मल सिद्धि प्राप्त होती है। इस वास्ते सत् विश्वास की द ढ़ता से इस भव दुस्तर से जीवित में ही सत् विजय हासिल कर लेनी चाहिए।

वचन—154. सत् परायण होने से असत् परायणता जो अन्धकार का मूल है, वह नाश होता है और सत् परायणता से निर्मल प्रेम प्राप्त होता है, जो सत् तत्त्व की अनुभव गति को देने वाला है। इस वास्ते पूर्ण निश्चय से, पूर्ण प्रेम से एक आत्म-सरूप के परायण हो करके अपने तमाम शारीरिक विकारों से निर्बन्ध होना चाहिये और मन करके, वचन करके और शरीर करके दूसरे जीवों की अधिक सेवा करनी चाहिये। ज्यों-ज्यों अपने तमाम सुख दूसरों की सेवा में समर्पण किये जाते हैं त्यों-त्यों अविनाशी आत्मानन्द अन्तर में जाग्रत होता है, जो परम प्रसन्नता का सरूप है।

वचन—155. एक आत्मा के परायण हो करके निष्काम सरूप में अपने जीवन को दूसरों की कल्याण की खातिर ही समझना और भली प्रकार करके दूसरों की सेवा करनी, ऐसे सत् यत्न के धारण करने से तमाम अहंग विकार की मैल शुद्ध हो जाती है और बुद्धि निरअहंग अवस्था को प्राप्त करके अपने आप में निर्मल बोध को प्राप्त होती है, यानी सत् सरूप में स्थिर होती है। यह ही अवस्था योग की परम स्थिति है।

वचन—156. मूल भ्रम अहंग विकार से शुद्ध होने की खातिर प्रथम भोगवाद और मिथ्यावाद के अद्भुत विस्तार को समझना चाहिए। जब ऐसे शुद्ध विवेक को धारण कर लिया जावे, तब एक सत् सरूप जीवन शक्ति के निश्चय को द ढ़ करना चाहिये और बढ़ते हुए मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी चाहिये। यानी सादगी, सेवा, सत, सत्संग और सत्नाम के सिमरण में द ढ़ता धारण करनी चाहिये। जब ऐसे सदाचार में बुद्धि निहचल होवे तब ही भयानक काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की अग्नि शीलता को प्राप्त होती है, और अन्तःकरण में देव व त्तियाँ पूर्ण रूप में प्रकाशित होती हैं।

ग्रन्थ

वचन–157. जब निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निहचलता और पर-उपकार आदि श्रेष्ठ देव गुण अन्तःकरण में प्रकट होते हैं, तब पूर्ण निश्चय से बुद्धि आत्म-परायण हो जाती है और देह-परायणता जो तमाम विकारों का मूल है, इससे निर्बन्ध हो जाती है। तब ही निर्मल भगति में अपने आपको परम शुद्ध यानी निरसंकल्प करके सत्-सरूप आत्मा में निहचल होती है। यह ही परम सिद्धि की अवस्था है।

वचन–158. तमाम शारीरिक विकारों से पवित्र होने की खातिर एक आत्म-निश्चय को दढ़ करना चाहिये। तमाम भय व रंज[1] से छूटने की ख़ातिर एक आत्म-चिंतन को धारण करना चाहिए। परम प्रसन्नता निर्भय-पद प्राप्ति की ख़ातिर एक आत्म-सरूप का साख्यात्कार करना चाहिये।

वचन–159. इस भयानक संसार संग्राम में नित ही निर्मल कर्त्तव्य को पालन करते हुए अपने मानसिक दोषों को छेदन करके एक परम-तत्त्व अविनाशी सरूप आत्मा के परायण हो करके इस जीवन यात्रा को पूर्ण

1. दुःख

कर लेना चाहिये। यानी जीवित में ही परम-प्रसन्नता परम-निर्भयता और सरब आत्म-सरूप की अनुभव गति को प्राप्त करके अपने आप में परम सन्तुष्ट हो जाना चाहिये।

वचन–160. इस नाशवान शरीर में आ करके अपनी निर्मल कल्याण करनी ही मानुष जन्म की उच्चता है, और ऐसा निर्मल यत्न सरब के वास्ते कल्याणकारी है। यह परम सिद्धि सरूप प्रसंग योग मार्ग का बोध निर्मल चित्त से विचार करके सत् निदिध्यासन को प्राप्त कर लेना चाहिये। यह अति गुह्य प्रसंग अति सरल भाव में विचार किया गया है, ताकि छोटी से छोटी बुद्धि वाले भी संसार के जीवन को समझ करके अपने निर्मल उद्धार का प्रयत्न कर सकें और परम स्थिति निर्भय पद को प्राप्त हो सकें। सब गुणी पुरुषों को अपनी जीवन उन्नति का सत् अनुराग प्राप्त होवे, जिससे निरन्तर सत् सरूप आत्मा का बोध प्राप्त करके पूर्ण आशावादी बनें और परम कल्याण पद को प्राप्त होवें। सब सज्जनों को निर्मल यत्न प्राप्त होवे।

सत्-मार्ग की स्थिति का निर्णय

सत्-विचार की द ढ़ता,

सत्-विश्वास की द ढ़ता,

सत्-निदिध्यास की द ढ़ता,

सत्-तत्त्व बोध की द ढ़ता,

सत्-स्थिति,

वचन—1. सत्-विचार की द ढ़ता से बढ़े हुए शारीरिक विकारों का नाश हो जाता है, और सत् कर्म में प्रेम बढ़ता है, और सत् विश्वास द ढ़ होता है, और पूर्ण सत्गुरु प्राप्ति की तड़प पैदा होती है।

वचन—2. सत्-विश्वास की द ढ़ता से मलीन वासनाओं का अभाव हो जाता है। खिमा, दया, धीरज और अनुराग में द ढ़ होकर सत्नाम के सत्-निदिध्यास को प्राप्त होता है, यानी अखण्ड प्रभु नाम की स्म ति में द ढ़ होने का यत्न करता है।

वचन—3. सत्-निदिध्यास की द ढ़ता से शुभ-अशुभ कामनाओं का नाश होकर निष्काम भाव में बुद्धि निश्चल होती है। यानी तमाम भोगों से पूर्ण वैराग्य प्राप्त होता है और ऐसे ही द ढ़

यत्न से, यानी पूर्ण अभ्यास से सुरति एकाग्र होकर सत् तत्त्व अविनाशी शब्द को अन्तर में बोध करती है।

वचन–4. सत्-तत्त की अनुभवता के द ढ़ होने से निष्काम कर्म यानी प्रभु आज्ञा में तमाम कर्मों की समर्पणता की द ढ़ता प्राप्त होती है और निर्मल भगति प्रेम को सुरति धारण करके अखण्ड शब्द आत्मा में अपने आप को हर वक्त लीन करती है। यह ही अवस्था परम भगति है और इससे तमाम स्थूल संसार का मोह नाश हो जाता है, और अन्तर में स्थिति प्राप्त होती है।

वचन–5. सत्-स्थिति से तमाम दुर्मत अन्धकार यानी अहंगभाव अन्तर से नाश हो जाता है और सुरति केवल ज्ञान सरूप अखण्ड शब्द आत्मा में लीन होकर ज्ञान सरूप हो जाती है। यह ही अवस्था निर्वाण शाँति है–यानी अखण्ड नाद जो सरब विघ्न से न्यारा है, उसकी उस्तत अनुभव करके निर्द्वन्द्व, गुणातीत, अकर्त, अद्वैत, निर्वास, निर्वाण, शून्यं, सर्वज्ञ, समप्रकाश आदि अनेक भावों से बुद्धि निमख-निमख विखे स्वाभाविक सरूप से चिन्तन करके अपने आपको निज सरूप में नित लीन करती है और मन, देह,

इन्द्री के द्वन्द्व रूपी दोष से नित ही निर्बन्ध, निर्लेप होकर अकल्प निर्भय सरूप में स्थिर होती है। यह ही अवस्था परम-पद अखण्ड-शाँति है। इस पद को प्राप्त हो करके ही आवागवन के चक्र से छुटकारा मिलता है। इस वास्ते नित ही सत्-यत्न और सत्-भावना से आन्तरिक अभ्यास की द ढ़ता से इस परम-पद को प्राप्त करना ही परम कर्त्तव्य मानुष जीवन का है।

वचन–6. जो-जो गुणी सत्-मार्ग में द ढ़ होने का प्रेम रखते हैं, उनके वास्ते ऐसी स्थितियों को अन्तर में धारण करना चाहिये। तब ही इस महा-विकराल रूप वासना के दीर्घ रोग से छुटकारा प्राप्त होकर एक अखण्ड आनन्द सरूप परम-तत्त्व में स्थिति प्राप्त होती है। हर वक्त अधिक उत्साह और सत्-यत्न की ज़रूरत है, क्योंकि मार्ग बड़ा कठिन है। अधिक श्रद्धावान ही इस मार्ग में कामयाब हो सकता है, जिसको गुरु वचन पर पूर्ण विश्वास होवे।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

परम कल्याण बोध

वचन–1. शरीर रूपी संसार को धारण करके हर एक जीव अपनी कल्याण की खातिर अधिक से अधिक यत्न करता हुआ शरीर की यात्रा को व्यतीत करता है, मगर अन्त को अधिक संकट लेकर शरीर से जुदा होता है। असली शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता है। यह ही अद्‌भुत संसार का चक्र है। सत् विचार और सत्‌निदिध्यास के बग़ैर इस भयानक काल चक्र में निर्भय शाँति को प्राप्त होना अति कठिन है।

वचन–2. पाँच तत्त्वों का शरीर धारण कर बुद्धि पाँच कर्म इन्द्रियों और पाँच ज्ञान इन्द्रियों के भोगों में अति आसक्त होकर नाना प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल कर्म करती है। चूँकि इन्द्रियों के भोग छिनभंगुर हैं, इस वास्ते इनमें निर्भय शाँति की बजाय अधिक खेदवान रहती है। यानी बुद्धि इन्द्रियों के भोगों को परम सुख रूप जान करके अधिक से अधिक दिव्य भोग प्राप्त करने का यत्न करती है और प्राप्त करके भी नित ही अधीर और क्लेशवान रहती है। यह ही भयानक दुःख रूप संसार है।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

वचन—3. सार निर्णय यह है कि बुद्धि नाशवान दुःख रूप इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होकर के नाना प्रकार के भोग भोगती है। मगर नित ही अशाँत और भयभीत रहती है। आखिर शरीर विनाश को प्राप्त होता है और बुद्धि अधिक संकट लेकर इस शरीर से जुदा होती है। फिर वासना अनुसार दूसरे शरीर को धारण करती है। इसी तरह शारीरिक भोगों की आसक्ति को धारण करके अनेक जूनियों में विचरती है और दुःख व सुख में भरमती रहती है। यह ही आवागवन रूप संसार है।

वचन—4. ऐसी काल-चक्र रूप जीवन यात्रा को सही समझना और फिर सही यत्न करना ही मानुष जन्म का उत्तम कर्त्तव्य है। यानी इन्द्रियों के भोगों का अन्त अति संकट रूप जानना और उनमें मर्यादा पूर्वक विचरना ही मानुष जीवन की उच्चता है।

वचन—5. परम दुःख रूप इन्द्रियों के भोगों की वासना से छूटने के वास्ते केवल साक्षी-सरूप आत्मा के विश्वास और निदिध्यास की द ढ़ता ही कल्याण के देने वाली है। इसी को सत्

मार्ग कहा गया है। यानी परम-कल्याण, परम-पवित्रता, परम-आनन्द, नित सरूप, सर्वमयी, पूर्ण अखण्ड-शाँति एक आत्म-सरूप को ही जानना और नित ही उस परम तत्त्व के परायण होना ही इन्द्रियों के भोगों की आसक्ति से छुटकारा देने वाला यत्न है— और इसी निश्चय को ''आस्तिकवाद'' कहते हैं। यानी एक आत्मा के बग़ैर सब संसार प्रपंच का अन्त परम दुःख और भय सरूप जानकर अधिक से अधिक यत्न करके सत् तत्त्व की खोज में दृढ़ होना ही ''आस्तिकपन'' है।

वचन—6. शारीरिक भोग नाशवान होने के कारण नित अशाँति और अधिक वासना के खेद को प्रगट करने वाले हैं, जो परम दुःख सरूप हैं। ऐसी शारीरिक यात्रा को समझ करके नित ही जीवन-रूप परम तत्त्व आत्मा का विश्वासी और निदिध्यासी होना ही परम कल्याण के देने वाला निश्चय है।

वचन—7. जब तक इन्द्रियों के भोगों का अन्त दुःख रूप समझ में न आवे और न ही परम तत्त्व आत्मा की परम प्रधानता निश्चय में दृढ़ होवे, तब तक बुद्धि मदवाद को धारण

करके नास्तिकपन में विचरती है और अधिक वासना के खेद को धारण करके इन्द्रियों के भोगों की अति चेष्टा में मलीन होकर के नित ही विकारों की अग्नि में जलती रहती है। यह ही महा-विकराल परम दुःख रूप जीवन का सरूप है, यानी इन्द्रियों के भोगों की अति आसक्ति में द ढ़ हो करके नित ही प्रतिकूल कर्म करके अपने आप की घातक बनी रहती है। ऐसा जीवन ही परम अन्धकार और परम दुःख सरूप है।

वचन–8. वास्तव में इन्द्रियों के भोगों की वासना ही परम अशाँति के देने वाली है और सत् सरूप आत्मा में श्रद्धा और प्रेम की निहचलता के नाश करने वाली है। मगर अज्ञानवश हुई हुई बुद्धि केवल इन्द्रियों के भोगों को ही परम सुख प्रतीत करती हुई सत् सरूप आत्मा के निश्चय से हीन होकर के परम दुःख जाल में विचरती है। यह ही भव-दुस्तर मार्ग है।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

वचन—9. इस अधिक दुस्तर जीवन यात्रा को समझ करके नित ही इन्द्रियों के भोगों में निर्मल मर्यादा धारण करके सत् सरूप का पूर्ण विश्वासी होना ही निर्मल कल्याण के देने वाला सत् यत्न गुरमुख मार्ग है।

वचन—10. अधिक निर्मल बुद्धि से इस नाशवान जीवन यात्रा के सही सरूप को समझ करके एक अविनाशी-सरूप के परायण होना ही यथार्थ यत्न है, जो इस भयानक कर्म जाल से छुटकारा दिलाने वाला है और निर्भय-शाँति के देने वाला है।

वचन—11. अधिक इन्द्रियों के भोगों से अधिक वासना का जाल बढ़ता है, जो तीन काल अशाँति और भय के देने वाला है। ऐसा निश्चय होना ही श्रेष्ठ बुद्धि का लक्षण है। सत्-सरूप के विश्वास से हीन होकर के इन्द्रियों के भोग ही केवल सुख-सरूप जानने और इनमें द ढ़ निश्चय से विचरना ही असली मूढ़ता है, जो तीन काल संताप के देने वाली है।

वचन—12. इन्द्रियों के भोगों की अधिक वासना ही काल सरूप है जो पलक-पलक में बुद्धि को भरमाती है और नित ही विलक्षण कर्म करने की ख़ातिर मजबूर करती है। ऐसे जीवन के

भेद को जिसने नहीं जाना है, वह पशु से भी नीच है।

वचन—13. बुद्धि केवल इन्द्रियों के भोगों की वासना में आसक्त होकर के अधिक भोग प्राप्त करने में यत्न-प्रयत्न करती है और इसी में असली शाँति प्रतीत करती है। मगर ऐसे अन्धकारमयी यत्न में शाँति प्राप्त होनी जानना एक निहायत मूढ़ता है, क्योंकि जो नाश होने वाली वस्तु है वह अपने आप में अशाँत-सरूप है। उसकी प्राप्ति से बजाय शाँति के अधिक अशाँति प्राप्त होती है। ऐसा निश्चय करना ही ''निर्मल विवेक'' है।

वचन—14. जब बुद्धि शरीर और इन्द्रियों के भोगों की विनाश प्रतीत करती है और इसमें केवल खेद ही जानती है, तब सत्-परायण होने के यत्न में द ढ़ होती है, यानी तमाम आँतरिक दोषों से पवित्र होने का यत्न धारण करके एक अखण्ड अविनाशी-सरूप के परायण होती है। ऐसे निश्चय को ही ''निश्चयात्मक बुद्धि'' कहा गया है।

वचन—15. जब द ढ़ निश्चय से शरीर और शरीर के सुख नाश रूप प्रतीत होने लगते हैं, तब बुद्धि संसार की मलीन कामनाओं का त्याग

करके केवल अखण्ड भावना से सत् विश्वास और सत् अनुराग में द ढ़ होती है। ऐसी भावना वाले को ही असली ''जिज्ञासु'' कहते हैं।

वचन—16. अज्ञान अवस्था में बुद्धि अनन्य भावना करके शरीर और शारीरिक भोगों की कल्पना में द ढ़ रहती है और एक पलक मात्र भी भोग वासना से विलग नहीं होती है। ऐसे ही जब बुद्धि शरीर और शारीरिक सुखों को छिन-भंगुर जान लेती है, उस वक्त अखण्ड भावना करके सत् सरूप के परायण होने का यत्न करती है। यानी शारीरिक सुखों का लोभ त्याग करके केवल अविनाशी सुख अन्तर सरूप आत्मा में निहचलता धारण करती है। ऐसे यत्न को ही ''अभ्यास'' कहते हैं।

वचन—17. जब बुद्धि तमाम कर्मों के द्वन्द्व फल को सत् सरूप के समर्पण करती है, यानी तमाम कर्म फल को प्रभु आज्ञा में देखती है, उस वक्त भयानक वासना के जाल से पवित्र होकर के निमित्तमात्र कर्म निष्काम सरूप में करती हुई केवल एक अखण्ड सरूप के

परायण होती है। ऐसे निश्चय को ही ''ईश्वर भगति'' कहते हैं।

वचन—18. बुद्धि कर्त्तापन को धारण करके कर्म और कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति में द ढ़ होकर के नित ही इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा में चलायमान होती रहती है, और यह ही अज्ञानमयी जीवन है। इस भ्रम अंधकार से पवित्र होने की ख़ातिर केवल सत् परायणता की द ढ़ता ही है, यानी शरीर और शारीरिक कर्म केवल सत् आधार में ही देखने और अपने आप के कर्त्तापन का त्याग करना। ऐसे निश्चय की द ढ़ता को ही ''सत्याग्रह'' कहते हैं।

वचन—19. ज्यों-ज्यों बुद्धि कर्त्तापन का त्याग करती हुई तमाम शारीरिक कर्म प्रभु आज्ञा में समर्पण करती है, त्यों-त्यों तमाम वासना के जाल से पवित्र होकर के निर्वास सरूप आत्म-आनन्द में निहचल होती है। ऐसी स्थिति को ही ''योग'' कहा गया है।

वचन—20. जब बुद्धि केवल एक अविनाशी नाम के परायण हो करके असत् नाम-रूप कल्पना का त्याग करती है और अखण्ड भावना करके एक अविनाशी सरूप को ही कर्त्ता-हर्ता जान करके सत् सिमरण में निहचल

होती है, उस वक्त अन्तर से नाम-रूप संकल्प रूपी संसार का अभाव हो जाता है और एक अखण्ड अविनाशी शब्द का अन्तर में बोध प्राप्त होता है। जो परम आनन्द सरूप है, वासना और कर्म से पवित्र है।

वचन–21. जब अन्तर में सत् सरूप का अनुभव होता है, तब बुद्धि तमाम शारीरिक कर्मों से निर्बन्धन होकर के निहकर्म सरूप आत्मा में निहचल होती है, यह ही स्थिति परम सुख का सरूप है, जिसमें वासना और कर्म का खेद नहीं है। ऐसी स्थिति को प्राप्त करके बुद्धि परम शाँति को प्राप्त होती है, जो वास्तविक पूर्ण सरूप है।

वचन–22. सार निर्णय यह है कि बुद्धि कर्त्तापन त्रैगुण अहंकार को धारण करके नाना प्रकार के कर्मफल भोग की आसक्ति में नित ही चलायमान होती रहती है। यह ही खेद युक्त जीवन अवस्था है। इससे पवित्र होने की ख़ातिर एक आत्मा का विश्वासी और अभ्यासी होना ही परम साधन है। ऐसे निश्चय से ही जो गुणी सत् सरूप परायण होता है, यानी तमाम शारीरिक शक्ति और शारीरिक दुःख व सुख केवल अविनाशी सरूप अखण्ड शब्द आत्मा के आधार ही

देखता है और परम पवित्र भावना से अनन्य सरूप करके अन्तर में आत्म-चिंतन में द ढ़ होता है, ऐसे द ढ़ अनुराग के बल से द्वन्द्व रूपी खेद से निर्मल होकर के बुद्धि सत् पद में विश्राम पाती है। जो परम कल्याणमयी अवस्था है।

वचन—23. हर वक्त शारीरिक यात्रा को समझते हुए केवल सत् परायण होने का यत्न करना ही मानुष जन्म की उच्चता है। यानी तमाम शारीरिक भोगों में निर्मल मर्यादा धारण करके सादगी, सत्य, सत् सिमरण, सत्संग और सत्सेवा में अपने आप को द ढ़ करते हुए तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी चाहिए, जो परम पद अखण्ड शाँति के देने वाली है।

वचन—24. एक सत् सरूप की द ढ़ परायणता से तमाम मानसिक दोष नाश को प्राप्त होते हैं। ऐसा निश्चय धारण करके नित सरूप अविनाशी शब्द की अन्तर में परम सूझ प्राप्त करनी चाहिए, क्योंकि आत्मा ही निर्वास, नित सरूप और निहकर्म है। शरीर नित ही नाश सरूप, वासना और कर्म संजुगत खेद सरूप

है। ऐसे यथार्थ निर्णय को धारण करके शरीर मद का त्याग करके केवल सत्-परायण होना ही तमाम दुःखों से छुटकारा हासिल करने वाला मार्ग है।

वचन–25. सत्-अनुराग के बल से तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी, यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार जो वासना का सरूप हैं, इन पर विजय प्राप्त करनी ही परम पवित्रता और परम उच्चता है। यानी सत्नाम की द ढ़ता से तमाम शारीरिक कर्मफल प्रभु आज्ञा में समर्पण करने से तमाम इन्द्रियों के भोगों से उपरामता प्राप्त होती है, जो सरब दोषों को नाश करने वाली और परम पवित्रता आत्मस्थिति के देने वाली है।

वचन–26. बुद्धि द ढ़ सत्-परायणता से परम शुद्धि को प्राप्त होती है, और मन, इन्द्रियों के तमाम विकारों पर विजय हासिल कर लेती है, और अपने आप में सावधान होकर के निर्द्वन्द्व स्थिति को प्राप्त होती है, यानी परम तत्त्व आत्म-शब्द में लीन हो जाती है। यह

ही अवस्था जीवन उद्धार का असली सरूप है।

वचन–27. इन्द्रियों के भोगों में उपरामता हासिल करनी और सत्पुरुष के सत् विचार द्वारा अपनी बुद्धि को निर्मल करके सत् सरूप के द ढ़ परायण होना ही अपने आप का सही समझना है, और ऐसे यत्न-प्रयत्न करते-करते तमाम दुर्मत जाल का अभाव हो जाता है, और बुद्धि केवल ज्ञान सरूप में निहचल होती है, जो अकर्त सरूप परम शाँति है।

वचन–28. जीवन यात्रा में परम धन, परम खोज, परम सूझ, परम यत्न, परम आसरा, परम उच्चता, परम विद्वता केवल एक अविनाशी-सरूप जीवन-शक्ति आत्मा के द ढ़ परायण हो करके तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी ही है, जो परम उद्धार के देने का साधन है। जो गुणी पवित्र निश्चय से ऐसे कल्याणकारी मार्ग में द ढ़ हुआ है उसका जीवन धन्य है। दूसरों के वास्ते एक आदर्श सरूप है।

वचन–29. अन्तर निश्चय में केवल सत्नाम का निदिध्यास करना और शरीर द्वारा निष्काम भाव यानी अकर्त्ता भाव से दूसरे जीवों की

सेवा करनी ही तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता के देने वाली है। ऐसे सत्-यत्न में नित ही प्रवीण रहना गुणी पुरुषों का धर्म है। क्योंकि शरीर विनाश की तरफ जा रहा है, इससे सत् अर्थ परम-पद को प्राप्त कर लेना ही नाशवान शरीर का यथार्थ लाभ है।

वचन—30. नित ही जीवन यात्रा में सत्-पद प्राप्ति का सत्-यत्न धारण करते रहना परम उच्च स्थिति है। यानी अधिक से अधिक पवित्र आहार, व्यवहार और अपने आप में अधिक सादगी को धारण करके और तमाम नुमायशी[1] और अय्याशी[2] जीवन यात्रा से परहेज़ करना और सत्-सरूप प्राप्ति का अधिक अनुराग प्राप्त करना चाहिये, जिससे तमाम मिथ्याकार वासना का नाश होता है और शीघ्र ही सत्-पद की प्राप्ति होती है। ऐसे अधिक यत्न से मानसिक दोषों से पवित्रता प्राप्त करके अपने आप का सही रखयक बनना ही परम शूरवीरता है।

वचन—31. इस जीवन सरूप संसार मार्ग में पूर्ण पवित्र बुद्धि से इस यात्रा को समझ करके अखण्ड प्रतीत से एक सत् तत्त्व के परायण होना

1. बनावटी 2. विलासता पूर्ण

चाहिये, और नित ही हृदय में उस परम तत्त्व का सिमरण करना चाहिये, जो जीवन सरूप शरीर को प्रकाश कर रहा है, और आनन्द सरूप है। तमाम शारीरिक कर्म उस महाप्रभु की आज्ञा में समर्पण करने का निश्चय द ढ़ करना चाहिये और नित ही मन, वचन और कर्म करके दूसरे जीवों की सेवा की भावना को द ढ़ करना चाहिये, और शारीरिक विनाश को निश्चय करके अधिक से अधिक उद्यम धारण करके निर्द्वन्द्व सरूप अविनाशी तत्त्व का बोध प्राप्त करने में स्वतन्त्र रहना चाहिये। यह ही अवस्था परम धाम है।

वचन–32. यथार्थ लाभ इस शरीर का यह है कि निश्चय में प्रभु भगति और शरीर द्वारा पर-उपकार निष्काम भाव सहित धारण किया जावे, तब ऐसे सत् यत्न से ही जीव परम पद को प्राप्त कर सकता है। तमाम गुणी पुरुषों का आदर्श जीवन विचार करके अपने जीवन को नित ही सत् मार्ग में द ढ़ करके

अपने आपका निर्मल बोध प्राप्त कर लेना चाहिये, जो परम शाँति सरूप है।

वचन—33. इस त खावन्त संसार में सत्-शाँति को प्राप्त करना ही असली जीवन का ध्येय है। मगर अज्ञानवश हो करके अविनाशी सरूप को भूल करके बुद्धि नाशवान शरीर में परम सुख अविनाशी की तलाश करती है। ऐसे अज्ञानमयी जीवन से जाग्रत हो करके नाशवान शरीर के मद को त्याग करके नित ही सत्-श्रद्धा सहित अपने आप को एक अविनाशी सरूप के परायण करके, नित ही शरीर द्वारा सत् निदिध्यास को धारण करना चाहिये, जो परम सिद्धि निर्भय पद के देने वाला है।

वचन—34. केवल सत् सरूप के परायण होकर तमाम संसार उसी एक परम तत्त्व अखण्ड आत्म-सरूप का चमत्कार जान करके सब जीवों की निष्काम भाव से यथाशक्ति सेवा की द ढ़ता को धारण करते हुए और हृदय में एक उस अखण्ड शब्द आत्म-सरूप का चिंतन करते हुए जो जीवन यात्रा व्यतीत करते हैं, वे ही महागुणी परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं, और उनका जीवन तमाम विश्व के वास्ते कल्याणकारी है, और वे ही

1. अधीन

निर्मल उद्धार के सरूप बोधक होकर के आदर्श सरूप हुए हैं। उनका जीवन अति दुर्लभ है।

वचन—35. बुद्धि कर्त्तापन की आसक्ति में जो अति आरूढ़ हुई हुई है—इस अवस्था को प्रक तवाद, असत्वाद, अहंकारवाद, नास्तिकवाद और भ्रमवाद आदि नामों करके पुकारा जाता है, यानी कर्त्तापन की आसक्ति को धारण करके त्रैगुणी वासना के ज़ेरेअसर[1] होकर के नाना प्रकार के कर्म और कर्म फल द्वन्द्व संकल्प रूपी संसार को कल्पती हुई सूक्ष्म, स्थूल तात्त्विक स ष्टि में भरमती है— और अभय-शाँति की खातिर अधिक-से-अधिक यत्न करती है। मगर कर्त्तापन जो संसार का बीज सरूप है—इससे पवित्र होने के बग़ैर कर्म और कर्मफल द्वन्द्व के राग-द्वेष में नित ही चलायमान होती रहती है। यह ही अवस्था परम दुःख का सरूप है।

वचन—36. इस कर्त्तापन अन्धकार के नाश करने के वास्ते सहज उपाय यह ही है कि सत् सरूप आत्म-तत्त्व जो घट-घट प्रकाश कर रहा है, उसको कर्त्ता-हर्ता जानकर के अपने कर्त्तापन अभिमान का त्याग करे। यह ही भावना

1. अधीन

''आस्तिकवाद, सत्वाद, ईश्वरवाद और ज्ञानवाद'' का सरूप है।

वचन—37. ज्यों-ज्यों बुद्धि परम पवित्र निश्चय से सत् सरूप आत्मा को कर्त्ता-हर्ता जान करके अति प्रेम से सिमरण में द ढ़ होती है, त्यों-त्यों कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति से निर्मल होती जाती है, और सत् अनुराग के बल से तमाम शारीरिक विकारों से पवित्रता को प्राप्त होती है। ऐसी भावना को ही ''समर्पण बुद्धि, कर्मयोग या भक्तियोग'' आदि नामों करके उच्चारण किया गया है।

वचन—38. तमाम कर्म वासना की जड़ कर्त्तापन ही है। इस वास्ते बुद्धि सत्-परायणता के बल से अपने कर्त्तापन को त्याग करके केवल सत्-सरूप आत्मा को ही कर्त्ता जब निश्चय करके जानती है—उस वक्त तमाम भोग वासना से पवित्रता को प्राप्त होकर के कर्मफल द्वन्द्व से असंग हो जाती है। यह ही अवस्था जीवन मुक्त पद है।

वचन—39. अधिक द ढ़ निश्चय से कर्त्तापन अन्धकार से पवित्र होने का सत्-यत्न धारण करना ही

गुरमुख मार्ग है। इस वास्ते परम प्रयत्न से जब बुद्धि एक ईश्वर शक्ति को ही कर्त्ता-हर्ता जानती है उस वक्त तमाम वासना से पवित्र होकर के अपने अन्तर में सत्-सरूप के बोध को प्राप्त होती है, यानी निराकार, अजन्मा, अकर्म, निर्वास, निर्द्वन्द्व, अखण्ड, सर्वज्ञ, सरब-असंग और नित सरूप अविनाशी शब्द को अनुभव करके तमाम शारीरिक वासना से निर्बन्धन हो जाती है और अपने आप में अकर्त्ता सरूप होकर के विराजती है। यह ही अवस्था परम सिद्धि का सरूप है। ऐसी निर्मल अवस्था को जब बुद्धि प्राप्त होती है, तब पूर्ण-त प्ति, पूर्ण-शान्ति, पूर्ण अनुभवता, पूर्ण-विज्ञान को अनुभव करके उसी परम तेज सरूप में लीन हो जाती है, ऐसी अवस्था को ही निर्वाण-शाँति कहा गया है। ऐसे परम बोध जीवन के सही निर्णय को समझ करके नित ही सत्-पद प्राप्ति का यत्न करते हुए अपने मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी ही सत्मार्ग की द ढ़ता है। इस वास्ते तमाम

गुणी पुरुष अपने जीवन उन्नति के सही चाहतक होकर के परम द ढ़ निश्चय से सत्-परायण होने का यत्न करें। जिस करके मानुष जन्म की सही सफलता निर्भय-शान्ति प्राप्त होवे। ईश्वर सुमति देवे।

सदाचार और नाम-सिमरण का निर्णय

सत्-आचार यानी सदाचार के उलट दुराचार यानी मिथ्याचार है। सत् केवल ईश्वर यानी जीवन-शक्ति ही है। इस वास्ते सत्-निश्चय के बग़ैर जो कुछ सोचना या करना है, वह दुराचार की बुनियाद ही है। बग़ैर प्रभु-परायण होने के और नाम-चिन्तन के सदाचारी होना अति मुश्किल है, यानी प्रभु-परायणता ही सदाचार का सरूप है। जब तक बुद्धि देह-परायणता में निहचल रहती है, तब तक निर्मल सदाचार को कभी भी प्राप्त नहीं हो सकती है। बुद्धि का काम है, जैसा निश्चय करती है ऐसी ही आगे स ष्टि कायम करती है। अगर प्रभु-परायणता या प्रभु चिंतन को बुद्धि निश्चय में धारण नहीं करती है, तो असत्-निश्चय के ज़ेरे-असर होकर सूक्ष्म रूप में नाना प्रकार के विकारों को कल्पित करती रहती है, और कभी-कभी वह सूक्ष्म विकार स्थूल रूप में भी कर्म-सरूप हो करके प्रगट हो जाते हैं। इस वास्ते बग़ैर सत्-परायणता के और सत्नाम चिंतन के कभी भी कोई सही रूप में सदाचारी नहीं हो सकता है। जो प्रभु

परायणता को छोड़कर वैसे सदाचार का ढोल पीटते हैं, उन अनजानों को अभी सदाचार का पता ही नहीं है। जब तक पांच विकारों की वासना शुद्ध न होवे, तब तक सदाचारी होना अति कठिन है और जब तक सत्-सरूप ईश्वर का पूर्ण विश्वास और सत् निदिध्यास न प्राप्त होवे तब तक इन विकारों की अग्नि शाँत नहीं होती है, ख्वाहे कितना भी यत्न क्यों न करे। इस वास्ते इन विकारों की वासना का निरोध होना ही निर्मल सदाचार है। जो आजकल के लोगों ने सदाचार का सरूप माना है, वह वास्तव में कपटाचार है। इम्तिहान होने पर पता लगता है कि कौन किस जगह खड़ा है। इस वास्ते इस प्रकति के चक्र में वह ही मानुष पूर्ण रूप में साबित-कदम[1] रह सकता है, जिसमें अति सत्-विश्वास और सत्-निदिध्यास की दढ़ता होती है। सदाचार यानी सत् में आचरण करना तब ही हो सकता है, जब केवल सत्-सरूप ईश्वर को ही सत् करके निश्चय में धारण किया जावे, और तमाम प्रकति जाल को असत् सरूप में देखा जावे। तब मानसिक विकारों से निरोध प्राप्त होता है और बुद्धि निर्मल होकर के तमाम शारीरिक कर्मों में पवित्र सरूप से विचरती है। इस वास्ते अति प्रभु की याद करो—वह ही एक निर्विकार शक्ति है, और परम-आसरा और परम-धीरज है। इसके बग़ैर तमाम स्थूल आकार विकार-सरूप है। सत्-परायणता के बग़ैर बुद्धि नित अधीर और विकारमयी रहती है। यह थोड़ा-सा विचार लिखा जाता है। अच्छी तरह से विचार कर लेवें

1. सफल

और सत्-असूलों में पूर्ण निश्चय से दढ़ होवें। यह दुनिया बड़ा इम्तिहान है, बग़ैर सत्-परायणता के इसमें से सही कल्याण प्राप्त करनी अति कठिन है। सत्संग एक लाज़मी असूल है। इसमें सब को हाज़िर होना चाहिए और सत्संग के वास्ते प्रेरणा करना भी अच्छा है। शायद किसी वक्त किसी की बुद्धि ठीक हो जावे—यह एक सेवा ही है। ईश्वर सत् बुद्धि देवे।

ईश्वर प्रेम

संसार में मोहवश होकर हर वक्त जीव जलता रहता है—किसी सूरत में भी असली खुशी को प्राप्त नहीं हो सकता। बड़े से बड़ा यत्न करने पर भी यानी कई तरीका की उपासना, यज्ञ, दान आदिक धारण करने से भी असली प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती—जब तक ईश्वर का ख़ालिस प्रेम अन्तःकरण में प्रगट न होवे। प्रेम ही को भगति कहते हैं, प्रेम ही को योग कहते हैं, प्रेम ही का नाम ज्ञान है, प्रेम ही ईश्वर शक्ति का यथार्थ सरूप है। तप-जप, उपासना का फल यह ही है कि मन में एक ईश्वर का प्रेम प्रगट होवे। ईश्वर-प्रेम के प्रगट होने से मोह की अग्नि नाश हो जाती है और अपने अन्तर विखे सरब-शक्तिमान नाद-सरूप ईश्वर का अनुभव होता है। यही हालत असली अबदी-सरूर यानी परम आनन्द की है। मानुष जन्म को धार कर इसी अवस्था को हासिल करने की कोशिश करनी यथार्थ लाभ है। चूँकि

मन बड़ी उपाधि और व्याधि में गिरफ़्तार रहता है—इस वास्ते ईश्वर प्रेम और ईश्वर-विश्वास को अन्तर में निश्चय से हासिल नहीं कर सकता। लाखों पुस्तकों के मुतालय से (अध्ययन से) और तीर्थ, ब्रत कई नियमों के धारण करने से भी ईश्वर का खालिस प्रेम प्रगट नहीं होता। अहंकार यानी देह का मद हर वक्त जीव को कामना की अग्नि में जलाता रहता है। जिस वक्त निर्मल बुद्धि सत्संग और सत्गुरु उपदेश द्वारा हो जावे, उस वक्त निर्मान भाव चित्त में स्थित होता है और ईश्वर-शक्ति का प्रेम और विरह अन्तर में प्रगट होते हैं, जिससे जीव सब पापों से छूटकर अपने सत्-पुरुषार्थ से ईश्वर के सरूप में लीन हो जाता है। उसी अवस्था का नाम असली प्रेम यानी आनन्दमयी जीवन है। इस अवस्था को जिसने हासिल किया उसको गुरु, पीर, अवतार और पैग़म्बर कहते हैं। ईश्वरी-प्रेम में जब जीव मुस्तग़र्क[1] होता है, तब समता रूपी आनन्द हालत अन्तर में जारी हो जाती है। माया का द्वन्द्व सरूप यानी कर्मों का फल सुख-दुःख, लाभ-हानि, खुशी-ग़मी, मित्र-शत्रु, सर्दी-गर्मी में एक निश्चय धारण कर लेता है। यह ही अवस्था जीवन मुक्त और अखण्ड प्रेम का सागर है।

जिस मानुष ने यह निश्चय हासिल किया है, वह कुल संसार में अपनी आलाज़ात[2] को देखता है, और अपने आप में ज़ाते-आला का सरूर हर वक्त हासिल करता है। तमाम कर्मों के अज़ाब यानी आवागवन से रिहाई पाकर अपने सत् सरूप में लीन हो जाता है। इस

1. लीन 2. आत्मा सत्ता

अवस्था को हासिल करना ही मानुष ज़िन्दगी का परम धर्म है। हर एक प्रेमी को चाहिये कि बाद-मुबाद, कपट, पाखण्ड को छोड़कर हर वक्त ईश्वर का सच्चा प्रेम प्राप्त करे, जिससे तसब्वरेफानी[1] यानी आवागवन के अज़ाब[2] से छूटकर आनन्द-सरूप ईश्वर में मिल जावे।

समवाद विज्ञान

वचन–1. ममवाद रूपी त्रैगुण अहंकार कर्त्तापन को बुद्धि धारण करके अनन्त प्रकार के कर्म और अनन्त प्रकार के कर्मफल की वासनाओं में अति आसक्त होकर सूक्ष्म-स्थूल शरीर रूप संसार में नित ही भयभीत और चलायमान होती रहती है। यह ही हालत ''असली अशाँति और परम दुःख का सरूप है।''

वचन–2. बुद्धि अनन्य भाव से कर्त्तापन मूल संसार को कल्प-कल्प कर नाना प्रकार की वासनायें और नाना प्रकार के कर्मफल द्वन्द्व धारण करके शरीर रूपी संसार में निर्भय शाँति चाहती हुई इस प्रत्यक्ष ब्रह्माण्ड में वासनाओं के जाल को पूर्ण करने की खातिर नाना प्रकार के प्रयत्न धारण करती है। इसी यत्न को ही ''सांसारिक जीवन'' कहते हैं।

1. नाशवान का चिंतन 2. दुख

वचन—3. बुद्धि छिन-छिन विखे कर्त्तापन त्रैगुण संसार को सिमरती हुई तथा वासना के जाल को फैलाकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि प्रधान वासनाओं की लहरों में हर वक्त चलायमान होकर इन्द्रियों के भोगों में अति आसक्त रहती है। इसी अवस्था को ''अज्ञान, असत्‌वाद, भ्रम और आसक्ति'' कहा गया है। तमाम स्थावर-जंगम संसार इसी कर्त्तापन त्रैगुण माया का विस्तार है।

वचन—4. बुद्धि कर्त्तापन में अति आसक्त होकर कर्मफल द्वन्द्व में नित ही चलायमान रहती है, और किसी हालत में भी निहचल नहीं हो सकती है। मगर कर्मफल द्वन्द्व के मोह में इस क़दर गिरफ़्तार रहती है कि एक लमह भर भी इस कर्मफल द्वन्द्व की तबदीली को न परम दुःख रूप विचार करती है और न ही इससे छूटने का उपाय सोचती है। इसी हालत को जड़ता और मूर्खताई कहा गया है।

वचन—5. कर्त्तापन की अधिक द ढ़ता की आसक्ति को बुद्धि अपना निज सरूप जानकर कर्मफल द्वन्द्व के ग्रहण और त्याग के यत्न में नित ही विचरती है, और नाना प्रकार के शरीर

धारण करके कर्मफल द्वन्द्व को भोगती है, और जन्म मरण के चक्र में फिरती है। इसी को ''आवागवन'' कहते हैं।

वचन–6. कर्त्तापन का सरूप चूँकि त्रैगुण रूप है, इस वास्ते बुद्धि शुभ-अशुभ वासनाओं के ज़ेरेअसर[1] होकर शुभ-अशुभ कर्म करती है, और दुःख-सुख की महसूसात[2] में नित ही भरमती हुई ज़िन्दगी के ऊँचान और निचान भावों को अनुभव करती है। यह ही चक्र संसार की विचरत लीला है।

वचन–7. जब तक बुद्धि कर्मफल द्वन्द्व को दुःख रूप निश्चय करके नहीं जानती है—तब तक कर्त्तापन त्रैगुण भ्रम रूपी वासना के जाल से छुटकारा हासिल नहीं कर सकती है और न ही जन्म-मरण के चक्र से छूट सकती है। यह ही त्रैगुण माया का अद्‌भुत विस्तार है।

वचन–8. ऐसी संसार की विचरत हालत में, यानी कर्त्तापन और कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति में सत्‌वाद का द ढ़ निश्चय होना अति कठिन है। इस वास्ते ही आम मानुष बराये नाम ही सत्‌वादी या ईश्वरवादी होते हैं, और निश्चय से कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति में

1. अधीन 2. अनुभूतियां

चलायमान होकर नित ही विकराल कर्म करके अपने आपको नाश करते रहते हैं।

वचन—9. सार निर्णय यह है कि कर्त्तापन ही कारण संसार या शरीर है और कर्मफल द्वन्द्व ही कारज स्थूल तत्त्वों का शरीर और प्रत्यक्ष ब्रह्माण्ड है। जब तक बुद्धि ऐसे अनुभव को नहीं जान सकती है, तब तक संसार के असली भेद को नहीं जान सकती है, और न ही इसके मोह से छूट सकती है।

वचन—10. जिस वक्त बुद्धि कर्मफल द्वन्द्व को दुःख रूप जानती है—निश्चय करके और उससे उपरामता को प्राप्त करने में यत्न करती है, ऐसे निश्चय को जब प्राप्त होती है, तब उसी को ''जिज्ञासु बुद्धि'' कहा गया है।

वचन—11. जब तक बुद्धि कर्मफल द्वन्द्व को परम दुःख सरूप न जाने, तब तक इस मोह जाल से छूट नहीं सकती है। इस वास्ते इस जीवन यात्रा को सही समझ करके अपने आपको सत्-पद प्राप्ति के मार्ग में निश्चित करना ही मानुष जीवन का ''प्रधान कर्त्तव्य है।''

वचन—12. कर्मफल द्वन्द्व को जब बुद्धि निश्चय करके परम दुःख जानती है, उस वक्त निर्मल-वैराग्य को प्राप्त करके तमाम भोग वासनाओं का निरोध करने का यत्न करती है। ऐसा यत्न ही सत्-शाँति के देने वाला है, और इसको ''सत्-मार्ग'' कहा गया है।

वचन—13. जब बुद्धि कर्मफल द्वन्द्व के खेद को निर्मल सरूप से जान लेती है, तब अपना आप जो कर्त्तापन रूप निश्चय किया हुआ है—उसके बढ़ते हुये वेग को सत्वाद की द ढ़ता से त्यागने का यत्न करती है। यानी अधिक श्रद्धा, प्रेम, सेवा, नम्रता और सही त्याग के जज़बात में द ढ़ होकर अकर्त-सरूप जो अविनाशी शब्द है, उसकी खोज में द ढ़ होती है। ऐसी द ढ़ता को ही ''भगति या गुरमुख निश्चय'' कहा गया है।

वचन—14. जब तक कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति नाश नहीं होती है, तब तक कर्त्तापन त्रैगुण अहंकार से बुद्धि निर्मल नहीं हो सकती है, और न ही अकर्त समवाद शाँति को प्राप्त हो सकती है। ऐसा भेद जानना ही निर्मल सार है।

वचन—15. कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति से निर्मल होने की ख़ातिर सत्वाद या ईश्वरवाद का

निश्चय ही परम कल्याण के देने वाला है—यानी अपने कर्त्तापन अभिमान को सत्-परायणता के बल से त्यागना और कर्मफल द्वन्द्व के चक्र को प्रभु आज्ञा में समर्पण करना। ऐसा निश्चय ही असली त्याग, भगति और निष्काम कर्म का सरूप है।

वचन—16. जब बुद्धि कर्त्तापन अभिमान को त्यागने की ख़ातिर अकर्त शक्ति अविनाशी तत्त्व को निश्चय से कर्त्ता जानती है—और कर्मफल द्वन्द्व उस महा-शक्ति के आधार पर त्याग करके अपने आपको केवल अविनाशी नाम के परायण करती है, तब अन्तर से तमाम वासना और कल्पना के जाल से निर्मल होकर एकाग्र होती है। ऐसी स्थिति ही ''परम पवित्रता'' है।

वचन—17. जब बुद्धि निश्चय करके ईश्वर को कर्त्ता जानती है, और कर्मफल द्वन्द्व उसकी आज्ञा में समर्पण करती है, और लमह-ब-लमह[1] एक अविनाशी नाम के आधार में द ढ़ होती है, ऐसी अखण्ड तपस्या को धारण करके अपने आप निहचल होकर अकर्त सरूप अविनाशी शब्द को अनुभव करके परम

1. प्रतिक्षण

शाँति को प्राप्त होती है। ऐसी साधना को ही ''परम भगति'' कहा गया है।

वचन—18. सार विचार यह है कि कर्त्तापन से निर्बन्धन होना ही परम-शाँति और तत्त्व-बोध अवस्था है। और जब तक कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति को त्याग नहीं सकता है—तब तक कर्त्तापन से निर्बन्धन होना अधिक कठिन है।

वचन—19. सत्-परायणता के द ढ़ निश्चय से ही कर्त्तापन और कर्मफल द्वन्द्व को त्याग करके समवाद अकर्त-अविनाशी तत्त्व को बोध कर सकता है। इस वास्ते जो गुणी सत्-भाव सहित यत्न करता है, वह ही अकर्त-स्थिति परम सिद्धि को प्राप्त होता है।

वचन—20. बुद्धि कर्त्तापन को अधिक द ढ़ निश्चय से सिमरती है। एक लमह भी इस अविद्या से विलग नहीं होती है। ऐसे ही जब बुद्धि अधिक द ढ़ निश्चय से इस कर्त्तापन अन्धकार को दूर करने की खातिर अविनाशी-नाम गुरु उपदेश को द ढ़ निश्चय से सिमरती है, तब तमाम वासना के जाल से विलग होकर सत्-सरुप अविनाशी शब्द

को बोध करके उसमें सावधान होती है। ऐसी साधना को ही ''नाम सिमरन की महिमा'' कहा गया है।

वचन—21. कर्त्तापन अज्ञान को दूर करने की ख़ातिर अकर्त शक्ति का अनुभव करना ही परम-सिद्धि और स्थिति है। अकर्त-शक्ति को अनुभव करने की ख़ातिर केवल एक अविनाशी नाम के परायण होना ही यथार्थ यत्न है। ऐसे नाम की यथार्थ साधना को अभ्यास कहा गया है। यानी सत्नाम के द ढ़ अभ्यास से असत्-नाम, रूप आदि कल्पना का नाश हो जाता है, और बुद्धि निर्विकल्प होकर अविनाशी-सरूप में निहचल होती है।

वचन—22. ज्यों-ज्यों सत्नाम में द ढ़ता बुद्धि को प्राप्त होती है, त्यों-त्यों कर्त्तापन का अभाव होता जाता है, और ज्यों-ज्यों कर्त्तापन का नाश होता है त्यों-त्यों वासना जाल का अभाव होता जाता है, और ज्यों-ज्यों वासना का नाश होता है त्यों-त्यों बुद्धि अविनाशी-सरूप समवाद में निहचल होती है। ऐसी निहचलता को ही ''ध्यान'' कहा गया है।

वचन—23. जब बुद्धि कर्त्तापन से विलग होकर अपने साक्षी सरूप अविनाशी शब्द में निहचल

होती है, और उस शब्द को अनुभव द्वारा अधिक द ढ़ता से चिन्तन करती है, कर्त्ताभाव और कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति से निर्बन्धन रहती है—ऐसी स्थिति को ही ''समाधि या योगारूढ़ अवस्था'' कहा गया है। यानी द्वन्द्व खेद से निर्लेप होकर एक अखण्ड अविनाशी-तत्त्व में अधिक निहचलता प्राप्त करके बुद्धि समरूप हो जाती है। यह स्थिति ही ''निर्वाण शाँति'' है।

वचन—24. कर्त्तापन रूपी मूल संसार का अभाव करके बुद्धि अकर्त सरूप में निहचल हो करके नित ही अपने आप में स्वतन्त्र और निर्भय स्थिति को प्राप्त होती है, और केवल अविनाशी-तत्त्व ही सरब-मूल अनुभव करके परम आनन्दित होती है। यह ही अवस्था ब्रह्म-सरूप है। जो इस स्थिति को प्राप्त हुआ है, यानी कर्त्तापन और कर्मफल द्वन्द्व से निर्बन्धन हुआ है, वह ही परम-ज्ञानी, ब्रह्म-ज्ञानी, तत्त्व-ज्ञानी और सरब-बोध पद को प्राप्त हुआ है। वह ही पुरुष सरब-कल्याण का सरूप है।

वचन—25. सार निर्णय यह है कि जब तक बुद्धि कर्त्तापन से विलग नहीं होती है, तब तक कर्म-वासना से छूट नहीं सकती है, जो जन्म-मरण का कारण है।

वचन–26. कर्त्तापन को मूल भ्रम जानना और उसकी निव त्ति का यत्न करना ही यथार्थ यत्न है। सत्-परायणता की अधिक द ढ़ता और अधिक सत्नाम की स्म ति को द ढ़ करने से ही कर्त्तापन का अभाव होता है। ऐसे सत्यतन को ही ''योग'' कहा गया है।

वचन–27. कर्मफल द्वन्द्व के त्यागने से असली त्यागी होता है, और कर्त्तापन के त्यागने से निर्वास होता है। इस वास्ते प्रभु आज्ञा में तमाम कर्मफल त्यागने और अनन प्रेम से सत्नाम का सिमरण करना—ऐसे ही सत्-यत्न को जो धारण करते हैं, वे ही परम भगत परम-पद अकर्त समवाद शाँति को प्राप्त होते हैं।

वचन–28. जब तक बुद्धि कर्त्तापन में आरूढ़ है, तब तक अकर्त शक्ति आत्मा को कर्त्ता करके ही सिमरण करना और तमाम कर्मफल उसकी आज्ञा में त्यागने ही परम कल्याणकारी निश्चय है।

वचन–29. जिस वक्त कर्त्तापन अभिमान का अभाव हो जाता है, उस वक्त बुद्धि अकर्त-सरूप आत्मा में लीन हो जाती है, और कर्मफल द्वन्द्व से निर्लेप हो जाती है—तब सरब सरूप

अपना आप ही पहचान करती है। यह अवस्था ही असली ''समवाद विज्ञान'' है।

वचन–30. जब तक कर्त्तापन की गिरफ़्तारी में बुद्धि जकड़ी हुई है, तब तक कर्मफल द्वन्द्व में अति आसक्त है। इस वास्ते जो महज़ कथनी ज्ञानी हैं, और अन्तर से कर्त्तापन अभिमान धारण किया हुआ है, और कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति में चलायमान होते रहते हैं, और कथनी में अपने आपको ब्रह्मसरूप कहते हैं, वे महज़ अतिमूर्ख और सत्-पद के निश्चय के नाशक हैं। यानी उनका कथनी ज्ञान उनके अपने आप के वास्ते कल्याणकारी नहीं है, दूसरों की क्या कल्याण हो सकती है।

वचन–31. ज्ञान का केवल विचार करना ही असली कल्याण नहीं दे सकता है—जब तक कि कर्त्तापन रूपी अज्ञान का सत्-यत्न द्वारा अभाव न किया जावे। इस वास्ते निर्मल-यत्न से अपने आप को इस पवित्र-अंधकार से पवित्र करना ही असली ज्ञान का जानना है।

वचन–32. सबसे प्रथम सतवाद के निश्चय को धारण करके अपनी मलीन वासनाओं का त्याग करना और सत्-कर्म आचारी होना कल्याण सरूप साधन है।

वचन—33. सत्-कर्म-आचारी होकर सत्-परायणता में द ढ़ता धारण करनी और तमाम कर्मफल प्रभु आज्ञा में समर्पण करने, ऐसे सहज यत्न करते-करते तमाम बाधक वासनाओं का अभाव हो जाता है और अन्तर में वैराग प्राप्त होता है। तब प्रभु भगति का निर्मल सरूप बोध होता है।

वचन—34. जब तमाम बाधक वासनाओं से निव त्ति प्राप्त होती है, तब बुद्धि सत्-सरूप को बोध करने में समर्थ होती है, और सत्-यत्न को धारण करके अपने आप को निर्बन्धन करती है।

वचन—35. जब सत्-परायणता में अधिक द ढ़ता प्राप्त होती है, तब कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि परम-प्रेम और श्रद्धा से सत् सरूप समवाद आत्मा में अपने आप को एकाग्र करती है, यानी निर्मल योग को प्राप्त होती है।

वचन—36. जब बुद्धि आत्मानन्द को अनुभव करती है, और वासना के जाल से निर्बन्धन हो जाती है, तब अपने आपको केवल परम पद में ही निहचल करके आनन्दित होती है। ''यह ही समवाद बोध अवस्था है।''

वचन—37. मानुष जीवन की उच्चता इसी में है कि इस काल रूप संसार में आकर अपने आपको सत्-परायणता में द ढ़ करके अपनी सही उन्नति धारण की जावे, यानी कर्त्तापन अभिमान से निव त्ति हासिल करके समवाद सत्-पद अविनाशी-सरूप को बोध कर लिया जावे। ''यह ही परम-धाम शाँति पद है।''

वचन—38. कर्त्तापन अभिमान ऐसा भयानक जाल है कि इससे छूटने के बजाय इस अंधकार को बढ़ाकर के बड़े से बड़े परिश्रम करते हुए बड़े चतुर बुद्धि आखिर इस संसार से परम दु:ख को प्राप्त करके ही जाते हैं।

वचन—39. ऐसे आद और अंत को प्राप्त होने वाले शरीर या संसार को पहचान करके केवल अपने आपको सत्-परायण बनाना और सत्-नाम निदिध्यासन में द ढ़ करना ही असली कल्याण के देने वाला यत्न है।

वचन—40. बड़े से बड़ा यत्न करके इस कर्त्तापन अभिमान को त्याग करके केवल सत्-सरूप का द ढ़ निदिध्यासी होना और तमाम कर्मफल की आसक्ति से निर्बन्धन होना ही अधिक शूरवीरता है, जो कि मानसिक दोषों से पवित्रता के देने वाली और अखण्ड

शब्द-सरूप समवाद आनन्द को प्रकाशने वाली है। तमाम सज्जन इस संसार की सही यात्रा को समझ करके अपने अन्तःकरण में केवल सत्-तत्त्व निदिध्यास को द ढ़ करके अपने आपकी सही कल्याण करें—जो तमाम सत्पुरुषों का जीवन आदर्श है। तमाम गुरमुखों को सत्-तत्त-बोध प्राप्ति की भावना द ढ़ होवे।

आत्म-चिन्तन

वचन—1. बुद्धि अहंभाव की मलीनताई को धारण करके असत्-नाम, रूप, गुण, कर्म आदि अनात्म पदार्थों का पलक-पलक विखे चिंतन करती रहती है। यह मूढ़ अवस्था ही तमाम संसार का वास्तविक रूप है। ऐसे अनात्म पदार्थों के चिंतन करने से ही नाना प्रकार की भोग वासना में आसक्ति को प्राप्त करके अनुकूल व प्रतिकूल भोगों की प्राप्ति और अप्राप्ति के यत्न में बुद्धि अति चंचल होकर खेद-युक्त रहती है। यह ही परम दुःख रूप संसार है।

वचन—2. इस अज्ञानमयी जीवन से निर्बन्ध होने की खातिर केवल एक आत्म-सरूप का चिंतन

ही है, जो कि सरब अन्तर प्रकाश कर रहा है। यानी पाँच तात्त्विक शरीर, मन और बुद्धि आदि अंतःकरण से तीन काल विलग और शुद्ध सरूप चेतन-प्रकाश, आदि-अन्त रहित जो जीवन-शक्ति है—वह ही सिमरण और ध्यान करने योग है।

वचन—3. अधिक निर्मल विवेक से, अधिक शारीरिक बल से, अधिक सत्-श्रद्धा से आत्म-सरूप अविनाशी शब्द का दढ़ चिंतन और निदिध्यासन करना ही परम शुद्धि और परम-शाँति के देने वाला है।

वचन—4. तमाम शारीरिक जन्तर कर्म सहित, वासना सहित, आद-अन्त सहित, द्वन्द्व सरूप है, जो कि नित ही भय, रंज का सागर है। इसमें बुद्धि आसक्त हो करके नाना प्रकार के कर्म-भोग द्वारा अपनी सन्तुष्टि चाहती है— मगर वास्तव में जब तमाम शरीर ही खेद युक्त है, तो पूर्ण तप्ति और निर्भयता कैसे प्राप्त हो सकती है? इसमें तो सिर्फ अनुकूल और प्रतिकूल भोग पदार्थों की प्राप्ति में राग-द्वेष की भयानक अग्नि प्रचण्ड रहती है,

जो नित ही अधीर करती है। ऐसी शारीरिक भोग क्रीड़ा के अंजाम को समझते हुए हर वक्त अपने पवित्र निश्चय को केवल आत्म-परायण बनाना ही परम उन्नति और शाँति के देने वाला यत्न है।

वचन—5. आत्म-शक्ति नित अकर्म, नित-निर्वास, नित प्राप्त, नित निर्खेद, नित परिपूर्ण, नित अखण्ड और नित कल्याण सरूप है। ऐसे परम तत्त्व ज्ञान सरूप के परायण हो करके अपने तमाम दोषों को पवित्र करना ही परम श्रेष्ठ कर्त्तव्य है।

वचन—6. जब तक बुद्धि में कर्त्तापन, कर्म और कर्म फल की आसक्ति मौजूद रहती है, तब तक आत्म-शक्ति को शरीर का कर्त्ता-हर्ता जान करके नित ही तमाम शारीरिक दुःख व सुख जो कर्म-फल सरूप हैं—केवल आत्म-सरूप परमेश्वर के समर्पण करने और शारीरिक राग-द्वेष से असंग होना ही आत्म-चिंतन का प्रथम साधन है। यानी शारीरिक कर्म-भोग की अनुकूलता और प्रतिकूलता को केवल आत्मा के ही समर्पण करते हुए बुद्धि को सत्-सरूप के चिन्तन में लमह-ब-लमह निहचल करना ही ''परम तप'' है।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

वचन—7. ऐसे सत् यत्न से बुद्धि कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति से निर्बन्धन हो करके केवल आत्म-सरूप में निहचल होती है और आत्मानन्द जो कर्म और वासना से बिल्कुल पवित्र है, इसको अनुभव करके तमाम शारीरिक खेद से परम-शाँति को प्राप्त होती है। यह हालत ही परम प्रसन्नता की है।

वचन—8. जिस वक्त बुद्धि अनात्म पदार्थों के संजोग-वंजोग के राग-द्वेष से पवित्र हो जाती है, उस वक्त सत-सरूप आत्मा में पूर्ण रूप से निहचल होती है, यानी तमाम इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा से असंग हो करके केवल एक अविनाशी आत्म-शब्द में लवलीन रहती है, और कर्त्ता, कर्म और कर्मफल की आसक्ति से निर्बन्धन होकर के सदैव काल एक आत्म-सरूप में स्थिर होती है, जो कि अकर्म, निर्वास, और निर्खेदपद है। इसको प्राप्त करना ही मानुष जन्म का परम उत्तम कर्त्तव्य है।

वचन—9. अति अहंकार की द ढ़ता से जो अति मलीन वासनायें पैदा होती हैं—और अति मलीन कर्म करवाती हैं, उनका त्याग करके केवल आत्म-परायण अपने आपको बनाना ही पूर्ण आस्तिकवाद है।

ग्रन्थ

श्री समता विलास

वचन—10. आत्म-परायण होकर नित ही शुद्ध वासना द्वारा शुद्ध कर्त्तव्य को धारण करना ही श्रेष्ठ आचरण है। यानी एक आत्मा के परायण होकर के तमाम शारीरिक क्रिया को खेद-सरूप और छिन-भंगुर जानते हुये अधिक लोभ, अधिक मोह, अधिक क्रोध, अधिक काम और अधिक अहंकार के वेग को नित पवित्र करने का यत्न करना ही असली मानुषपन है—और सतवादी जीवन का लक्ष्य है। ऐसा पवित्र-निश्चय और पवित्र-निदिध्यासन ही आत्म-चिंतन में निहचल करता है।

वचन—11. जब अति शुद्ध वासना में बुद्धि निहचल होती है तब शारीरिक स्वार्थ से निर्बन्धन होकर के परमार्थ में द ढ़ होती है। ऐसी निर्मल परमार्थ की धारा में अपने आपको निहचल करके तमाम शारीरिक कर्मों का फल, जो दुःख व सुख का सरूप है, एक आत्म-शक्ति के ही समर्पण करती है। यानी कर्मों का होना और न होना एक आत्मा के ही आधार जान करके अन्तर से शुद्ध वासना का भी त्याग कर देती है और सिर्फ छिनकारी वासना में विचरती है। ऐसी स्थिति को ही निष्काम कर्म कहा गया है।

वचन–12. ऐसे निष्काम कर्म की द ढ़ता से बुद्धि तमाम शारीरिक दोषों से परम पवित्र हो करके एक आत्म-सरूप अविनाशी नाद में निहचल होती है, जो कि अखय और निर्वास पद है। यह ही अवस्था आत्म-चिंतन का पूर्ण सरूप है। यानी अनात्म पदार्थों के चिंतन से पूर्ण रूप से पवित्र होकर के केवल आत्म-चिंतन में आत्म-सरूप ही हो जाती है। यह ही निर्भय पद है।

वचन–13. मानुष जीवन का उन्नत सरूप यह ही है कि नित ही मलीन वासनाओं और मलीन कर्मों का त्याग करना और सत् आचारी होना। मानुष में अधिक शिरोमणी और देवता होना ऐसे ही हो सकता है कि तमाम स्वार्थ वासनाओं को त्याग करके केवल सत्-सरूप के परायण होकर के तमाम जीवों की कल्याण चाहनी और सत्-यत्न करना निष्काम-सरूप में। ऐसे सत्-यत्न से ही आत्म-चिन्तन में पूर्ण निहचलता प्राप्त होती है, जो परम शाँत सरूप है।

वचन—14. तमाम जूनियों में मानुष जन्म की उच्चता इसी में है कि तमाम मानसिक विकारों से अपने आपको पवित्र करे और सत्ग्रही भावना में अति द ढ़ता धारण करे। रोज़ाना ज़िन्दगी का परम कर्त्तव्य यह ही है कि आत्म-चिन्तन द्वारा अपने आपको भ्रम अन्धकार से जाग त करे, और परम प्रसन्नता निर्वास-पद प्राप्ति का यत्न करे।

वचन—15. परम-उन्नति, परम-खोज, परम-सूझ, परम-बोध, परम-मूल, परम-त प्ति, परम-ज्ञान, परम-विज्ञान, परम-निर्भयता, परम-शूरवीरता, परम-पवित्रता, परम-जाग ति इस मानुष जन्म में केवल एक आत्म-चिंतन से ही है। यानी अन्तरमुख हो करके सत् युक्ति द्वारा तमाम मानसिक विकारों से विजय हासिल करके एक आत्म- साख्यातकार पद को प्राप्त होना है—और केवल यह ही महाकारज इस जीवन में है। दुर्लभ उसका जीवन है जिसको ऐसी साधना और स्थिति में सफलता प्राप्त हुई है। तमाम प्रेमी इस विचार को ग़ौर करके अनुभव करने का यत्न करें और अपने आप को नित ही निर्मल आत्म-चिन्तन अभ्यास में निहचल करें। ऐसी साधना ही से इस भ्रष्टाचार के ज़माने में शाँति प्राप्त हो

सकती है। अभ्यास से लापरवाही करनी अपनी मूल बरबादी करनी है। इस वास्ते अधिक से अधिक कोशिश करके अपने आपको सत्-मार्ग में जाग्रत करें और गुरु क पा के महारस को प्राप्त करके परम कल्याण पद को प्राप्त होवें। ऐसा ही सत्-यत्न तमाम गुरुमुखों के वास्ते अधिक लाज़मी है। ऐसा सत्-पुरुषार्थ सब प्रेमियों को प्राप्त होवे। ईश्वर सुमति देवे।

सत् सरूप चिंतवन की भावनायें

सम्बन्ध-कर्म-योग या भक्ति-योग

तू कर्त्ता, तू हर्ता, सर्व तेरी आज्ञा, तू नित रख्यक, तू नित सहायक, तू दीनदयाल, तू नित बख्शनहार, जो तेरी आज्ञा, तू नित पतितपावन, तू नित सरब-आधार, तू नित संगबासी, तू ही अविनाशी, तू ही सरब-आद, तू ही नित अनाद, तू ही परम-पिता, तू ही जगदीश्वर, तू ही गोविन्द, तू ही गोपाल, तू ही मंगलदाता, तू ही अनंत, तू ही बे-अन्त, तू ही अपार, तू ही दयाल, तू कर्त्ता, तू कर्त्ता, तू कर्त्ता, सरब तेरी आज्ञा, जो तेरी कृपा, सरब तू ही,

सरब तू ही, सरब तू ही, आद-अन्त-मध्य तू ही, तू ही सत्, तू ही अगम, तू ही अवगत, तू ही स्वामी, तू ही अन्तर्यामी, तू ही कल्याण, तू ही जीवन, तू ही विधाता, तू ही अन्तर, तू ही बाहर, तू ही दीनानाथ, तू ही ज्ञान, तू ही विज्ञान, तू ही अगोचर, तू ही नारायण आदि अनन्त प्रकार की भावनाओं से मनोव त्ति को सतनाम में द ढ़ करना ही समर्पण बुद्धि, कर्म-योग, भक्ति-योग, अनासक्ति-योग, सर्गुण व त्ति योग, करके संतों ने बयान किया है। ऐसे द ढ़ निश्चय से तमाम अहंकार की मलिन और वासना का नाश हो जाता है। बुद्धि निरअहंग अवस्था को प्राप्त हो करके तमाम मानसिक दोषों से अचेष्ट हो जाती है, और अखण्ड अविनाशी शब्द में अन्तर विखे निहचल होती है। यह ही अवस्था परम-स्थिति और परम-सिद्धि है। अज्ञान अवस्था में यह भावना सुगम और सहज मानसिक दोषों को नाश करने वाली है, और आत्म-अनुभवता को प्रकाशने वाली है।

सम्बन्ध-ज्ञान-योग

मैं आत्मा निर्देह हूं, मैं आत्मा इन्द्रियातीत हूं, मैं आत्मा नित-अकर्त्ता हूं, मैं आत्मा शुद्ध-चेतन हूं, मैं आत्मा नित-अखण्ड हूँ, मैं आत्मा नित-अच्छेद हूं, मैं आत्मा नित-अभेद हूं, मैं आत्मा सरब-असंग हूं, मैं आत्मा नित-अद्वैत हूं, मैं आत्मा नित-अजन्मा हूं, मैं आत्मा नित-निर्वास हूं, मैं

ग्रन्थ

श्री समता विलास

आत्मा सरब-सरूप हूं, मैं आत्मा नित-निर्वाण हूं, मैं आत्मा सरब-ब्रह्म हूं, मैं आत्मा नित-शून्य हूं, मैं आत्मा गुणातीत हूं, मैं आत्मा नित-निहकर्म हूं, मैं आत्मा निर्द्वन्द्व हूं, मैं आत्मा सम-सरूप हूं, मैं आत्मा नित-अकाल हूं, मैं आत्मा सच्चिदानन्द हूं, मैं आत्मा वीतराग हूं, मैं आत्मा नित निराकार हूं, मैं आत्मा परम-आनन्द हूं, मैं आत्मा सरब आद हूं, मैं आत्मा नित-अलोक हूं, मैं आत्मा नित अगेह हूं, मैं आत्मा सर्वाधार हूं, मैं आत्मा निज सरूप हूं, मैं आत्मा सरब जीवन हूं, मैं आत्मा सरब साक्षी हूँ, ऐसी अनन्त प्रकार की भावनाओं से सत्-सरूप में अन्तर विखे लीन होना ही ज्ञान-योग, सांख्य योग, निर्गुण व त्ति योग का निश्चय कहा गया है। और ऐसे ही द ढ़ निदिध्यासन से अन्तर-बाहिर जब बुद्धि केवल अखण्ड नाम परायण होती है, तब देह मद से निर्मल होकर के परम एकाग्रता को अनुभव करती है और अन्तर में विज्ञान सरूप अविनाशी शब्द में स्थिति को प्राप्त होती है। यह ही अनुभवी ज्ञान समाधि की अवस्था है। तब बुद्धि तमाम आकार मण्डल संसार के खेद से असंग और अलेप हो जाती है। यह ही परम सिद्धि का धाम है। मगर चिरकाल तक कर्म-योग के निदिध्यासन से आत्म-अनुभव अवस्था जब प्राप्त होती है तब ऐसा ज्ञान-विज्ञान खुद-ब-खुद ही अन्तर बोध हो जाता है।

खास चेतावनी

कर्म योग तथा ज्ञान योग की भावनाएँ हर एक अनुभवी पुरुष के अन्दर विशाल रूप में मौजूद रहती हैं, और इन्हीं भावनाओं के बल से शारीरिक दोषों से असंग होकर के नित सरूप अविनाशी-तत्त्व आत्मा में बुद्धि निश्चल होती है। इन दो स्थितियों को या भावनाओं को भिन्न-भिन्न करके जानना नासमझ और अन्ध-विश्वासी कथनी ज्ञानियों का मत है। वास्तव में यह दोनों भावनाएँ हर एक सिद्ध पुरुष के अन्तर मौजूद रहती हैं, और प्रक त दोषों के नाश करने में दोनों भावनाएँ परम सहायक होती हैं। यह ही सिद्धों का सिद्धान्त है। अपनी-अपनी बुद्धि के मुताबिक हर दो निश्चय से दुर्मत भ्रम का नाश हो जाता है और यह बुद्धि अहंकार की मलिन से शुद्ध होकर के अन्तर में अखण्ड अविनाशी शब्द में लीन हो जाती है—जो अगोचर और निर्भय स्थिति है। समतावाद में ये दोनों भावनायें कल्याणकारी और एक ही परिस्थिति की प्राप्ति की परम सहायक मानी गई हैं, जो निर्वाच और अकथ-पद है। सब साधकों का ऐसा निश्चय होना चाहिये।

आत्म सिद्धि विचार

1. प्रथम संसार से वैराग।
2. आत्म-विरह।

3. आत्म-अभ्यास।
4. आत्म-अनुभवता।
5. आत्म-स्थिति।
6. आत्म-लीनता।

पहली पाँच अवस्था में अपने आपको गुप्त रखना चाहिए।

1. वैराग्य की नाश—इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा का उत्पन्न होना।

2. आत्म-विरह की नाश—लोक यश, कीर्ति चाहना।

3. आत्म-अभ्यास में असिद्धि—आहार, व्यवहार, विचार का अशुद्ध होना और संजम रहित होना। पूर्ण श्रद्धा और द ढ़ निदिध्यासन के बग़ैर अभ्यास में कामयाबी होनी अति कठिन है।

4. आत्म-अनुभवता का नाश—सिमरण, तप, त्याग का अभिमानी होना और विद्या के मद में आकर लोगों को प्रभावित करके आडम्बर रचना।

5. आत्म-स्थिति से गिरावट—लोक यश के मद में आकर वर, श्राप (शाप) देना और रिद्धि-सिद्धि को प्रगट करना।

6. आत्म-लीनताई अवस्था मुक़म्मिल है—यानी गुणातीत स्थिति में बुद्धि निहचल होकर के ब्रह्म सरूप में लीन हो जाती है।

श्री समता विलास

अध्ययन सहायिका

'समता विलास से प्रश्नों का समाधान'

प्रश्न *उत्तर (प ष्ठ एवं वचन संख्या)*

1. धर्म किसको कहते हैं ? 2-4; 22-97; 25-29; 78-134; 80-140; 93-1 से 3; 104-36; 106-45; 131-105; 169-1,2; 173-9; *182-29,30; 234-68; 339-105; 417-9;
2. समता किसे कहते हैं ? 7-37; 11-57,58; 19-81; 22-100; 73-120; 84-150; 186-36; 312-55; 326-85; 379-39; 621-29;
3. मुक्ति या मोक्ष क्या है ? 7-37; 20-87; 46-52; 50-62; 71-114; 95-5,6; 107-47; 113-66; 155-10; 313-57; 606-38;
4. मन क्या है ? 26-34; 126-97; 257-2; 552-85;
5. बुद्धि क्या है ? 26-35; 199-5 से 14; 257-2; 450-14; 509-7;
6. जीव का क्या स्वरूप है ? 29-5; 72-116; 153-3; 252-4; 450-14; 468-6; 509-7; 291-10;
7. अहंकार अथवा कर्त्तापन क्या है ? 26-36;
8. कर्त्तापन के उत्पन्न होने का कारण क्या है ? 29-6,7;
9. कर्त्तापन अथवा अहंकार कैसे समाप्त होता है ? 49-61; 56-77; 58-81; 61-92,93; 280-62; 282-68; 300-29; 337-103; 667-19,20,21; 375-32; 376-34; 378-36; 382-45; 406-11; 496-11,12; 559-101; 567-118; 569-122; 584-155,156; 598-22; 605-36; 606-38; 614-7; 616-13,14; 618-18; 22; 621-26;
10. जीव को कौन-सा रोग लगा हुआ है ? 67-105; 220-29; 310-51; 513-12,13;
11. त ष्णा/इच्छा/वासना कैसे उत्पन्न होती है ? 26-38; 27-1; 292-11,12; 302-33; 304-40; 367-20; 516-18,19,20; 520-26,28; 569-125; 606-38;

---

* 182:29,30—182 प ष्ठ पर वचन संख्या 29 तथा 30; नीचे लाइन (अन्डर लाइन) उस प्रश्न के उत्तर के लिए मुख्य वचनों को दर्शाती है।

12. तृष्णा/इच्छा/वासना कैसे शांत होती है ? 26-39; 67-105; 98-14,15; 103-33; 149-37; 184-33; 300-30,31,33,35; 304-40; 321-71; 322-75; 326-84; 332-97; 343-110; 364-12; 376-34; 386-1; 418-10; 425-15; 440-21; 451-17; 455-5; 459-6; 461-1; 538-57; 559-101; 597-19; 602-30; 606- 38; 614-7; 617-16; 619-22; 620-25; 623-33;

13. प्रकृति क्या है ? 31-12; 153-2,4; 156-12; 526-36 से 46; 574-132;

14. संसार का क्या स्वरूप है ? 33-16; 73-120; 180-23; 235-72; 260-7; 274-47; 275-49; 279-61; 287-2; 290-6; 293-13; 361-7; 363-9,11; 369-24, 25; 381-42; 413-1; 424-14; 452-7; 490-2; 508-4; 511-9,10; 519-24; 551-84; 567-119; 590-2; 613-3; 625-1;

15. शारीरिक रचना का क्या सिद्धान्त है ? 31-11; 615-9;

16. शरीर किन तत्त्वों से बना है ? 156-12; 201-31;

17. आवागमन क्या है अथवा पुनर्जन्म क्यों होता है ? 26-37; 28-2; 35-21; 50-63; 54-73; 95-5; 154-5; 155-9; 271-36; 287-2; 312-54; 450-14; 454-2; 467-1; 517-21; 519-23; 591-3; 613-5; 615-9;

18. आवागवन से छूटने का क्या उपाय है ? 14-64; 50-63; 117-78; 181-26; 187-38; 279-59; 285-79; 369-24; 418-10; 487-1 से 3;

19. अज्ञान अथवा अंधकार क्या है ? 28-3; 31-11,12; 82-144; 153-3; 170-3; 171-5; 180-23; 260-7 से 10; 261-12; 315-61; 316-63; 367-20; 440-20

20. ज्ञान क्या है ? 25-30; 45-44; 52-67; 180-23; 289-5; 308-48;

21. माया का क्या स्वरूप है ? 27-1,2 186-36; 268-30; 288-3; 290-7 से 10; 360-5 से 7; 366-18; 381-43; 445-1; 457-1; 463-1; 461-1; 467-1; 508-5; 509-7; 514-15; 521-27; 526-36; 614-7;

22. माया से छूटने का क्या उपाय है ? 55-75; 61-92; 72-115; 149-36; 157-16; 180-24; 231-63; 279-60; 369-25; 439-18;

23. जीव संसार चक्र में कैसे फँसता है ? 33-17; 516-18 से 21

24. जीव के बन्धन का क्या स्वरूप है ? 16-70; 30-9,10; 49-59; 50-63; 61-90; 96-9; 186-36; 269-32; 271-36,37; 289-5; 310-51; 420-2; 413-1; 446-5; 447-8; 450-14; 511-9; 514-15; 519-24;

25. जीव का हर कर्म दु:ख का कारण क्यों है तथा सांसारिक जीवन का क्या स्वरूप है? 32-14,15; 34-18; 316-63; 318-66; 361-7,8; 413-1; 420-1,3; 446-5; 454-1; 457-1; 458-3,4; 506-1, 507-3,4; 511-9; 512-11,12; 517-21,22; 520-25; 525-35; 528-40; 572-130; 574-132; 626-4;

26. इन्द्रिय भोग का क्या परिणाम होता है ? 35-20; 103-31; 262-14; 280-63; 281-64; 493-7; 592-7,8; 594-11 से 13

27. दु:ख क्या है तथा दु:खी एवं अशांत कौन रहता है ? 521-27; 522-29; 70-110; 73-118; 80-140; 184-34; 417-9; 454-1; 605-35;

28. जीव के दु:ख अथवा अशांति का क्या कारण है ? 34-19; 54-73; 117-76; 260-8; 261-12; 280-63; 289-5; 316-63; 318-66; 363-9 से 11; 365-15; 405-7; 492-6; 490-3; 508-4; 520-25; 524-33;

29. असली शाँति या आनन्द क्या है तथा कैसे प्राप्त होता है ? 44-41; 47-54 से 58; 50-64; 52-69; 54-73,74; 66-102; 72-115; 78-133 से 135; 113-64; 115-72; 117-77; 173-10; 261-12,13; 275-48; 277-54; 278-57; 323-76; 365-14; 368-23; 375-31; 384-2; 386-1; 387-3; 404-6; 416-7 से 9; 419-11; 423-11; 437-12; 456-7; 459-7; 461-1; 472-3; 553-87; 555-92; 599-23; 617-17; 621-27;

30. सुख अथवा खुशी क्या है, तथा सुखी अथवा खुश कौन है ? 2-5; 23-5; 24-11; 71-114; 107-47; 111-58,59; 423-11; 521-27; 522-29; 598-21;

31. असली सुख या खुशी कैसे प्राप्त होती है ? 79-136; 177-18; 338-104; 354-2; 417-9;

32. जीव की वास्तविक इच्छा क्या है ? 2-5; 93-1; 187-38; 285-80; 288-3; 366-16; 386-1

33. मनुष्य जन्म सबसे उत्तम क्यों है ? 3-12; 36-24; 75-124; 359-1; 404-4; 418-10; 489-1; 506-1,2;

34. मानव जीवन का लक्ष्य क्या है अथवा किस लिए मिला है ? 82-144,145; 95-7,8; 97-12,13; 106-43; 109-54; 178-21,22; 196-6; 263-16; 268-29,30; 291-9; 297-22; 332-97,98; 532-47; 604-33;

35. मानव जीवन का परम धर्म अथवा कर्त्तव्य क्या है? 7-36; 25-22; 37-25,26; 44-42; 63-96; 70-110; 72-115; 152-55; 229-58; 259-5,6; 274-45; 277-54; 280-62; 287-1; 292-11; 297-22; 300-28;

309-49; 363-9; 375-32; 377-35; 382-45; 386-1; 405-9; 412-13; 416-7; 419-12; 425-16; 428-22; 431-10; 447-8; 452-2,5,8; 454-3; 457-2; 471-1,2; 489-1; 506-1,2; 508-5,6; 514-15,16; 523-31; 526-37; 532-47; 533-49; 534-51; 536-53; 546-73; 564-113; 570-125; 588-5; 591-3,4; 599-23; 602-31; 615-11; 624-37; 627-5:6; 628-8; 631-14;

36. मूर्ख कौन है ? मूर्खता अथवा मनमुखता क्या है ? 37-28,30; 64-99; 68-107; 79-137; 95-5; 105-39; 158-18; 174-12,13; 262-14; 271-37; 333-98; 403-3; 458-4; 512-11; 519-23; 521-28:570-125; 572-130; 594-11; 613-4 622-30;

37. बुद्धिमान या विवेकी कौन है? 24-12; 101-25; 106-42; 276-53; 323-76; 331-96 345-112; 496-11; 577-140; 594-11;

38. विवेक क्या है ? 47-55; 76-128; 301-31; 319-67; 345-113; 351-120; 438-15; 445-2; 456-7; 458-3; 516-18 से 35; 538-57; 544-70,71; 595-13;

39. वास्तविक उन्नति क्या है ? 275-50; 277-55; 278-57; 292-12; 319-67; 335-101; 340-106; 352-1; 534-51;

40. नित्य क्या विचार करना चाहिये ? 37-28,29; 66-103; 71-113; 72-115; 102-30,31; 114-68; 199-4; 268-30; 271-36,38; 273-42; 274-45; 288-4,5; 275-49; 318-66,67; 333-98; 335-101; 362-8; 413-1 से 6; 451-1 से 10; 471-2,3; 521-27; 526-37,38:572-130,131; 577-140; 626-4;

41. बुद्धि के निर्विकार होने से क्या तात्पर्य है ? 347-115;

42. सांसारिक बुद्धि का क्या स्वरूप है? 260-7; 261-12; 301-32; 420-3; 454-1; 490-3 से 8; 510-8,9; 516-18; 517-21; 590-2; 612-1,2; 614-6; 625-1;

43. बुद्धि निर्भय अथवा बलवान कैसे होती है? 264-20; 339-105; 341-108; 345-113; 416-6,7; 419-11; 514-14; 572-128; 183-31; 285-78; 311-53;

44. बुद्धि अथवा जीव को पूर्ण सन्तोष कैसे प्राप्त होता है ? 313-57; 416-7; 419-11; 543-68; 551-83; 585-159; 617-17; 379-40;

45. बुद्धि कैसे शुद्ध तथा एकाग्र होती है ? 7-36; 50-62; 63-96; 69-109; 71-112; 78-135; 173-10; 258-3,4; 263-17; 264-20; 266-23; 267-26, 28; 269-32; 270-35; 282-69; 286-81,82; 337-103;

405-10; 559-101; 546-73; 553-87; 560-105; 562-109; 600-26;

46. कर्म द्वन्द्व तथा राग-द्वेष क्या है? 303-38; 361-6; 420-2,3; 457-1; 519-23,24;

47. कर्म द्वन्द्व अथवा राग-द्वेष से छूटने का उपाय क्या है ? 76-127; 282-68; 304-39; 423-10; 440-19; 459-6; 522-29; 524-34; 598-22; 606-37,38; 616-15; 623-35; 627-6,7;

48. क्या कर्मों के फल को टाला जा सकता है ? 147-24 से 27; 307-46; 318-66,67; 469-8;

49. जीव गति का क्या सिद्धान्त है ? 64-99; 133-6; 154-7 से 11; 158-17; 158-19 से 22; 159-25; 340-107; 469-8 से 10; 467-3; 312-54;

50. नरक का क्या स्वरूप है ? 110-57; 112-63; 340-107; 417-8; 491-4; 40-32;

51. राक्षसी जीवन क्या है ? 40-32; 114-67; 115-71; 423-9; 494-8; 496-10; 569-124; 200-8;

52. पशु समान जीवन क्या है ? 56-76; 74-123; 174-11; 268-29; 297-22; 334-100; 399-5; 424-13; 494-8; 532-47; 569-124; 594-12;

53. मनुष्य का नाश कब होता है ? 16-70,71; 529-42 से 45; 533-49,50; 569-124;

54. पूर्व कर्म का वर्तमान पर क्या प्रभाव पड़ता है ? 77-130; 145-18,19; 146-21;

55. जीव का हर कर्म बन्धन का कारण क्यों है तथा इससे मुक्त होने का क्या उपाय है? 303-38 से 46; 450-14,15; 454-1 से 8;

56. कर्म वासना का नाश कैसे होता है ? 12-60; 14-65; 49-59,60; 61-90; 63-98; 279-60; 283-72; 322-74; 337-103; 367-20; 378-38; 379-40; 449-13; 524-34; 559-101;

57. सत्पुरुषार्थ या सत् यत्न क्या है ? 21-92; 22-97; 23-2; 56-76; 63-98; 69-109; 178-21; 285-80 से 82; 287-1,2; 258-3; 272-41; 278-57; 279-60; 337-103; 351-120; 385-3; 401-13; 412-12; 534-51,52; 540-60,61; 541-63,65; 543-68; 546-73; 594-9,10; 601-27,29; 621-26,27; 624-38,39;

58. सत्कर्म कौन-कौन से हैं ? 37-27; 52-67; 236-74,75; 266-25;

59. मानव धर्म की प्राप्ति के लिए क्या-क्या करना चाहिए? 39-31; 152-55; 179-22; 236-74,75; 266-25; 278-57,58; 337-103; 430-1 से 12; 546-73

60. पतिव्रत धर्म क्या है ? 475

61. ग हस्थ पुरुष का क्या धर्म है ? 476

62. सत् विचार किसे कहते हैं ? 50-64; 69-109; 77-132; 236-74; 258-3; 262-13; 287-1;

63. निरंतर सत् विचार क्यों करना चाहिए ? 36-23; 42-36; 56-78; 339-105; 340-107; 587-1; 590-1;

64. असली सत्संग क्या है ? 4-18; 25-19; 46-49; 87-5; 122-88 से 92; 198-1,2; 236-75; 353-1; 428-1 से 14; 430-3;

65. सत्संग का क्या महत्त्व है ? 120-84,85; 121-86,87; 124-93 से 95; 340-107;

66. सत्संग में किन विषयों पर विचार होना चाहिए ? 428-1 से 14;

67. बंधन और मुक्ति अथवा शांति एवं अशांति का क्या स्वरूप है ? 371-29; 417-9; 450-14,15;

68. किस अवस्था में शरीर त्यागने से बंधन और मोक्ष प्राप्त होता है? 252 से 254

69. उत्तरायण व दक्षिणायण मार्ग क्या है ? 252 से 254

70. भवसागर क्या है ? 446-4

71. देह और जीव का क्या संबंध एवं स्वरूप है ? 467-2; 468-6;

72. देह और संसार में क्या भेद है ? 468-5;

73. ईश्वर और जीव का क्या संबंध है ? 341-108

74. शरीर और आत्मा का क्या संबंध है ? 81-141; 301-31; 312-54;

75. ईश्वर का क्या स्वरूप है ? 25-28; 97-11; 258-3; 341-108; 610 से 611

76. ईश्वर अथवा आत्मा किस रूप में व्याप्त है तथा कैसे सर्व शक्तिमान है ? 314-59; 258-3; 541-62; 548-77,78; 580-147;

77. ईश्वरीय कानून अथवा नियम क्या है ? 79-136; 117-78; 243-16; 415-5;

78. ईश्वर उपासना का क्या लाभ है ? 148-35; 149-38 से 40; 341-108; 572-130,131;

79. सत्य का क्या स्वरूप है ? 23-1; 69-109; 103-33 से 35; 536-53;

80. सत् विश्वास या सत् निश्चय क्या है ? 69-109; 258-3; 247-47; 328-88; 496-11; 545-72; 553-87; 555-91; 592-6; 616-13;

81. सत्याग्रह क्या है ? 422-6; 426-17; 597-18;

82. आत्म-विश्वास धारण करना क्यों आवश्यक है ? 77-130,131; 264-20; 448-10; 450-15; 452-7; 456-8; 459-6; 543-68; 572:130; 577:139; 578:141; 587-2;

83. जो लोग ईश्वर विश्वासी नहीं उनको क्या कमी है ? 105-39; 470-12;

84. सब नियम, धर्म तथा साधन अपनाने का क्या प्रयोजन है ? 172-7; 81-142; 298-23; 345-113;

85. सत् परायणता का क्या स्वरूप है ? 47-56,57; 76-129; 261-11; 303-36; 344-111; 367-20; 380-41; 387-3; 450-16; 560-104;

86. सत् परायणता का क्या लाभ है ? 263-17; 264-19,20,22; 275-50; 278-57; 281-67; 337-103; 343-109; 386-1; 387-3; 411-10; 416-7; 450-16,17; 455-4; 501-17; 538-57,58; 578-141; 580-146; 582-152; 583-154; 606-39; 618-19;

87. सत् परायण या ईश्वर परायण जीवन कैसे बनता है ? 69-109; 111-58,59; 113-65; 270-35; 272-41; 278-58; 282-69; 317-64; 328-90; 337-103; 341-108; 344-111; 351-120; 419-11; 430-1 से 12; 546-73; 547-76; 548-77; 563-110; 571-127; 595-14 से 17;

88. मौत के विचार का क्या लाभ है ? 108-49; 472-3; 575-135;

89. ईश्वर विश्वास कैसे द ढ़ होता है ? 25-27; 47-56; 272-41; 300-30,31; 317-64; 337-103; 547-74;

90. देह परायणता क्या है तथा इससे क्या हानि है ? 387-2; 411-11;

511-9; 410-7 से 9;

91. देह परायणता या शारीरिक आसक्ति कैसे दूर होती है ? 386-1; 424-12; 448-10; 496-11; 536-53,54; 546-73; 555:91,93;

92. दुष्ट वासनाओं तथा मिथ्या पदार्थों की कामना से कैसे छुटकारा मिलता है? 57-80; 71-113; 266-25; 278-58; 338-104:455-5; 572-128; 602-30;

93. शरीर अथवा संसार के दुःख तथा भोगों से छूटने का क्या उपाय है? 76-128,129; 82-146; 111-60; 115-70; 117-76; 148-32; 212-7; 264-20; 269-32; 273-42 से 44; 311-52; 316-63; 379-40; 468-4 546-73; 599-24;

94. इन्द्रियों को कैसे वश में किया जा सकता है? 257-2; 381-42 से 45; 425-15; 448-9;

95. पांच विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) अथवा मानसिक दोष कैसे दूर हो सकते हैं? 15-67; 112-63; 321-72; 370-28; 450-16; 500-16; 533-40; 547-76; 584-156; 600-25; 601-29;

96. ममता और मोह का नाश कैसे होता है ? 11-57; 13-62; 15-67; 18-76; 47-55; 74-122; 110-57; 113-66; 273-43; 283-70; 325-82; 385-3; 610-611; 615-9,11;

97. मन के मनोरथ कैसे पूर्ण हो सकते हैं ? 147-24; 572-130,131;

98. मन को कैसे शांत या वश में किया जा सकता है ? 53-70; 60-89, 90; 69-109; 107-48; 117-78; 125-96 से 98; 173-10; 210-1 से 4; 257-2; 264-20; 266-23; 314-59; 333-98;

99. मनुष्य का कल्याण कैसे होता है ? 44-42,43; 46-51; 52-67; 56-77; 57-79, 80; 64-99; 65-101; 70-111; 72-115; 73-118; 110-56; 113-65; 152-53; 177-18; 178-21; 259-6; 275-48; 310-51 से 54; 337-103; 338-104; 379-40; 417-9; 421-5; 448-10; 452-4; 461-1; 470-10; 547-74; 549-80; 622-32;

100. मनुष्य का ईश्वर प्राप्ति के लिए वास्तविक प्रयत्न कब प्रारम्भ होता है ? 47-56; 51-66; 270-35; 317-65; 496-11; 536-53; 537-54 से 57; 545-72; 571-127; 595-14; 596-16;

101. ईश्वर की क्या आज्ञा है ? 11-56; 16-72; 84-150; 112-62;

102. ईश्वर या सत्य की असली पूजा क्या है ? 10-53; 24-10; 50-64; 104-35; 367-19;

103. ईश्वर अथवा समता ज्ञान कैसे प्राप्त होता है ? 5-24; 6-30; 8-43 से 45; 13-63; 15-67; 18-77,78; 25-26; 48-57; 49-61; 50-63; 51-65; 52-69; 108-51; 117-76; 130-104; 234-69; 236-74, 75; 266-24; 277-54; 314-59 से 61; 321-71; 322-74; 331-96; 336-102,103; 347-115; 367-19,20; 375-32; 378-36; 379-40,41; 385-4,5; 326-84; 404-6; 409-5; 426-18; 439-18; 441-24; 459-7; 487-1 से 3; 553-87,88; 571-127; 601-29; 604-34; 627-6,7; 621-27;

104. पूर्ण समता ज्ञान प्राप्त करने की मुख्य शर्तें कौन-सी हैं ? 6-31; 20-85; 21-90,94; 35-22; 43-38; 60-89; 433-1; 549-80;

105. व्यवहारिक तथा आध्यात्मिक जीवन का सुधार कैसे होता है ? 88-1,2; 236-74,75; 332-97; 430-1 से 12; 338-104; 546-73; 547-76;

106. सादगी क्या है तथा इसको क्यों धारण करनी चाहिए ? 69-109; 99-19; 102-28 से 30;

107. सादा पहनावा अर्थात् लिवास से क्या लाभ है ? 100-20; 101-26;

108. सादा भोजन क्यों करना चाहिए ? 26-40; 100-21,22; 101-24,26;

109. विचार की सादगी क्या है ? 101-27,

110. शुद्ध आचरण क्या है ? 53-70; 266-25; 300-30; 338-104; 340-106; 343-109; 345-113; 629-10;

111. अंतःकरण कैसे शुद्ध होता है ? 52-67; 278-57; 286-81,82; 304-39; 314-58; 317-64; 375-32;

112. सही त्याग क्या है ? 49-60; 111-60; 116-73; 136-6 से 8; 300-27; 308-47; 317-64; 454-3,4; 616-15; 621-27;

113. दान किसको कहते हैं ? 24-16; 135-1, 6 से 8;

114. सत्-संगत क्या है ? 69-109;

115. आहार, व्यवहार, विचार और सत्संग के ब्रत का क्या स्वरूप है? 236-74,75;

116. शरीर तथा मन कैसे शुद्ध होता है ? 173-10;

117. सत्संग, सेवा, व्रत तथा तप के नियम का पालन किस प्रकार करना चाहिए ? 352-1; 355 से 358;

118. सेवा का क्या लाभ है ? 110-57 से 60: 112-63 से 70:115-72 से 79;

119. सेवा का सही स्वरूप क्या है ? 69-109; 111-61; 118-81,82; 317-64;

120. श्रद्धा का क्या स्वरूप है ? 70-111; 282-68;

121. सत्वादी कौन है ? 71-112; 343-110;

122. सत् सिमरण (स्मरण) का क्या महत्त्व है ? 125-96 से 102; 210-1 से 4; 212-6,7; 551-84 से 86; 560-105; 561-107; 564-112; 618-20,21;

123. सत् सिमरन का क्या स्वरूप है ? 129-103; 210-1,2; 212-8,9; 217-19,20; 553-87,88; 556-94; 564-113;

124. नाम अथवा शब्द का क्या स्वरूप है ? 214-12 से 15; 237-1; 556-94; 564-113;

125. सत् अभ्यास क्या है ? 50-64; 348-116; 439-17; 455-5; 459-7,8; 596-16; 619-21;

126. सत् अभ्यास के नियम का पालन किस प्रकार करना चाहिए ? 353-1,2;

127. समता आनन्द प्राप्ति के लिए किन सत् नियमों को अपनाना चाहिए ? 352 से 358; 430-1 से 12

128. असली पवित्रता क्या है ? 257-2; 267-28; 276-52; 283-71; 284-75; 335-101; 339-105; 546-73; 600-25; 617-16;

129. सदाचार अथवा सत् आचार क्या है ? 258-3; 533-49; 546-73; 608 से 610;

130. सदाचारी जीवन बनाने के लिए क्या करना चाहिए ? 69-109; 337-103; 345-113,114; 533-49; 546-73;

131. शुद्ध आचरण वाला पुरुष कौन है ? 343-110, 111; 448-11;

132. निष्काम कर्म का क्या स्वरूप है तथा निष्कामता कैसे प्राप्त होती है ? 12-59; 57-80; 117-77; 304-39; 331-96; 357-3; 367-20; 450-

15; 560-103,104; 616-15; 629-11;

133. ईश्वर भक्ति की क्या आवश्यकता है ? 470-12; 572-130,131; 577-140; 511-9 से 12;

134. ईश्वर भक्ति क्या है ? 7-37; 24-18; 46-52; 52-67; 61-90; 76-126; 83-149; 95-5; 113-64; 232-65; 282-68; 316-62; 319-68,69; 367-20; 375-32; 378-38; 381-44; 441-22; 449-12; 455-4,5; 459-6; 558-99 559-102; 562-108; 567-118; 572-128; 596-17; 610,611; 616-13,15; 617-17;

135. अनन्य भक्ति का क्या स्वरूप है ? 18-77; 304-39; 320-69; 406-11,588-4;

136. ईश्वर भक्ति कैसे प्राप्त होती है ? 43-39; 50-62; 61-90; 111-60; 267-26; 270-35; 317-64; 320-69; 337-103; 375-32; 418-10; 472-3; 551-82; 623-33;

137. वास्तविक प्रेम कैसे प्राप्त होता है ? 43-40; 270-35; 455-5; 461-1; 472-3; 583-154; 610-611;

138. शरीर तथा संसार के प्रति वैराग्य कैसे उत्पन्न होता है तथा बुद्धि इनसे कब असंग होती है ? 83-148; 211-5; 272-41; 283-72 से 74; 317-64; 537-54,55; 576-138; 616-12; 623-33;

139. ईश्वरीय विरह कब जाग त होती है ? 83-148; 610,611;

140. शुद्ध वैराग्य का क्या स्वरूप है ? 438-16; 537-55;

141. आत्मिक उन्नति कैसे होती है ? 71-113; 131-105; 179-22; 183-32; 227-52; 236-74,75; 266-23; 269-32; 333-98; 340-106; 453-10; 460-10; 546-73,74;

142. सत्य का जिज्ञासु कौन है ?108-52,53; 441-24; 595-15; 615-10;

143. जिज्ञासु का परम धर्म क्या है ? 236-73; 360-4; 415-4 से 6;

144. सच्चा भक्त कौन है ? 61-91; 137-8; 202-12; 317-64; 320-69;

145. परम तप क्या है ? 62-95; 105-37; 137-7; 187-40; 315-61; 356-1; 385-4; 426-17; 460-8; 558-100; 560-104; 627-6;

146. समता मार्ग का पूर्ण स्वरूप क्या है ? 193-1 से 30; 337-103;

147. समता ज्ञान प्राप्ति के लिए पूर्ण साधन क्या है ? 86-1,2; 236-74,75; 279-60; 321-71; 331-96,97; 336-102,103; 347-115; 303-

36; 406-11; 459-7;

148. समता योग अथवा सुरति शब्द योग की पूर्णता के लिए मुख्य नियम क्या है ? 87-2; 353-1,2; 549-80; 553-87; 556-94; 565-114;

149. असली योग क्या है ? 4-21; 52-67; 73-117; 152-52; 314-59; 378-36; 385-4; 439-17; 449-13; 543-67; 549-79; 556-94; 562-109; 565-116; 567-119; 584-155; 597-19; 618-20; 619-23;

150. शब्द अथवा ईश्वर का अनुभव कब होता है ? 322-73; 327-86; 559-101; 561-106 से 108; 563-111; 565-116; 587-3; 579-144 से 147; 597-20; 617-17;

151. आत्मिक उन्नति में कौन-कौन-सी स्थितियाँ आती हैं ? 325-82; 565-116; 587-1 से 5; 635-1 से 6;

152. परम सिद्धि कैसे प्राप्त होती है ? 54-72; 80-140; 152-52; 226-51,52; 274-46; 327-86 से 89; 331-96; 337-103; 360-3; 385-4; 427-21; 437-12 से 14; 460-9; 547-75; 550-81; 560-104,105; 564-112; 565-115; 575-135; 585-157; 587-1 से 6; 604-33,34; 619-21 से 23; 623-35;

153. निर्वाण स्थिति क्या है ? 580-147; 588-4,5; 619-23; 20-87;

154. ब्रह्म ज्ञानी अथवा परम सिद्ध कौन है ? 6-33; 58-82 से 88; 75-125; 185-35; 187-40; 323-77 से 80; 350-118; 376-33; 402-14; 565-116; 620-24;

155. असली गुरु कौन है ? 67-105; 92-11; 167-41; 223-41,42; 237-1 से 4; 240-8; 242-14; 248-29; 376-34; 425-15;

156. कपटी गुरु कौन है ? 239-6,7,9,11,13,15; 247-26; 333-99;

157. असली ब्रह्मचारी कौन है ? 345-112;

158. अवतार किसको कहते हैं ? 25-20; 204-14; 610,611;

159. देवता किसको कहते हैं ? 25-21; 149-43; 203-13;

160. शक्तिवान पुरुष कौन है ? 23-4,7; 107-46; 108-50; 423-10; 515-16; 602-30; 624-40;

161. समदर्शी पुरुष के क्या लक्षण हैं ? 206; 225-45; 233-67;

162. समव त्त पुरुष के क्या लक्षण हैं ? 206;

163. भजन अवस्था क्या है ? 218-21;

164. ध्यान अवस्था क्या है ? 220-31; 619-22;

165. समाधि अवस्था क्या है ? 223-40; 223-41 से 43; 225-47; 230-59; 233-67; 619-23; 634;

166. दिव्य द ष्टि क्या है ? 232-66;

167. कर्म योग अथवा समर्पण कर्म योग क्या है ? 191-49; 487-1 से 3; 560-104; 606-37; 632-633;

168. ज्ञान योग क्या है ? 191-49; 568-120; 633,634;

169. भक्ति योग क्या है ? 567-118; 568-120; 606-37; 632;

170. निर्मानता, उदासीनता तथा पर उपकार का गुण कैसे प्राप्त होता है ? 357-3;

171. निश्चलता कैसे प्राप्त होती है ? 301-31; 327-86; 357-3; 546-73; 547-76; 575-136; 619-22;

172. अहिंसावाद क्या है तथा अहिंसावादी कौन है ? 420-3,4; 425-16,17; 426-20,21;

173. अहिंसावाद अथवा निष्कर्म सिद्धि कैसे प्राप्त होती है ?422-6; 423-11,12; 461-1; 560-103;

174. हिंसावाद और अहिंसावाद में क्या भेद है ? 422-6; 427-1;

175. असली स्वराज्य क्या है ? 403-2; 404-6 से 10

176. समता स्वराज्य की प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए ? 407-13; 411-10; 412-12; 461-1;

177. संग शक्ति एवं असंग शक्ति अर्थात् प्रक ति एवं पुरुष के बारे में पूर्ण निर्णय क्या है ? 398-1 से 15;

178. नवधा भक्ति का वास्तविक स्वरूप क्या है ? 480-1 से 9;

179. शुद्ध निदिध्यास का क्या स्वरूप है ? 548-77,81,83; 553-

87,88; 554-90; 556-94; 558-99 से 101; 560-104; 563-110,111; 565-116;

180. मनुष्य की कल्पना/कामना कब समाप्त होती है ? 53-71; 207-55; 250-33; 553-87;

181. मनुष्य के लिए असली या परम साधन क्या है ? 47-53; 57-80; 73-119; 74-122; 76-126; 115-70; 178-21; 232-65; 275-49; 299-25; 300-28; 319-67; 321-72; 337-103; 357-2; 569-122;

182. स्वभाव क्या है ? 364-12; 529-42;

183. सात्विक, रजोगुणी व तमोगुणी स्वभाव का क्या स्वरूप है ? 294-16 से 21;

184. त्रिगुणात्मक माया या वासना का क्या स्वरूप है? 294-16 से 22; 511-9;

185. धर्म—अधर्म मार्ग का क्या स्वरूप है ? 299-25;

186. असली विजय क्या है ? 302-34; 549-79;

187. संसार तथा शरीर स्वप्न अथवा छाया समान कब प्रतीत होता है? 350-118;

188. असत् नाम रूप वाले सूक्ष्म संसार से छूटने का क्या उपाय है ? 551-84 से 86; 578-141;

189. आत्म-चिंतन का क्या महत्त्व है ? 551-84 से 86; 578-141; 585-158; 631-15;

190. आत्म-चिंतन का क्या स्वरूप है ? 627-6; 629-10 से 13;

191. असली जीवन सफलता कैसे प्राप्त होती है ? 446-4; 450-15; 543-68; 546-73,74;

192. सत् मार्ग या गुरुमुख मार्ग क्या है ? 447-7; 450-16; 463-2,3; 591-5; 594-9; 606-39; 616-12;

193. दूसरों का कल्याण किस व्यक्ति से हो सकता है? 41-35; 59-85; 65-101; 75-125; 168-50; 171-6; 185-35; 233-67; 329-91; 349-117; 379-40; 382-45; 539-59; 542-64; 575-137; 620-24;

194. सही और गल्त धर्म उपदेशकों का क्या स्वरूप है? 160-1 से 50;

195. असली गुरु शिष्यों को क्या शिक्षा देता है ? 241-10,12;

196. शिष्य और गुरु का क्या फ़र्ज़ है ? 243-16 से 24; 249-30; 473,474;

197. स्त्रियों के लिए गुरु धारण करने की क्या नीति है? 246-25;

198. आध्यात्मिक मार्ग में पूर्ण सफलता के लिए कैसे पुरुष की संगत चाहिए ? 549-80 से 83;

199. सत्पुरुष की संगत का वास्तविक लाभ कब मिलता है ? 551-83;

200. सत्पुरुष या आत्मदर्शी पुरुष से नाम या दीक्षा लेना क्यों आवश्यक है ? 549-80; 551-82; 556-94 से 97;

201. सत् मार्ग में अत्याधिक धैर्य की आवश्यकता क्यों होती है ? 566-117;

202. सब धर्मों या मज़हबों का पूर्ण भाव क्या है ? 41-34; 67-104; 108-49; 234-68;

203. सभी सत्पुरुषों का उपदेश तथा जीवन हमको क्या सिखलाता है? 79-138; 80-140; 117-78; 171-5; 177-17; 191-48; 235-71; 236-73; 302-33; 365-14; 470-13; 533-48; 571-126; 624-40;

204. मज़हबी बादमुबाद क्यों त्यागना चाहिए ? 79-137; 108-49; 175-13; 176-15; 186-36; 188-41 से 48;

205. विश्व के सभी सत्पुरुषों ने किसकी पूजा की है ? 151-49,50;

206. मज़हब का क्या स्वरूप है ? 186-36,37;

207. धर्म और रिवाज़ में क्या भेद है ? 188-41 से 46; 470-11;

208. महापुरुषों के उपदेश अपनाने से कल्याण होता है या दर्शन भेंट से ? 468-7;

209. क्या आत्मिक ज्ञान सुनने से शांति प्राप्त हो सकती है ? 360-4;

210. देश का सुधार कैसे हो सकता है ? 89-3 से 9; 499-14 से 20;

211. किसी देश अथवा जाति की वास्तविक उन्नति कैसे होती है ? **408-3,4; 412-13; 546-73;**

212. दूसरों का सुधार अथवा समाज सुधार कैसे किया जा सकता है? **501-18,19;**

213. देश तथा विश्व में शांति कैसे हो सकती है ? **489-1 से 20**

214. राम राज्य की स्थापना के लिए क्या नीति अपनानी चाहिए ? **503-1 से 15;**

215. संसारी खोज का क्या नतीजा होता है ? **492-6;**

216. वास्तविक जीवन रक्षा क्या है ? **413-1 से 3; 425-16,17;**

217. आत्मिक व सामाजिक उन्नति के लिए संगत के प्रेमियों को कौन से नियम पालन करने चाहिए ? **389-1 से 25;**

218. बीमारियाँ कितने प्रकार की होती हैं ? **478-1;**

219. भूत-प्रेत का क्या स्वरूप है तथा इनसे कैसे छुटकारा मिल सकता है ? **478-1;**

220. भूत-प्रेत व पितर का क्या स्वरूप है ? **154-6; 155-9; 156-13 से 15;**

221. देवताओं को बलि देने से क्या होता है ? **152-53,55;**

222. देवी-देवताओं एवं ग्रहों की गलत तरीके से पूजा करने का क्या परिणाम होता है ? **147-28,29;**

223. मूर्ति पूजा या बुत परस्ती क्या है ? **138-1,3;**

224. सही मूर्ति पूजा तथा महापुरुषों की पूजा का क्या स्वरूप है ? **139-6 से 26; 234-68; 470-13;**

225. सही पूजा क्या है ? **143-1; 150-47,48; 152-52;**

226. देवी-देवताओं एवं ग्रहों की पूजा का गलत स्वरूप क्या है ? **144-2 से 19; 147-23;**

227. देवी देवताओं की सही पूजा का क्या स्वरूप है ? **146-22;**

228. क्या पूजा से ग्रहों का असर मिट सकता है ? 145-20;

229. तीर्थ यात्रा का क्या महत्व है ? 132-1 से 3;

230. तीर्थ किसको कहते हैं ? 25-23; 132-1; 133-5,7,8; 134-12-14;

231. शादी व मौत का कार्यक्रम सादा तरीके से क्यों करना चाहिए ? 87-6;

232. खुशी व ग़मी के कार्यक्रम करने से पहले ईश्वर की महिमा का गायन क्यों करना चाहिए ? 88-7;

233. असली धार्मिक व्यक्ति कौन है ? 80-139; 109-55; 276-53; 298-23; 448-11;

234. आस्तिक कौन है तथा आस्तिकता क्या है ? 90-1; 91-8 से 10; 92-13 से 16 293-13; 341-108; 416-7; 458-4, 5; 538-56; 591-5; 605-36; 628-9;

235. नास्तिक कौन है तथा नास्तिकता क्या है ? 90-1,2; 91-6,7,9,10; 92-13 से 16; 490-3; 509-7; 568-121;

236. हिन्दू धर्म किस नींव पर खड़ा है या हिन्दू धर्म का आधार क्या है ? 90-9; 209;

237. साधन के बिना विद्या हासिल करने का क्या परिणाम होता है ? 163-24; 582-151;

238. आठ तत्त्व कौन-से हैं ? 156-12;

239. जीवन विज्ञान क्या है ? 365-15; 456-7; 490-3;

240. पाप क्या है ? 26-32; 416-7;

241. नेकी किसको कहते हैं ? 24-15;

242. निरादर अथवा बेइज़्ज़ती क्या है ? 26-33;

243. मुर्दा कौन है ? 25-25;

244. सच्चा मित्र कौन है ? 24-14;

245. शत्रुता रहित व्यक्ति कौन है ? 23-3;

246. त प्त कौन है ? 24-6; 276-51;

247. नीतिवान कौन है ? 24-13;

248. दुर्लभ पदार्थ क्या है ? 24-17; 73-120,121.

श्री समता विलास का नवीन विषय क्रम

ग्रंथ श्री समता विलास को आसानी से समझने की द ष्टि से नए पाठकों के लिए निम्नलिखित क्रम में अध्ययन करना उपयोगी रहेगा।

	विषय	*प ष्ठ-संख्या*
1.	परम निधान	23
2.	समता निधान	1
3.	समता मार्ग सन्देश	193
4.	जीवन सार सिद्धान्त	465
5.	राम राज्य का स्वरूप	503
6.	समता ज्ञान का पूर्ण साधन	86
7.	आस्तिक व नास्तिकपन का विचार	90
8.	समता धर्म	169
9.	आत्मिक उन्नति धर्म का यथार्थ स्वरूप	93
	पहला साधन नियम-सादगी	93
	दूसरा साधन नियम-सत	103
	तीसरा साधन नियम-सेवा	110
	चौथा साधन नियम-सत्संग	120
	पांचवा साधन नियम-सत्-सिमरण	125
10.	तीर्थ यात्रा का सिद्धान्त	132
11.	दान का सिद्धान्त	135
12.	मूर्ति पूजा का सिद्धान्त	138
13.	देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा का सिद्धान्त	143
14.	भूत-प्रेत व पितर का सिद्धान्त	153
15.	भूत-प्रेत पर विचार	478
16.	गुरुपद का सिद्धान्त	237
17.	गुरु-स्वरूप लखना	249
18.	धर्म उपदेशकों के वास्ते हिदायत	160
19.	बुद्धि की पूर्ण व अपूर्ण अवस्था का निर्णय	198
20.	समता साधन सार	88
21.	आत्मिक व सामाजिक उन्नति के निर्मल नियम	389
22.	सत्संग निर्णय और सत् जीवन नियम	428
23.	समतावाद	251
24.	विश्व शांति संदेश	489
25.	कल्याणकारी निर्मल जीवन	461
26.	शुद्ध आचरण विवेक	331
27.	पवित्र जीवन	256
28.	धर्म मार्ग में गुरु शिष्य सम्बन्ध	473
29.	स्त्री पुरुष जीवन संबंध	475

विषय		प ष्ठ-संख्या
30.	सदाचार और नाम सिमरण का निर्णय	608
31.	समता सत् नियम-सत्संग	352
	-अभ्यास	353
	-सेवा	355
	-व्रत	355
	-तप	356
32.	वासना विवेक	287
33.	वासना छेदन विवेक	299
34.	वासना अभाव विवेक	321
35.	समता विवेक	359
36.	निर्मल जीवन कर्त्तव्य	386
37.	देह परायणता का पूर्ण निर्णय	387
38.	सत् जीवन स्थिति	463
39.	ईश्वर परायणता का निर्णय	387
40.	सत् शिक्षा	471
41.	जीवन सफलता बोध	445
42.	समर्पण कर्म	487
43.	सद्‌गुरु गुह्य उपदेश	384
44.	समता योग सिद्धि	210
45.	नित का जीवन नित की शांति	408
46.	सार निर्णय जीवन	451
47.	जिज्ञासु का निर्मल प्रण	433
48.	योग मार्ग बोध	506
49.	परम कल्याण बोध	590
50.	सत् मार्ग की स्थिति का निर्णय	587
51.	ईश्वर प्रेम	610
52.	आत्म चिंतन	625
53.	सत् स्वरूप चिंतवन की भावनाएं	632
54.	संबंध कर्मयोग या भक्ति-योग	632
55.	संबंध ज्ञान-योग	633
56.	खास-चेतावनी	635
57.	आत्म सिद्धि	635
58.	जीवन यात्रा	454
59.	जीवन सुधार	457

विषय *प ष्ठ-संख्या*

दार्शनिक चिंतन

60.	समता आनंद की अलोप अवस्था	27
61.	ईश्वर भक्ति की प्राप्ति	43
62.	समदर्शी और समव त्ति मार्ग का उपदेश	205
63.	उत्तरायण व दक्षिणायण मार्ग के मुतल्लिक	252
64.	शक्ति तत्त्व का निर्णय	398
65.	समता परम स्वराज	403
66.	निर्मल जीवन रक्षा	413
67.	निहकर्म सिद्धि यानी अहिंसावाद	420
68.	नवधा भक्ति का निर्णय	480
69.	समवाद विज्ञान	612

संगत समतावाद द्वारा महाराज जी की शिक्षा पर आधारित ग्रंथ एवं पुस्तकें

क्रम सं०	नाम	
1.	श्री समता प्रकाश ग्रन्थ	हिन्दी
2.	श्री समता विलास ग्रन्थ	हिन्दी
3.	जीवन गाथा भाग-1	हिन्दी
4.	जीवन गाथा भाग-2	हिन्दी
5.	मेरे गुरूदेव	हिन्दी
6.	गुरूदेव ने कहा	हिन्दी
7.	ऐसे थे गुरूदेव हमारे	हिन्दी
8.	ऐसी करनी कर चलो	हिन्दी
9.	अनन्त की खोज	हिन्दी/English
10.	संस्मरण	हिन्दी
11.	समता ज्ञान दीपक	हिन्दी
12.	समता आध्यात्मिक पत्र	हिन्दी/उर्दु
13.	समता ज्ञान पुष्पमाला	हिन्दी
14.	समता निति	हिन्दी
15.	अनन्त शान्ति की ओर	हिन्दी
16.	दी रिडिएन्ट सेमनेस (The Radient Sameness)	English
17.	संक्षिप्त जीवन परिचय	हिन्दी
18.	प्रार्थना व वैराग्य वाणी	हिन्दी
19.	जीवन परिचय (समतावाद)	हिन्दी
20.	समता संदेश-मासिक पत्रिका (Monthly Magazine)	हिन्दी/English/उर्दु
21.	अमर वाणी	हिन्दी
22.	प्रकाश पुण्ज	हिन्दी
23.	महामंत्र की सीडी (CD)	हिन्दी
24.	जीवन परिचय की सीडी (CD)	हिन्दी

समता-साहित्य

समता-साहित्य के ग्रन्थ तथा पुस्तकें समता योग आश्रम, संगत समतावाद के सभी आश्रमों से प्राप्त की जा सकती है।

मासिक पत्रिकाऐं

समता की मासिक पत्रिका **''समता सन्देश''** हिन्दी, उर्दू और अग्रेंजी में छपती हैं।

जानकारी/ INFORMATION

भारतवर्ष में, अन्य स्थानों पर भी संगत समतावाद के आश्रम व सत्संग शालाएँ है जिनके बारे में जानकारी व अन्य किसी भी प्रकार की जानकारी निम्नलिखित आश्रमों से ली जा सकती हैं।

MORE INFORMATION REGARDING SANGAT SAMTAVAD ASHRAM AND SATSANG SHALAS IN INDIA CAN BE HAD FROM ASHRAM OFFICES

HEAD OFFICE :
SANGAT SAMTAVAD
SAMTA YOG ASHRAM
CHACHHRAULI ROAD
JAGADHARI - 135003
PH. NO. : 01732-244882

मुख्य ऑफिस:
संगत समतावाद
समता योग आश्रम
छछरौली रोड
जगाधारी-135003
फोन न0-01732-244882

DELHI OFFICE :
SAMTA YOG ASHRAM
ANSAL PALAM VIHAR
FARM NO. 45
VILLAGE SALAH PUR
NEW DELHI-110061
PHONE NO.011-28061518,
011-28061519

दिल्ली ऑफिस:
समता योग आश्रम
अंसल पालम विहार
फार्म नं0-45
गाँव सलाह पुर
नई दिल्ली-110061
फोन न0- 011-28061518,
011-28061519

Web Site : www.samtavad.org
Email : india@samtavad.org